श्री दादा भगवान प्रबोधित

॥ आप्तसूत्र ॥

HOLISTIC SCIENCE RESEARCH CENTER

Vitrag Vignan Charitable Research Foundation

।। नमो अरिहंताणं ।।

वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।।

श्री कृष्ण भगवान

।। ॐ नमः शिवाय ।।

श्री शिव भगवान

।। अक्रम विज्ञानी संपूज्य दादा भगवान ।।

श्री दादा भगवान प्रबोधित

॥ आप्तसूत्र ॥
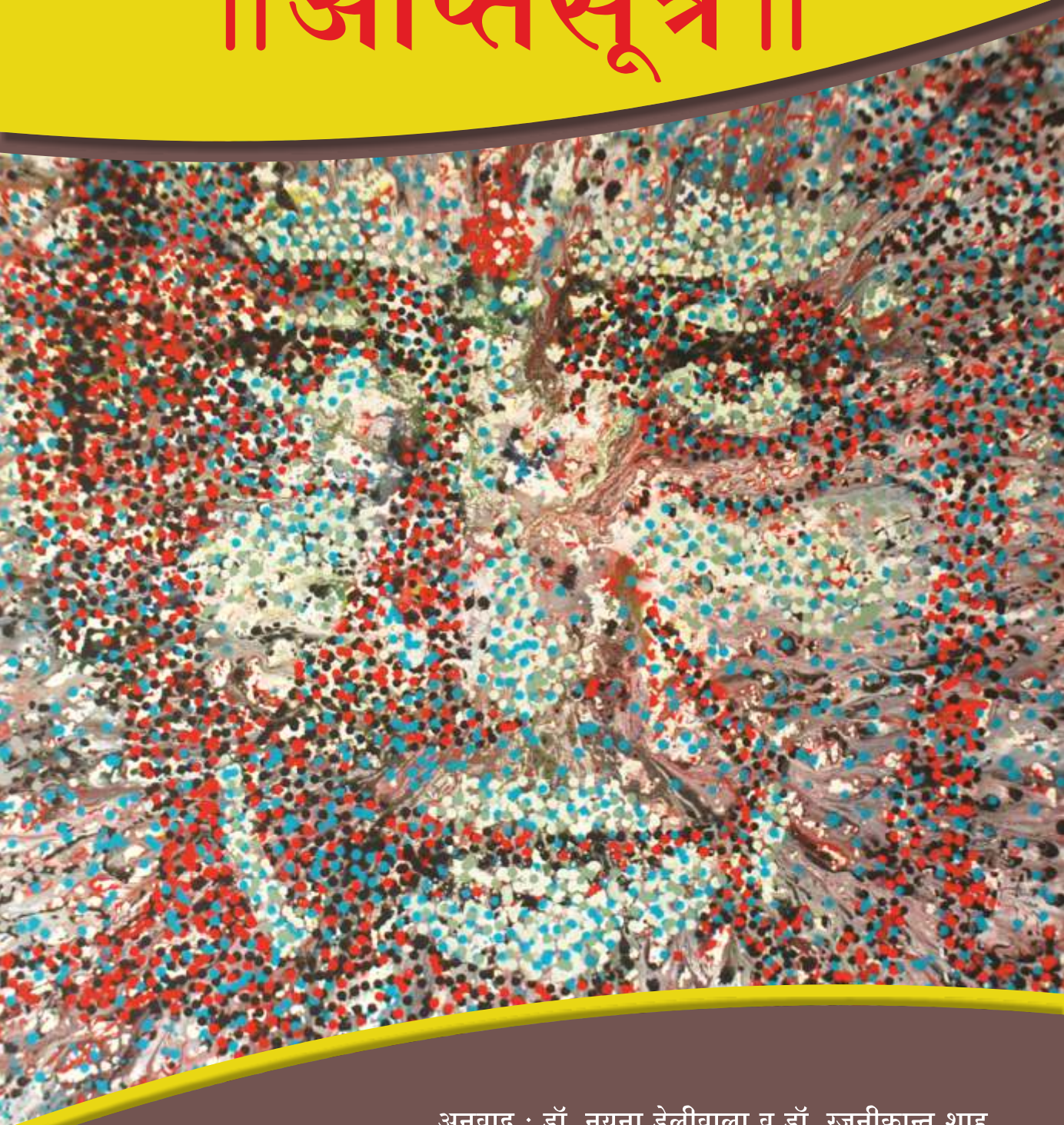
अनुवाद : डॉ. नयना डेलीवाला व डॉ. रजनीकान्त शाह

संपादन: लालाभाई डी. पटेल व चंद्रकान्त श्रीवास्तव

Translation

Prof. Nayanaben Deliwala and Prof. Rajanikant S. Shah

Editing

Lalabhai D. Patel and Chandrakant R. Shrivastav

Word Processing

Rajendra Jain, Sohini Shah, Alpa Bharuchwala

Graphics & Design

Pradeep K. Patel, Sandip Patel

Copies : 1000

Date : 3rd May, 2022 (अक्षय तृतीया)

ISBN : 978-81-954366-1-3

यथार्थ मूल्य : 'परम विनय' व 'मैं कुछ जानता नहीं हूँ' यह भाव

Published on behalf of:

Holistic Science Charitable Research Foundation, Oak Ridge, Tennessee (USA) by

Vasantbhai U. Patel
Founder Trustee,

HOLISTIC SCIENCE RESEARCH CENTER

Vitrag Vignan Charitable Research Foundation

Near Mahavideh Teerth Dham,

Kamrej Char Rasta, N.H. 8, Surat 394185 India

TEL: +91-2621-250750; Email: hsrcsurat@gmail.com

www.holisticscience.org

Printed by:

Shree Sai Art & Printers, Kamrej, Surat

: सर्व विघ्न निवारक निष्पक्षपाती दादा भगवान् त्रिमंत्र :

(प्रतिदिन सुबह-शाम यह 'त्रिमंत्र' पाँच बार अवश्य बोलें, यह मंत्र हर तरह से हितकारी है।)

(१)

ॐ

नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो उवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच नमुक्कारो

सव्व पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं

पढमं हवई मंगलं ॥

(२)

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

(३)

ॐ नमः शिवाय ॥

जय सच्चिदानंद !

आप्तसूत्र : लक्ष्य-वेधी सत् साधन

इस ग्रंथ में प्रकट, प्रत्यक्ष आत्मज्ञानी के अनुभव का अर्क है। ये अलौकिक आप्तसूत्र स्वयं क्रियाकारी हैं ! इनका अवलंबन लेने पर नितांत निरालंब निजस्वरूप निखरता है। हर एक सूत्र में 'भेद विज्ञानी' के परिणामप्रदायी योगबल का तप-फल है। 'अनेकांत' तथा 'स्याद्वाद' की आधारशिला पर निष्पक्षपाती आविष्कार है ये ! कहीं भी मतार्थ, खंडन-मंडन, वाद-विवाद, ज़ोर-आग्रह या विधि-विधान की प्रस्थापना नहीं; केवल अंतर्विज्ञान को आलोकित करती, प्रवर्तमान परिस्थिति के पर्यायों में परमात्म-प्रकाश प्रवहित करती, साक्षात् सरस्वती के सूत्र-सुमन की शाश्वत, अजर-अमर माला है ये !! इसका चिंतन-चर्वण-मनन, अभिप्राय-आग्रह गलाकर मुमुक्षु को सत् पथ का यात्री बनाता है।

सूत्र-रूप में गूँथी हुई यह वाणी स्थल, काल, प्रादेशिकता या भाषा के सीमा से परे है। यह वाणी प्रत्येक समस्या का समाधान प्रदान करती है, संताप-संघर्ष में संयम-समता का शौर्य प्रकट करती है, सानुकूल सहज स्थिति में 'स्व' का निराकुल आस्वाद प्रदान करती है, गर्व और गारव का निरसन करती है, व्यवहार का निःशेष निपटान करवा कर निजानन्द प्रदान कराती है, आत्म-ऐश्वर्य को वर्धमान करती है - संक्षेप में कहें तो ये 'केवल' 'प्रकाश' का प्रेरक पुरुषार्थ प्रबोधक ग्रंथ है, जो इस दूषम काल के लिए 'कल्पसूत्र' समान है, 'आगम' है, अध्यात्म-विज्ञान है।

संगमेश्वर अक्रम विज्ञानी 'दादा भगवान' के वचनबल से अभिषिक्त और 'अनुभव' से चेतन-प्रतिष्ठित-अंजनशलाका पाया हुआ प्रस्तुत ग्रंथ सभी को जीवनयात्रा में friend, philosopher & guide बनकर सहाय करे, और आत्मिक गरिमा-पूर्णता प्रकट करने में प्र-बल लक्ष्य-वेधी सत् साधन बने - इसी अभ्यर्थना तथा प्रार्थना के साथ...

-कनुदादाजी के बहुत बहुत आशीर्वाद !

प्रकाशकीय

प्रवर्तमान समय में श्री दादा भगवान के लाड़ले नाम से बुलाये जानेवाले श्रीमान अंबालाल मूलजीभाई पटेल एक प्रबुद्ध व्यक्ति थे। आप शुद्ध प्रेम और सादा जीवन जीनेवाले एक आत्मज्ञानी सद्‌गृहस्थ थे। अनेक जन्मों की अध्यात्म साधना के परिपाक स्वरूप कुदरती रूप से आप में केवलज्ञान प्रकाश प्रकट हुआ, जिसमें न केवल अध्यात्म व मोक्षमार्ग के रहस्य आलोकित हुए बल्कि जगत् व्यवहार - संसार व्यवहार से संबंधित सारा ज्ञान भी उजागर हुआ। अतः आपके पास आनेवाले सभी प्रकार के लोगों को विविध अध्यात्म मार्ग, मोक्ष मार्ग एवम् जीवन व्यवहार संबंधी ज्ञान सहज संवाद रूप से प्राप्त होता था। हालाँकि आप प्रवचन नहीं देते थे, लेकिन आपके अनगिनत संवाद मानव जीवन से जुड़ी सभी समस्याओं के संक्षिप्त व वैज्ञानिक समाधान से पूर्ण होते थे।

अलग अलग स्थानों पर, अलग अलग अवसरों पर छोटा ही सही लेकिन समर्पित,सन्निष्ठ व जिज्ञासु गण आपके सत्संग के लिए सान्निध्य बनाए रखकर बड़ी एकाग्रता और निष्ठा के साथ आध्यात्मिक और सर्वांगी जीवन से जुड़ी चर्चाओं और उनकी वाणी पर आधारित नोट्स बनाते थे या रेकोर्डिंग कर लेते थे।

पूज्य दादाजी की वाणी में सर्वकालीन प्रासंगिकता, अतिसूक्ष्म आध्यात्मिक सत्य, असाधारण अवलोकन और गुणवत्तापूर्ण प्रस्तुति थी। दादाजी की भावाभिव्यक्ति सूक्ष्म निरीक्षणयुक्त, आत्मप्रबुद्ध, सार्थक आध्यात्मिक दिशा में वैश्विक समझ के संदर्भ में समय समय पर प्रवहित होती रहती थी। दादाजी के संवाद स्थानीय गुजराती भाषा में हुआ करते थे। उनकी वाणीमें से सहजरूप में निकले हुए सूत्ररूप गहन दार्शनिक त्रिकालाबाधित वचनों का संचयन उनके अंतेवासियों द्वारा किया गया, जो आप्तसूत्र कहलाते हैं। श्री खेतशीभाई शाह, डॉ. निरूबेन अमीन, श्री दीपकभाई देसाई, श्री योगेशभाई मिस्त्री, डॉ. राधेश्याम शर्मा आदि के प्रयास से यह संकलन दादा भगवान की उपस्थिति में गुजराती भाषा में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद भी श्री दादा भगवान के अक्रम विज्ञान को समर्पित हमारी भगिनी संस्थाओं द्वारा गुजराती आप्तसूत्र ग्रंथ प्रकाशित किया गया है। इस ग्रंथ के हिंदी भावानुवाद संशोधन के लिए दादाश्री की आप्तवाणी श्रेणी एवं उनके साथ हुए सत्संग की रिकॉर्डिंग इ. तमाम सामग्री हमें सहायक हुई है।

यह ध्यातव्य रहे कि चयनित वाक्यों के कुछ छुटपुट हिन्दी और अंग्रेजी अनुवादों के अतिरिक्त इस अमूल्य और गौरवशाली कार्य का अनुवादकार्य अब तक संभव नहीं हो पाया था, जो आज पू.श्री की भावना के अनुसार हिंदी भाषी अध्यात्म-जिज्ञासुओं के लिए उपलब्ध हो रहा है। यह संपूज्य दादाजी द्वारा मानव जाति को दिया गया आध्यात्मिक दृष्टि से पुनीत और प्रमाणभूत उपहार है। भारतभर के जिज्ञासु व साधक इस ज्ञानपूर्ण ग्रंथ के हिन्दी अनुवाद की आवश्यकता लंबे अरसे से अनुभव कर रहे थे। आज मैं गौरव और अपने हृदयतल की प्रसन्नता के साथ इस शास्त्रसम्मत, सर्वधर्म हितकारी अनुवाद का अपने हाथ फैलाकर स्वागत करता हूँ जो दूर-सुदूरस्थ हिंदीभाषी क्षेत्रों के जिज्ञासुओं को पूज्यश्री दादाजी की दार्शनिक विचारधारा में गोता लगाकर अमृत मोती को पाने

में सहायक होगा।

इसकी अभिव्यक्ति दादाश्री की मूलतः बोलचाल की शैली में है जिसका भावानुवाद चुनौतीपूर्ण था। इस कार्य के लिए अनुवादक सुश्री डॉ.नयनाबेन डेलीवाला, अनुवादक डॉ.रजनीकान्त एस.शाह, संपादक श्री लालाभाई डी. पटेल (जो पूज्य दादा भगवान की सत्संग सभाओं में बरसों तक प्रत्यक्ष उपस्थित रहकर उनकी ज्ञानवाणी से लाभान्वित हुए हैं।) तथा श्री चंद्रकांत श्रीवास्तव इन सभी का मैं दिल से साधुवाद करता हूँ कि आप सब ने मिलकर जिज्ञासुओं के लिए इस महान् कार्य को हिन्दी में लाने का सार्थक प्रयास किया। कवि श्री राजेंद्र जैन जिन्होने इस ग्रंथ का बारीकी से प्रूफ रीडिंग किया और आप्तसूत्र महिमा नामक काव्य प्रस्तुत किया; अतः वे भी धन्यवाद के अधिकारी हैं।

सबसे खुशी की बात तो यह है कि पूज्य दादाजी के प्रिय और अनुगामी ज्ञानीपुरुष पूज्यश्री कनुदादाजी (१९३०-२०२०) की परम इच्छा थी कि इस पावन ग्रंथ का हिन्दी में अनुवाद हो, उन्हीं के आशीर्वाद से इस ग्रंथ के निर्माण में पावन प्रेरणा मिलती रही और उन्होंने समय समय पर अनुवाद कार्य का अवलोकन किया एवम् इसके लिए अनुवादक - संपादक गण को प्रत्यक्ष आशीर्वाद दिए। अक्रममार्ग के वर्तमान अनुगामी पूज्य श्री भावेशभाई पटेल जी (होलिस्टिक सायन्स रिसर्च सेंटर, सूरत के संप्रति मार्गदर्शक) ने भी इस महत् परियोजना में कई गहन सूत्रों का स्पष्टीकरण दिया ताकि अनुवाद निर्दोष हो सके; आपने भी इस प्रकाशन के लिए बडी प्रसन्नता व्यक्त की है।

दादा भगवान के कृपासिद्ध कवि श्री नवनीत संघवी आप्तसूत्रों के बारे में कहते हैं :

'आप्तपुरुषनां, सुवर्ण सूत्रो, आखाये विश्वनुं, कल्याण करजो !'

(आप्तपुरुष के ये स्वर्ण सूत्र पूरे विश्व का कल्याण करें !)

मैं पाठकों से निवेदन करूँगा कि इस ग्रंथ को एक बार पढ़कर कहीं रख ना देना, कुछ सूत्र हररोज़ पढ़ते रहना जिससे ये गहन ज्ञान के अद्भुत मर्मार्थ आप के भीतर समय-समय पर प्रकाशित हो कर रहस्योद्घाटित होते रहेंगे। जब कभी भी कोई समस्या हो तो इस ग्रंथ के अंत में दी हुई विषयानुसार सूची को देखकर संबंधित आप्तसूत्र का पठन और मनन करने पर समस्या का समाधान अवश्य मिल पाएगा, ये मेरा स्वयं का अनुभव है।

आध्यात्मिक प्रगति सभर सुखमय जीवन की शुभेच्छाओं के साथ,

तारीख : ३ मई, २०२२, अक्षय तृतीया

वसंतभाई पटेल
अध्यक्ष,
होलिस्टिक सायन्स रिसर्च सेंटर,
वीतराग विज्ञान चेरिटेबल रिसर्च फाउंडेशन, कामरेज, सूरत।

संपादकीय

भारत भूमि में समय समय पर अनेक बुद्ध पुरुषों ने जन्म लिया है। हमारी संस्कृति में ऋषि परंपरा से प्राप्त ज्ञान व संस्कार का बड़ा योगदान रहा है। इन महापुरुषों ने सर्व हितार्थ जो जीवनदृष्टि दी है, वो सभी जीव व पर्यावरण के लिए बहुत हितकारी है। यह दृष्टि परम कल्याण, सुख, शांति और समाधि की राह दिखाती है। उनके गहन चिंतन से निष्पन्न हुई इस दृष्टि के मूल में सभी जीवों के प्रति प्रेम व करुणाभाव निहित है। जगत् कल्याण की यह परंपरा पूज्य ऋषभदेव भगवान से शुरू हुई जो भगवान श्री रामचंद्र,भगवान श्रीकृष्ण, गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, आदि शंकराचार्य जैसे अवतारी पुरुषों व अनेक ऋषि-मुनियों के माध्यम से अस्खलित रूप में प्रवहमान रही है।

वर्तमान समय के ऐसे एक महापुरुष थे - पूज्यश्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल (०८-११-१९०८ से ०२-०१-१९८८) जो आदर, प्यार एवं श्रद्धा से 'श्री दादा भगवान' के नाम से लोकख्यात हैं और श्रद्धालुओं के हृदय में बसे हुए हैं। आपका जन्म गुजरात राज्य के वडोदरा जनपद के तरसाली गाँव में हुआ था। आपने दर्शन से जुड़ी कोई औपचारिक शिक्षा नहीं ली थी। आपका जन्म वैष्णव हिन्दू परिवार में हुआ और हिन्दू धर्म के दर्शन के उपरांत वेदान्त, श्रीमद् राजचन्द्रजी व जैन दर्शन में आपकी रुचि थी। शुरु से ही श्री दादाजी का लक्ष्य लोक-कल्याणकारी जीवन जीने का रहा। वे अपने गृहस्थ जीवन व व्यवसाय संबंधित व्यवहारों में धर्ममय एवं नीतिपूर्ण थे। यह उल्लेखनीय बात है कि पूज्य दादाजी ने अपनी युवावस्था में ही जीव और शिव, प्रकृति और पुरुष की तात्विक समझ प्राप्त कर ली। अनेक जन्मों की अध्यात्म यात्रा के फलस्वरूप दादाजी को सन् १९५८ में कुदरती रूप से आत्मज्ञान प्रकाश की संप्राप्ति हुई। तत्पश्चात् जिज्ञासुओं के साथ संवादों में दादाजी का सर्वकालीन तथा प्रासंगिक आध्यात्मिक विज्ञान प्रवहित होता रहा जिसे उनके अंतेवासी कलमबद्ध करते रहे, टेप रेकॉर्ड करते रहे और जिनका लिप्यांतरण होने पर कई पुस्तकें प्रकाशित होती रही हैं।

वे हमेशा सर्वांगीण जीवन दर्शन पर बल देते थे। आप के अनुसार सही समझ द्वारा सभी मानवीय विकट परिस्थितियों से निपटा जा सकता है। श्री दादाजी कहते थे कि सर्वांगी कल्याण की अनुभूति हेतु परस्पर अनुकूलन व सहयोग अति आवश्यक है।

दादाश्री की मौलिक ज्ञानधारा में कुदरती रूप से दिव्य ज्ञानसूत्र प्रकट होते थे जिन्हें उनके कुछ अंतेवासियों ने सहेज कर सँजोया, जो आप्तसूत्र के नाम से जाने जाते हैं। ये आप्तसूत्र सर्वकालीन, सम्पूर्ण मानवजाति के लिए सर्वार्थ कल्याणकारी हैं। स्वयं बुद्ध ज्ञानी के श्रीमुख से निकले ये सूत्र, सदियों तक मानवमात्र का मार्गदर्शन व कल्याण करेंगे, उन्हें जीने की राह दिखाएंगे, जैसे घने अंधेरे में विराट दीपस्तंभ, भटके हुए जहाजों को किनारा

दिखाता है। कोई किसी भी उत्क्रान्ति-स्तर पर क्यूँ ना हो, ज्ञानीपुरुष के ये सूत्र उससे आगे का मार्ग अवश्य दिखाते हैं और चेतन को ऊँचा उठाकर अंतिम लक्ष्य तक पहुँचने में सहायता करते हैं। मनुष्य जीवन का शायद ही कोई ऐसा पहलू हो जो किसी न किसी आप्तसूत्र से रोशन ना हो। प्रकट ज्ञानीपुरुष के ३६० डिग्री अवलोकन का ये निचोड़ है। किसी सूत्रविशेष को भी जीवन में पूर्णतः उतार लिया जाये तो उतना हिस्सा 'युधिष्ठिर के यज्ञ-भोज में घूमते हुए नेवले' की तरह स्वर्ण का हो जाये! ये सूत्र व्यवहारज्ञान और निश्चयज्ञान का अनुपम सम्मिलन है।

इन सूत्रों में से कई सूत्र ऐसे हैं जिनकी वास्तविक समझ तभी हो सकती है, जब उस सूत्र के आगे और पीछे के सूत्र का संदर्भ लिया जाये। कई सूत्रों की गहनता अधिक स्पष्टीकरण मिलने पर और उजागर होगी। कुछ सूत्रों में दादाश्री के व्यंग, कटाक्ष, और विनोद बुद्धि की झलक मिलती है जो पाठकों को झकझोरने के साथ गुदगुदाती भी है।

कविराज नवनीत संघवी जी के शब्दों में :

'अहोहो! आप्तसूत्रोमां, बधांये शास्त्रनो मर्मार्क ;

मनन, विचारी, वागोळो, महाविज्ञान स्व-सिद्धार्थ।

जे आप्तसूत्रो श्रीमुखे, झर्यां ते शुद्ध अमृतमय;

परम आत्मार्थनी कुँची, शुद्धात्मा जाणिये जगलय।'

(आप्तसूत्र में सभी शास्त्रों के मर्म का अर्क है। यह स्व-सिद्धार्थ महाविज्ञान है जिसका मनन व चिंतन वाचक को आत्मोन्नति प्रदान करे। दादाजी के श्रीमुख से झरता हुआ यह शुद्ध अमृत है जो शुद्धात्मा को जानने हेतु कुंजी रूप बनकर जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्ति दिलाकर परम आत्मार्थ सिद्ध कराता है।)

इस सम्पादन यात्रा में दादाश्री के कई संस्मरण चलचित्र कि भाँति हमारे हृदय में उभरे। सम्पादन के दौरान इस बात का विशेष ध्यान रखा गया कि ज्ञानीपुरुष के श्रीमुख से निकले हुए शब्द ही अधिकतम रहे। दादाश्री की शब्दावली जानकर उसका भावार्थ हिंदी में करना ये उभय ज्ञानीपुरुष दादा भगवान व परमपूज्य श्री कनुदादाजी के आशीष से ही संभव हो पाया है। इस ग्रंथ के अनुवाद के शुरुआती दौर में कई सूत्र ज्ञानीपुरुष कनुदादाश्री ने स्वयं देखकर संतोष व्यक्तकिया था, हालाँकि अनुवाद कार्य पूर्ण होने से पहले जून २०२० में उनका देहविलय हुआ। तत्पश्चात् कई गहन सूत्रों के अर्थ को सुलझे हुए शब्दों में स्पष्ट करने हेतु हमें ज्ञानीपुरुष कनुदादाश्री के अनुगामी पूज्य श्री भावेशभाई जी का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ, जिसके लिए हम उनके ऋणी रहेंगे।

छतनार वृक्ष की विशालता उसकी जड़ों द्वारा जल सींचने से ही होती है। तन-मन-धन से समर्पित होलिस्टिक साइंस के प्रेसीडेंट श्री वसंतभाई पटेल जी की जगत् कल्याण की भावना प्रेरणादायी है; उनके आशीष एवं समर्थन से यह हिंदी आप्तसूत्र ग्रंथ रुपक में आया है। अनुवादक प्रोफेसर रजनीकान्त शाह और प्रोफेसर नयनाबेन डेलीवाला ने अपनी व्यस्तता के बावजूद काफ़ी परिश्रम से इस ग्रंथ के अनुवाद कार्य के लिए अपनी सहर्ष सम्मति दी; उनके हम आभारी हैं।

एक नम्र निवेदन ये भी है की ज्ञानीपुरुष के इन सूत्रों की सच्ची समझ पर गौर करना है और यदि कोई सूत्र पूरी तरह समझने में दिक्कत हो, तो उसे तोड़- मरोड़ कर अर्थ नहीं निकालना है ताकि अर्थ का अनर्थ न हो जाये। यह स्मरण रखना है कि यह दिव्य वाणी मानवमात्र के कल्याण के लिए है, हर किसी धर्म -संप्रदाय के जिज्ञासुओं को अपने अपने मार्ग से आत्मोन्नति में मार्गदर्शन कर सकती है। हमें विश्वास है कि इसका बार बार स्वाध्याय, चिंतन व मनन करने पर देर-सवेर पाठक को इन गहन सत्यों की समझ उजागर होगी ही, क्योंकि सम्पूर्ण मानवजाति का कल्याण ही दादाश्री का उद्देश्य रहा है।

प्रत्येक मोक्षाभिलाषी जिज्ञासु को इस दिव्य ज्ञान के सादर स्वाध्याय व अनुशीलन के फल स्वरूप सजीवन ज्ञानीपुरुष की प्रत्यक्ष कृपा प्राप्त हो — यही हमारी भावना है।

१ मार्च २०२२ — लालाभाई पटेल

महाशिवरात्रि — चंद्रकांत श्रीवास्तव

अनुवादक की अनुभूति

अक्रम विज्ञानी श्री दादा भगवान के नाम से विख्यात श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल (१९०८-१९८८) वर्तमान युग के एक दृष्टा पुरुष थे। समय समय पर पूज्य दादाजी ने जो सनातन सत्य बताये वे गुजराती भाषा में 'आप्तसूत्र' के नाम से संकलित हैं। इस बृहद ग्रंथ में मनुष्य के लिए आवश्यक ऐसे आध्यात्मिक उन्नति एवं सर्वांगी विकास व कल्याण के लिए दादा भगवान की सूत्रात्मक दिव्य वाणी का समावेश किया गया है, अतः इसके हिंदी अनुवाद की खुशी हम सबको होना स्वाभाविक है। इससे ज्यादा प्रसन्नता तो हिंदी भाषी जिज्ञासुओं को होगी क्योंकि अब उनके पास यह अनमोल खजाना पहुँचेगा।

इस महान ग्रंथ का अनुवाद करते समय हम अनेक अनुभवों से गुजरे हैं। एक तो हमारी शब्दसमृद्धि एवं भावसमृद्धि में काफ़ी इज़ाफ़ा हुआ। जैसे जैसे हम दादाजी के दर्शन के अंदर उतरते गये, कई सवालों के जवाब मिलते गए और जिज्ञासाएँ शांत होती गईं।

इस कार्य के दरमियान हमें जो सबसे क़ीमती मोती हाथ लगा, वो है मैत्रीभाव जिस की नींव पर भारतीय धर्म, संस्कृति और सभ्यता की इमारत खड़ी है। जीवमात्र के प्रति मैत्रीभाव, करुणा, जीवदया, अपरिग्रह, सर्व धर्म समभाव और वैष्णव, शैव व जैन विचारधारा को एकसाथ जोड़कर पूर्वग्रह प्रेरित मान्यताओं से मुक्ति दिलाने का प्रयास अर्थात् सर्वधर्म समन्वय भावना की पुष्टि इस ग्रंथ के अध्ययन से हुई। आज के परिवेश में इस संवादिता का होना अत्यंत ज़रूरी है।

इस महत् कार्य के लिए पूज्य दादाजी ने अपने खुद की अनुभुति का आधार लिया है। दादाजी स्थानीय बोलचाल की लोकभाषा भाषा में ही बातचीत करते थे और जैसे घर में दादा अपने पोते-पोतियों और नाती-नातिनों को कहानियों के द्वारा जीवन से जुड़ी बातें समझाते हैं, वैसे ही पूज्य दादाजी ने बड़ी सहजता के साथ गहन जीवनसत्य और जीवनमूल्यों को जीने की बात समझायी है।

पूज्य दादाजी ने इस सत्य को भी समझाया है कि मनुष्य की तरह सभी जीव सुख और शांति, सुरक्षा और निर्भयता चाहते हैं, तो फिर हम अपने स्वार्थ, लोभ, खुशी और इंद्रियसुख के लिए अन्य जीवों को क्यों दुःख पहुंचाएँ? हम पर्यावरण समेत जीवमात्र की रक्षा करें, क्योंकि कुदरत ने कुछ भी निरर्थक नहीं बनाया। दादाजी ने इस प्रकार मैत्री और अहिंसा के मूल्य की महत्ता को समझाया है। इन सबके मूल में पूज्य दादाजी का सर्वांगी जीवन विज्ञान दर्शन है, जो एक नवनीत है। इस दर्शन को जीने से हम सब सुखी, स्वस्थ और भयमुक्त रह सकेंगे।

संक्षेप में, पूज्य दादाजी हमें स्पष्ट रूप से समझाते हैं कि सुखी जीवन के लिए निम्नलिखित बातों का हमेशा स्मरण रखना है।

★ इस संसार में कुछ भी बिना किसी कारण घटता नहीं है।

★ जीवन के चारों पुरुषार्थ– धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष सार्थक जीवन के लिए ज़रूरी है।

★ सभी आत्माओं के साथ स्नेह व मैत्री द्वारा जुड़े रहना है।

★ सदैव इस जगत् के परिवर्तनशील स्वरूप को समझते हुए जीना है ताकि राग–द्वेष न हों।

दादाश्री के कृपान्वित कविराज नवनीत संघवी जी आप्तसूत्र का वर्णन यूँ करते हैं :

'जीवात्मानां दृष्टिबिंदु, सांकळ्यां अनेकांतथी,

कोईनीय साथे भेद ना होय, शुद्ध आत्मस्वभावथी।'

(आप्तसूत्रों में हरेक के दृष्टिबिन्दु अनेकांतवाद की शृंखला में शुद्ध आत्म–स्वभाव से समन्वित हुए हैं, ताकि किसी के भी साथ भेद ना हो।)

हम गत पाँच वर्ष से होलिस्टिक सायन्स रिसर्च सेंटर से जुड़े हुए हैं। इस अध्ययन यात्रा के दौरान हम अपने जीवन में काफ़ी बदलाव का अनुभव करते रहे हैं। हमें प्रसन्नता है कि इस ग्रंथ के विशद अध्ययन के द्वारा सर्वांगीण समझ प्राप्त हुई जो हमे सर्व जीवों के साथ मैत्रीभाव विकसित करने में सहायता करेगी।

पूज्य दादाजी के कंठ से निस्सृत सर्वांगी जीवन कल्याण की मंगल वाणी को हिन्दी में उतारना उनके दिव्य आशीर्वाद से ही संभव हो पाया है। इस कार्य में उनकी कृपा और ज्ञानी पुरूष पूज्य कनुदादाजी के आशीष का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

अनुवाद कार्य में हमेशा साथ खड़े रहकर हमारा आत्मविश्वास बढ़ानेवाले कल्याणमित्र, श्री लालाभाई पटेल का सधन्यवाद आभार। होलिस्टिक सायन्स रिसर्च सेंटर के अध्यक्ष और पूज्य दादाजी को पूर्णतः समर्पित सम्मान्य श्री वसंतभाई पटेल को प्रणाम जिन्होंने पहली ही मुलाकात में हमें इस महत् कार्य के योग्य समझा। HSRC के सभी सहयोगी मित्रों का हृदयतल से साधुवाद।

जय सच्चिदानंद!

तारीखः ९ नवंबर २०२१
ज्ञानपंचमी

डॉ. नयनाबेन डेलीवाला
डॉ. रजनीकान्त एस.शाह

॥ आप्तसूत्र महात्म्य ॥

दोहा

दादा वाणी भगवती, सकल सिद्धि दातार।
दादा-शरणा में रहूँ, हों दादा - आधार ॥

जीव जगत् को तारने, लिया मनुज अवतार।
आप्तसूत्र में है छुपा, सर्व धर्म का सार ॥

सरल, सुबोध, सुहावने,
आप्त सूत्र दादा।
अक्रमज्ञान - प्रकाशक,
आप्त सूत्र दादा।

राग - द्वेष - विमोचक,
आप्त सूत्र दादा।
मुक्ति - रहस्य - प्रदायक,
आप्त सूत्र दादा।

त्रिविध - ताप - विनाशक,
आप्त सूत्र दादा।
समताभाव - विकासक,
आप्त सूत्र दादा।

धर्म - रहस्य सिखाते,
आप्त सूत्र दादा।
प्रेम - सुधा - बरसाते,
आप्त सूत्र दादा।

सकल संपदादायक,
आप्त सूत्र दादा।
रोग - शोक - भयहारक,
आप्त सूत्र दादा।

आत्म - स्वरुप प्रबोधक,
आप्त सूत्र दादा।
सर्वोपाधि - निवारक,
आप्त सूत्र दादा।

चहुँ-दिशि मंगलकारक,
आप्त सूत्र दादा।
आत्मतत्व - विधायक,
आप्त सूत्र दादा।

जनम-मरण निवारक,
आप्त सूत्र दादा।
सर्व जीव - हितकारक,
आप्त सूत्र दादा।

भव के फंद छुड़ाते,
आप्त सूत्र दादा।
अंतरदाह बुझाते,
आप्त सूत्र दादा।

कर्ताभाव विनाशक,
आप्त सूत्र दादा।
मोक्षलक्ष्मी - वरदायक,
आप्त सूत्र दादा।

-राजेन्द्र जैन

श्री दादा भगवान प्रबोधित

॥ आप्तसूत्र ॥

१.	यदि तुम्हें मोक्षपथ पर चलना हो तो 'तुम्हें' कुछ भी नहीं 'करना' है और यदि संसार में भटकते रहना हो तो सब कुछ 'करना' है।

★★★

२.	संसारव्यवहार 'क्रियात्मक' है और आत्मव्यवहार 'ज्ञानात्मक' है। एक क्रिया करता है और दूसरा देखता रहता है। 'करनेवाला' और 'जाननेवाला' दोनों कभी एक नहीं बल्कि अलग ही होते हैं! अलग थे, अलग हैं और अलग रहेंगे!!

★★★

३.	मोक्ष में जाना हो तो 'वीतरागों' की बात सिर्फ़ समझ लो। 'वीतराग' क्या कहना चाहते हैं, बस इतना समझ लो; इसके अलावा वे कुछ कहना नहीं चाहते।

★★★

४.	नासमझी से संसार खड़ा और समझ से संसार का विलय। ''ज्ञानीपुरुष'' सभी तरह की समझ दे दें, फिर शास्त्र पढ़ना न पड़े।

★★★

५.	'ज्ञान' की माता कौन ? समझ। वो समझ कहाँ से प्राप्त हो ? ''ज्ञानी'' से।

★★★

६.	क्या 'ज्ञान' जानना नहीं ? ना, कुछ भी जानने का नहीं, सिर्फ़ समझने का ही है। 'ज्ञानीपुरुष' तुम्हें जो कहते हैं उसे समझ लो तो काफ़ी है। केवल 'समझ' ही 'ज्ञान' में परिणमित होगी।

★★★

७.	'पूर्ण समझ' को 'केवलदर्शन' कहते हैं और वो 'वर्तन में आ जाय' उसे 'केवलज्ञान' कहा जाता है। 'केवलज्ञान' पूर्णाहुति है और 'केवलदर्शन' शुरुआत है । 'समझ' ये 'केवलज्ञान' की 'बिगिनिंग' है।

८. लाखों जन्मों तक क्रिया करते रहोगे तो भी कुछ काम नहीं बनेगा। परम विनय से ही मोक्ष है। परम विनय से समझ के द्वार खुल जाते हैं। अहंकार गल जाय तो ही परम विनय उत्पन्न होता है।

★★★

९. 'वीतराग' का पूरा मार्ग ही विनय का है। इस विनयधर्म की शुरुआत हिंदुस्तान में होती है। हाथ जोड़ने से लेकर साष्टांग प्रणाम तक कई सारे तरह-तरह के विनयधर्म होते हैं ! अंततः परम विनय आने पर मोक्ष प्राप्त होता है।

★★★

१०. परम विनय यानी क्या ? जिसने किसी की किंचित् मात्र भी विराधना न की हो ! जहाँ वाद न हो, विवाद न हो, क़ायदा न हो; वहाँ परम विनय है। क़ायदा ये बंधन है।

★★★

११. जगत् में जितने प्राकृत गुण हैं, वे नासमझी के कारण खड़े हुए हैं। ठोस हक़ीक़त नहीं समझने से ये सब हुआ है ! मनुष्य अनंत जन्मों से लगातार भटक रहा है और फिर भी ना जाने अपने आप को क्या मान बैठा है !!

★★★

१२. यह 'जगत्' संग्रहालय है। इस संग्रहालय में देखो और जानो ! खाओ और पीओ लेकिन अंदर से कुछ ले जाना नहीं। ममता ना करना, भले ही सब कुछ भोगना; लेकिन यहाँ से कुछ साथ में ले गए तो लौटकर वापिस संग्रहालय में आना पड़ेगा !

★★★

१३. 'जगत्' कोई 'वस्तु' नहीं बल्कि यह तो आत्मा का विकल्प है।

★★★

१४. ‘जैसा है वैसा’ न दिखकर, उससे उलटा दिखाई दे, इसका नाम जगत्।

१५. जगत् -व्यवहार दिखाव करने के लिए है, अनुभव करने के लिए नहीं।

१६. ‘दि वर्ल्ड इज दि पज़ल इट्सेल्फ; बट इट इज ऑल्वेज इन प्रिंसिपल’ !

★★★

१७. इस जगत् की चीज़ें ‘बीज’ स्वरूप में नहीं, बल्कि ‘फ्रूट’ स्वरूप में हैं। सब तैयार खेत लेकर ही आये हुए हैं, सिर्फ़ फसल ही काटनी है।

★★★

१८. जगत् अर्थात् जो उलटी राह पर खींचे। अगर जगत् उलटी राह पर न खींचता, तो वो स्वर्ग-सा ही हो जाता न!

★★★

१९. दो चीज़ें हैं जगत् में : अहम् का पोषण होना या भग्न होना! इस जगत् में सबके अहम् का या तो पोषण होता है या वो भग्न होता है, इसके अलावा कुछ नहीं होता।

★★★

२०. ‘जगत् किसी काम का नहीं’ ऐसा नहीं। हमें काम लेना आना चाहिए; क्योंकि हर कोई भगवान हैं और वे अलग-अलग काम लेकर बैठे हैं! अतः जगत् में नापसंद जैसा कुछ न रखें।

★★★

२१. जगत् न्याय-स्वरूप है और उसका फलादेश ‘व्यवस्थित शक्ति’ करती है।

२२. भगवान न तो न्याय-स्वरूप है, ना ही अन्याय-स्वरूप है। 'किसी को दु:ख न हो', यही भगवान की भाषा है। 'न्याय-अन्याय' यह तो लोकभाषा है।

★★★

२३. 'अज्ञान का स्वीकार' यही सच्चा ज्ञानमार्ग है।

★★★

२४. आत्मा का ज्ञाता 'आत्मज्ञानी' कहलाता है। सभी तत्त्वों का ज्ञाता 'सर्वज्ञ' कहलाता है।

★★★

२५. जो 'अबुध' हो जाय वही 'सर्वज्ञ' हो पाता है।

★★★

२६. आत्मा, ज्ञान और परमात्मा एक ही वस्तु है।

★★★

२७. 'जो स्वयं के आधार पर जीये' वो परमात्मा और जो 'पुद्‌गल के आधार' पर जीये वो जीवात्मा।

★★★

२८. 'मैं कौन हूँ' इसका तो भान ही नहीं। 'स्वयं' ही 'स्वयं' से गुप्त रहने का प्रयत्न करता है और पराया सब कुछ जाने। 'स्वयं' ही 'स्वयं' से गुप्त रहता है, ये तो ताज्जुब ही है न!

★★★

२९. सच्चे धर्म तो सभी हैं किन्तु जो धर्म 'मैं कौन हूँ' और 'कौन करता है', इसकी पड़ताल करता हो, वह चरम धर्म के मार्ग पर है और इन 'कौन' को जो जान ले वह है चरम धर्म।

★★★

३०. कुछ भी 'करने' से 'मैं कौन हूँ' यह नहीं जाना जा सकता। 'करने में' तो अहंकार चाहिए और जहाँ अहंकार हो वहाँ 'मैं कौन हूँ' यह नहीं जाना जा सकता।

३१. 'स्वयं कौन है और क्या नहीं', ये जानना, यही 'ज्ञान'।

३२. जब तक शुद्धता उत्पन्न नहीं होती, तब तक मोक्ष नहीं होता। शुद्धता के लिए 'मैं कौन हूँ' इसका भान होना चाहिए।

३३. ''ज्ञानीपुरुष'' शुद्ध होते हैं अतः उनके दर्शन से ही हम शुद्ध हो जाते हैं।

३४. आत्मस्वरूप को जानना है; ये तय करना पड़ेगा। उसे जानना तो पड़ेगा न ? यूँ ही गप्प लड़ाते रहें कि 'मैं आत्मा हूँ, मैं आत्मा हूँ', उससे कुछ नहीं होता। आत्मा तो अनुभव में आनी चाहिए; तब तक इस संसार की उपाधि जायेगी नहीं!

★★★

३५. खाना, पीना, उठना, जागना, ये सब देह के धर्म में ही हैं! एक बार, एक सेकंड के लिए भी कोई आत्मधर्म में नहीं आया, यदि आया होता तो भगवान के पास से हटता ही नहीं।

★★★

३६. 'आत्मा ऐसी है, वैसी है, ऐसी नहीं', ये तो सभी शास्त्र कहते ही हैं, साधु महाराज भी कहते हैं, किन्तु 'मीठा यानी क्या' ये 'ज्ञान' तो सिर्फ़ ''ज्ञानी'' ही चखायेंगे, इसके बाद वह ज्ञान क्रियाकारी बनता है।

★★★

३७. आत्मा कभी भी अशुद्ध नहीं हुई, एक पल के लिए भी नहीं। अगर अशुद्ध हुई होती तो इस जगत् में उसे कोई शुद्ध कर ही नहीं पाता।

३८. आत्मा का अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन और अनंत शक्ति आज भी उसी रूप में है। आत्मा कभी भी पापी नहीं हुई। आत्मा संपूर्ण शुद्ध ही है।

३९. मिथ्यात्व के चश्मे से मुक्त एवं कर्तापन के भान से मुक्त यही है शुद्धात्मा।

४०. 'मैं कौन हूँ' यह निश्चित करने के बाद ही 'मेरा नहीं है' ऐसा कहा जा सकता है। 'मैं' के आरोपित भाव की भूल है इसी कारण ये 'मेरेपन' की भूल हुई है।

४१. 'मैं कौन हूँ' यह खुद-ब-खुद समझ में नहीं आता। यदि अहंकार चला जाय तो 'मैं कौन हूँ' समझ में आ जाय, पर अहंकार जाय कैसे ?

★★★

४२. जो हमारे अहंकार को भक्षण कर जाय और हमें 'विराट' बनाए उन्हें 'विराट-स्वरूप' कहते हैं। 'विराट-स्वरूप' देखे बिना कोई नमन नहीं करता।

★★★

४३. पहले तो अहंकार चला जाता है, फिर 'ज्ञान' होता है।

४४. 'अहंकार नुक़्सानकर्ता है', ये जानो तब से ही सब कुछ सुधरने लगेगा। अहंकार का रक्षण करने योग्य नहीं।

★★★

४५. 'ज्ञानी' यानी कि अहंकाररहित!

★★★

४६. जो 'बिलीफ' हो, उसके अनुरूप साधन मिल जाते हैं। 'स्व' की 'बिलीफ' हो जाए फिर उसका 'ज्ञान' होने के लिए एक ही साधन होता है,''ज्ञानीपुरुष''! ''ज्ञानीपुरुष'' का निदिध्यासन ही फिर साधन है और उससे आत्मा प्रकट हुआ करती है।

★★★

४७. आत्मा प्राप्त हुई ऐसा कब कहा जाय? चिंता ना हो, 'वरीज़' ना हो, आधि-व्याधि-उपाधि में भी समाधि बनी रहे, वही है आत्मज्ञान की निशानी! इसके बग़ैर की बातें तो आकाशकुसुमवत् बातें हैं।

★★★

४८. अगर हमें यह संसार रास आता है, तो आगे कुछ भी समझने की ज़रूरत नहीं है। और यदि संसार हमें कुछ बाधास्वरूप होता हो तो हमें अध्यात्म जानने की ज़रूरत है। अध्यात्म में 'स्वरूप' को जानने की आवश्यकता है। 'मैं कौन हूँ' यह जान लिया तो सभी 'पज़ल' 'सॉल्व' हो जाय।

★★★

४९. 'अध्यात्म वस्तु' कोई क्रिया नहीं अपितु दृष्टि है। जगत् के लोगों की संसारदृष्टि है और 'यह' आध्यात्मिक दृष्टि है। 'ज्ञानीपुरुष' जब दृष्टि फिरा दें, तब दूसरी ओर अध्यात्म दिखाई पड़ेगा।

५०. ‘अध्यात्म’ यह ‘विज्ञान’ के पास आने का रास्ता है। ‘अध्यात्म’ ‘रिलेटिव’(सापेक्ष) है और ‘विज्ञान’ ‘रियल’ है। ‘अध्यात्म’ ‘ज्ञान’ है किन्तु ‘यह’ तो ‘विज्ञान’ है।

★★★

५१. जो सारे ‘रिलेटिव धर्म’ हैं वे मोक्ष नहीं देते बल्कि मोक्ष की दिशा में धक्का देते है।

★★★

५२. धर्म करने हेतु जिसमें किसी वस्तु की ज़रूरत पड़े तो वे सारे ‘रिलेटिव मार्ग’ कहलाते हैं।

★★★

५३. ‘रिलेटिव धर्म’ का फल क्या ? पुण्य ! मुक्ति नहीं।

★★★

५४. मानव जीवन का सार इतना ही है कि ‘स्वयं’ अपने ‘स्वरूप’ में-भान में आना और ‘स्वरूप’ में ही रहना।

★★★

५५. ‘‘ज्ञानीपुरुष’’ क्या कहते हैं ? ‘विज्ञान’ जानो तो ‘आप’ मुक्त हो। ‘विज्ञान’ जानो तो आप ‘स्वयं’ ही परमात्मा हो। ‘विज्ञान’ नहीं जाना तो अलग-अलग योनियों में भटकन ही भटकन है।

★★★

५६. ‘विज्ञान’ हमेशा गलत क्रियाएँ छुड़ाता है और सही क्रियाएँ भी छुड़ाता है। ‘विज्ञान’ तो स्वाभाविक क्रियाएँ कराये। ‘विज्ञान’ आने पर तो समझो भगवान ही हो गया !

★★★

५७. ‘विज्ञान’ हमेशा सैद्धांतिक होता है और वो सारे दु:खों का ‘एन्ड’(अंत) लाता है। ‘विज्ञान’ ही उसका उपाय है, लेकिन वह ‘‘ज्ञानीपुरुष’’ का अनुभवजन्य ‘विज्ञान’ होना चाहिए।

५८. ‘विज्ञान’ यानी जगत् में भाँति-भाँति का इकठ्ठा होना और परिवर्तन होना। पल पल परिवर्तन होता ही रहता है!

★★★

५९. ‘विज्ञान’ यानी जिसे जानने मात्र से ही मुक्त हो जाएँ-करने का कुछ नहीं। जो ज्ञान क्रियाकारी हो उसे ‘विज्ञान’ कहते हैं।

★★★

६० ‘वस्तु’ का स्वभाव में परिणमन होना, इसीका नाम धर्म! तुम आत्मा हो!! तुम्हारा ‘स्वयं का’ क्या स्वभाव है? परमानंद! निरंतर परमानंद!!

★★★

६१. धर्म वो है जो परिणमित हो। मिथ्यात्व को हटाए वो है धर्म। मिथ्यात्व का क्षयोपशम करे वो है धर्म।

★★★

६२. हमारा सुख स्वाभाविक होना चाहिए और ये स्वाभाविक सुख स्वधर्म में उत्पन्न होता है। स्वधर्म में ‘स्वरूप’ को जानना होता है।

★★★

६३. ‘आत्मा के धर्म का पालन करना’ यह स्वधर्म है।

६४. 'जैसा है वैसा ही' जानना, इसका नाम 'रियल ज्ञान' !

६५. जिसका एक शब्द भी यदि क्रिया में आ जाय तो, उसका नाम 'ज्ञान' और पूरे शास्त्र पढ़े किन्तु एक शब्द भी क्रिया में ना आये, उसका नाम है शुष्कज्ञान।

★★★

६६. 'ज्ञान' किसे कहेंगे ? जो 'है' उसे 'है' कहे और जो 'नहीं' उसे 'नहीं' कहे। और भ्रांति किसे कहेंगे ? जो 'नहीं' उसे 'है' कहे और जो 'है' उसे 'नहीं' कहे।

★★★

६७. खुद 'अपनी' 'सेल्फ' को समझें तो खुद ही परमात्मा है।

★★★

६८. 'शुद्ध ज्ञान' यही परमात्मा है। 'आत्मा' ये तो संज्ञासूचक शब्द है, परंतु 'शुद्ध ज्ञान' का दर्शन होना चाहिए।

★★★

६९. शुद्ध ज्ञान से मोक्ष, सद्ज्ञान से सुख और विपरीतज्ञान से दु:ख।

★★★

७०. योग मार्ग से 'ज्ञान' के बिना मोक्ष नहीं। भक्तिमार्ग से 'ज्ञान' के बिना मोक्ष नहीं। कर्म मार्ग से 'ज्ञान' के बिना मोक्ष नहीं।

★★★

७१. मोक्ष मार्ग कठिन नहीं, बल्कि संसारमार्ग कठिन है। मोक्ष मार्ग तो सबसे आसान है; बल्कि इससे कठिन तो खिचड़ी पकाना है!

७२. वीतराग मार्ग अवरुद्ध क्यों हुआ है ? 'वीतराग' को नहीं समझने के कारण। मतभेद से मार्ग अवरुद्ध होता है।

★★★

७३. वीतराग धर्म यानी कि आत्मधर्म। आत्मधर्म के अलावा कोई धर्म मेरा नहीं, ये है वीतराग धर्म।

★★★

७४. 'ज्ञानी' के शब्द को तोड़ना-मरोड़ना नहीं ! यह बहुत बड़ा जोखिम है। अगर उनका एक भी शब्द तुम्हारे अंदर उतरकर पच जाय तो वह मोक्ष तक पहुँचा देगा।

★★★

७५. अज्ञान दूर करने के लिए क्या करें ? 'ज्ञान' प्राप्त करें ! 'ज्ञान' पाने के लिए पुस्तक या शास्त्र-अध्ययन जैसे साधन सहायक हैं किन्तु यदि ''ज्ञानीपुरुष'' मिल जाय तो अन्य किसी साधन की ज़रूरत नहीं रहती। आत्मा अवक्तव्य-अवर्णनीय है; पुस्तक में व्यक्त नहीं हो सकती।

★★★

७६. 'आत्मा प्राप्त होने' की निशानी क्या ? खुद की प्रकृति का 'फ़ोटो' खींचना आ गया, यही।

★★★

७७. पुरुष और प्रकृति दोनों अलग वस्तु हैं ! पुरुष शुद्धात्मा है और प्रकृति पुद्‌गल है। प्रकृति पूरण-गलन स्वभाव की है; पुरुष ज्ञान-स्वभाव का है।

★★★

७८. प्रकृति पराधीन है, आत्माधीन नहीं ! प्रकृति को जो पहचाने वो परमात्मा हो जाय !! 'पुरुष' को पहचानें तो प्रकृति की पहचान हो पाए।

७९. प्रकृति को जो देखे वह पुरुष। प्रकृति को जो देख चुका वो परमात्मा।

८०. प्रकृतिमय हुआ इसीलिए परवश हुआ। प्रकृति के अंतराय टूटने पर पुरुष हुआ।

★★★

८१. प्राकृत भाग से 'जो' मुक्त है-ऐसा 'ज्ञान' 'जिसे' है, वह ''ज्ञानी'' !

★★★

८२. क्रमिक मार्ग 'करने का' है और 'अक्रममार्ग' 'समझने का' है। समझ से शमन होना है। 'अक्रम' यह क्रियामार्ग नहीं, अपितु 'समभाव से निपटारा' करने का मार्ग है। 'अक्रमज्ञान' ये स्वयं ही क्रियाकारी है।

★★★

८३. क्रम यानी अभी जहाँ अटके हो, वहाँ से 'स्टेप-बाय-स्टेप' आगे बढ़ना। पहले वो जाना जाय, फिर वह बात 'श्रद्धा' में बैठे, तत्पश्चात वो वर्तन में आये, ये है क्रमिक। 'अक्रम' में तो तुरंत शुरू में ही श्रद्धा में बैठ जाय, फिर 'ज्ञान' में आये और उसके बाद वह परिणाम में आता है।

★★★

८४. क्रमिक मार्ग यानी द्रव्य की शुद्धि करना है और अक्रममार्ग यानी भाव की शुद्धि करना है।

★★★

८५. कर्म-बंधन न हो और संसार चलता रहे ये 'अक्रम विज्ञान' और कर्म-बंधन हो और संसार चलता रहे ये क्रमिक ज्ञान।

८६. क्रमिक मार्ग 'ज्ञान' है, वह आख़िर में 'विज्ञान' हो जाता है।

★★★

८७. जैसे क्रमिक विज्ञान है वैसे ही यह 'अक्रम विज्ञान' है; परंतु 'अक्रम विज्ञान' पुस्तकों में नहीं अपितु ये ''ज्ञानी'' के हृदय में है।

★★★

८८. क्रमिक ज्ञान 'इफेक्ट' को 'कॉज़' कहता है जबकि 'अक्रमज्ञान' 'कॉज़' को ही 'कॉज़' कहता है।

★★★

८९. मन-वचन-काया 'इफेक्टिव' हैं, अतः उन्हें जो 'इफेक्ट' होता है वो ''मुझे इफेक्ट होता है/'मेरी' है'' ऐसा स्वयं मान लेता है। अतः इसी से राग-द्वेष होता है और 'कॉज़' पैदा होता है। परंतु यदि वह जाने कि ''ये इफेक्ट 'मुझे' नहीं है /'मेरी' नहीं है'', तो उसे राग-द्वेष नहीं होते और 'कॉज़' भी नहीं पैदा होता।

★★★

९०. कोई अवतार नहीं लेता। अवतार तो 'इफेक्ट' है; अपने आप ही अवतार हो जाता है। उसके 'कॉजिज़' का सेवन हुआ हो तो अवतार हुए बिना नहीं रहता। ''ज्ञानीपुरुष'' 'कॉजिज़' बंद कर देते हैं अतः सिर्फ़ 'इफेक्ट' ही बाक़ी रहती है।

★★★

९१. बिना कोई कारण के कार्य होता ही नहीं। 'कार्य' ये 'इफेक्ट' है और 'कारण' ये 'कॉजिज़' हैं। 'कॉजिज़ एन्ड इफेक्ट, इफेक्ट एन्ड कॉजिज़'....ऐसे श्रृंखला चलती ही रहती है! 'कॉजिज़' में परिवर्तन हो सकता है, परिणाम में नहीं।

★★★

९२. ‘मुझे ऐसा हुआ, मैं करता हूँ’, ऐसा न होकर ‘मैंने यह जाना’ ऐसा रहे, ज्ञाता-दृष्टा रहे, तो ’कॉज़’ पैदा न हो।

★★★

९३. योजना के गठन के समय ‘स्वयं’ उस अवस्था में तन्मयाकार हुआ, अतः अवस्था में ‘अवस्थित’ हुआ। उस ‘अवस्थित’ का कुदरत के साथ ‘मिक्स्चर’ होकर रूपक में आता है, तब वह ‘व्यवस्थित’ होता है।

★★★

९४. ‘अवस्थित’ ये ‘कॉजिज़’ है और ‘व्यवस्थित’ यह ‘इफेक्ट’ है। ‘अवस्थित शक्ति’ यह ‘कॉजिज़ ऑफ एक्शन’ है। ‘अवस्थित शक्ति’ में बदलाव हो सकता है; ‘व्यवस्थित शक्ति’ में बदलाव नहीं हो सकता।

★★★

९५. जो तुम अहंकारी हो तो तुम ही कर्ता हो और जो तुम निर्अहंकारी हो तो ‘व्यवस्थित’ कर्ता है। ‘स्वयं’ कर्ता है ही नहीं।

★★★

९६. सारे जगत् के मनुष्य मन-वचन-काया की अवस्था को ‘स्वयं’ की क्रिया मानते हैं। ‘रियली स्पीकिंग’ ‘स्वयं’ किंचित् मात्र कर्ता स्वरूप है ही नहीं। ये सब अज्ञान दशा के स्पंदन हैं और वे ‘कुदरती रचना’ से उत्पन्न हुए हैं, किसी बाप ने इन्हें रचा नहीं!

★★★

९७. ‘कुदरत’ कोई वस्तु नहीं है। कुदरत यानी संयोगों का इकट्ठा होना! संयोगों के इकट्ठा होने का प्रयत्न होने लगा, उसीका नाम है कुदरत और वो संयोग सारे एकत्रित हो चुके, उसका नाम ‘व्यवस्थित’।

९८. ‘अवस्थित’ यानी ‘बॅटरी’ ‘चार्ज’ की हुई, ‘व्यवस्थित’ यानी ‘डिस्चार्ज’ होता है वो।

९९. आत्मा कब जानेंगे ? जब तक इस जगत् में ‘मैं कर्ता हूँ, मैं कुछ भी कर सकता हूँ’ इत्यादि जो-जो नासमझी है, ये अज्ञान जब तक दूर नहीं होगा तब तक ना तो आत्मा मिल पाएगी और ना ही आत्मा की बात!

★★★

१००. जब तक इस सचर विभाग में यानी कि देह-मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार इन सभी में ‘मैं हूँ’ ऐसा देहाध्यास रहता है, तब तक न तो ‘वस्तु’ मिलेगी और न ही ‘वस्तु’ का स्वाद आएगा।

१०१. ‘मैं करता हूँ’ यह भान चला जाय और ‘कौन करता है’ यह जान ले उसे हर हल मिल जाये।

१०२. ‘मैं ही कर्ता हूँ’ यह भास्यमान परिणाम है, यथार्थ परिणाम नहीं। यथार्थ में तो ‘स्वयं’ कर्ता है ही नहीं।

★★★

१०३. इस जगत् में कोई एक व्यक्ति कर्ता है ही नहीं, ‘फेडरल कॉजिज़’ (समुच्चय कारण) ही हैं, यह ‘सायन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स’ (वैज्ञानिक सांयोगिक प्रमाण) हैं।

१०४. ''दी वर्ल्ड इज दी पज़ल इट्सेल्फ। गॉड हॅज नॉट क्रीएटेड दिस वर्ल्ड ऍट ऑल. गॉड इज क्रीयेटर ऑफ दिस वर्ल्ड इज करेक्ट बाय क्रिश्चन व्यूपॉइंट, बाय मुस्लिम व्यूपॉइंट, बाय इंडियंस व्यूपॉइंट, बट नॉट बाय फॅक्ट. बाय फॅक्ट ओन्ली 'सायन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' है यह।'' (यह जगत् अपने आपमें एक पहेली है। ईश्वर ने इस जगत् की रचना की ही नहीं है। 'ईश्वर इस जगत् का कर्ता है'- यह बात ईसाई दृष्टिकोण से, मुस्लिम दृष्टिकोण से और हिन्दू दृष्टिकोण से सही है लेकिन हक़ीक़त में ऐसा नहीं है। हक़ीक़त में तो यह जगत् मात्र 'वैज्ञानिक सांयोगिक प्रमाण' ही है।)

१०५. जीव मात्र को दिमाग चलाता है, वो ही करवाता है और बुद्धि के 'एन्ड' तक सब माथापच्ची ही है, इसमें भगवान का कुछ भी कर्तापन नहीं है। भगवान का बुद्धि में कर्तापन नहीं है, मात्र 'ज्ञान' में कर्तापन है।

★★★

१०६. इस संसार में कर्ता दोनों में से कोई एक हो सकता है; यदि भगवान ने इसे बनाया तो हमें कुछ नहीं करना होता; और यदि हम करते हैं, तो भगवान को कुछ नहीं करना है।

★★★

१०७. यदि जगत् भगवान ने बनाया होता तो भगवान को किसने बनाया ? और फिर उसे किसने बनाया ?.......

★★★

१०८. यदि भगवान कर्ता होता तो फिर तुम्हारी कोई जिम्मेदारी रहती ? नहीं रहती। भगवान भी कर्ता नहीं और तुम भी कर्ता नहीं हो। 'व्यवस्थित' कर्ता है।

१०९. क्या भगवान नहीं है ? है। उनका सही 'एड्रेस' क्या है ? कौनसी गली में रहते हैं ? ऊपर ? ऊपर तो कोई बाप नहीं रहता, मैं तो सब जगह घूमकर आया हूँ। भगवान का सही 'एड्रेस' तो 'गॉड इज इन एवरी क्रिएचर व्हेदर विज़िबल ओर इन्-विज़िबल। गॉड इज इन क्रिएचर नॉट इन क्रिएशन' ! (भगवान दृश्यमान या अदृश्यमान सभी जीवमात्र में हैं। भगवान जीवमात्र में है न कि किसी सृजित वस्तु में !)

★★★

११०. ये सारा जगत् भगवान को जानता ही नहीं; जो शक्ति इस जगत् को चलाती है उसे ही लोग भगवान समझते हैं। वास्तव में वो भगवान नहीं है, वो तो 'मिकेनिकल एड्जेस्टमेंट' (यंत्रवत् रचना) है, 'ओन्ली 'सायन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' (केवल वैज्ञानिक सांयोगिक प्रमाण) है। भगवान वीतराग हैं और ये 'मशीनरी' भी वीतराग है।

★★★

१११. एक दृष्टि कहती है, 'बनाया', दूसरी कहती है, 'बन गया'। जो 'बनाया' कहती है वह सांसारिक दृष्टि है और 'बन गया' कहती है वह ज्ञानदृष्टि है। जो कहता है 'बनाया', उसे फिर कोई पूछे कि 'तुम को पाख़ाना जाने की शक्ति है ?' 'नहीं' ! वो तो 'ओन्ली सायन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' (वैज्ञानिक सांयोगिक प्रमाण) है।

★★★

११२. लोग पूछते हैं कि, 'क्या आत्मा ने ही सब कुछ किया है ?' नहीं। यह तो 'ओन्ली सायन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' है। वो कैसे ? जब दर्पण के सामने खड़े रहते हो, तब आपकी इच्छा न हो तो भी 'एक्ज़ेक्ट' प्रतिबिंब खड़ा हो जाता है न ? आत्मा में चलने की शक्ति नहीं, किन्तु पूर्वप्रयोग द्वारा सिद्धक्षेत्र तक जाती है। पूर्वप्रयोग अर्थात् 'डिस्चार्ज'।

★★★

११३. यह जगत् ही 'सायन्स' है ! भगवान इस 'सायन्स' में ही रहे हैं और भगवान 'सायन्स' को देखा ही करते हैं कि 'सायन्स' का यह प्रयोग किस प्रकार हो रहा है, वे बस देखा ही करते हैं ! भगवान इसमें हाथ डालते ही नहीं। भगवान तो हरएक 'क्रिएचर' में बैठे हैं ; 'शुद्ध चेतन' रूप में, ज्ञाता-दृष्टा और परमानंद में !

★★★

११४. चेतन को जानना बहुत मुश्किल है। 'ये' जो जाना है, वो तो 'निश्चेतन-चेतन' है। निश्चेतन-चेतन यानी कि 'मिकेनिकल चेतन'। क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष-मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार ये सब 'मिकेनिकल चेतन' है।

★★★

११५. निश्चेतन-चेतन यानी जड़ होने के बावजूद सारे लक्षण 'चेतन' जैसे ही दिखे, किन्तु गुणधर्म ढूँढने जाएँ तो एक भी ना मिले।

★★★

११६. दो प्रकार की आत्मा : एक, व्यवहार में मानी हुई, 'मैं ही हूँ, मैं ही हूँ' ऐसी प्रतिष्ठा की थी वो 'प्रतिष्ठित आत्मा', उसे 'सचर' कहते हैं। दूसरी, दर असल मूल आत्मा-वो ही शुद्धात्मा, वो ही परमात्मा, वो ही 'अचर' है ! इसलिए जगत् को 'सचराचर' कहा गया है।

★★★

११७. 'मिकेनिकल आत्मा' चर है, चंचल है, यंत्रवत् है। सचर भाग को ही तुम चेतन मानकर उसे स्थिर करने का प्रयास करते हो। वास्तव में, दरअसल मूल आत्मा तो स्थिर ही है, अचल ही है।

११८. जो कुछ भी नहीं करता उसीका नाम ही चेतन। वो सिर्फ़ देखता है और जानता है ; ये दो ही क्रियाएँ चेतन की हैं! अन्य सब अनात्म भाग की शक्ति है।

★★★

११९. ''ज्ञानीपुरुष'' से आत्मा-अनात्मा की लक्ष्मणरेखा समझ लेनी चाहिए! उनके द्वारा दिए गये खुलासे तीनों काल सत्य होते हैं, लाखों वर्षों के बाद भी उसका प्रकाश 'यथावत्' रहता है।

★★★

१२०. ''ज्ञानीपुरुष'' के दिखाए बग़ैर, मनुष्य को खुद की भूल नहीं दिखती। यह एक ही भूल नहीं, अनंत भूलों ने उसे घेर लिया है।

★★★

१२१. इस जगत् के न्यायाधीश तो कोने-कोने में बैठे हुए हैं, पर कर्म का न्यायाधीश तो बस एक ही है, 'जो भुगते उसीकी भूल' ! यह एक ही न्याय है, जिससे समग्र जगत् चल रहा है और भ्रांति के न्याय से तो सारा संसार खड़ा है।

★★★

१२२. रहस्यज्ञान जगत् के लक्ष्य में है ही नहीं, किन्तु जिसके कारण निरंतर भटकते रहना पड़ता है, वो अज्ञान-ज्ञान का तो सबको पता है। जेब कट गई तो इसमें किसकी भूल ? उसकी जेब नहीं कटी और सिर्फ़ तेरी ही क्यों कट गई ? तुम दोनों में से अभी कौन भुगत रहा है ? 'जो भुगते उसीकी भूल' !

★★★

१२३. तीर चलानेवाले की भूल नहीं, अपितु किसे तीर लगा, उसकी भूल है। तीर चलानेवाला तो पकड़ा जायेगा तब उसकी भूल। अभी तो मार खानेवाला ही पकड़ा गया!

★★★

१२४. जहाँ-जहाँ दंड मिलता है, वहाँ समझ लेना कि हमारा ही गुनाह है, वरना दंड होगा ही क्यों ?!

★★★

१२५. जिसने एक बार तय कर लिया कि 'मुझमें जो-जो भूलें रही हैं उन्हें मिटा ही देना है,' वह परमात्मा हो सकता है।

★★★

१२६. भूल किसकी ? जो भुगते उसकी। कौन सी भूल ? 'मैं वीरचंद हूँ,' यह मान्यता, वो ही तुम्हारी भूल! ये मान्यता ही दु:खदायी है। ये मान्यता अगर हट गई तो जगत् में वैसे कोई गुनहगार है ही नहीं।

★★★

१२७. मूलत: भूल खुद की ही है, अत: दूसरा कोई गुनहगार नहीं यह साबित होता है। इसके पीछे रहस्य क्या है ? चेतन यदि गुनाह करे तो आपत्ति हो, लेकिन चेतन तो गुनाह करता ही नहीं। चेतन तो चेतन भाव करता रहता है और उसीसे यह पूद्गल खड़ा हो जाता है! उसमें से ही यह झंझट पैदा होती है; लेकिन वह भी दु:खदायी नहीं। 'मैं ये हूँ', ये मान्यता ही दु:खदायी है, अन्य कोई गुनहगार है ही नहीं।

★★★

१२८. सुख तो उसका नाम कि जिसके आने के बाद दु:ख न आये! और जगत् के लोग जिसे 'सुख' कहते हैं, वो तो लौकिक सुख है, सच्चा सुख नहीं।

★★★

१२९. सुख तो खुद के पास ही है। ये पारस्परिक सुख भोगने की जो इच्छा होती है, वो तो अज्ञान-संगति के कारण है। जिसे यह संगति नहीं है, उसे तो सच्चा सुख 'रियलाइज़' (प्रतीति) हो ही जाय!

१३०. मन क्लेशरहित हुआ, वो मोक्ष। क्लेशयुक्त मन, वो संसार।

१३१. यदि मोक्ष पाना है तो 'एड्जेस्ट एवरीव्हेर' होना ही होगा।

१३२. 'एड्जेस्ट एवरीव्हेर' यह वाक्य तुम्हारा संसार 'टॉप' पर ले जाएगा! व्यवहार में भी 'टॉप' पर गए बिना कोई मोक्ष में नहीं गया। ये व्यवहार तुम्हें ना छोड़े, उलझाये रखे, तो तुम क्या करोगे? इसीलिए व्यवहार का हल तुरंत निकालिए।

१३३. कलुषित भाव उत्पन्न ही न हों तब से भगवान पद उत्पन्न हुआ। और जब कलुषित भाव पूर्णतः चले जायें और जिनके निमित्त से सामनेवाले को भी कलुषित भाव उत्पन्न न हों, तब उन्हें 'भगवान' कहा जाय।

१३४. जहाँ तनिक भी क्लेश है, वहाँ न तो भगवान है, और ना ही धर्म।

१३५. वैसे तो कोई कठिनाई नहीं आती। किन्तु यदि मन विचलित हुआ, तो कठिनाई आ चिपकी समझो! बस, जगत् का यही नियम है।

★★★

१३६. अनुकूल हमें 'पॉलिश्ड' करता है और प्रतिकूल तराशता है! अतः दोनों में हमें क्या हर्ज?!

१३७. ये 'स्पीड ब्रेकर' किसलिए है ? तुम्हारी 'सेफ्टी' के लिए ! अर्थात् जो अड़चनें आती हैं वे तुम्हारे हित के लिए हैं। अगर अड़चनें न हो तो हर कोई बिना अटके 'स्पीड' से भागमभाग करे और टकरा जाये। 'नॉर्मालिटी' में रहें इस हेतु ही अड़चनें हैं।

★★★

१३८. तुम्हें कौन दुःख देता है ? तुम्हारे ही क्रोध-मान-माया-लोभ ! इसमें कुदरत का क्या दोष ?!

★★★

१३९. 'यह संसार व्यवस्थित है' यह बात यदि समझ में आ जाये तो कई सारे दुःख कम हो जाय।

★★★

१४०. इस जगत् में कलह कहाँ होता है ? जहाँ आसक्ति हो वहीं।

★★★

१४१. शादी के दो परिणामः आबादी या तो बरबादी !

★★★

१४२. सब लोग सुख के लिए शादी करते हैं, पर अंदर से दुःखी होते हैं बेचारे ! क्योंकि सुखी या दुःखी होना ये खुद के बस की बात नहीं, ये तो पूर्व में किए हुए कर्म के अधीन ही है !! वो तो भुगतने ही पड़ेंगे; इसमें कोई चारा नहीं।

★★★

१४३. 'हसबॅन्ड' किये भी बिना नहीं चलेगा ! अन्य सभी प्राकृतिक आवश्यकताओं की तरह ही ये भी ज़रूरी है। जिन-जिन चीज़ों की ज़रूरत है उन्हें लोग ढूँढते हैंः रसोईघर भी और पाख़ाना भी। ऐसे जगत् में न जाने लोगों ने कैसे-कैसे अर्थहीन विकल्प किए हैं !

१४४. शादी के बाद स्त्री–पुरुष व्यवहार कैसे करें, इसकी तो बहुत बड़ी 'कॉलेज' है ! किन्तु लोग तो बिना इसे जाने ही शादी कर लेते हैं !

१४५. जिसे एक 'मिनिट' भी मन मुटाव ना हो, उसीका नाम पति ! जैसे मित्र के साथ व्यवहार बिगड़ने नहीं देते वैसे ही दाम्पत्य में भी संभालना चाहिए। मित्र के साथ ना सँभालो तो दोस्ती टूट जाय।

१४६. संसार के विषयसुख की स्पृहा जितनी ज़्यादा, उतना 'डेवलपमेन्ट'(आध्यात्मिक) कम।

१४७. पति होने में हर्ज नहीं, किन्तु पतिपना जताने में आपत्ति है।

१४८. संसार में भले और कुछ न आये, किन्तु 'एड्जेस्ट' होना तो आना ही चाहिए। सामनेवाला भले 'डिसएड्जेस्ट' होता रहे किन्तु हम 'एड्जेस्ट' होते रहें तो ही संसार पार कर पाएंगे।

★★★

१४९. पति होना सही में आया ऐसा कब कहा जाय ? कि जब पत्नी निरंतर पति के प्रति पूज्यभाव का अनुभव करती हो !

★★★

१५०. पतित्व का गौरव कब तक रहे ? जब तक वह किसी गुनाह में न आये तब तक।

१५१. अक्सर लोगों को कोई उलाहना दे ये पसंद नहीं आता। अरे, इस उलाहना को ही 'विटामिन' मान लो न, तो काम हो जाय!

★★★

१५२. 'दुःख' ये आत्मा का 'विटामिन' है और 'सुख' ये देह का 'विटामिन' है।

★★★

१५३. 'हसबॅन्ड' यानी 'वाइफ' की भी 'वाइफ'! लेकिन लोग तो जबरन पति बन बैठते हैं। अरे, वाइफ कभी पति बन बैठेगी क्या ?!

★★★

१५४. ये तो जिंदा हो तब तक पति और बाद में ? या फिर कल 'डायवोर्स' ले लिया तो ? फिर तुम काहे के पति ?!

★★★

१५५. 'स्वयं' ही 'परमात्मा' है, किन्तु बग़ैर-हक़ का लेने में पड़ा है, इसलिए खुद का भान नहीं रहा। भगवान ने कहा था कि तुम तीन स्त्रियों से शादी करो तो भी हमें एतराज नहीं, लेकिन वो सब तुम्हारे हक़ की होनी चाहिए। और ये भी कहा था कि तुम पत्नी के मन को सँभालना और वह तुम्हारा मन सँभाले और हाँ, कर्म ना बढ़े इसका ध्यान रखना!

★★★

१५६. व्यवहार में 'नॉर्मालिटी' होनी चाहिए। बहुत करीबी रिश्तेदार हो वो एक बार गले मिले और दूसरी बार लड़ने को भी आ जाये, ऐसा नहीं होना चाहिए।

★★★

१५७. मतभेद हो तब झगड़ा होता है, मनभेद हो तब 'डाइवोर्स' होता है और जब तनभेद होता है तब अर्थी उठती है।

१५८. किसीने 'जाना' यह तो तब कहा जाये जब किसी से मतभेद न हो।

१५९. घर में मतभेद हो ये कैसे चलेगा ? पत्नी कहती है कि 'मैं तुम्हारी हूँ' और पति कहता है कि 'मैं तेरा हूँ', तो फिर मतभेद क्यूँ ?!

★★★

१६०. जिसका सास-पना छूट गया, मानों उसका सारा मोह चला गया; फिर उसे दुबारा सास बनने की नौबत ही नहीं आयेगी न ! पर ये सास-पना जल्दी छूट जाय ऐसा नहीं।

★★★

१६१. दूसरों के साथ अनुकूल होना जिसे आ जाय, उसे कोई दुःख ही ना रहे; 'एड्जेस्ट एवरीव्हेर'।

★★★

१६२. जब कहीं मुश्किल में फँस जाओ, तब तुम स्वयं 'एड्जेस्टमेन्ट' कर लो तो ये संसार सुहाना लगेगा।

★★★

१६३. 'मतभेद करना' ही 'पॉइज़न' है। होना चाहते हो अमर और पीते हो 'पॉइज़न' !

★★★

१६४. 'संकुचित ज्ञान' ये मत है और 'विशाल ज्ञान' यही 'विज्ञान' है।

★★★

१६५. मतभेद करोगे वहाँ आत्मा कैसे रहेगी ?! जहाँ मतभेद है वहाँ आत्मा नहीं और जहाँ आत्मा है वहाँ मतभेद नहीं होता। जहाँ मतभेद है वहाँ आत्मा कभी भी प्रकट नहीं होती। जहाँ अहंकार हो वहीं मत होता है।

१६६. धर्म का रक्षण करना है, मतभेद का रक्षण नहीं करना।

१६७. 'विज्ञान' से मतभेद चले जाय। 'विज्ञान' से संपूर्ण समाधि रहे, निरंतर समाधि रहती है। 'विज्ञान' तो जगत् में कभी कभार ही पैदा होता है!

१६८. हमारी बात सामनेवाले को 'एड्जेस्ट' होनी ही चाहिए। अगर सामनेवाले को हमारी बात 'एड्जेस्ट' न हो तो वह हमारी ही भूल है। हर प्रकार से हमारी भूल न भी हो, पर कुछ तो भूल हमारी है ही। अगर भूल हट जाए तो 'एड्जेस्ट' हो पाएँ। 'वीतरागों' की बात 'एवरीव्हेर एड्जेस्टमेन्ट' की है।

१६९. 'एवरीव्हेर एड्जेस्ट' हुए तभी मानें कि 'वीतरागों' की बात पूर्णरूप से समझ में आयी।

१७०. 'क्या करने से खुद सुखी हो', इतना ही अगर किसीको आ जाय तो मानो उसने पूरा 'सायन्स' सीख लिया।

★★★

१७१. संसार में सुख तो होता ही नहीं, परंतु भगवत्-उपाय करें तो कुछ शांति होगी लेकिन ज्ञान-उपाय करने से सदैव शांति बनी रहे।

१७२. निर्विकल्प सुख का अर्थ क्या? कि विकल्प करने तक की भी उसमें मेहनत नहीं। किसी भी प्रकार की मेहनत के बिना जो सुख उत्पन्न होता है वह खुद का स्वयंसुख है। विकल्पी सुख के लिए तो मेहनत करनी होती है।

१७३. जहाँ आरोपित सुख है ही नहीं, बल्कि केवल स्वाभाविक सुख है, वहीं मुक्ति है।

१७४. ''ज्ञानीपुरुष'' निरंतर स्वाभाविक सुख में ही रहते हैं और वे ही हमें स्वाभाविक सुख में ला सकते हैं, अन्य कोई नहीं। जो तैर गया है वही पार लगा सकता है। जो खुद ही गोते खा रहा हो वो क्या करेगा ?!

१७५. बाहर का जो क्लेश है वह एकावतारी होता है और अंदर का क्लेश सौ-सौ, अरे लाख-लाख अवतार तक चलता रहता है!

★★★

१७६. 'उलाहना देना' ये सबसे बड़ा अहंकार है, पागल अहंकार है। उलाहना कब काम लगेगा ? जब वो बिना किसी पूर्वग्रह के दिया जाय।

★★★

१७७. उलाहना देने पर मनुष्य साफ़-साफ़ नहीं कहता और कपट करता है। जगत् जगत् में सारे कपट उलाहना देने से ही खड़े हुए हैं।

★★★

१७८. एक बार झगड़ा करना, पाँच हजार रूपये का नुक़सान करने के समान है।

★★★

१७९. मति पहुँच नहीं पाती इसीलिए मतभेद होते हैं, मति पूरी पहुँचे जिससे मतभेद न हो, ऐसा होना चाहिए।

१८०. मतभेद ये 'टकराव' है और 'टकराव' तो 'वीकनेस' (निर्बलता) है।

१८१. मोक्ष जाने में अंतराय कौन करता है ? मत। मत के कारण तो अज्ञान भी समझ में नहीं आता ; फिर 'ज्ञान' की तो बात ही जाने दो।

१८२. 'हमारा मत' कहने पर आवरण आता है। 'स्व-मत' के आवरण के कारण 'पर-मत' समझ में नहीं आता, अतः वहाँ फिर मनुष्य टेढ़ा ही बोलता रहता है !

१८३. ''ज्ञानीपुरुष'' ने खोज की है कि सारा जगत् 'व्यू पॉईन्ट' से देखता है। 'व्यू पॉईन्ट' में शक्तियों का ह्रास होता है । आप सारी ज़िंदगी अपनी बात लेकर बैठे रहोगे फिर भी सामनेवाले का 'व्यू पॉईन्ट' नहीं बदलेगा।

★★★

१८४. सामनेवाला कोई भूल करे यह ज़्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं बल्कि क्लेश करना बहुत नुक़सानदेह है। जहाँ क्लेश है वहाँ भगवान का वास नहीं है।

★★★

१८५. 'व्यू पॉईन्ट' में रहना, 'व्यू पॉईन्ट' के साथ 'एड्जेस्ट' होना और साथ साथ 'सेन्टर' में रहना बहुत बड़ी बात है।

★★★

१८६. मतभेद हो इसमें हमारी ही भूल है ऐसा मानने पर ही इस जगत् में किसी बात का हल निकलेगा; दूसरा कोई उपाय नहीं है। 'उपाय करना' तो हमारा छुपा अहंकार है। उपाय क्यों खोजना ?!

१८७. विकल्पों की उपासना करके क्या मिले ? दु:ख ही मिलेगा न ! भगवान ने कहा था कि सब लोग जहाँ जाते हों वहाँ तुम मत जाना; सब जहाँ जाते हैं वहाँ से लौट आना !

★★★

१८८. क्लेश कौन कराये ? अज्ञान।

★★★

१८९. किसीको दु:ख पहुँचे ऐसा वातावरण पैदा करने पर हमें ही क्लेश हो जायेगा।

★★★

१९०. मुँह फुलाकर घर में बैठना, इसे 'क्लेश' कहते है।

★★★

१९१. हमें कोई उलाहना देकर छोड़ दे, ये ऋणानुबंध अच्छा क्योंकि उसे लगेगा कैसा ठंडा कर दिया ! लेकिन हम उसको उलाहना देकर अलग हो जायें ये 'हिसाब' अच्छा नहीं।

★★★

१९२. घर में ज़्यादातर झगड़े शंका के कारण ही होते हैं। शंका से स्पंदन उठते हैं और इन स्पंदनों की ज्वालाएँ भड़कती हैं। अगर निशंक हो जायें तो ज्वालाएँ अपने आप ही बुझ जाय। पति-पत्नी दोनों ही अगर शंकालु वृति के हों तो ज्वालाएँ कैसे बुझे ?! किसी एक को तो निशंक हुए बिना चारा ही नहीं !

★★★

१९३. इस जगत् में कभी भी किसी पर शंका नहीं करनी चाहिए, सच होने पर भी शंका न करें। शंका करना ये बहुत बड़ा गुनाह है।

१९४. संसार में सारे दु:ख कुशंका से ही तो पैदा हुए हैं !

१९५. यदि दृष्टि में रोग है तो सामनेवाले का सब कुछ उलटा ही नज़र आएगा, भले ही वो कितना भी सही क्यों न हो।

★★★

१९६. चोर को 'चोर' कहने में हर्ज नहीं; पर उसे बुरा कहना, दु:ख देना ये दृष्टि का दोष है ! इसी दृष्टि दोष से ही तो जगत् खड़ा हुआ है। जगत् केवल भास्यमान परिणाम से है; 'एक्ज़ेक्ट' परिणाम नहीं।

★★★

१९७. यदि शंका करनी ही हो तो आख़िर तक करना, भगवान ने उसे 'जागृति' कहा है। यदि शंका करके फिर छोड़ देना है तो शंका करना ही मत ! हम काशी जाने को निकले और मथुरा से लौट आएँ, उसकी बजाय निकले ही न होते तो अच्छा था !

★★★

१९८. लोग तो सारे पर्याय भूलते जाते हैं ; आगे लिखते जाएँ और पीछे भूलते जाएँ !

★★★

१९९. यदि शंका करनी है तो पूरी जिंदगी करते रहो, घाटे की चिंता करनी है तो जिंदगीभर करो, वरना करो ही मत।

★★★

२००. मतभेद शायद ही कभी हो, यह है मानवता का प्रमाण !

२०१. जितना तुम्हें मतभेद होता है उतनी तुम्हारी निर्बलता। वैसे तो लोग ग़लत नहीं हैं। जान बूझकर कोई कुछ नहीं करता। मतभेद टालने हेतु हमें तो बस माफ़ी माँग लेना है कि हमारी भूल है।

★★★

२०२. मतभेद यानी क्या ? दीवार से जा टकराना ! फिर हमारे माथे पे चोट आयी तो दोष दीवार का या हमारा ?

★★★

२०३. 'किसी के साथ कभी भी टकराव में न आएँ ! ये है मोक्ष जाने की मुख्य चाबी।

२०४. 'टकराव होता है' ये हमारी ही निर्बलता है।

★★★

२०५. 'टकराव' यही हमारी अज्ञानता है। भगवान के वहाँ 'सच्चा-झूठा' ऐसा कुछ होता ही नहीं। भगवान के घर द्वंद्व होता ही नहीं।

★★★

२०६. जिसे वहम पैदा हो उसका तो सब सत्यानाश हो जाय। 'वहम' तो 'टिमिडनेस'(भीरूता) है। समग्र जगत् 'सायन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' है, फिर वहाँ वहम क्या रखना ?! तुम पूरे ब्रह्मांड के मालिक हो, इसका प्रमाण देने के लिए मैं तैयार हूँ।

★★★

२०७. शंका का कोई समाधान नहीं। समाधान तो सच्ची बात का होता है। शंका का समाधान तो कभी हो ही नहीं सकता।

२०८. शंका यानी क्या ? खुद की आत्मा को बिगाड़ने का साधन।

★★★

२०९. बही-खाता देखना ये न जानने पर वहम पैदा होगा और वहम हो जाय तो दु:ख आयेगा !

२१०. किसीके व्यूपॉईन्ट को ग़लत कैसे कहा जाय ?! यदि कोई अंधा आदमी दीवार से टकरा जाय तो उसे कैसे डाँट सकते हैं कि क्यों टकराया ? अरे, वह अंधा था तभी तो टकरा गया !

२११. 'बीबी-बच्चे' तो हमारे आश्रय में आये हुए हैं। जो हमारे आश्रय में आया हो, उसे दु:ख कैसे दिया जाय ?! आश्रित की चूक होने पर भी हमें उसे दु:ख नहीं देना चाहिए।

२१२. 'एडजेस्ट' होने में बाधा कहाँ आती है ? कहता है: 'ये मेरी ब्याहता'-'ये मेरी वाईफ' ! अरे, नहीं है वो 'वाईफ' ! तुम 'हसबॅन्ड' ही जब नहीं, तो फिर वह 'वाईफ' कैसे हो गई ?!

★★★

२१३. शादी की क़ीमत कब हो ? यदि हजारों में किसी एक को शादी करने मिले तो। जब हर कोई शादी करता है, तो फिर इसमें क्या ख़ास बात हुई ?!

★★★

२१४. घर में तो व्यवहार अच्छा ही रखना चाहिए न ? अपने खेत का पौधा कुचला न जाय, ये ख़याल तो रखते ही हैं न ?!

२१५. हमें लगता है कि ये हमारा घर और परिवार है ! नहीं, ये तो कर्मों को खपाने की दुकान है, ग्राहक-व्यापारी जैसा रिश्ता है ! !

★★★

२१६. कोई भी प्राकृतिक पुष्प बेकार नहीं होता; बल्कि वो किस काम का है, ये खोज निकालना है। 'तुम्हें पुरनपोली बनाना नहीं आता, ये नहीं आता, वो नहीं आता'; ऐसे नहीं कहते रहना बल्कि उसे क्या आता है इसकी खोज करो।

★★★

२१७. यह संसार घर के लोगों से ही खड़ा रहा है, अन्य किसी कारण से नहीं। लोगों को घर का लाभ लेना नहीं आता। ये तो पाँच-छह लोगों का 'एसोसिएशन' है।

★★★

२१८. 'फॅमिली मेम्बर' यानी क्या ? जिसका जितना 'व्यापार', उतने उसके 'ग्राहक' ! छोटा व्यापार तो कम ग्राहक, बड़ा व्यापार तो ज़्यादा ग्राहक। और जब व्यापार बंद हुआ, बही के खाते चुकता हुए तो ग्राहक भी बंद।

★★★

२१९. वास्तव में दुनिया को नहीं जीतना है, अपितु अपने घर को जीतना है।

★★★

२२०. हमारा बेटा बड़ा होकर हमारा विरोध करने लगे, तो जान लें कि यह हमारा 'थर्मामीटर' है ! हाँ, आपको धर्म कितना परिणमित हुआ है, ये नापने के लिए 'थर्मामीटर' कहाँ से लायेंगे ? यदि घर में ही ऐसा 'थर्मामीटर' मिल जाय तो फिर बाहर खरीदने जाना न पड़े !

★★★

२२१. बेटा तो उसे कहा जाय जो बाप की सारी झंझट छुड़ा दे।

२२२. जिनके घर में माँ सख़्त हो उन बच्चों को व्यवहार नहीं आता।

२२३. जो बाप धर्मिष्ठ हो वो बच्चों की कमियाँ न निकालता रहे। प्रकृति की भूल नहीं निकालना चाहिए। प्रकृति की भूल निकालने से बात भगवान तक पहुँचती है। प्रकृति नियमित है, 'व्यवस्थित' है।

★★★

२२४. डराने-धमकाने से प्रकृति-स्वभाव न तो सुधरता है और ना ही वश होता है। डराने-धमकाने से ही तो जगत् खड़ा हुआ है। डराने-धमकाने से तो प्रकृति और ज़्यादा बिगड़ती है।

★★★

२२५. किसी को भी सुधारने का प्रयत्न करना नहीं, बल्कि खुद सुधरने का प्रयत्न करना। किसी को सुधारने का अहंकार तो तीर्थंकरों ने भी नहीं किया था। वे तो मोक्ष का दान देने के लिए आए थे!

★★★

२२६. जो खुद सीधा हुआ हो, वही दूसरों को सुधार सकता है।

★★★

२२७. आप दयालु हैं तो किसी को सुधारने हेतु उसे उलाहना ना दो। उसे सुधारने के लिए तो उसका सर फोड़ दे, ऐसा कोई मिल ही जाएगा।

★★★

२२८. मोक्ष को जाना है तो समझो कि तुम्हारे कोई पुत्र-पुत्री है ही नहीं। संसार में रहना है तो पुत्र-पुत्री तुम्हारे ही हैं।

२२९. उलटा बोलने पर अच्छी चीज़ भी बिगड़ जाय; इसी प्रकार बुरी चीज़ को अच्छी बोलने से वह सुधर जाय।

★★★

२३०. 'हमें' तो इन संयोगो के साथ ही संयोग पूरे करने हैं। इन संयोगो में फँस गए हैं, अतः संयोगों को जैसे-तैसे करके निपटा देना है। हम कोई स्वामी बनने के लिए तो आए नहीं; बस, इन संयोगों को निपटा देना है।

★★★

२३१. संयोग ऑटोमेटिकली-सायन्टिफिकली होते हैं और वियोग नियम से होता है।

२३२ स्थूल संयोग, सूक्ष्म संयोग, वाणी के संयोग पर हैं, पराधीन हैं और पराधीन करानेवाले हैं; और फिर भी 'व्यवस्थित' भाव से रहे हुए हैं।

★★★

२३३. इस 'वर्ल्ड' में ऐसा कोई मनुष्य नहीं जिसे संयोगों पर काबू हो।

★★★

२३४. देह के प्रति जिसके राग-द्वेष चले गए उसे कोई भी संयोग बाधक नहीं बनता। संयोग रुकावट नहीं बनते, राग-द्वेष ही रुकावट बनते हैं। संयोग तो ज्ञेय है और 'आप' ज्ञाता हो।

★★★

२३५. हमें जो संयोग हैं वे असंख्यात हैं। भगवान महावीर को भी संयोग थे, पर वे गिनती के ही थे। उन्होंने कहा कि, 'एक भी संयोग मेरा नहीं और मैं संयोगों में तन्मयाकार होता नहीं!'

२३६. संयोगों को इकठ्ठा करने में लोग 'टाइम' बरबाद करते हैं। संयोग तो कुदरत ही इकठ्ठा कर देती है।

२३७. भगवान किस पर राजी रहते हैं? जो सबके दु:ख ले-ले और दूसरों को सुख दे, उस पर।

२३८. किसी भी जीव को किंचित् मात्र भी दु:ख दोगे तो वह वेदना रूप से वेदनीय कर्म तुम्हें फल देगा! अत: किसी भी जीव को दु:ख देने से पहले सोच लेना।

२३९. मानव धर्म किसे कहा जाय? तुम दूसरों को सुख दो तो तुम्हें सुख मिले और दूसरों को दु:ख दो तो तुम्हें दु:ख मिले।

★★★

२४०. किसीको किंचित् मात्र भी दु:ख न पहुँचे ऐसा अहंकार होना चाहिए; ये है 'पॉजिटिव अहंकार'!

★★★

२४१. जब तक तुम्हारे निमित्त से किसी को तनिक भी दु:ख पहुँचता है तब तक उसका असर तुम पर ही पड़ेगा, अत: सावधान रहो।

★★★

२४२. यदि इस लौकिक धर्म का पालन करना हो तो दो ही शब्द को समझना आवश्यक है : १. हमसे किसी जीव को दु:ख न पहुँचे और २. हमारे पास कुछ है तो 'ये लोगों को दे दूँ', ये भावना। ये दो भावना पूरी हो गई उसने सारा धर्म सीख लिया!

२४३. इस दु:ख में किसकी खोज करना है ? सनातन सुख की ! यह सांसारिक सुख तो बहुत भोग लिया, उससे संतोष तो होगा पर तृप्ति नहीं होती।

२४४. सांसारिक दु:ख का अभाव, इसी का नाम सनातन सुख !

२४५. भगवान को कभी दु:ख नहीं झेलना पड़ा। भगवान से जिसने भेद किया उसे दु:ख है।

२४६. संसार में दु:ख किस बात से है ? 'विज़न' 'क्लियर' न होने से।

२४७. जहाँ किंचित् मात्र दु:ख नहीं होता, वहाँ आत्मा है !

२४८. कल्पित सुख 'एन्ड' वाला है और निर्विकल्प सुख 'परमेनन्ट' है।

★★★

२४९. जो सुख आने के बाद चला न जाय, उसीका नाम आत्मा का सुख !

★★★

२५०. 'मूल स्वरूप' में आने पर ही सच्चा सुख और शांति मिले।

★★★

२५१. जो संसार के सारे दु:खों को मिटाये, उसे 'सायन्टिफिक ज्ञान' कहा जाय।

★★★

२५२. सुख में और दुःख में राग-द्वेष करने से 'कॉजिज़' बँधते हैं; सुख में और दुःख में 'नोर्मल' रहने से, सम रहने से 'कॉजिज़' बंद हो जाते हैं।

२५३. जो असुविधा दिखाये वही है मिथ्यात्व। जब कि, सम्यक्दृष्टि-आत्मदृष्टि तो असुविधा में भी सुविधा दिखलाती है।

२५४. सुख-दुःख दोनों ही भ्रम है। धूप में दुःख का भ्रम हुआ और पेड़ के नीचे सुख का भ्रम हुआ। किन्तु किसी को सारी रात पेड़ के नीचे बिठाया जाय तो उसे वहाँ भी दुःख लगे।

२५५. 'एबोव नोर्मल' हो जाय वो पुद्गल सुख, दुःखरूप लगता है।

२५६. भगवान ने क्या कहा ? कि तराजू देखते रहना, यदि अंतर-सुख घटे और बाह्य सुख बढ़े तो समझ लेना कि मरने की नौबत आयी!

★★★

२५७. जिस धर्म से अंतर-शांति न हो उस धर्म को 'धर्म' कह ही नहीं सकते!

★★★

२५८. जहाँ शांति नहीं, वहाँ किंचित् मात्र धर्म नहीं।

★★★

२५९. 'मन की शांति' ये मनोवैभव है। 'मनोवैभव' यह 'टेम्परररी एड्जेस्टमेंट' है। 'आत्मशांति' ये 'आत्मवैभव' है और 'आत्मवैभव' यह 'परमेनन्ट एड्जेस्टमेंट' है।

२६०. उपाधि में शांति रहे उसे भगवान ने 'पुरुषार्थ' कहा है और उपाधि में समाधि रहे, उसे भगवान ने 'ज्ञान' कहा है।

२६१. 'अनुकूलता' ये 'फूड' है और 'प्रतिकूलता' ये 'विटामिन' है।

२६२. 'अपमान' ये 'विटामिन' है और 'मान' ये 'फूड' है।

२६३. 'प्योर' समझ में सुख है। ये दु:ख तो 'इम्प्योर' समझ के कारण हैं!

२६४. सुख-दु:ख जैसी कोई वस्तु ही नहीं है। 'सुख-दु:ख' ये तो अज्ञान-परिणाम हैं। ये तो 'एन्ड' वाले सुख-दु:ख हैं।

★★★

२६५. 'उलटी समझ' ये दु:ख है और 'सीधी समझ' ये सुख है। कौन-सी समझ मिलती है ये देखना है। उलटी समझ की आँट लग गई तो दु:ख ही दु:ख और वह आँट छूट गई तो सुख ही सुख! दुनिया में और कोई दु:ख-सुख है ही नहीं!!

★★★

२६६. इंद्रिय का स्वभाव है इंद्रियगम्य सुख ही खोजना और अतीन्द्रिय का स्वभाव है अतीन्द्रिय सुख ही खोजना।

२६७. व्याकुलता के कारण सारे दु:ख खड़े होते हैं और ''ज्ञानी'' के सान्निध्य में निराकुलता मिलने पर दु:खों का नाश होता है।

२६८. व्याकुलता में निराकुलता बनी रहे, ये ही सच्ची निराकुलता!

२६९. जिसके भीतर सुख हो वह किसी का कुछ ना बिगाड़े। जो स्वयं दु:खी है वो ही दूसरे का बिगाड़ने की चेष्टा करे। जो दु:खी हो वो ही दूसरे को छेड़े। सुखी व्यक्ति तो सबको सुख देने का प्रयत्न करे।

२७०. दु:ख-सुख तो आते ही रहेंगे, ये 'सायन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' है। 'दु:ख-सुख' ये 'इफेक्टीव' हैं, इसमें हमें कुछ ऐसा कर लेना चाहिए कि 'इफेक्ट' हो ही नहीं।

★★★

२७१. 'सभी दु:खों से मुक्ति कैसे मिले?' ये जानने के लिए ही यह जीवन जीना है।

★★★

२७२. जो जिस प्रकार जीना चाहता है वो उस प्रकार से ही जी सकेगा।

★★★

२७३. बहुत ही उपयोगपूर्वक, सोच-विचार के साथ ये जीवन जीना है। प्रत्येक कार्य का परिणाम क्या होगा ये देखना है। क्या परिणाम को सोचते हुए आत्मा भी ऐसी हो जायेगी? नहीं। उस परिणाम के विचार को जो जानता है वह आत्मा है! परंतु परिणाम तो सीधे ही होने चाहिए न? बारीकी से जीना चाहिए ना?

२७४. यह जो मनुष्य जन्म मिला है इसमें 'अपना खुद का कितना और पराया कितना' इस बात का विवेक करना है।

२७५. इस जगत् में कोई ऐसा स्थान नहीं या ऐसी कोई अवस्था नहीं, जो तुम्हें 'डिप्रेस' कर सके।

२७६. कोई भी ऐसा समय, ऐसा संयोग या ऐसी अवस्था नहीं, जो हमें 'डिप्रेस' कर सके।

२७७. जब लोग हमसे भड़कने लगें, तो समझो कि विकराल जंगल आ गया ! यदि लोग राजी हैं तो जानो कि रास्ता अच्छा है !!

२७८. जिसका अहंकार चला गया है वह किसी भी व्यक्ति को खुश कर सकता है और 'समभाव से निपटारा' कर सकता है।

★★★

२७९. सामनेवाले की छाया (प्रभाव) हम पर पड़ते ही उसके दुर्गुण हमारे अंदर पैठ जाय; चाहे फिर उसके गुण देखकर या सिद्धियाँ देखकर हम पर उसकी छाया (प्रभाव) पड़ी हो।

★★★

२८०. इस 'वर्ल्ड' में कोई भी व्यक्ति हमें उकसा न सके, ऐसा होना चाहिये। यदि तुम्हें 'पीन' लगे, तो तुम 'स्टव' ही हुए ना !!

२८१. यदि हम 'करेक्ट' हों तो दुनिया में हमें कोई हिला नहीं सकता। पहले 'करेक्टनेस' और बाद में 'एक्ज़ेक्टनेस' होती है।

२८२. किसी की भी छाया (प्रभाव) न पड़े ऐसी दुनिया को तुम्हें एक तरफ रखना आ जाय, तो वह है समर्पणभाव!

२८३. जहाँ अकड़ने की स्थिति हो वहाँ नम्र रहा जाए यही है ख़ानदानियत। जितनी विशेष नम्रता हुई उतना ही ख़ानदानीपना ऊँचा।

२८४. कोई काम कर के यदि बोल के जताये कि 'मैंने किया', तो फिर ख़ानदानियत चली जाय। कुलीन तो उसे कहेंगे कि जो दोनों तरफ से घिसाए; देते समय भी और लेते समय भी।

★★★

२८५. 'ड्यूटी' निभाना ये कोई धर्म नहीं है लेकिन 'ड्यूटी' नहीं निभाना यह गुनाह है। 'ड्यूटी' तो सब निभाते ही हैं किन्तु यदि बड़बड़ाते हुए करे तो वो गुनाह है।

★★★

२८६. जगत् में सब कुछ अनिवार्य है; मरना भी अनिवार्य है और जन्म लेना भी! अतः ऐसा कुछ खोजो कि हम अपनी मर्ज़ी से क्या कर सकते हैं?!

★★★

२८७. यदि तुम्हें मुक्ति पाना है तो 'यह'(ज्ञान) जानने का प्रयत्न करो; नहीं तो जो है सो बराबर है, 'करेक्ट' है।

२८८. बस ये बात ही समझने की ज़रूरत है कि 'व्हॉट इज करेक्ट एन्ड व्हॉट इज इन्करेक्ट ?' सच्ची बात क्या है ? 'करेक्टनेस' क्या है ? 'वर्ल्ड' क्या है ? ये सब क्या है ? तुम कौन हो ? परमात्मा क्या है ?'

★★★

२८९. क्या परमात्मा है ? परमात्मा तो है ही और वो तुम्हारे पास ही है ! बाहर कहाँ खोजते हो ?! पर कोई हमें वो दरवाजा खोल दे, तो हम दर्शन कर पाएँ न ? वो दरवाजा ऐसा कसकर बंद हो गया है कि जो कभी भी स्वयं हम से नहीं खुल सके। ये तो जो खुद तैर चुके हों ऐसे तरण-तारणहार ''ज्ञानीपुरुष'' का ही काम है !

★★★

२९०. संसार है ही अनिवार्य ! 'ऐच्छिक' भाग में तो एक 'सेकंड' के लिए भी 'खुद' कभी आया ही नहीं।

★★★

२९१. 'ऐच्छिक भाग' कब उत्पन्न हो ? 'खुद कौन है' यह भान उत्पन्न हो तब।

★★★

२९२. भगवान का क़ायदा क्या है ? जिसे छूटना हो उसे भगवान कभी भी बाँधते नहीं और जिसे बँधना हो उसे कभी छुड़ाते नहीं।

★★★

२९३. छूटने के कारणों का जो सेवन करे उसे छूटने के सभी संयोग आ मिलते हैं, उसमें भगवान उसे 'हेल्प' करते ही रहते हैं; और बँधने के कारणों का सेवन करनेवाले को भी भगवान 'हेल्प' करते ही रहते हैं।

★★★

२९४. लोगों की समझ से चलने के कारण बँधा ; जो ''ज्ञानी'' की समझ से चला वह छूट गया !

२९५. जो छूट गए हैं उनसे समझ लेकर चलोगे तो छूटोगे और बँधे हुए से समझ लेकर चलोगे तो बँधोगे।

२९६. जिस तरह बँधने के लिए निमित्त मिले हैं उसी तरह छुड़ाने के लिए भी निमित्त मिल जायें तो वो छुड़ाते ही हैं। हालाँकि, मुक्त हुआ कोई पुरुष, मुश्किल से शायद किसी काल में होता है। मोक्ष दुर्लभ नहीं, किन्तु मोक्षदाता पुरुष अति अति दुर्लभ है।

२९७. 'वीतरागों का ज्ञान' ऐसा है कि कोई भी सांसारिक बंधन हमें बाँध नहीं सकता। किसी भी चीज़ से बँधे ही नहीं ऐसा हमारा 'स्वत्व' है, हमारी आत्मा है ! इस 'स्वत्व' को पहचानो, इसका 'ज्ञान' पाओ।

★★★

२९८. संसार में तो निरी परवशता है ! निरंतर परवशता !! जानवर भी परवश, मनुष्य भी परवश, ये तो कैसे पुसाय ?! इसमें से स्वतंत्र हो सकें ऐसा 'ये' मार्ग है। 'यह' 'रियल मार्ग' है, स्वतंत्र होने का !

★★★

२९९. ये संसार यानी कि परवशता का संग्रहालय !

३००. ये संसार बस एक जाल है ! एक बार फँस जाने के बाद उसमें से निकला नहीं जा सकता। इस कीचड़ में गहरे उतरे फिर निकलना असंभव ! दलदल में पैठ जाने के बाद तो ज्यों-ज्यों बाहर निकलने का प्रयत्न करें त्यों-त्यों और गहरे धँसते जायेंगे !

★★★

३०१. यदि तुम्हें मोक्ष जाना है तो संसार के झंखाड़ में अटके मत रहना ! यदि धोती फँस जाये या फट भी जाये तो उसे खींचकर आगे बढ़ते ही रहना। अरे, यदि धोती निकल भी जाये तो उसे वहीं छोड़कर भी आगे चलते ही रहना !

★★★

३०२. ये तो परवश जगह है। 'हम' स्वतंत्र हैं। जब 'अपने खुद के स्थान' पर आ जाएंगे, तब हल मिल जाएगा। ये सारा जगत् इस परवशता से मुक्ति खोज रहा है।

★★★

३०३. हिंदुस्तान के लोगों को तो 'विभूति स्वरूप भगवान' कहा गया है। अरे ! तुम तो 'भान' चले जाने पर भी भगवान हो ! तो फिर 'मेरा क्या होगा ? सुख कहाँ से मिलेगा ?' ऐसा क्यों ?

★★★

३०४. संसार में सुख है ये कैसे कहा जाय ? ये तो मान लिया हुआ सुख है। सच्चा सुख तो स्वतंत्र होने में है; 'कोई बाप भी ऊपरी न हो', उसी में है। जब तक माथे पर 'बॉस' हो, तब तक सुख कैसे कहा जाय ?!

★★★

३०५. मोक्ष हुआ ऐसा कब कहा जाय ? जब हम मुक्त हो गये हैं ऐसा भान हो जाय ! मेरा कोई ऊपरी नहीं, भगवान भी मेरा ऊपरी नहीं; ऐसा भान बरते !!

★★★

३०६. जहाँ सर पे भगवान हों वहाँ मोक्ष नहीं। जहाँ मोक्ष है वहाँ भगवान ऊपरी नहीं होते।

३०७. एक भी ऊपरी हो तब तक परवशता ही कही जाएगी। परवशता कैसे पुसाय?

★★★

३०८. 'मैं स्वयं ही परमात्मा हूँ,' ऐसा भान हो जाय तब मोक्ष जा पायें; वरना मोक्ष का साक्षात्कार हो ही नहीं-वह तो 'मृग-मरीचिका दर्शन' कहलाए।

★★★

३०९. तुम्हारे ऊपरी कौन ? तुम्हारी 'ब्लन्डर्स' और तुम्हारी 'मिस्टेक्स' । 'ब्लन्डर्स' को ''ज्ञानीपुरुष'' तोड़ देंगे पर 'मिस्टेक्स' तुम्हें खुद तोड़नी होगी; उसका रास्ता ''ज्ञानीपुरुष'' दिखायेंगे।

★★★

३१०. 'मैं रसिकलाल हूँ' यही सबसे बड़ी 'ब्लन्डर' है। भूलों को माफ़ किया जाता है; 'ब्लन्डर्स' को माफ़ नहीं किया जाता।

★★★

३११. ''ज्ञानीपुरुष'' ने कौन-सा पद देखा होगा ?! उन्होंने ब्रह्मांड की मालिकी देखी है ! उन ब्रह्मांड के मालिक को देखो कि उनका क्या 'बिज़नेस' है ; वही जब तुम्हारा 'बिज़नेस' होगा, तब तुम्हें वो पद प्राप्त होगा !!

★★★

३१२. ये 'प्लॉट' का मालिकीपना छूटे तो पूरे ब्रह्मांड के मालिक हो जाय; और यदि 'प्लॉट' के मालिक हुए तो ब्रह्मांड का मालिकीपना चला जाय।

३१३. भगवान कौन हैं ? जो देह होने पर भी देह के मालिक नहीं, मन के मालिक नहीं, वाणी के मालिक नहीं, किसी भी चीज़ के मालिक नहीं हैं; वो इस जगत् में भगवान हैं !

३१४. जब तक स्वयं की भूलें न दिखें तब तक भगवान नहीं बन सकते।

३१५. भूल दिखी ऐसा कब कहा जाय ? जब वो भूल फिर से न दोहरायी जाय।

३१६. जिसे 'खुद के दोष दिखे' वो सम्यक्दृष्टि और जिसे 'औरों के दोष दिखे' वो मिथ्यादृष्टि।

३१७. जिसे खुद के दोष देखने हैं, अन्य के नहीं; उसे इस जगत् में कोई ललकारता नहीं।

★★★

३१८. 'इस जगत् में किसी भी जीव ने कोई भी कार्य जानबूझकर नहीं किया ; मोक्ष में जाने तक !!' ये ही एक वाक्य समझ जाओ ना !

★★★

३१९. ये जगत् करुणा रखने योग्य है; दंडित करने योग्य नहीं।

★★★

३२०. चरम जागृति कौन सी ? कि इस जगत् में कोई भी दोषित न दिखे।

★★★

३२१. संसार यानी राग-द्वेषयुक्त दृष्टि जबकि वीतराग दृष्टि से मोक्ष ! वीतराग दृष्टि का परिमाण क्या ? सारा जगत् निर्दोष दिखे ये ही।

३२२. तुम्हारे पास यदि निर्दोष दृष्टि है तो उसीसे तुम देखो, वरना और कुछ देखो ही नहीं, और कुछ देखा तो मारे जाओगे, जैसा देखोगे वैसे हो जाओगे !

३२३. जब तक जगत् दोषी दिखेगा तब तक भटकते रहना होगा और जब जगत् निर्दोष दिखेगा तभी हमारी मुक्ति होगी।

३२४. औरों को दोषी कौन दिखाता है ? मनुष्य के अंदर जो क्रोध-मान-माया-लोभ रूपी शत्रु हैं, वे ही। क्रोध-मान-माया-लोभ कहाँ से घुस गए ? 'मैं चंदुलाल हूँ', यह मानने पर। ये मान्यता टूटी तो वो सब चले जाएंगे !

★★★

३२५. जब वीतरागों ने जगत् को निर्दोष देखा है, फिर दोष निकालनेवाले सयाने हम कौन होते हैं ?! क्या भगवान से भी ज्यादा सयाने हैं ?!!

★★★

३२६. वीतरागों ने किस आधार पर जगत् को निर्दोष देखा ? सभी कर्मों के अधीन हैं इसलिए।

★★★

३२७. कोई भी स्वतंत्र रूप से कर्म नहीं करता; परवशता से कर्म करने पड़ते हैं। अगर वह स्वतंत्र तौर पर कर्म करे तो ही गुनहगार कहा जाए। परवशता से कर्म करता है इसलिए परवशता से भुगतना पड़ता है। इस जगत् में कोई भी व्यक्ति गुनहगार या ग़लत नजर आए, ये सब भ्रांति है।

३२८. जब भगवान को पूछें कि, 'तो यह सब क्या माजरा है ?' तब भगवान कहते हैं कि 'ये और कुछ भी नहीं, सब अपने-अपने कर्म भुगत रहे हैं !'

३२९. लोगों ने 'कर्ता-थियरी' देखी है, किन्तु 'कर्म-थियरी' नहीं देखी। 'भाई ने मेरा अपमान किया' ये कहे, वो है 'कर्ता-थियरी' और 'मेरे कर्म के उदय के कारण वह गालियाँ देता है', ये है 'कर्म-थियरी'। कर्म की 'थियरी' को यदि समझें तो अन्य का ज़रा भी दोष ना दिखे।

★★★

३३०. कर्म का फल क्या ? कर्म किससे बँधते है ? कर्ताभाव है इसलिए। जब तक ये भान है कि 'मैं राजवंती हूँ' तब तक कर्म बँधता है। 'मैं राजवंती हूँ' ये आरोपित भाव हुआ, अतः ये कर्ताभाव हुआ।

★★★

३३१. जब तक आप कर्ता हैं तब तक कर्म बंधन होगा। कर्तापने के आधार पर कर्म है। ''ज्ञानीपुरुष'' इस आधार को हटा दें, अतः कर्म का 'चार्ज' होना बंद हो जाय ; फिर 'डिस्चार्ज' ही बाक़ी रहे।

★★★

३३२. अहंकारपूर्वक 'मैं ये देह हूँ' ऐसा अभान रूप से बरतता रहे वह है कर्म; पर 'स्वरूप' की रमणता में रहकर नाटकीय भाव से, ज्ञाता-दृष्टा रूप से जो किया जाय वो कर्म नहीं।

३३३. कर्म अकेला ही सब कुछ चलाता हो ऐसा नहीं है। उदा. किसीने केवल 'विषय' भोगने की इच्छा की थी ; इतना ही कर्म किया। अब परसत्ता क्या कहती है ? 'हम इस दुनिया में केवल विषय तो दे नहीं सकते, बल्कि आसपास का सबकुछ देखना पड़ता है। अतः स्त्री के साथ-साथ सास, ससुर, साला, साली, काकीसास, मामीसास आदि सब देना पड़ता है !' देखो, केवल एक पत्नी पाने की इच्छा की तो कितने सारे जंजाल चिपक गये ! हो गई न फ़ज़ीहत ही फ़ज़ीहत ! ऐसे जंजाल से मनुष्य छूटे भी तो कैसे ?!

३३४. ये संसार तो सागर है ! लेकिन ये तो बिना पानी के डूब गए !! अगर कोई पानी में डूबे तो उसे तारा भी जा सकता है, पर इसमें कोई डूबे तो उसे कैसे तारा जाए ?!

३३५. संसार की बेलेन्स-शीट क्या ? मुनाफ़ा है या घाटा ? ये तो बारह 'रूम'वाला भी घाटे में है और दो 'रूम'वाला भी ! अरे ! घाटा 'रूम' में नहीं, तुममें ही है। उसे तुम खोज निकालो न !

★★★

३३६. जिसे संसार को भोगना हो, उसे अहंकार का हथियार रखना है और जिसे संसार से मुक्ति चाहिए उसे अहंकार का हथियार छोड़ देना है।

★★★

३३७. 'इगोइज़म' रूपी पच्चर के कारण ये सारा फँसाव हैं ! 'इगोइज़म' रूपी अँकुड़ा है; अतः गाड़ी चले उसके साथ डिब्बा भी चले !!

३३८. संसार में जितना उलटा चले उतना 'इगोइज़म' और जितना 'इगोइज़म' पिघले उतना सनातन सुख बढ़े। ''ज्ञानीपुरुष'' को 'इगोइज़म' निरस्त हुआ है; अतः उन्हें निरंतर सनातन सुख रहता है। यदि कोई अपमान करे तो भी उन्हें अंदर सुख लगे। तब सब को लगता है कि 'ओहोहो! ये कैसा अद्भुत सुख!!'

★★★

३३९. वीतराग यानी कोई मारे, गालीगलौज करे तो भी असर न हो। वीतराग तो सुख-दुःख, अच्छा-बुरा आदि द्वंद्व से परे होते हैं।

★★★

३४०. सम्यक्त्व होवे तब से वीतराग वाणी की शुरुआत होती है, और केवलज्ञान होने पर वो संपूर्ण हो जाय।

★★★

३४१. घर में जो ग़ैरहाज़िर है वह बाहर भटक रहा होगा; उसी प्रकार संसार में जो ग़ैरहाज़िर है वह धर्म में विचर रहा होगा।

★★★

३४२. समकिती स्व-पर हितकारी है। मिथ्यात्वी स्व-पर अहितकारी है।

★★★

३४३. मिथ्यात्वी लोग परायों के लिए जीते हैं और समकिती लोग 'स्वयं'(आत्मा) के लिए जीते हैं।

★★★

३४४. आत्मा के लिए जो कुछ किया उतना तुम्हारा-अपना, बाक़ी सब पराया!

३४५. किसी पर चारित्र्य संबंधी संशय नहीं करना चाहिए; ये बहुत बड़ा जोखिम है। स्त्रियाँ बड़े-बड़े तीर्थंकरों को जन्म देती हैं, ऐसे में स्त्रियों को क्यों दोषित माना जाय ? शंका क्यों करें ? जो शंका करे, वो उसका जोखिम।

★★★

३४६. जब तक राग-द्वेष हैं तब तक कभी भी अनुभूति नहीं होती।

★★★

३४७. ''ज्ञानी'' और अज्ञानी में क्या फ़र्क़ ? ''ज्ञानी'' सभी क्रियाओं में राग-द्वेषरहित होते हैं और अज्ञानी सभी क्रियाओं में राग-द्वेषसहित होते हैं।

★★★

३४८. क्या राग-द्वेष कम करने के लिए ध्यान करना पड़ता है ? राग-द्वेष कम करने के लिए तो 'वीतराग का विज्ञान' जानने की ज़रूरत है।

★★★

३४९. जिसमें राग नामक रोग नहीं है ऐसे 'वीतराग' की कृपा से अनंतकाल का रोग चला जाता है।

★★★

३५०. परिग्रह अर्थात् राग-द्वेषपूर्वक मालिकीभाव निश्चित करना !

★★★

३५१. परिग्रह यानी क्या ? वास्तव में ये कोई ग्रह नहीं। तुम्हारी 'संसारदृष्टि' है तो परिग्रह चिपके। तुम्हारी 'आत्मदृष्टि' है तो परिग्रह चिपकेगा नहीं।

★★★

३५२. 'वस्तु के प्रति मूर्छा' ये परिग्रह है। 'वस्तु के प्रति मूर्छा नहीं' ये अपरिग्रह है।

३५३. सभी 'पौद्गलिक भावना' ये परिग्रह ही हैं।

३५४. जहाँ 'मेरा'पन का भाव हो, वहाँ परिग्रह है। 'ये मेरा' कहा, वहाँ परिग्रह ; और जब 'भाड़े का' कहा, तो वहाँ है कुछ ?!

३५५. इस जगत् में कितनी सारी चीज़ें बसाओगे ? चीज़ें तो अपार हैं। ज़रूरत पड़ने पर वो चीज़ प्राप्त होगी ही, अतः निश्चिंत रहो।

३५६. जितनी ज़रूरतें कम, उतना जीवन बढ़िया चले।

३५७. परिग्रह कितना संग्रह किया जाए ? बोझ न बन जाए उतना।

३५८. सभी वस्तुएं 'इफेक्टिव' हैं ! यदि तुम्हें 'इफेक्ट' न होती हो तो भले ही विपुल मात्रा में रखो लेकिन अगर 'इफेक्ट' होती है तो कम से कम रखो।

★★★

३५९. संपूर्ण परिग्रहों के बीच संपूर्ण अपरिग्रही बने रहना ये अंतिम 'टेस्ट एक्ज़ामिनेशन' है।

★★★

३६०. संसार के पदार्थों में से तुम्हें चित्त हटाना है ? हटानेवाला कौन ? तुम ही न ? तुम यानी 'केशुभाई' न ? 'तुम कौन हो' ये तय हुए बिना तुम चित्त को कैसे हटाओगे ?!

३६१. ग्रह को कम नहीं करने हैं, बल्कि परिग्रह को, मूर्छाभाव को कम करना है। ग्रह तो ज्ञेय हैं।

३६२. ग्रह यदि परिग्रह न बने तो कोई हरकत नहीं। मूर्छा गई तो परिग्रह गया और अकर्ता हुआ यानी 'आरंभ' गया। 'आरंभ-परिग्रह' चले जाने पर 'कैवलज्ञान' हो जाय!

३६३. जो हमें मूर्छित करे, बेभान करे वो 'मोह' कहलाए।

३६४. मोह यानी बेहोशी! बेहोशी अर्थात् 'मैं कौन हूँ', ये न जानना।

३६५. जो 'है' वो दिखता नहीं और जो 'नहीं' वो दिखता है, उसीका नाम ही मोह।

३६६. जहाँ-जहाँ मोह होता है, वहाँ-वहाँ दुःख होता है।

★★★

३६७. मनुष्य ने बहुत दुःख सहे हैं! यदि वो सब याद रक्खे, तो भी मोह छूट जाय। लेकिन मोह कम नहीं होता और मार खिलाता ही रहता है!

★★★

३६८. 'अंतर' में लगे घाव मोह के कारण ही भर जाते हैं; अन्यथा बैराग ही आ जायेगा न?!

★★★

३६९. ज्यों-ज्यों अज्ञानता बढ़े, त्यों-त्यों विकल्प भी बढ़ते जाएँ और त्यों-त्यों मोह के साधन अधिक प्राप्त होते जाएँ। जब दलदल में धँस गए तो फिर क्या हो?!

३७०. मोह से बाहर निकलें तो मोक्ष ! 'मोह' ये विकल्प है। 'मोह चला गया' ये है 'निर्विकल्प'।

३७१. संकल्प-विकल्प को जो जाने वो है निर्विकल्प ! मन के धर्म को स्वयं का धर्म माने ये संकल्प और 'स्वयं' के धर्म को 'खुदका' जाने वह है निर्विकल्प !! निर्विकल्प होने पर ही निर्भयपद प्राप्त होता है।

३७२. 'मैं नंदलालभाई हूँ' ये विकल्प और 'यह मेरा है' ये संकल्प।

३७३. आत्मा कल्पस्वरूप है । कल्पस्वरूप निर्विकल्पभाव से रहे तो वो परमात्मा ही है और विकल्पभाव से रहे तो वो संसारी है ! 'निर्विकल्पभाव से रहना' ये करोड़ों जन्म के बाद भी प्राप्त होना मुश्किल है ! ये तो ''ज्ञानीपुरुष'' मिले तब ही उस पद की प्राप्ति हो।

३७४. 'निर्विकल्प' तो ''ज्ञानीपुरुष'' के अलावा कोई होता ही नहीं। हाँ, जो ''ज्ञानी'' का कृपावंत हो वो निर्विकल्प बन सके, क्योंकि जो निर्विकल्पी की आराधना करे वह निर्विकल्प हो जाय और जो विकल्पी की आराधना करे वो विकल्पी हो जाय।

★★★

३७५. केवल आत्मा ही जानने योग्य है, अन्य सब जानने से विकल्प बढ़ते हैं।

३७६. जैसा लोग जानते है ऐसा जगत् नहीं है ! जगत् विकल्पी है जबकि 'विज्ञान' निर्विकल्पी है।

३७७. 'संकल्प–विकल्प' ये ही आरोपित भाव हैं।

★★★

३७८. जितने विकल्प हैं उतनी चीज़ें हैं। जो चीज़ नहीं है, उसका विकल्प नहीं होता।

३७९. स्वयं खुद ही जाल खड़ा करना ये है विकल्प; और तन्मयता से उस जाल में रहना ये है संकल्प।

३८०. 'भ्रांति' ये बुद्धिजन्य ज्ञान है। 'बुद्धिजन्य ज्ञान' विकल्पी होता है; जबकि सच्चा ज्ञान निर्विकल्पी है, उसमें तनिक भी भेद नहीं होता! अतः सच्चे 'ज्ञान' की बात ही समझनी है।

३८१. सारे जगत् के तमाम 'सब्जेक्ट्स' जाने तो भी 'अहंकारी ज्ञान' बुद्धिजन्य होता है ; 'निर्–अहंकारी ज्ञान' को ही 'ज्ञान' कहा जाता है।

★★★

३८२. बुद्धि 'इन्डायरेक्ट' प्रकाश है और 'ज्ञान' ये 'डायरेक्ट' प्रकाश है। आत्मा का जो प्रकाश है, ये अहंकार के 'मिडियम थ्रू' (माध्यम से) आये, वो है बुद्धि।

★★★

३८३. 'अहंकार' ये खुद की मिल्कियत कहलाती है। अनंत जन्मों की जो कमाई है या घाटा है वह अहंकार में आता है। जैसा जिसका अहंकार वैसा उसका 'मिडियम' और उसी के अनुसार उसे बुद्धि की 'लाईट' मिलती रहती है। बहुत अच्छे पुण्य हों तब बुद्धि बहुत उच्च होती है।

३८४. इस अहंकार ने ही आत्मा के साथ भेदबुद्धि पैदा कर दी है, उसी की तो पच्चर है!

३८५. बुद्धि पर-प्रकाशक है; आत्मा स्व-पर प्रकाशक है।

★★★

३८६. जो अध्यात्म में अहित करे और संसार में हित करे, उसका नाम विपरीत बुद्धि। जो संसार में भी हित करे और अध्यात्म में भी हित करे, उसीका नाम सम्यक्-बुद्धि।

★★★

३८७. सद्-बुद्धि उसीका नाम जो कभी भी विरोधाभास न लाए। ''ज्ञानीपुरुष'' के समीप एक घंटा बैठने पर सद्-बुद्धि उत्पन्न होती है।

★★★

३८८. ''ज्ञानीपुरुष'' में बुद्धि नहीं होती, अगर होती तो वे भी 'इमोशनल' हो जाएँ।''ज्ञानीपुरुष'' अबुध होते हैं! अत: उनसे जीतने के लिए बुद्धिमानों को सोचना पड़ेगा कि 'अबुध' को कैसे जीतें?

★★★

३८९. 'बुद्धि' 'इमोशनल' कराती है। ये 'ट्रेन' यदि 'इमोशनल' हो जाय तो क्या होगा? 'एक्सिडेन्ट'! इससे तो कितने सारे लोग मर जाएँ। इसी तरह मनुष्यों के 'इमोशनल' हो जाने पर उनके अंदर अपार जीव मर जाते हैं; अत:'मोशन' में रहो।

★★★

३९०. 'ज्ञान' प्रकट हुआ ये कब कहा जाए? वीतरागता उत्पन्न हो तब। वीतरागता कब उत्पन्न होगी? जब बुद्धि का अभाव हो जाय तब।

३९१. ‘ज्ञान’ कार्यान्वित कराये–ये है प्रज्ञाशक्ति ; जो संसार में भटकाती रहे–वो है अज्ञाशक्ति।

३९२. अज्ञाशक्ति लोक–व्यवहार की है और प्रज्ञाशक्ति मोक्ष के लिए है।

★★★

३९३. ‘अज्ञा’ संसार से बाहर निकलने ना दे और प्रज्ञा मोक्ष ले जाए बिना छोड़े नहीं।

★★★

३९४. ‘यह’ विज्ञान किससे देखा गया है ? प्रज्ञाशक्ति से। संसार में बुद्धि से देखा हुआ ज्ञान काम का है ; परंतु ‘यहाँ’ तो हमें निर्मल ‘ज्ञान’ चाहिए।

★★★

३९५. ये ‘सायन्स’ की पद्धति से भगवान को समझने की रीति है और ‘वो’ जो धर्म है वो तो बस अधर्म को धक्का देता है। अब ऐसे ये अधर्म कब खत्म हो पाए ?!

★★★

३९६. शास्त्रों में धर्म है, मर्म नहीं। मर्म “ज्ञानी” के हृदय में है।

★★★

३९७. ‘धर्म’ मोक्ष में न ले जाय, मोक्ष में तो ‘विज्ञान’ ले जाय।‘धर्म’ अलग वस्तु है और ‘विज्ञान’ अलग वस्तु है। ‘धर्म’ सारा कर्ताभाव से है, ‘अधर्म’ भी कर्ताभाव से है ; जबकि ‘विज्ञान’ से अकर्ताभाव उत्पन्न होता है और उसीसे मोक्ष हो जाय।

★★★

३९८. सारा जगत् धर्म नहीं ढूँढ़ता बल्कि खुद की ‘सेफ साइड’ ढूँढ़ता है।

३९९. रक्षण करनेवाला यदि कोई है तो वह धर्म ही है। तुम्हें और 'दादा' को किसने मिलवाया ? तुम्हारे धर्म ने ही !

★★★

४००. जो हमें धारण करके रखे वो धर्म ! जो हमें गिरने न दे वो धर्म !!

★★★

४०१. जो वस्तु हमें अंतःकरण की स्थिरता कराए वो धर्म !

★★★

४०२. 'अंतःकरण' ये बिल्कुल 'पार्लियामेन्ट' जैसा ही है। अहंकार है 'प्रेसिडेन्ट', बुद्धि है 'प्रधानमंत्री', चित्त है 'फोरीन डिपार्टमेन्ट', मन है 'होम डिपार्टमेन्ट'।

★★★

४०३. अंतःकरण में मुख्य प्रस्ताव रखनेवाला जिम्मेदार प्रधान कौन ? इनमें से मुख्य कोई भी नहीं। उदय आने पर चारों में से कोई एक प्रधान प्रस्ताव रखता है।

★★★

४०४. अंतःकरण का उद्भव एकदम कैसे होता है ? ये 'सायन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' है। 'एविडन्स' मिलने पर मन खड़ा हो जाय अथवा 'एविडन्स' मिलने पर अहंकार खड़ा हो जाय अथवा चित्त या बुद्धि खड़ी हो जाय। इसमें किसी की मालिकी ही नहीं ! सब कुछ स्वतंत्र है; 'पार्लियामेंट्री' पद्धति है।

★★★

४०५. अंतःकरण की 'मुवमेन्टस्' है ही ! उसे किसी को चलाना नहीं पड़ता ! वो स्वयंसंचालित है। स्वयंसंचालित यानी कि 'डिस्चार्ज' स्वरूप !

४०६. अंत:करण के चार टुकड़े नहीं, वो एक ही है, परंतु जिस समय जो काम करता है, उसी रूप में वह होता है। जब मन काम करता है तब मन रूपी अंत:करण होता है, जब बुद्धि काम करती है तब बुद्धिरूपी अंत:करण होता है और जब चित्त काम करता है तब चित्तरूपी अंत:करण होता है। अहंकार हमेशा बुद्धि के साथ ही रहता है, वह अकेला नहीं रहता।

★★★

४०७. चित्त ये ज्ञान-दर्शन स्वरूप है। जब 'एविडेन्स' मिलते हैं तब वो 'डिस्चार्ज' होता है और उसमें से फिर 'खुद' भ्रांति से 'चार्ज' करता है।

★★★

४०८. जो तुरंत 'डिसीज़न' दे दे, 'सोल्युशन' दे दे, वो बुद्धिशाली। जो उलझ गया वो अल्पबुद्धि!

★★★

४०९. संयोगी प्रमाण इकठ्ठा हो तब मन विचारणा में पड़े। विचार आयें वो है मन। चित्त यदि बाहर का कार्य हो तो बाहर जाता है और अंदर का कार्य हो तो अंदर घुमता है! बुद्धि 'डिसीजऩ' देती है। चित्त या मन, दोनों में से एक की बात को बुद्धि 'एक्सेप्ट' (कबूल) करे और उसी के साथ मिल जाय, अत: अहंकार 'दस्तखत' कर दे। इस प्रकार 'पार्लियामेंट्री' पद्धति चलती है!

★★★

४१०. बुद्धि के आधार से ही 'इगोइज़म' जी रहा है, इसीलिए तो "ज्ञानीपुरुष" कहते हैं कि 'अबुध हो जाओ'।

★★★

४११. इंद्रियाँ तो अपना धर्म अदा करती ही रहती हैं, पर वो धर्म कब बंधन रूप होता है? मन के अधीन हो जाएँ तब।

४१२. निर्णय हो जाय–ये कार्य बुद्धि करती है और तब तक मन का प्रभाव रहता है। चित्त ने जो वस्तु देखी, उसके अस्तित्व के सभी स्वभाव वो दिखाए अर्थात् ज्ञान–दर्शन दिखाये, लेकिन उस वस्तु का 'डिसीज़न' तो बुद्धि ही देती है।

४१३. चित्त खो गया, एक जगह पर स्थिर हुआ–वो मूर्छित दशा!

४१४. सारे जगत् में घुमो और यदि आपके चित्त का हरण कोई न कर पाए तो आप स्वतंत्र ही हो। मैंने तो देखा है कि कई बरसों से मेरे चित्त को कोई वस्तु हरण नहीं कर सकी, अतः 'मैं' 'खुद' को समझ गया कि बिल्कुल संपूर्ण रूप से स्वतंत्र हो गया हूँ।

४१५. मन में बुरा विचार आये और वो चित्त का हरण करे ; ऐसा नियम नहीं है। ऐसा हो भी और न भी हो।

★★★

४१६. चित्त का हरण हो जाय तब चित्त वहाँ चला जाय और मन यहाँ अंदर उछलकूद करे, बुद्धि चिल्लाए ; अतः पूरे 'पार्लियामेंट' में गहरा अंधकार हो जाय और वो मनुष्य मूर्छित हो जाय।

★★★

४१७. दुःख या सुख अहंकार भोगता ही नहीं, विषय भी वो नहीं भोगता ; वो केवल अहंकार ही करता है कि 'मैंने विषय भोगा।'

४१८. मन गाँठ स्वरूप है। कोंपल फूटे ये विचार है। यदि तुम्हें अपने मन का स्वरूप पहचानना हो तो मन का एक महीने का 'ग्राफ' बनाओ। उसमें ज़्यादा से ज़्यादा जो विचार आते हैं, उन्हें नोट करो, वो ही सबसे बड़ी गाँठ है ! फिर दूसरी, तीसरी.... ऐसी पाँच-छः गाँठ अगर मालूम हो जाये, तो मन का पूरा स्वरूप समझ में आ जाएगा।

★★★

४१९. स्थूल संयोग, सूक्ष्म संयोग और वाणी के संयोग पर हैं और पराधीन हैं। बाहर के संयोग ये स्थूल संयोग हैं, मन के विचार ये सूक्ष्म संयोग हैं और वाणी के संयोग ; ये सब पर हैं और पराधीन हैं ; हमारी सत्ता में नहीं।

★★★

४२०. मन 'रडार' की तरह काम कर रहा है। यदि मनुष्य मन का नाश करने जाय तो 'एबसन्ट माइन्डेड' हो जाय। मन तो मोक्ष की ओर ले जाये, अतः उसे निकाल देना नहीं है। मन जब भय दिखाए तब 'शुद्धात्मा' की गुफा में पैठ जाओ।

★★★

४२१. ''ज्ञानी'' का अंतःकरण किस प्रकार कार्य करे ?! 'स्वयं' खिसक जाय तो अंतःकरण से आत्मा अलग ही है। आत्मा अलग हो जाय तो सांसारिक कार्य अंतःकरण से चलता ही रहे। अलग हो जाने के बाद ''ज्ञानी'' का अंतःकरण अपने आप स्वाभाविक कार्य करता ही रहता है; क्योंकि दखलअंदाजी बंद हो गई न ? अतः अंतःकरण का कार्य बेहतर और जहाँ ज़रूरी हो वहीं होगा और लोगों के लिए उपयोगी हो जाएगा।

★★★

४२२. 'ज्ञानी' का अंतःकरण 'शुद्धात्मा' जैसा ही हो जाता है। उन्हें चित्त भटकना बंद हो जाय, मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार सदा उपस्थित ही रहें, जिससे संपूर्ण जागृति बनी रहे और वे वीतराग ही रहे !

४२३. ‘अक्रममार्ग’ के ‘महात्माओं’ को अंत:करण की स्थिति कैसी रहे ? उन्हें दखलअंदाजी बंद हो गई होती है, किन्तु जब पिछले परिणाम आते हैं तब उन्हें उलझन होती है कि ये मेरे ही परिणाम हैं ! जब वे ‘‘ज्ञानीपुरुष’’ को पूछें कि ‘क्या ये स्वयं के परिणाम हैं या अन्य के’ ? तो ‘‘ज्ञानी’’ कहते हैं कि ‘ये तो अन्य के परिणाम हैं।’

★★★

४२४. ‘परिणाम’ को ‘हेतु’ माने, यह है ‘क्रमिक मार्ग’ और ‘हेतु’ को ‘हेतु’ माने यह है ‘अक्रम मार्ग’।

★★★

४२५. ‘अक्रम विज्ञान’ यानी क्या ? ‘जैसा है वैसे’ – यथातथ उजागर कर देना।

★★★

४२६. ये ‘विज्ञान’ न जानने से जगत् खड़ा हुआ है और ‘विज्ञान’ जानने से ही जगत् अलग हो जाय।

★★★

४२७. ‘मूल स्वरूप’ में न दिखते हुए अन्य स्वरूप में नजर आए, वही है माया।

★★★

४२८. माया यानी ‘वस्तुओं’ के तत्त्वों की अज्ञानता।

★★★

४२९. जगत् की तमाम वस्तुएँ वीतराग ही हैं लेकिन ‘स्वयं’ ही राग-द्वेष करके चिपका है, और फिर कहता है कि ‘माया मुझे चिपकी है, माया मुझे छोड़ती नहीं।’

४३०. वास्तव में माया यानी ‘रॉंग बिलीफ’। ये सब असर ‘रॉंग बिलीफ’ के हैं या ‘राईट बिलीफ’ के हैं; हमें इसकी पड़ताल करनी है।

४३१. ‘रियल’ में स्थित रहे तो ही ‘वीतराग’ कहलाए। ‘रिलेटीव’ में आये तो राग-द्वेष हो जाय।

४३२. सारा संसार ही पुद्‍गल का है ; पर पुद्‍गल में राग-द्वेष हो ये बंधन और पुद्‍गल में राग-द्वेष न हो ये मुक्ति है।

४३३. ‘राग’ ये द्वेष का बीज है और ‘द्वेष’ ये राग का बीज है।

४३४. ‘राग-द्वेष-क्रोध-मान-माया-लोभ’ ये सारी दु:ख देनेवाली वस्तु हैं, उसे ही ‘कषाय’ कहते हैं।

★★★

४३५. कषाय यानी अंदर आत्मा को (प्रतिष्ठित आत्मा को) दु:ख होता रहे और बेचैनी होती रहे।

★★★

४३६. जहाँ कषाय हैं वहाँ धर्म नहीं (अशुभ मार्ग)। जहाँ मंद कषाय हैं वहाँ धर्म (शुभ मार्ग)। कषायों से मुक्ति ये मोक्ष (शुद्ध मार्ग)।

४३७. सारा जगत् किसके अधीन है ? ''ज्ञानी'' ज्ञान के अधीन हैं और जगत् कषाय अर्थात् क्रोध-मान-माया-लोभ के अधीन है। लोभी लोभ के कषाय में भटकता रहे, मानी मान के कषाय में भटकता रहे, कपटी कपट के कषाय में भटकता रहे।

४३८. कषायसहित व्यवहार ये संसार; कषायरहित होना ये मोक्ष।

४३९. इस संसार में बाधक क्या है ? कषाय।

४४०. कषायों की जितनी निवृत्ति, उतनी समाधि की प्रवृत्ति। कषायों की संपूर्ण निवृत्ति, वहाँ संपूर्ण समाधि।

४४१. आत्मा प्राप्त हो जाये, ये ही समाधि। हँसते, उठते, बैठते, खाते, पीते भीतर की समाधि जाये नहीं, ये 'सहज समाधि' है, ये 'वीतराग विज्ञान' है!

★★★

४४२. आधि-व्याधि-उपाधि होते हुए भी अंदर समाधि रहे, वो आत्मा की समाधि!

★★★

४४३. ये पुद्‌गल की उपाधि होने पर भी समाधि रहती हो तब पुद्‌गल भी समाधि में रहता है।

★★★

४४४. नाक दबाकर समाधि करे ये सच्ची समाधि नहीं, ये तो उपाय है। मोक्ष यानी कि निरुपाय पद! उपेयभाव !!

४४५. "ज्ञानीपुरुष" मिले तो मोक्ष हो, वरना करोड़ों उपायों के बावजूद भी मोक्ष नहीं मिल सकता। उपाय से मोक्ष नहीं होता, उपेय से मोक्ष होता है।

४४६. संसार में एक मिनट भी समाधि नहीं रहती, चाहे कोई भी उपाय करो ! व्यक्ति कभी अहंकार की मूर्छा में होता है, या मान के प्रमाद में होता है; कहीं न कहीं पड़ा रहता है। एक क्षण भी समाधि लगे तो काम बन जाय ! इसी को 'सर्वोत्कृष्ट शांतरस' कहते हैं !! वीतराग !!!

४४७. जब तक समाधि के लिए प्रयास है, तब तक समाधि नहीं मानी जाती।

४४८. समाधि में देहभान जाना नहीं चाहिए बल्कि पाँचों इन्द्रियों की संपूर्ण जागृतिपूर्वक की समाधि रहनी चाहिए ! तब तक वह समाधि नहीं कही जाती।

★★★

४४९. सबसे ऊँची समाधि कौन-सी ? संपूर्ण जागृत। केवलज्ञान यानी क्या ? शत प्रतिशत जागृत।

★★★

४५०. जागृति में से 'अनुभव' होगा और जागृति में से ही 'केवलज्ञान' होता है।

★★★

४५१. आत्मा प्राप्त होने की निशानी क्या ? जागृति, निरंतर जागृति !

★★★

४५२. संपूर्ण जागृति कब हो ? अहंकार का विलय हो जाय तब।

४५३. ‘खुद क्या कर रहा है’ इसका ‘सजग ज्ञान’ ये ही ‘जागृति’ !

४५४. ‘मैं प्रवीणभाई हूँ’, यह अंतरिम जागृति है, उसे ‘भावनिद्रा’ कहते हैं। संपूर्ण जागृति, ये सच्ची आजादी है; स्वयं ही परमात्मा-स्वरूप हो गया न !

★★★

४५५. भावनिद्रा यानी ‘स्वभाव’ में सोया हुआ; निद्रा में तो ‘स्वभाव’ में भी सोता है और ‘परभाव’ में भी सोता है।

★★★

४५६. यूँ ही संसार हेतु बँध जाय, उसे ‘भावनिद्रा’ कहते हैं।

★★★

४५७. जिसे इस जगत् की बेलेन्स-शीट समझ में आ गई, वो फुरसत में ही रहे, अन्यथा फुरसत कैसे मिले ?! बहीखाते का बेलेन्स शीट तो ‘चार्टड एकाउन्टन्ट’ भी निकाल के दे, पर इस जगत् का बेलेन्स शीट कौन निकाले ? ये तो कभी कभार कोई “ज्ञानीपुरुष” हो तो, वे निकाल के दें ! जब तक बेलेन्स शीट न निकले, तब तक ‘दि वर्ल्ड इज दि पज़ल इटसेल्फ’।

★★★

४५८. ये संसार यदि रुचिकर नहीं लगता हो तो इसमें से निकल जाने का रास्ता लो और यदि संसार पसंद है तो फिर जो कर रहे हो, उस मार्ग पर बने रहो !

★★★

४५९. यह संसार तो बड़ा मुश्किल ! सास आए, बड़ी सास आए, चाची-सास आए, बुआ-सास आए !! कितनी सारी सास ? पति एक और सास कितनी सारी आये ?! अरे, यहाँ तुम्हारा क्या काम है ? एक के लिए ये इतना सारा झमेला कहाँ से आ चिपका ?!

४६०. सारा संसार जाल स्वरूप है। 'नायलोन' के जाल से छूटे तो फिर सूत के जाल में बँध जाय! ये तो छूटा हुआ कोई मिल जाय, वो ही हमें छुड़ाये।

४६१. दुनिया में ''ज्ञानीपुरुष'' के सिवाय दूसरी एक भी हितकारी वस्तु नहीं।

४६२. हित-अहित का भान किसे कहें? जो इहलोक ना बिगाड़े और परलोक भी ना बिगाड़े।

४६३. जो खुद का अहित ही करता हो, वह दूसरों का क्या हित करेगा?! जो 'खुद का' हित करे वो ही दूसरों का हित कर सके।

४६४. स्वयं के हित का भान और संसार के हित-अहित का भान, दोनों उत्पन्न होने पर ही मोक्ष का भान हो पाए।

★★★

४६५. 'होम' और 'फॉरेन' दोनों पूर्णतः अलग रहे, ये 'वीतरागी विज्ञान' कहलाये। जो हित-अहित का भान रखवाए, इसे 'वीतरागी ज्ञान' कहा जाये।

★★★

४६६. जो जिस प्रकार रहना चाहे, उसे उसी प्रकार से रहने दे ऐसा यह जगत् है; किन्तु मनुष्य को उसकी खुद की निर्बलता वैसे नहीं रहने देती।

४६७. मनुष्य खुद अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मारता हैं, इसीलिए तो ये जगत् खड़ा है ! अन्यथा जगत् पूर्णत: स्वतंत्र है, किसी पर किसी का दबाव नहीं।

४६८. जगत् का न्याय ये सापेक्ष न्याय है, इसमें दो पक्ष आमने सामने हो तभी ये हो पाता है। निरपेक्ष न्याय ही सच्चा न्याय है।

४६९. जो किसी जीव को न मारे, उसे कोई ना मारे; जो किसी जीव को परेशान न करे, उसे कोई परेशान ना करे; ऐसा कुदरत का क़ायदा है !

४७०. कुदरत क्या कहती है ? कि तेरे साथ जो अन्याय हुआ वो भी न्याय है और जो न्याय हुआ वो भी न्याय ही है, अत: संकल्प-विकल्प ना करो ! अन्यथा रो-रोकर भी उसे न्याय मानना ही पड़ेगा !! इसके बजाय, 'व्यवस्थित है' ऐसा कह दो न, तो हल हो जाय।

४७१. ये कुदरत एक क्षण के लिए भी न्याय से बाहर नहीं गई। यदि कुदरत एक क्षण के लिए भी न्याय के बाहर जाये तो ये कुदरत 'कुदरत' नहीं।

★★★

४७२. जगत् न्यायस्वरूप है, तभी तो परमात्मा हैं !

★★★

४७३. भगवान फँसे हुए हैं-जितने जीव हैं उनमें। जब भगवान फँसे हुए हों, तो क्या उन पर चिढ़ना चाहिए ?

४७४. मार–पीट से जगत् न सुधरे। उलाहना देने या चिढ़ने से भी कोई नहीं सुधरता बल्कि करके दिखाने से सुधरता हैं। जितना बोले, उतना पागलपन!

४७५. बच्चों पर तुम चिढ़ जाओ ये तो नया 'लोन' लिया कहा जाय। पुराना 'लोन' तो अभी चूकता नहीं हुआ! चिढ़ना ये तो 'कॉन्ट्रेक्ट' के बाहर की 'एक्स्ट्रा आइटम' कहलाये। इसके कारण ही मनुष्य नये कर्ज़ खड़े करता जाता है!

४७६. खुद को पसंद हो तो ही यह जगत् चिपके; अन्यथा तो कोई चिपके ऐसा नहीं।

४७७. जगत् को जीतना सरल है लेकिन एक पल के लिए भी असंग रहना महाविकट है।

४७८. संसार ये 'रिलेटिव' संबंध है, तात्त्विक संबंध नहीं; ऐसा भान हो जाय तो संसार के आरपार निकल पाये।

★★★

४७९. सच्चा संबंध किसे कहें? जो कभी भी ना बिगड़े। आत्मा के साथ ही सच्चा संबंध है; बाक़ी सब तो स्वार्थमूलक संबंध हैं।

★★★

४८०. यह संसार स्वार्थमूलक ही है। जहाँ स्वार्थमूलकता न हो वहाँ परमात्मा अवश्य होते ही हैं। स्वार्थमूलकता से भगवान दूर ही रहते हैं!

४८१. जब तक कुछ भी सांसारिक स्वार्थमूलकता है तब तक किसी से 'सच्ची बात' ना निकले।

४८२. सारा जगत् परार्थी है। अपना कोई है ही नहीं और परायों के लिए ही लोग केवल गुत्थियाँ पैदा करके ले जाते हैं!

४८३. अर्थी यानी क़ुदरत की जब्ती! सारी कमाई यहाँ छोड़ जाना और गुत्थियों को साथ ले जाना!!

४८४. अर्थी निकले उसी दिन 'चंदुलाल' की बही को यहीं का यहीं छोड़ देना है, साथ कुछ भी नही आता। अतः जब से 'शुद्धात्मा की बही' खुले तब से उसमें चौकसी रखना है।

४८५. लोकमत ये 'रिलेटिवधर्म' है और ''ज्ञानी''मत ये मर्म है, जो कि 'रियलधर्म' है। लोकमत के विरुद्ध व्यवहारधर्म ('रिलेटिवधर्म') होता ही नहीं।

★★★

४८६. 'रिलेटिव धर्म' क्या कहता है? सापेक्ष में से निरपेक्ष का शोधन करो। यदि कुदरत की कृपा हो जाय तो सापेक्ष धर्म करते-करते भीतर सम्यक् दर्शन का झरना फूट जाये।

★★★

४८७. 'रियल धर्म' तो उसका नाम जिससे हरेक संयोगों में समाधान बना रहे; जब कि 'रिलेटिव धर्म' में मन के समाधान के रास्ते खोजते हैं।

४८८. मन जितना समाधान पाये उतना उसका नाश हो जाय और जब संपूर्ण समाधान पाये तो पूर्णतः विलय हो जाय।

★★★

४८९. मन तो वीतराग है, पर 'स्वयं' उसमें जुड़ जाता है। तुम कुएँ में गिरो, इसमें मन क्या करे ? मन से दूर हुए अतः आत्मदृष्टिवान हुए, ये हुई परमात्मा होने की तैयारी !

★★★

४९०. मन प्रत्याघाती है, हमने जो आघात किये थे उसी के ही प्रत्याघात हैं। यदि आघात बंद कर दें तो प्रत्याघात बंद हो जाये !

★★★

४९१. अनामी हो जाएँ, तब अर्थी नहीं निकलती।

★★★

४९२. आयुष्य का काल बदल नहीं सकते, किन्तु गति को बदला जा सकता है। 'टिकट' (गंतव्य) बदला जा सकता है परंतु मरण टाल नहीं सकते। मरते समय तो 'या मतिः सा गतिः' !

★★★

४९३. कोई मर जाये तो संसारी को 'टाइम' भूला देता है और ''ज्ञानी'' उसी क्षण भूल जाय। बाहर जाना और मर जाना, ये दोनों एक समान है !

★★★

४९४. आयुष्य का तीसरा भाग बाक़ी रहने पर मनुष्य को सतर्क रहना चाहिए क्यूँकि तब से आनेवाले भव की 'फोटो' बनना प्रारंभ होता है !

★★★

४९५. ये दुनिया में तुम्हें 'आया-गया' दिखता है, पर वास्तव में कोई आया भी नहीं और कोई गया भी नहीं। ये 'आया-गया' दिखता है, ये भ्रांतदृष्टि है।

४९६. जिसका उपाय नहीं उसकी चिंता क्यों ?! मरण का कोई उपाय नहीं, अतः कोई उसकी चिंता करता है क्या ?

४९७. चिंता क्यों होती है ? विचार आये और उनमें तन्मयाकार हो जाये, इससे चिंता होती है।

४९८. 'चिंता' ये 'ग्रेटेस्ट इगोइज़म' है।

४९९. जहाँ धर्म है वहाँ चिंता नहीं और जहाँ चिंता है वहाँ धर्म नहीं।

५००. 'धर्ममार्ग' और 'मोक्षमार्ग' ये दोनों अलग वस्तु हैं। जिसे अशुभ में से शुभ में जाना है, जिसे भौतिक सुखों की इच्छा हो, उसे धर्ममार्ग बताया है कि ये करना और वो करना !

★★★

५०१. जिसे मोक्ष जाना है उसे क्रियाओं की ज़रूरत नहीं। जिसे देवगति में जाना है, भौतिक सुख चाहिए उसे क्रियाओं की ज़रूरत है। जिसे मोक्ष जाना है उसे तो 'ज्ञान' एवं 'ज्ञानी की आज्ञा' ये दोनों की ही ज़रूरत है।

५०२. एक 'ज्ञानधारा' और एक 'कर्तव्यधारा' ऐसी दोनों धाराएँ अलग ही चलती हैं ! लेकिन चाय और कढ़ी मिला देने पर जैसे बेस्वाद हो जाये, उसी प्रकार अज्ञानियों को 'ज्ञानधारा' और 'कर्तव्यधारा' ये दोनों मिश्रित हो गई हैं, अतः वे आकुल-व्याकुल हो गये हैं।

★★★

५०३. 'क्रियाएँ होती हैं' और 'क्रियाएँ करनी चाहिए' इन दोनों में बहुत फ़र्क़ है। जो क्रिया अंतस् में उदयस्वरूप आयी हो वह तुम भले ही करो, पर जिसका उदय नहीं उसके लिए तुम योजना ना करो कि 'यह क्रिया करनी ही चाहिए, ऐसा करना ही चाहिए !' अन्यथा वही योजना क्रियास्वरूप में उदय में आएगी।

★★★

५०४. मोक्षमार्ग समझ प्राप्ति का है। बाक़ी, ये स्वाध्याय करो, तप करो, जप करो; ये सभी पुद्गल करता है। उससे क्या लाभ ?! मूल दृष्टि बदले बग़ैर जो कुछ भी किया जाय वो बंधन है।

५०५. क्रियाएँ बदलनी नहीं हैं, तुम अपनी दृष्टि ही बदलो ना !

५०६. मोक्ष यानी क्या ? दृष्टिभेद होना चाहिए। ''ज्ञानीपुरुष'' दृष्टिभेद करा देते हैं !

५०७. परम विनय से ही मोक्ष है। क्रियाएँ नहीं करनी हैं अपितु परम विनय में आना है।

५०८. क्रियाकांड तो तू लेकर ही आया है किन्तु ज्ञानकांड करना है। 'शुद्ध क्रियाकांड' ये ज्ञानकांड का परिणाम है।

५०९. क्रियाकांड क्या है ? जब ''ज्ञानी'' न हो, मोक्षमार्ग का नेता न हो, तब फिसल न जायें इसलिए क्रियाकांड करना चाहिए ! ये शुभ क्रिया है। 'क्रियाकांड' कोई ग़लत बात नहीं लेकिन इस काल में मूल स्वरूप बचा नहीं है; सब 'रॉंग बिलीफ' बैठी हुई हैं।

५१०. क्रियाकांड कब तक टिके ? मन-वचन-काया की एकात्मवृत्ति रहे तो। एकात्मवृत्ति टूटी तो क्रिया काम न आएगी।

५११. पाप-पुण्य यानी क्या ? संसार में हरेक जीवमात्र में भगवान हैं; अतः किसी भी जीव को किंचित् मात्र दुःख पहुँचाने का भाव भी नहीं करना ! नहीं तो दोष किया इसलिए पाप बँधेगा। किसी भी जीव को किंचित् मात्र सुख दोगे या सुख देने की भावना करोगे तो भगवान को सुख दिया; अतः पुण्य बँधेगा।

५१२. पाप-पुण्य किसने रचे ? समाज ने ? नहीं, पाप-पुण्य 'नेचरल' हैं।

५१३. जिसे पाप करने से डर लगता है, ये बड़ा ज्ञान कहलाये।

५१४. पुण्य का स्वभाव कैसा ? कि खर्च हो जाय। बर्फ़ लाखों टन हो तो भी उसका स्वभाव कैसा होता है ? पिघल जाय ऐसा।

५१५. इस दुनिया में बड़े से बड़ा पुण्यशाली कौन ? जिसे कुसंग नहीं छू पाये।

५१६. कुसंग की छूत लगना तो 'टी. बी.' से भी खराब कहलाये। 'टी. बी.' तो एक ही अवतार बिगाड़े पर कुसंग तो अनंत अवतार बिगाड़े!

५१७. सत्संग में चाहे जितने कष्ट उठाने पड़े वे अच्छे, परंतु कुसंग में चाहे कितने भी सुख हो, सब बेकार हैं।

५१८. संग से कोई हर्ज नहीं, पर संगदोष नहीं लगना चाहिए! वो संक्रामक है।

५१९. धर्म में से जो गिरा दे उसका नाम कुसंग। कुसंग से तो बहुत दूर रहना चाहिए। 'कुसंग' ये ही 'पॉइज़न' है।

५२०. जैसे स्त्री के प्रति है ऐसी आसक्ति यदि सत्संग पर हो तो ही काम बने।

★★★

५२१. भगवान ने ही कहा है, 'कुसंग!' भगवान ने ये द्वेष से नहीं कहा और न ही सत्संग को राग से 'सत्संग' कहा। वे वीतरागता से बोले हैं कि 'ये सत्संग है, ये कुसंग है'। कुसंग के दाग़ लाखों जन्म तक नहीं मिटते। अतः "ज्ञानी" तुम्हें कहते हैं कि 'सत्संग में बैठे रहना'।

★★★

५२२. सत्संग अर्थात् केवल 'सत्' के पास "ज्ञानी" हैं, और उनके पास तुम रहो, यही!

★★★

५२३. सत् और सत्य में क्या भेद है? सत्य 'रिलेटिव' है, विनाशी है और 'सत्' ये अविनाशी है।

५२४. विनाशी सत्य का आग्रह रखोगे तो तुम विनाशी हो जाओगे; अतः सत् का आग्रह करो। 'सत्' ये शुद्धात्मा है, अविनाशी है।

५२५. 'रिलेटिव' में निराग्रही; 'रियल' में आग्रही!

५२६. जगत् 'रिलेटिव सत्य' है और आत्मा 'रियल सत्य' है। जगत् मिथ्या है ही नहीं, बल्कि 'रिलेटिव सत्य' है।

५२७. सत्य किसे कहेंगे ? किसी जीव को वाणी से दुःख ना पहुँचे, वर्तन से दुःख ना पहुँचे और मन से भी उसके लिए बुरे विचार न करें; यही सबसे बड़ा सत्य है, सबसे बड़ा सिद्धांत है! ये 'रियल सत्य' नहीं, अपितु चरम 'व्यवहार-सत्य' है।

★★★

५२८. हमें मन में निश्चय बनाये रखना है कि मुझे व्यवहार-सत्य का संपूर्ण सर्वांश पालन करना है! जो व्यवहार-सत्य का पालन करता है वह निश्चय-सत्य का पालन कर सकता है।

★★★

५२९. जो 'सत्य जानने का' इच्छुक है उसे इस काल में मोक्षमार्ग मिल जाएगा! उसे ''ज्ञानीपुरुष'' 'भगवान' की तरफ से इस बात की गेरेन्टी देते हैं।

★★★

५३०. मोक्ष जाने की जिसकी उत्कट इच्छा हो, उसे कहीं से भी मोक्षमार्ग मिल जाये।

५३१. 'नियमरहित संसारमार्ग' ये अशुभ मार्ग, 'नियमयुक्त संसारमार्ग' ये शुभ मार्ग; और 'नियम से परे मार्ग' ये 'ज्ञानीयों' का ज्ञानमार्ग अर्थात् मोक्षमार्ग।

५३२. जगत् में जो कुछ भी कर्तापन से होवे, चाहे फिर वो धर्म के कर्ता हो, शास्त्र के कर्ता हो या पांडित्य के कर्ता हो; वे सारे मार्ग भूले हुए हैं, मोक्षमार्ग से विलग हुए हैं।

५३३. जब तक कर्तापद हो तब तक अध्यात्म की जागृति मानी ही नहीं जाती, तब तक मानों मनुष्य अध्यात्म में सोया हुआ है।

५३४. जो 'ज्ञान' राग-द्वेष निकाले, ये अलौकिक मार्ग!

५३५. ये क्लेश को निकालने के लिए जो धर्म करने पड़े, वे प्राकृत धर्म हैं और 'मोक्ष' तो आत्मधर्म से प्राप्त होता है।

★★★

५३६. मोक्ष जाने हेतु 'निजस्वरूप का भान' और 'निजस्वरूप का लक्ष्य' होना चाहिए।

★★★

५३७. एकांतिक तो सारा जगत् समझता है परंतु लोग अनेकांत नहीं समझे! जब स्यादवाद् समझ में आये, उसके बाद मोक्षमार्ग हाथ आये।

५३८. शुभ 'एकांतिक' कहलाये। शुद्ध 'अनेकांत' कहलाये। अनेकांत से मोक्ष। अनेकांत यानी कि आग्रह नहीं, हरेक सत्य का स्वीकार। वीतरागमार्ग अनेकांत, स्याद्‌वाद होता है।

५३९. स्याद्‌वाद यानी किसी भी धर्म के प्रमाण को ठेस न पहुँचाये, किसी भी धर्म की 'डिरेक्ट' भूल ना दिखाये।

५४०. अपने दृष्टिबिंदु के आधार पर चलना, अपने अपने दृष्टिबिंदु को सही ठहराना, इसे 'एकांतिक' कहा जाय। वीतराग धर्म 'अनेकांत' कहलाता है। सारे दृष्टिबिंदुओं को जो अपने में समाहित कर ले, उसका नाम है वीतराग धर्म।

५४१. सापेक्ष-निरपेक्ष दोनों को जो 'एक्सेप्ट' करे, वो स्याद्‌वाद!

५४२. स्याद्‌वाद क्या कहता है? खुद का चाहे जो भी पद हो उसे भूलाकर सामनेवाले की बात सुनो।

५४३. साहजिक वाणी यानी कि जिसमें किंचित् मात्र अहंकार न हो।

५४४. ''ज्ञानीपुरुष'' कहते हैं कि ये जो कुछ बोलता हूँ वो 'मैं' नहीं बोलता; 'ओरिजिनल टेपरिकॉर्ड' बोलता है। इस वाणी का 'मैं' एक 'सेकंड' भी मालिक नहीं बनता; अतः किसी भी बात का खुलासा हो जाय।

५४५. ‘वाणी का मालिकीपन’ ये ही बड़े से बड़ा अहंकार है। देह का मालिकीपन तो सहज रूप से रहे, किन्तु वाणी में तो ‘मूल आत्मा’ ही बरते!

५४६. इस जगत् में अचल का कोई नकल ही नहीं कर सकता। जिसकी नकल की जा सके वो सब चंचल। समग्र जगत् की आराधना चंचल की–‘रिलेटिव’ की ही होती है। इसलिए ही ये वाणी की ‘टेपरिकॉर्ड’ के द्वारा नकल हो सकती है। ‘वाणी’ ये चंचल है, उसमें ‘चेतन’–अचल का गुण नहीं होता।

★★★

५४७. चंचलता द्वारा चंचलता को मिटाना, उसका नाम ‘रिलेटिव धर्म’!

५४८. चंचल ‘अचल’ नहीं हो सकता और ‘अचल’ चंचल नहीं हो सकता। ‘स्वयं’ को अपने स्वभाव में रहना है।

★★★

५४९. आत्मा स्थिर है और बाक़ी सब स्पंदनवाला, अस्थिर है। सचर और अचर ऐसा सचराचर यह जगत् है। जो ‘अचर’ का भेद पाये वह ‘सचर’ का भेद पाये।

★★★

५५०. जहाँ किंचित् भी चंचलता हो वहां संसार ही है।

★★★

५५१. जो जितना ज़्यादा चंचल वह उतनी ज़्यादा उलझनें पैदा करे।

५५२. पुद्‌गल का स्वभाव चंचल है और आत्मा का स्वभाव अचल है। जितनी चंचलता बढ़े, मनुष्य उतना पुद्‌गल की ओर जाये; जितनी स्थिरता बढ़े उतना आत्मा की ओर जाये।

५५३. जब तक अचल परिणाम को जानें नहीं, तब तक आत्मा को कैसे पहचान पायें ?

५५४. जहाँ किंचित् मात्र चंचलता नहीं, वहाँ 'वीतराग' का मत है।

५५५. जो ज्ञान चंचलता कराये वो भयंकर बंधन है।

५५६. 'बंधन' ये अज्ञानता का फल है और मोक्ष ये 'ज्ञान' का फल है।

५५७. जिसे खुद के मन के साथ जरा भी एकता है वह बँधा हुआ है। बंधन यानी क्या ? मन से बँधना।

★★★

५५८. कुछ भी करने जैसा नहीं है, और यदि करने जाओ तो इससे बंधन बढ़ते हैं।

★★★

५५९. 'ये अच्छा, ये बुरा', ये दोनों संसार हैं, दोनों बंधन हैं। और मुक्ति किसे कहें ? ये दोनों बंधन हैं यह जानना।

५६०. 'भाव' से बंधन है, 'द्रव्य' से नहीं।

५६१. जब से 'मैं बंधन में हूँ' ऐसा भान होवे, तब से उसे छूटने की इच्छा होती है।

५६२. 'इगोइज़म' के कारण यह संसार खड़ा है। बंधन 'इगोइज़म' के कारण है। किसी भी मार्ग से 'इगोइज़म' बंद हो जाय तो मनुष्य छूट जाय।

५६३. 'मैं मुकेश हूँ' ये ही अहंकार ! जहाँ तुम नहीं, वहाँ तुम अपने होने का आरोप करते हो, वो ही 'अहम्' । यदि तुम 'स्वक्षेत्र' में रहो तो तुम 'आत्मा' ही हो। 'मैं मुकेश हूँ' ये कल्पित जगह पर आरोप करे वो ही 'अहंकार' !

५६४. अहंकार पर ही तो तुम्हारा जीवन है, उसे तुम कैसे निकाल सकते हो ?! अतः तुम्हें ''ज्ञानीपुरुष'' से यह कहना होगा कि 'मेरा अहंकार निकाल दो', तब वे उसे निकाल देंगे।

★★★

५६५. 'इगोइज़म' से 'टेम्परारी लाइफ' मिलती है और 'इगोइज़म' बिना 'शाश्वत' लाइफ' मिलती है। 'इगोइज़म' यानी लट्टू को लपेटी हुई डोरी, जो 'डिस्चार्ज' होती है।

★★★

५६६. तुम खुद ही अहंकारस्वरूप हो । जब तक अज्ञान है तब तक तुम अहंकारस्वरूप हो और 'ज्ञान' होने के बाद स्वयं का आत्मस्वरूप होता है।

★★★

५६७. 'ये मैंने किया' इससे अहंकार खड़ा हो जाये। 'ये मेरा', इससे ममता खड़ी हो जाये।

५६८. खुद के 'स्वरूप' में 'मैं हूँ' ये बोलना अहंकार नहीं, पर जहाँ 'मैं' परक्षेत्र में बोला जाय वो अहंकार है। अज्ञानता ही बाधक बनती है।

५६९. ये मन-वचन-काया जो 'व्यवस्थित' के अधीन हैं, उन्हें जो अपने अधीन कर लेता है, उसका नाम ही अहंकार!

★★★

५७०. अहंकार यानी क्या ? जो भगवान से दूर भागे। अहंकार ज्यों ज्यों बढ़ता जाये, त्यों त्यों 'टेढ़ापन, मान, गर्व, घमंड' आदि शब्दों का प्रयोग होता है। भगवान से ज़रा भी दूर हुए कि अहंकार जाग जाय।

★★★

५७१. अहंकार के आधार पर ही कर्म का बंधन है, अन्य क्रिया पर नहीं। अहंकार पर संकल्प और विकल्प, ये कर्म का बंधन! अहंकार जहाँ प्रवर्तित हो, वो उसका कर्मबंधन!!

★★★

५७२. पुद्‌गल का स्वभाव अधोगामी है और आत्मा का स्वभाव उर्ध्वगामी है। अधोगामी स्वभाव वजन बढ़ने से नहीं, अपितु अहंकार बढ़ने से होता है। शरीर से पतला भी हो, लेकिन अहंकार हो जाये दुनियाभर का लंबा-चौड़ा!

★★★

५७३. 'शुद्ध अहंकार' और 'शुद्ध चेतन' ये दोनों एक ही वस्तु है। शुद्ध अहंकार यानी कि जिसमें क्रोध-मान-माया-लोभ न हो।

५७४. जहाँ आत्मा है वहाँ क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं, और जहाँ क्रोध-मान-माया-लोभ हैं वहाँ आत्मा नहीं।

५७५. जब तक कषाय नहीं गए तब तक समझो 'वीतराग' का किंचित् मात्र धर्म नही पाया। 'वीतराग' का धर्म यानी कषाय का अभाव !!

५७६. मंद कषाय को 'धर्म' कहा गया है और कषायरहित को 'ज्ञान' कहा गया है। धर्म से यदि कषाय मंद नहीं हुए तो, या तो धर्म ग़लत है या फिर तुम ग़लत हो। धर्म तो 'वीतरागों' का है; अतः उसे ग़लत कैसे कहा जाए ?!

★★★

५७७. 'अकषायी' ये मोक्ष !

★★★

५७८. इस जगत् में बड़ी से बड़ी हिंसा यदि कोई है, तो कषाय से !

★★★

५७९. अहिंसा तो बहुत ऊँची वस्तु है। अहिंसा वहीं है, जहाँ न तो अब्रह्मचर्य है, न तो परिग्रह है, न तो असत्य है और ना ही चोरी।

★★★

५८०. यदि हमारे अंदर ऊँची अहिंसा हो तो बाघ भी उसका हिंसकभाव भूल जाये।

५८१. 'वीतराग' कहते हैं कि हिंसा के सामने अहिंसा के हथियार का प्रयोग करें ! हिंसा को हिंसा से नहीं जीत सकते; ये तो अहिंसा से ही जीती जाय।

★★★

५८२. अहिंसा किसे कहें ? किसीमें पूरी शक्ति होने के बावजूद भी, कोई उसे कुछ करे तो भी वह अपनी तरफ से कुछ न करे !

★★★

५८३. 'वीतराग' क्या कहते हैं ? हिंसा के सामने अहिंसा रखो, तो सुख आयेगा। हिंसा से हिंसा कभी भी बंद होनेवाली नहीं। अहिंसा से हिंसा बंद होगी।

★★★

५८४. अहिंसा के साम्राज्य के बिना कभी भी केवलज्ञान नहीं हो सकेगा। अहिंसा के बिना संपूर्ण जागृति नहीं आएगी।

★★★

५८५. हिंसा किसकी करोगे ? जीवमात्र में परमात्मा ही हैं ! किसे दुःख पहुँचाओगे ?!

★★★

५८६. अहिंसक भाववाला कोई तीर सीधा चलाये, तो भी सामनेवाले को लहू ना निकले और हिंसक भाववाला यदि फूल भी फेंके तो भी सामनेवाले को लहू निकले। तीर और फूल इतने 'इफेक्टिव' नहीं जितने कि हिंसकभाव हैं।

★★★

५८७. भावहिंसा यानी क्या ? तुम्हारे 'स्वयं' की जो हिंसा होती है, यानी कि क्रोध-मान-माया-लोभ तुम्हारे स्वयं को जो बंधन कराते हैं। अतः पहले तुम स्वयं के प्रति दया करो ! पहले स्वयं के प्रति भाव-अहिंसा, बाद में अन्य के प्रति।

५८८. अहिंसा समान कोई बल नहीं और हिंसा जैसी कोई निर्बलता नहीं।

★★★

५८९. इस दुनिया में निर्बल कौन? अहंकारी। इस दुनिया में सबल कौन? निर्‌अहंकारी।

५९०. जितनी भ्रांति उतनी निर्बलता! जो भ्रांतिरहित है उसे कैसी निर्बलता?

५९१. संसारस्वभाव यानी कि संपूर्ण निर्बलता!

५९२. सच में तो अज्ञानदशा में भी ऐसा होना चाहिए कि निर्बल की रक्षा की जाय और सबल का सामना किया जाय! किन्तु लोग तो निर्बल को ही मारते रहते हैं।

★★★

५९३. 'वीतराग पुरुष' ही निर्बल के हाथों मार खा सकें, अन्य कोई नहीं खा सकता।

५९४. निर्बलता की रक्षा न करो, उसे केवल जानो कि 'मेरी ये निर्बलता है', ताकि वो निर्बलता क्षीण हो, अन्यथा उस निर्बलता का गुणन होता है।

★★★

५९५. ये सब जो 'रिलेटिव' है, इसका खुद को असर होवे ये भयंकर निर्बलता है। हमारे आजूबाजू कुछ भी हुआ, उसका खुद पर असर नहीं होना चाहिए।

५९६. मनुष्यों ने कुछ भी जाना नहीं। 'जाना' तो उसे कहा जाय कि निर्बलता न रहे।

५९७. इस जगत् में करने योग्य क्या है और न करने योग्य क्या, जानने योग्य क्या है और न जानने योग्य क्या ; बस इतना ही समझना है।

★★★

५९८. ''ज्ञानीपुरुष'' ये नहीं कहते कि 'भाव करो' बल्कि कहते हैं कि 'समझो'। 'ये ग़लत है' यह जानें, उसी का नाम 'ज्ञान'!

★★★

५९९. जगत् के लोगों को 'ग़लत है' ऐसा जानने पर द्वेष होवे और 'सच्चा है' ऐसा जानने पर उसके प्रति राग होवे। ''ज्ञानीपुरुष'' तो 'ये ग़लत है' ऐसा केवल जानें और इसी का नाम 'ज्ञान'।

★★★

६००. 'समझ' ये ही आचरण है। ''ज्ञानीपुरुष'' आचरण में लाने के लिए नहीं कहते। जबरन आचरण सिखाओगे तो बेकार है। 'आचरण में लाना' ये तो अहंकार है। समझ में आ गया वो वर्तन में आएगा ही!

★★★

६०१. धर्म यानी किसी भी जीव को किसी भी प्रकार से सुख देना, और अधर्म यानी किसी भी जीव को किसी भी प्रकार से दुःख पहुँचाना! बस इतना ही धर्म का अर्थ समझने की ज़रूरत है।

★★★

६०२. अन्य को सुख देना ये धर्म है, और अपना मूल धर्म तो आत्मा प्राप्त होने के बाद ही प्राप्त होवे।

६०३. धर्म तो बहुत प्रकार के होते हैं। मानसिक धर्म, और इस मानसिक धर्म के भी बहुत सारे स्तर होते हैं! उसके बाद बौद्धिक धर्म, उसके भी कितने सारे स्तर होते हैं!! और बौद्धिक धर्म पूरा होने के बाद 'स्वरूप'-धर्म प्राप्त होता है। सूर्य(बुद्धि)-चंद्र(मन) का भेदन होने पर आत्मा प्राप्त होती है।

★★★

६०४. यथार्थ धर्म तो उसे कहेंगे जिसमें भ्रांति न हो।

★★★

६०५. 'जैसा है वैसा' न दिखकर अन्य स्वरूप में दिखाई देना, उसीका नाम भ्रांति!

★★★

६०६. इस संसार का नशा चढ़ने से भ्रांति बरते! जब यह नशा उतरेगा तब सब ठीक हो जायेगा और 'स्वयं' मूलतः जो है, वो ही होकर रह जायेगा।

★★★

६०७. इस जगत् में 'मैं करता हूँ' और 'मैं जानता हूँ,' ये दोनों भाव इकठ्ठा करें, इसी का नाम भ्रांति!

★★★

६०८. भ्रांति उसीका नाम कि झूठ और सच एक ही तराजू पर तौले जायें।

★★★

६०९. भगवान किसे कहेंगे? जो इस दुनिया में संपूर्ण स्वतंत्र हुआ है वो और जिसका भगवान भी ऊपरी नहीं, वो है भगवान। लेकिन जब खुद की परवशता ही समझ में नहीं आती फिर स्वतंत्रता तो कैसे समझ में आये?!

★★★

६१०. जैसे वकील बनने की सबको स्वतंत्रता है उसी प्रकार भगवान बनने की भी सबको स्वतंत्रता है। जो भगवत् गुणों को प्राप्त करे वह भगवान हो जाये।

★★★

६११. भगवान कहते हैं कि 'तुम अपने अहंकार से दूर हो जाओ, दासभाव में रहो, तो तुम और मैं एक ही हैं ; वरना तुम और मैं अलग हैं !'

★★★

६१२. भगवान तो दूर नहीं गए लेकिन लोग दूर गए हैं। अन्य सर्वत्र भाव उभरा है लेकिन भगवान के प्रति नहीं। यदि भगवान पर भाव उभरे तो भगवान दूर नहीं।

★★★

६१३. एक भगवान को जानने के लिए कितनी सारी पुस्तकें लिखी गई हैं ?! भगवान तो तुम्हारे पास ही हैं !

★★★

६१४. 'भगवान' की व्याख्या शब्दातीत है। वह गुह्य है, अतः उसे 'रहस्यात्मा' कहा गया है। अतः उसकी व्याख्या खोजने न जायें।

★★★

६१५. भगवान और भक्त इस प्रकार धर्म की दो ही श्रेणी हैं। जीव भ्रांति में हो तब तक भक्त श्रेणी में होता है और वो ही जीव भ्रांति दूर हो जाने पर, साक्षात्कार होने पर, भगवान श्रेणी में आया कहलाये !

★★★

६१६. आत्मज्ञान हो जाय तब पूरे ब्रह्मांड का स्वामी हो जाये, तब तक तो सब भक्त। आत्मज्ञान होने के बाद वह भक्त भी है और भगवान भी।

६१७. जिसे शुद्ध हृदय से केवल 'चेतन' ही चाहिए, भौतिक सुख नहीं चाहिए, उसे ''ज्ञानीपुरुष'' आ मिले और काम बन जाये। मात्र सच्चे हृदय की लगन चाहिए।

६१८. भक्ति मार्ग यानी कि भक्त और भगवान अलग। 'मैं स्वयं ही परमात्मा हूँ', ऐसा भान हुआ, ये है ज्ञानमार्ग।

६१९. जब तक 'स्वयं' ही भगवान न हो जाये, तब तक भगवान न मिले।

६२०. भगवान को प्राप्त करने के दो मार्ग : एक परोक्ष भक्ति और दूसरा प्रत्यक्ष भक्ति। परोक्ष भक्ति में वृत्तियाँ भगवान में तन्मयाकार न रहे। प्रत्यक्ष भक्ति में वृत्तियाँ भगवान में निरंतर तन्मयाकार रहे। प्रत्यक्ष भक्ति 'प्रत्यक्ष भगवान' की पहचान हुए बिना नहीं हो पाती।

★★★

६२१. सच्चा भक्त होना है तो, शुरू में भगवान याद न रहते हों तो बाहर मंदिर है वहाँ भगवान के दर्शन करना; बाद में ऐसा करते-करते जब भगवान याद रहने लगे तब अंदर की आत्मा को ही भगवान मानोगे तो सच्चे भक्त बनोगे; और जब तुम्हारी आत्मा साक्षात्कार दे, तब तुम स्वयं भगवान हो चुके होगे!

★★★

६२२. सच्चे भक्त की निशानी क्या ? स्वच्छंद नही होना चाहिए, अभिनिवेश नही होना चाहिए, दृष्टिराग नही होना चाहिए, क्लेश न हो, आर्तध्यान और रौद्रध्यान न हो।

६२३. भक्ति दो प्रकार की : एक, ज्ञान प्राप्त करने के लिए भक्ति–वो अज्ञानभक्ति है; दूसरी, ज्ञान होने के पश्चात् की भक्ति–वो ज्ञानभक्ति है। सारा जगत् अज्ञानभक्ति में पड़ा हुआ है। अज्ञानभक्ति से भी कभी न कभी तो 'ज्ञान' आये और ज्ञानभक्ति से मोक्ष!

६२४. भक्ति उसे कहा जाये कि जिसमें हरेक वस्तु माँगने का अधिकार और 'ज्ञान' उसका नाम कि कुछ भी माँगा नहीं जाये।

६२५. "तू ही, तू ही, तू ही"! "तू ही नहीं बल्कि मैं ही, मैं ही, मैं ही"!! 'तू ही' कहने पर तो भेद उत्पन्न हुआ; वो भगवान और हम हमेशा के लिए रह गए भक्त। "मैं ही, मैं ही हूँ सर्वत्र"!

★★★

६२६. बिना 'ज्ञान' भक्ति नहीं होती। लोग जिसे भक्ति मानते हैं, वो तो 'भजन' कहलाये। भक्ति तो 'ज्ञान' और 'ज्ञान' के इशारे से होती है।

★★★

६२७. चेतन की भक्ति यानी चेतन के प्राप्त होने के बाद ही चेतन की भक्ति हो पाये। भक्ति से आवरण टूटे और अधिक स्पष्ट दिखाई दे! भक्ति किसकी कर रहे हो इस पर ये आधारित है। चेतन प्राप्त किये हुए पुरुष–"ज्ञानीपुरुष" की भक्ति करने से चेतन प्राप्त होवे।

★★★

६२८. पुद्‌गल का स्वभाव ही है भक्ति करने का। "ब्रह्म इठलाये ब्रह्म के पास!" अपना कुसूर, चूक, टेढ़ापन निकाल दें, तब पुद्‌गल तो भक्ति करेगा ही।

६२९. 'राँग बिलीफ' ये परोक्ष भजना है।'राइट बिलीफ' ये प्रत्यक्ष भजना है।

★★★

६३०. 'निज स्वरूप का भान' हो गया तो मानों सारा जगत् अनावृत हो गया ! 'मैं त्रिभोवनदास हूँ'- ये 'राँग बिलीफ' है, 'इसका फादर हूँ' ये 'राँग बिलीफ' है, इसका पति हूँ ये 'राँग बिलीफ' है।

६३१. 'राँग बिलीफ' किसे हुई ? जो 'राँग बिलीफ' का मालिक बना, 'उसे'।

६३२. 'राँग बिलीफ' अपार हैं और 'राइट बिलीफ' एक ही है, मगर इसका भान ही नहीं।

६३३. जब इस 'राँग बिलीफ' का इतना सारा असर होता है, तो फिर 'राइट बिलीफ' के असर का क्या कहना ?!

★★★

६३४. जहाँ 'राँग बिलीफ' का अभाव है, वहाँ 'राइट बिलीफ' हाज़िर है।

★★★

६३५. 'अच्छे भाव किये' वो मीठे फल दें और 'बुरे भाव किये' वो कड़वे फल दें; और 'भावाभाव' से छूटें तो परमात्मपद प्राप्त हो जाय।

★★★

६३६. जब 'मनपसंद' वस्तु की ज़रूरत न रहे, तब कोई वस्तु 'ना-पसंद' न रहे।

६३७. जिसके प्रति अरुचि होती हो, उसकी प्रशंसा करें ! जिसके प्रति 'आकर्षण' होता हो, तब उसे बिना चमड़ी के मानकर देखें तो सारा आकर्षण छूट जाये। ''ज्ञानी'' के पास हर-एक रोग का उपाय होता है।

★★★

६३८. अज्ञानता के कारण जो भाव पैदा हुए, उन्हें 'ज्ञान' से छानना पड़े ! प्रत्येक शब्द को छानना पड़े, तभी पूरा काम बने।

★★★

६३९. जहाँ मिथ्यात्व है वहीं भाव-अभाव हैं; जहाँ सम्यक्त्व है वहाँ भाव-अभाव है ही नहीं।

★★★

६४०. विनाशी वस्तु में अपना सुख मानना और 'स्वयं' के अविनाशी सुख को न समझना, ये 'राँग बिलीफ' यानी मिथ्यादर्शन; और 'राइट बिलीफ' ये सम्यक् दर्शन।

★★★

६४१. 'मैं रायचंद हूँ' ये अज्ञान-मान्यता, 'मैं सत्तर साल का हूँ' ये अज्ञान-मान्यता, 'मैं जैन हूँ' ये अज्ञान-मान्यता ! 'मैं इसका बाप हूँ, इसका मामा हूँ, इसका फूफा हूँ,' ये कितनी सारी अज्ञान-मान्यताएँ ! जैसे ये लकड़ियाँ अलग अलग हों और इन सब को इकठ्ठा करके बाँधें, उसे 'गठरी' कहते हैं, इस प्रकार अज्ञान-मान्यताओं की गठरी-ये है मिथ्यात्व। यह सब बार बार लपेटा जाये वो है 'गाढ़ मिथ्यात्व'। आगे फिर 'मैं महाराज हूँ, मैं आचार्य हूँ' ये है 'प्रगाढ़ मिथ्यात्व' !

★★★

६४२. अनात्मा को आत्मा मानना और आत्मा को अनात्मा मानना, ये गाढ़ मिथ्यात्व है।

★★★

६४३. ये जो 'मै हूँ', 'मैं हूँ' कहा जाता है, वो सब मिथ्यात्व है। 'मेरा है', ऐसा बोलने में हर्ज नहीं। 'मैं चंदुलाल हूँ' माना, तो सब 'मेरा, मेरा' ही है। जब 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ये अनुभव हुआ, तो फिर कुछ नहीं रहता।

★★★

६४४. 'मैं चंदुभाई हूँ' ये है 'मिथ्यादर्शन' और 'मैंने ऐसा किया' ये मिथ्याज्ञान।

★★★

६४५. दर्शन और ज्ञान में क्या फ़र्क़ है ? दर्शन का विशेष भाव ये 'ज्ञान' है। ज्ञान-दर्शन इकट्ठा हो उसे 'चारित्र' कहा जाये। 'ज्ञान' किसे कहें ? कि दर्शन से 'फीट' हो जाय और फिर वो दूसरों को समझाये।

★★★

६४६. 'दर्शन' यानी 'बिलीफ', सुदर्शन यानी 'राईट बिलीफ'; कुदर्शन यानी 'राँग बिलीफ'।

★★★

६४७. सामान्य भाव से देखना इसका नाम 'दर्शन' और विशेष भाव से देखना इसका नाम 'ज्ञान'।

★★★

६४८. 'बंधन' का उपादान कारण क्या ? अज्ञान। 'मोक्ष' का उपादान कारण क्या ? 'ज्ञान'।

★★★

६४९. ज्ञान साक्षात् हो जाय, उसे 'ज्ञान' कहते हैं और जो ज्ञान साक्षात् नहीं हुआ, उसे 'अज्ञान' कहा गया है। साक्षात् होना ही 'ज्ञान' का प्रमाण है।

★★★

६५०. 'ज्ञान' यानी 'स्वयं' अपने 'मूल स्वरूप' को जानना; वैसे नहीं जानना ये अज्ञान!

६५१. पौद्‌गलिक ज्ञान को 'अज्ञान' कहते हैं। आत्मज्ञान को 'ज्ञान' कहते हैं। शुद्ध आत्मज्ञान होने के लिए 'पुद्‌गल का ज्ञान' और 'आत्मज्ञान' दोनों ही चाहिए।

६५२. अज्ञान भी एक प्रकार का उजाला ही है, पर वो भौतिक सुख दिखाता है और 'ज्ञान' सच्चा सुख दिखाता है।

६५३. जो परिणमन होवे ये 'ज्ञान'। जो परिणमन न हो ये शुष्क ज्ञान।

६५४. समझ में आये वो 'दर्शन' और अनुभव में आये वो 'ज्ञान'!

६५५. खुद समझे ये 'दर्शन' और वो समझ दूसरों को समझा सके वो 'ज्ञान'!

६५६. भले ही 'ज्ञान' न हो, पर यदि तय किया हो कि 'मुझे लिकेज नहीं होने देना', उसे संप्राप्ति होती है। जो एक क्षण के लिए भी स्वयं को 'लिकेज' न होने दे; इसका नाम 'तप'।

★★★

६५७. 'ज्ञान' तो प्रकाश है। प्रकाश होने के पश्चात् तप करोगे तो उस तप से मोक्ष होगा और ये अज्ञानतप से तो देह मिलेगी। मन तपेगा, तो उसका तुम्हें भौतिक फल मिलेगा। इस आग से तपने का फल तो मिलेगा ही!

६५८. कलियुग में सचेत रहना। प्राप्त-तप को भुगत लेना, अप्राप्त-तप खड़ा ना करना।

६५९. यदि तुम्हारी प्रकृति में हो तो त्याग करना; तुम्हारी प्रकृति में हो तो तप करना; यदि तुम्हारी प्रकृति में हो तो जप करना; हालाँकि एक आत्मा प्राप्त हुए बिना सब व्यर्थ है।

६६०. जहाँ मोक्ष है वहाँ कष्ट नहीं, और जहाँ कष्ट है वहाँ मोक्ष नहीं। 'कष्ट' ये हठाग्रह है!

६६१. मन में विषय हों, ये सब पौद्‌गलिक विषय हों, लेकिन कभी भी भाव न बिगड़े, उसीका नाम 'तप'!

६६२. दु:ख में समता धारण करना, उसीका नाम तप!

६६३. जितनी सांत्वना ले, उतना तप कच्चा रहे।

★★★

६६४. ना-पसंद राशि को तप से भागाकार करो तो जवाब शून्य आये!

★★★

६६५. 'आत्मा' निर्विषयी है; 'तप-त्याग' ये विषय हैं। किसी विषय में आत्मा नहीं, आत्मा तो आत्मा में ही है।

★★★

६६६. अवस्था में 'एबॉव नोर्मल' होवे या 'बीलो नोर्मल' होवे, इसे 'विषय' कहा जाये।

६६७. विषय किसे कहें ? जिसमें मन-वचन-काया का एकाकारभाव होवे। मन-वचन-काया में एकाकार न होवे वो निर्विषय!

६६८. विषय ये विष नहीं, अपितु विषयों में निडरता ये विष है। अत: विषयों से डरो।

६६९. 'ये स्त्री है', ऐसे जो देखता है वो पुरुष का 'रोग' है और 'ये पुरुष है'- ऐसे जो देखे ये स्त्री का रोग है। 'निरोगी' हो जाये तो मोक्ष है।

६७०. विषय का विरोधी होवे, तब से ही वो निर्विषयी होने लगे।

६७१. स्त्री का मिलना ये जोखिम नहीं परंतु आँख का आकर्षण होना ये जोखिम है ! अत: वहाँ प्रतिक्रमण करके 'केस' बंद कर दें।

★★★

६७२. 'भूख' ये वेदना शमन का उपाय है, सारे विषय वेदना शमन के उपाय हैं मगर लोगों को तो उसका शौक चर्राया है ! वहाँ 'लिमिट' में रहना, शौक़ीन मत हो जाना। 'नॉर्मालिटी' खोज लेना।

★★★

६७३. हक़ का भोगने की छूट है किन्तु ना-हक़ का आनंद से भोगने पर कर्म की पक्की गाँठ पड़ जाय तो आनेवाले अनेक जन्म बिगाड़ दे; मगर पछतावा करे तो पक्की गाँठ ढीली पड़ जाय और छूटने के लिए अवसर मिले।

६७४. मनुष्यता कब तक रहे ? बिना-हक़ का किंचित् मात्र न भोगे तब तक मनुष्यता है।

६७५. इस दुनिया में कोई चीज़ बंधन नहीं करती, केवल परस्त्री की लूट चले, वो ही बंधन करे।

६७६. 'परस्त्री और परपुरुष' ये प्रत्यक्ष नरक का कारण!

६७७. जहाँ आकर्षण वहाँ मोह। आकर्षणवाली 'जगह' पर शुद्ध उपयोग रखो; ताकि वो जगह तुम्हें परेशान न करे।

६७८. विषयमात्र कीचड़ स्वरूप है, यदि एक अकेली आत्मा ही याद रहे तो ये विषय नहीं है। अन्यथा जो सब याद रहे वे सारे विषय हैं।

★★★

६७९. दादाश्री कहते हैं, "सारे मुंबई की कोई भी चीज़ 'मुझे' नहीं खींचती। मुझसे बड़ी चीज़ हो तो ही मुझे खींच पाए ना!"

★★★

६८०. भूख मिटाने के लिए रोटी-सब्जी खाना है, ना कि 'टेस्ट' के लिए। 'टेस्ट' के लिए खाने जाओगे तो रोटी-सब्जी अच्छी नहीं लगेगी, अतः वो 'वेद' हो जाएगा। तीन प्रकार के वेद (स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद) से ये सारा जगत् सड़ रहा है।

६८१. इस कुदरत के खेल में यदि तीन वेद ही नहीं होते तो संसार में मुक्त रहते। सारा खेल ही तीन वेदों में है! इन तीनों को यदि खुराक के रूप में माना होता तो कोई हर्ज ही न था पर इन्हें तो 'वेद' कहा।

★★★

६८२. इस जगत् में जीतने लायक क्या ? ये तीन वेद ही। जिसने वेद को जीता उसने सारा जगत् जीत लिया। तीन वेद कौन से ? स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद।

★★★

६८३. ये 'विषय' में जाने से जो रुक गया वह 'भगवान' होकर रह जायेगा और विषय में जो लटक गया वो सीधा नर्क में ही गया समझो।

★★★

६८४. विषय-पक्षी अभिप्राय ही विषयों के संबंध में प्रवर्तमान अज्ञान का मुख्य 'एविडन्स' है।

★★★

६८५. 'फिसलना नहीं है', ऐसा दृढ निर्णय करने के बावजूद भी फिसल जाय, तो वो गुनाह नहीं, लेकिन दृढ निर्णय ही नहीं किया हो और फिसल जाये तो ये गुनाह है।

★★★

६८६. समंदर में संकरी पगडंडी पर चलते वक़्त दोनों ओर समुद्र में गिर जाने की संभावना हो तब कैसा निश्चय करते हो ? ऐसी स्थिति में निश्चय कोई बार-बार नहीं करना पड़ता। ये तो उसी क्षण एक बार अंदर निश्चय हो जाता है, उसके बाद निरंतर जागृति रहे।

६८७. निश्चय करने के बाद भी यदि कमज़ोर पड़ जाये तो बार-बार निश्चय करना; लेकिन 'ये मुझ से नहीं होता, वो मुझ से नहीं होता', ऐसा बोलना ही नहीं है ! ऐसा बोलने से तो आत्मा (प्रतिष्ठित आत्मा) छिन्न-भिन्न हो जाती है।

★★★

६८८. निश्चय उसी का नाम कि हमने जो निर्णय किया वो अंत तक बना रहे, तो फिर उसका संधान आगे मिल जाये, 'टाइमिंग' भी मिल जाय। यदि निश्चय बदल दें तो आगे संधान न मिले। एक निश्चय किया और फिर दूसरा करे तो वो मिले तो सही किन्तु उसके टाइम पर नहीं और वो भी 'पिसेस' में मिले, अखंड रूप से न मिले।

★★★

६८९. रेलगाडी सवा दस बजे चली तो उसका 'एक्सीडेंट' होगा या साढ़े दस बजे चली तो उसका 'एक्सीडेंट' होगा ? ये कैसे पता चले ? तो फिर व्यर्थ ही बड़बड़ क्यों ? हमें तो तय करना है कि 'समय पर जाना है', फिर जो हुआ सो ठीक!

★★★

६९०. जितने निश्चय किये हैं उतने ही फलेंगे, और कुछ नहीं करना है।

★★★

६९१. 'निश्चय' ये ही पुरुषार्थ है।

★★★

६९२. पुरुषार्थ उसीका नाम जो फले ही।

★★★

६९३. संयोग इकठ्ठे होने पर जो कार्य होवे उन सबको 'प्रारब्ध' कहा जाये और संयोग इकठ्ठे होने से जो कार्य होवे, उस कार्य में जो ध्यान उत्पन्न हो, ये 'पुरुषार्थ' है।

६९४. पुरुषार्थ के दो प्रकार : भ्रांतिवाले को भ्रांत पुरुषार्थ और ''ज्ञानी'' को ज्ञान-पुरुषार्थ।

६९५. लौकिक पुरुषार्थ ये ही प्रारब्ध है। व्यवसाय करना ये प्रारब्ध है, उपदेश देना ये भी प्रारब्ध है। ये अभी सुन रहे हो ये भी प्रारब्ध है। जिसमें परावलंबन है, वो सब प्रारब्ध ही है।

★★★

६९६. माता के गर्भ से लेकर श्मशान में जाये तब तक, ये किया-वो किया, ये सभी प्रारब्ध हैं, अनिवार्य हैं।

★★★

६९७. सारा जगत् जो 'बुरा कर रहा है' वो प्रारब्ध के अधीन है और 'अच्छा कर रहा है' वो भी प्रारब्ध के अधीन है।

★★★

६९८. ये 'जशभाई' क्या कर रहे हैं उसे 'आप' स्वयं 'देखें' उसीका नाम पुरुषार्थ; तो फिर भ्रांत पुरुषार्थ कौन-सा ? जो हो रहा है उस में क्या भाव था और क्या नहीं, ये ही भ्रांत पुरुषार्थ। भ्रांत पुरुषार्थ में बीच में भाव आये, और यथार्थ पुरुषार्थ में तो ज्ञाता-दृष्टा!

★★★

६९९. प्रारब्ध भुगतते समय ही अंदर (भ्रांत) पुरुषार्थ का बीज पड़ जाता है, क्योंकि 'मैं कर्ता हूँ' ये भान है इसलिए! वरना तो प्रारब्ध भुगत लेने पर ही मुक्ति मिल जाये।

★★★

७००. 'दान दिया' ये प्रारब्ध और दान देते समय अंदर कौन सी भावना थी ये (भ्रांत) पुरुषार्थ।

७०१. स्थूल संयोग भ्रांतिमय हैं, सूक्ष्म संयोग 'मिकेनिकल' हैं और वाणी के संयोग 'रिकॉर्ड' स्वरूप हैं। ''ज्ञानीपुरुष'' जगत् को केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि मन-वचन-काया की सारी क्रियाएँ 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' हैं और 'तुम' स्वतंत्र हो। भाव से 'तुम' अलग हो, इसीलिए तुम अपने भाव को बदलो। मन-वचन-काया की क्रिया हो तो भी तुम कल्पांत मत करना। बस, तुम अपने भाव को बदलो।

७०२. 'सद्भाव करना, उच्च भाव करना', ये 'पोज़िटिव पुरुषार्थ', उससे ऊर्ध्वगति होवे। 'उलटा भाव करे' ये 'नेगेटिव पुरुषार्थ', उससे अधोगति में जाये। सच्चा पुरुषार्थ' तो 'स्वयं' पुरुष होकर करे, तो मोक्ष में जाये।

★★★

७०३. हमें तो बस 'पॉज़िटिव' देखना है। जगत् 'पॉज़िटिव' और 'नेगेटिव' के रास्ते पर है! कभी न कभी तो वो 'नेगेटिव' को 'पॉज़िटिव' करेगा ही। तो फिर हम पहले से ही 'पॉज़िटिव' क्यों न रहें ?!

★★★

७०४. 'नेगेटिव' को मिटाने में जितना 'टाइम' बर्बाद होता है, इसके बजाय 'पॉज़िटिव' करने में 'ऑटोमोटिकली' 'जोइन्ट' हो जाता है। अशुभ कर्मों को दूर करने में व्यर्थ ही 'टाइम' क्यों बर्बाद करते हो ?

★★★

७०५. दो ही वस्तु हैं : 'पॉज़िटिव' और 'नेगेटिव'। 'नेगेटिव' रखें तो कुदरत 'हेल्प' किसे करेगी ? हमारी 'डिक्शनरी' में 'नेगेटिव' नहीं होना चाहिए।

७०६. ''ज्ञानीपुरुष'' 'नेगेटिव' को 'पॉज़िटिव' से जीतते हैं।

★★★

७०७. 'नेगेटिव' 'पॉज़िटिव' नहीं होवे और 'पॉज़िटिव' 'नेगेटिव' नहीं होवे क्योंकि दोनों ही द्वंद्व हैं जबकि 'स्वयं' द्वंद्वातीत है।

७०८. 'हाँ' शब्द में बहुत सारी शक्ति है और 'ना' शब्द में बहुत अशक्ति है।

७०९. 'नो' से जगत् रुका हुआ है।

७१०. 'नो' कहनेवाले पुद्‌गल-पक्ष के हैं और 'यस' कहनेवाले मोक्ष-पक्ष के हैं।

७११. जहाँ कोई भी ऊपरी नहीं, जहाँ कोई भी अन्डरहेन्ड नहीं; इसका नाम मोक्ष ! जहाँ किसी भी प्रकार का खराब 'इफेक्ट' है ही नहीं; निरंतर परमानंद में, सनातन सुख में रहना, इसीका नाम मोक्ष।

★★★

७१२. 'संसारी दुःख का अभाव' ये पहला मोक्ष और 'स्वाभाविक सुख का सद्‌भाव' ये दूसरा मोक्ष-यही संपूर्ण मोक्ष !

★★★

७१३. 'अज्ञान से मुक्ति' ये भाव-मोक्ष और उसके बाद द्रव्य-मोक्ष होवे।

७१४. मोक्ष की भावना सच्ची कब कही जाय ? मोक्ष की भावना लगातार होनी चाहिए। लेकिन यहाँ तो, एक दिशा में मोक्ष की भावना हों और दूसरी कईं सारी दिशाओं में संसारी भावना हों; फिर तो उनका 'प्लस-माइनस' हो जाय और मूल भावना तो उड़ जाय। भावना तो अविरत होनी चाहिए, तो ही वो फलीभूत होवे।

७१५. क्लेश के सिवा 'इन्डियन लाइफ' नहीं और 'इन्डियन लाइफ' के सिवा मोक्ष नहीं ! क्लेश की चरम-सीमा पर मोक्ष है।

७१६. मोक्ष कठिन नहीं; संसार कठिन है।

७१७. संसार के साधनों द्वारा संसार कराओ और 'तुम' देखो और जानो।

७१८. मोक्ष आता नहीं, अपितु मोक्ष समझ में आता है। मोक्षस्वरूप तो 'तू' है ही, पर 'तुझे' इसका भान नहीं; अतः इसका भान होने पर मोक्ष समझ में आता है।

★★★

७१९. मोक्ष में जाना नहीं है, अपितु 'स्वयं' निज 'स्वरूप' होना है।

★★★

७२०. मोक्ष यानी केवल दृष्टि ही बदलना है।

★★★

७२१. जब तक आत्मदृष्टि न होवे तब तक सब संसार ही है।

७२२. लोकदृष्टि से कभी भी संसार के पार नहीं जा सकते। ‘‘ज्ञानी’’ की दृष्टि से संसार पार किया जा सके।

७२३. लोकदृष्टि यानी क्या ? उत्तर को दक्षिण मानना।

★★★

७२४. दृष्टि में ‘आत्मा’ तो हुए ‘परमात्मा’ ! दृष्टि में ‘बहनोई’ तो हुए ‘साला’ !

★★★

७२५. ‘मोक्ष’ यानी कि दृष्टि निर्मल करना और ‘बंधन’ यानी दृष्टि की अनिर्मलता। दृष्टिदोष है इसी कारण ही कलह और मतभेद हैं।

★★★

७२६. जगत् का जो भेद है उसे तो लोग जानें, किन्तु ‘भेद के भेद’ को कोई न जाने। आत्मा और देह दो अलग वस्तु हैं ऐसा तो जाने, किन्तु फिर उसका भेद क्या है ये न जाने, वो है भेद का भेद।

★★★

७२७. जगत् के ‘भेद के भेद’ को तो संत-महात्मा भी नहीं जाने, उस ‘भेद के भेद’ को तो एक ‘‘ज्ञानीपुरुष’’ ही जाने।

★★★

७२८. इस जगत् का ‘पज़ल’ ‘सोल्व’ हो जाय, तो फिर अंदर समाधि रहे।

★★★

७२९. संसार का आख़िरी ‘स्टेशन’ क्या होना चाहिए ? समाधि।

७३०. संसार में नर में भी नारायण हैं और नारी में भी नारायण हैं। न्यारा रहके जो निहारे वो नारायण!

★★★

७३१. सारा जगत् निर्दोष ही है। यदि 'नारायण' को पहचान लिया तो 'नर' निर्दोष ही दिखे। आत्मा तो शुद्ध स्वरूप ही है।

★★★

७३२. 'प्रवीण' ये नर और 'तुम' 'स्वयं' हो 'नारायण', ये नर-नारायण की जोड़ी है। लोग नर-नारायण के दर्शन करने जाते हैं न!

★★★

७३३. जितना कैफ़ बढ़े, नारायण उतने दूर!

★★★

७३४. जिस समझ का कैफ़ चढ़े वो भयंकर अज्ञान है। 'ज्ञान' से तो कैफ़ पिघले।

★★★

७३५. इस दुनिया में जिसे कोई ग़रज़ ना रहे वो परमात्मा हो जाय; यदि इसका कैफ़ ना चढ़े तो!

★★★

७३६. सच्ची समझ से कैफ़ उतरे। नासमझी से कैफ़ ना उतरे।

★★★

७३७. जहाँ कैफ़ चढ़े वहाँ वो 'आत्म-अज्ञान' कहा जाये।

★★★

७३८. कैफ़ का पता कब चले? जब कोई कहे कि 'आपकी बात गलत है', तब।

७३९. जिस समझ से कैफ़ चढ़े वो वीतराग की बात नहीं।

७४०. तमाम प्रकार के कैफ़ जाये, तब अनंत शक्ति प्रकट हो जाय।

७४१. तीन प्रकार की दारू : १. विषयों की इच्छा की मूर्छा, २. दारू पीने पर ३. कैफ़ की दारू; अहंकार का कैफ़, जो 'मैं', 'मैं' करता है वो!

★★★

७४२. जो जाने कुछ भी नहीं, पर 'जानता हूँ' ऐसा रोग पैठ जाय, वह बहुत बड़ा रोगी। जानने का फल क्या ? लौकिक चीज़ों में रमणता बंद हो और आत्मा में रमण हो! वो 'रोगी' तो जानने का अहंकार ही करता है।

★★★

७४३. 'अहंकार' ये कोई वस्तु नहीं। हम जो मान लें कि 'मैं ये हूँ', ये सब अहंकार! जितना 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ये रहे, उतना निर्अहंकार!

★★★

७४४. अहंकार की शून्यता के बग़ैर मोक्ष नहीं। 'अहंकार का उद्भवस्थान' ये ही बंधन है। जब तक अहंकार है तब तक जंजाल है। 'अहंकार' ये अनात्मा है, और फिर प्रसवधर्मी भी है।

★★★

७४५. अहंकार और ममता जाये, तो मोक्ष होवे।

७४६. अहम् मरता है और अहम् जीता है, किन्तु लोग कहते हैं कि 'मैं मरा !' जन्म लेता है और मरता है अहम्। आत्मा तो अपनी जगह पर ही है, पुद्‌गल भी उसकी अपनी जगह पर ही है; बीच में अहम् की ही बात है।

७४७. अहंकार यानी कि खुद के 'स्वरूप' के बाहर कल्पित रूप से रहना।

७४८. जिससे अहंकार कम हो, वो 'वीतरागी ज्ञान' कहलाये और जिस वर्तन से, जिस क्रियाकांड से अहंकार कम हो, वो भगवान की कही आज्ञा के मुताबिक कहलाये। मगर यहाँ तो अहंकार बढ़ गया है ! ये ही तो दुःख है।

★★★

७४९. इस जगत् में जो कोई क्रिया की जाती है, वो भ्रांति है। 'स्व' का भान होवे तो भ्रांतिरहित हो जाये।

★★★

७५०. आरोपित भाव से जो भी क्रिया की जाय वो सफल है, इसलिए फल आये बिना रहता ही नहीं। दान दें या गाली दें, दोनों का फल आयेगा।

★★★

७५१. ये व्यावहारिक क्रिया 'जो' करता है उसे जानना ये 'हमारा' धर्म ! वो क्रिया करना हमारे हाथ में नहीं। 'क्रिया' ये तो साधन है ! ये तो चिमटा, सँड़सी और कड़छी जैसी है। खिचड़ी खा लेने के बाद सँड़सी-पतीले की ज़रूरत नहीं।

७५२. कोई भी क्रिया करो वो बंधन है। मोक्षमार्ग चाहिए तो क्रिया में मत पड़ना।

७५३. संसार में भटकते रहना हो, सक्रिय रहना हो, तो ‘व्यवस्थित’ को बाजू में रख दें; और मोक्ष में जाना हो, अक्रिय होना हो, तो ‘व्यवस्थित’ को साथ में रखें।

७५४. ‘पुण्य’ ये क्रिया का फल है, ‘पाप’ भी क्रिया का फल है और ‘मोक्ष’ ये ‘अक्रियता’ का फल है।

७५५. पुण्य और पाप क्या हैं ? इस दुनिया को चलानेवाला कोई नहीं, फिर भी पुण्य और पाप के संयोग दुनिया को चलाते हैं।

७५६. 'अच्छे–बुरे' कर्म में पड़े नहीं, वो ‘‘ज्ञानी’’!

★★★

७५७. पुण्य ने ही संसार में भटकाया है। पुण्य से इन्द्रियों के, विषयों के सुख आ मिले! फिर उसमें कपट खड़ा होवे, भोगने की लालसा के हेतु कपट खड़े होवे और कपट से संसार खड़ा हो जाता है। कपट और बैर से ये संसार टिका है।

★★★

७५८. ‘पुण्य’ भी ‘फाइल’(कर्म का हिसाब) है और पाप भी ‘फाइल’ (कर्म का हिसाब) है। पुण्य प्रमाद कराये और पाप जागृत रखे।

७५९. धर्म के उस पार कब जा सकते हैं ? क्षमा का गुण उत्पन्न हुआ हो तो उस पार जाने देंगे, अन्यथा प्रवेश नहीं दें।

★★★

७६०. ''ज्ञानीपुरुष'' में सहज क्षमा होवे, उन्हें क्षमा रखनी नहीं पड़ती ! 'क्षमा रखने' के लिए तो 'मेहनत' करनी पड़े। 'मेहनत करना' ये 'ज्ञान' नहीं। 'क्षमा' ये तो चरमदशा का सहज गुण है ! ''ज्ञानीपुरुष'' में पिछले दो-तीन जन्मों से सहज क्षमा होवे। सहजक्षमा में शुद्ध प्रेम होता है।

★★★

७६१. क्षमा बोलकर नहीं देनी होती; सहजक्षमा ही होवे। आत्मा प्राप्त होने की निशानी ही सहजक्षमा है।

★★★

७६२. ''ज्ञानीपुरुष'' के पास जो कोई दण्ड के योग्य हैं उनके लिये भी माफ़ी होती है और वो सहजक्षमा होती है। दोषी को माफ़ी माँगनी नहीं पड़ती। जहाँ सहजक्षमा प्रदान की जाती है वहाँ ही लोग निर्मल हो जाते हैं।

★★★

७६३. सार और असार, इन दोनों भाग को समझ लेना इसीका नाम विवेक। जिसे 'सारासार का भान नहीं', वो मनुष्य ही न कहलाये।

★★★

७६४. सारासार का विचार आये वो विवेक। विवेक हो तो बैराग उत्पन्न होवे, और बैराग हो तो त्याग टिके, अन्यथा त्याग भी टिक नहीं पाये। बैराग के 'बेसमेन्ट' के बिना त्याग टिक नहीं पाता।

७६५. 'ये मेरा और ये पराया', इस स्व-पर के विवेक में रहना, ये ही चरम मोक्ष-धर्म।

७६६. सत्संग यानी सत् का योग होना, अच्छी वस्तु का -'पॉज़िटिव' वस्तु का योग होना। 'नेगेटिव' वस्तु का संयोग होना दु:खदायी है।

७६७. जो सत्संग हितकारी हो गया उसे क्षण मात्र के लिए भी भूलना नहीं चाहिए। ये तो मार्ग मिलने पर कहेंगे कि, 'दो दिन के बाद देखेंगे'। अरे! बड़ी मुश्किल से जब मार्ग मिला है तब भी जो बैठा रहे, वह तो 'मूर्ख' कहलाये न!

७६८. जिसे सत्संग चाहिए है, उसका सत्संग छूटता नहीं।

७६९. लोगों के साथ संग-प्रसंग करने जैसा नहीं, वो कुसंग है। सत्संग के साथ ही प्रसंग करने जैसा है।

★★★

७७०. 'हम' स्वयं तो हैं ही असंग; इसका अनुभव न होने दे, वो सब 'कुसंग' कहा जाये।

★★★

७७१. जो हमारे मन और चित्त को बहकाये, वो सभी कुसंग। मन और चित्त को जो प्रशांत करे, वो सत्संग।

७७२. भटकानेवाले मार्ग चित्त को आकर्षित करनेवाले होते हैं। मोक्षमार्ग चित्त को आकर्षित ना करे।

७७३. यदि पति के साथ चित्त जाये तो वो चित्त संसारी है, बाहरी व्यक्ति के साथ चित्त जाता हो तो वो लबाड़ चित्त है। जिसका ''ज्ञानीपुरुष'' में चित्त जाता हो तो वह व्यक्ति भगवानपद को प्राप्त हो रहा है!

७७४. चित्त को ही शुद्ध करना है। मन तो ज़रा भी बिगड़ा नहीं। मन का स्वभाव ही है-'उल्टा-सीधा' सब दिखाना! चित्त ही बिगड़ा है और भटकता ही रहता है और उसे 'टिकट' भी तो लेना नहीं, वो तो बस... खुदा-बख़्श!

७७५. भगवान भगवान में मस्त हैं और लोग, लोग में मस्त हैं। भगवान कहते हैं, 'मेरे पास' आओ तो आनंद होगा।

★★★

७७६. जहाँ 'पुद्गल का आनंद' वहाँ संसार और जहाँ 'आत्मा का आनंद' वहाँ मुक्ति!

★★★

७७७. अज्ञानी आनंद कहाँ से लाया? मूर्छा में से!

★★★

७७८. 'शांति' मन का स्वभाव है और 'आनंद' आत्मा का अपना स्वभाव है।

७७९. मन में तन्मयाकार हो जाने पर या तो विषाद होवे या आनंद भी होवे; और इन दोनों में तन्मयाकार नहीं होने पर परमानंद हो जाय।

७८०. सर्वत्र सब समान लगे, उसीका नाम है 'ज्ञान'। बांद्रा की खाड़ी (बदबू से भरा स्थान) के पास बिठाएँ या तो बगीचे में बिठाएँ तो भी समान ही लगे; क्योंकि अंदर का आनंद तो वैसा ही रहे। बाहर तो सब कुछ बदलता ही रहता है।

७८१. एक होता है ममता का आनंद और एक होता है अहंकार का आनंद, ये दोनों 'विनाशी' हैं, और 'मूल वस्तु' का आनंद 'अविनाशी' है।

७८२. 'कोई चीज़ की अपेक्षा न रहे' ये है निरपेक्ष आनंद!

७८३. जहाँ आत्मा-परमात्मा की बात हुई वहाँ आनंद होता है! वहाँ कोई सांसारिक बात नहीं होती, गुण या सद्गुण प्राप्त करने की बात नहीं होती।

★★★

७८४. रुपये कमाते समय जो आनंद होता है वैसा ही आनंद खर्च करते समय भी होना चाहिए! लेकिन तब तो कहता है 'अरे! इतने सारे खर्च हो गये!!!'

७८५. तुम अपने घर की चीज़ दूसरों को दो उसी में आनंद है, जबकि लोग तो दूसरों का ले लेना सीखते हैं।

७८६. दु:खियारे लोग ही दूसरों को दु:ख दें; सुखी तो दूसरों को सुख दें।

७८७. भगवान कहते हैं कि 'मन-वचन-काया और आत्मा (प्रतिष्ठित आत्मा) का उपयोग दूसरों के लिए करो; फिर भी तुम्हें कोई दु:ख आए तो मुझे कहना!'

७८८. अपने लिए कुछ भी नहीं करना, लोगों के लिए ही करना तो फिर तुम्हें खुद के लिए कुछ भी करना नहीं पड़ेगा।

७८९. धर्म की शुरुआत ही 'ऑब्लाइजिंग नेचर' से होती है।

७९०. पैसों से ही 'ऑब्लाइज' किया जा सके, ऐसा नहीं! ये तो देनेवाले की शक्ति पर आधारित है। सिर्फ़ मन में यह भाव रखना है कि 'किस प्रकार ऑब्लाइज करूँ'; ऐसा ही भाव बना रहे, बस यही देखना है!

★★★

७९१. प्रामाणिकता और परस्पर 'ऑब्लाइजिंग नेचर'! बस, इतना ही होना ज़रूरी है।

★★★

७९२. परस्पर उपकार करना! बस, यही मनुष्य जीवन का अवसर है।

७९३. खुद के लिए या अपने 'रिलेटिव्ज' के लिए कोई स्वार्थ न हो, और परायों के लिए ही सारी वृत्तियाँ बहती हों, तो सिद्धि उत्पन्न होवे।

७९४. इस जगत् में दो प्रकार के लोगों की चिंता मिटे : एक ''ज्ञानीपुरुष'', और दूसरा परोपकारी।

७९५. 'चिंता' ये संसार का सबसे बड़ा बीज है, क्योंकि 'चिंता' तो सबसे बड़ा अहंकार है। अहंकार गया तो समझो चिंता गई।

७९६. नामधारी को चिंता होती ही है, 'स्वरूप'धारी को चिंता नहीं होती।

७९७. चिंता बंद हो जाये तब से ही 'वीतराग भगवान' का मोक्षमार्ग कहा जाये।

७९८. चिंता होने लगे तो समझ लेना कि कार्य बिगड़नेवाला है और 'चिंता' न हो तो समझ लेना कि कार्य बिगड़ेगा नहीं। 'चिंता' ये कार्य में अवरोधक है।

★★★

७९९. घर में एक व्यक्ति चिंता में डूबा हुआ हो तो बाक़ी सब सदस्यों पर भी परस्पर असर होता है; और यदि चिंता मुक्त हो जाय तो ?!

★★★

८००. चिंता हो जाय ऐसी स्थिति में जो निश्चिंत रह सके उसीका नाम 'विज्ञान'; लेकिन यहाँ तो लोग 'इज़ी-चेअर' पर बैठकर भी 'अनइज़ी' दिखते हैं!

★★★

८०१. पुद्गल के पर्याय को 'स्वयं के' मान लिए, इसलिए चिंता हुई।

८०२. 'चिंता' ये समझ का नाश करनेवाली वस्तु है।

८०३. बीवी-बच्चों को यदि पूछें कि, 'तुम्हारी चिंता मैं करूँ ?' तो वो कहेंगे कि 'नहीं, हमारी चिंता मत करना'। फिर भी आदमी बिना चिंता किये रहे ही नहीं न!

८०४. एक बार भी कोई संताप-अजंप (बैचेनी) करे तो भगवान कहते हैं कि, 'इसे तो मेरी परवाह ही नहीं, जो चिंता अपने सर पर ले लेता है, तो करने दो उसे चिंता!'

८०५. जो चिंता करता है वह भगवान को मानता नहीं और भगवान को जो मानता है, वह चिंता नहीं करता।

★★★

८०६. 'भगवान', ये यदि नाम होता तो हमें उसे 'भगवानदास' कहना पड़ता। 'भगवान' ये तो विशेषण है। 'भगवत्' पर से 'भगवान' शब्द बना है; भगवत्‌गुणों को जो धारण करे वो भगवान!

★★★

८०७. 'भगवान' कुछ न करे! 'पॅकिंग' क्या ना करे ?!

★★★

८०८. देह कैसे भगवान हो सके ?! देह तो मंदिर है और भगवान तो भगवान ही हैं!

८०९. ''ज्ञानीपुरुष'' ये निर्विशेष पद है। उन्हें 'भगवान' ये विशेषण देना, यह तो मानों उनको हीन पद दिया कहा जाये!

८१०. लोग कहते हैं कि 'भगवान सारे ब्रह्मांड में व्याप्त हैं!' यदि हरेक चीज़ में भगवान हैं, तो फिर भगवान को खोजने की ज़रूरत ही क्यों रहे? जहाँ 'क्रिएचर' हैं वहाँ भगवान हैं और जहाँ 'क्रिएचर' नहीं, वहाँ भगवान नहीं है।

८११. व्यक्ति खिलते, खिलते, खिलते संपूर्ण व्यक्त हो जाये, वो है परमात्मदशा।

८१२. 'रॉंग बिलीफ' से संसार है; 'रॉंग बिलीफ' बदल जाए तो मनुष्य भगवान हो जाय।

८१३. 'मैं नलिन हूँ' ऐसी 'बिलीफ' हुई कि तुरंत सारा संसार खड़ा हो जाये।

★★★

८१४. जिसे मन से किसी भी प्रकार का क्लेश नहीं होता, उसका संसार अस्त हो गया!

८१५. कलुषित भाव का अभाव हुआ, ये ही मोक्ष!

★★★

८१६. कोई ऐसी भूल रह जाती है जिससे क्लेश उत्पन्न होता है। क्लेश दूर करने के लिए 'ज्ञान' की ही आवश्यकता है ऐसा नहीं, वो तो बुद्धि से भी निकल सके।

★★★

८१७. जिसने अपनी भूल तोड़ के रख दी, उसका कल्याण हो गया !

★★★

८१८. भूल को तोड़ दे, वो भगवान !

८१९. भूल खोजनेवाले कई मिलेंगे, लेकिन भूल को तोड़नेवाले नहीं मिलेंगे।

८२०. जगत् को न दिखे ऐसी भूलें जो दिखाये, मन के साथ तन्मयाकार हो गये–ये जो दिखाये, वो ही आत्मा है।

८२१. 'मुझमें भूल ही नहीं', ऐसा तो कभी बोलना ही नहीं चाहिए। केवलज्ञान होने के बाद ही भूलें नहीं रहती।

★★★

८२२. सामनेवाले के दोष दिखे तो कर्म बँधे, और खुद के दोष दिखे तो कर्म छूटे।

★★★

८२३. जिसका दोष नहीं उसे दोषित ठहराये, ये है रौद्रध्यान।

★★★

८२४. खुद के दोष दिखें तो दोष निकल जाये। मोक्षमार्ग तो खुद के दोष देखने के लिए ही है, और पराये दोष देखने से संसारमार्ग है।

८२५. ये 'दादाजी' तो दो मार्ग देते हैं : संसार में जिसे अभी सुख लगता है उसे 'धर्मध्यान' का मार्ग देते हैं और संसार में जिसे तनिक भी सुख नहीं लगता उसे 'शुक्लध्यान' का मार्ग देते हैं।

८२६. खुद को दुःख के परिणाम उत्पन्न होवे, ये आर्तध्यान, किसी और को तुम्हारे द्वारा दुःख के परिणाम उत्पन्न होवे, ये है रौद्रध्यान। किसीको सुख दे, ये धर्मध्यान। थोड़े से वैभव के बावजूद भी संतोष रहे, ये धर्मध्यान।

★★★

८२७. आर्तध्यान और रौद्रध्यान से संसार बढ़े और धर्मध्यान से संसार कटे, तथा शुक्लध्यान से मोक्ष प्राप्त होवे।

★★★

८२८. जो आर्तध्यान और रौद्रध्यान बंद करवाये ये धर्म, और जो आर्तध्यान व रौद्रध्यान चालू रखवाये वो है अधर्म।

★★★

८२९. जितने आर्तध्यान-रौद्रध्यान कम, उतनी संसार की अड़चनें कम होवे।

★★★

८३०. खुद अपने दुःखों का रोना रोए, ये है आर्तध्यान और परायों के लिए दुःख पैदा करे ये है रौद्रध्यान, और इन दोनों को जो रोके उसका नाम धर्मध्यान! आर्तध्यान-रौद्रध्यान रोकने के जो साधन हैं वे भी धर्मध्यान हैं!

८३१. जब तक ''ज्ञानीपुरुष'' नहीं मिले तब तक आर्तध्यान और रौद्रध्यान होता रहता है, उन ध्यानों से बचने के लिए जो उपाय किए जायें उसे इस काल में धर्मध्यान कहा है। अन्यथा इस काल में तो 'धर्मध्यान' भी नहीं है ! अत: जिससे आर्तध्यान और रौद्रध्यान रुके उसे 'धर्मध्यान' कहा गया है।

८३२. संयोगो में सुख-दु:ख मानना, ये 'आर्तध्यान' कहलाये। पसंदीदा वस्तु के वियोग से दु:ख होवे और पसंदीदा वस्तु के संयोग से सुख होवे-ये सब 'आर्तध्यान' कहलाये !!

८३३. रौद्रध्यान और आर्तध्यान बंद होवे, ये ही सबसे बड़ा धर्म। इससे बड़ा कोई धर्म ही नहीं !

८३४. आर्तध्यान-रौद्रध्यान ना हो, उसका नाम संयम !

८३५. आर्तध्यान और रौद्रध्यान न करवाये उसका नाम आत्मा !

८३६. आज खाने को नहीं है इसकी चिंता करना ये 'आर्तध्यान' कहलाये, और अगले साल के खाने की चिंता करे वो 'रौद्रध्यान' कहलाये।

★★★

८३७. दूसरों के लिए जो कुछ भी किया जाये, वो धर्मध्यान है।

८३८. संयोगों को रोक के रखना ये आर्तध्यान और संयोगों को धक्का मारना वो भी आर्तध्यान। दु:ख को धक्का मारे और सुख को रोक के रखे, ये सभी आर्तध्यान हैं।

८३९. निमित्त के प्रति किंचित् मात्र घृणा नहीं, उसका नाम धर्मध्यान!

८४०. धर्म तो ऐसी गुप्त वस्तु है कि किसी को भी पता न चले। मंदिर में जाने से या पुस्तक पढ़ने से धर्मध्यान नहीं होता। धर्मध्यान तो चित्त कहाँ जाता है उस पर निर्भर है!

८४१. धर्मध्यान के पालन का फल है 'सम्यक् दर्शन'।

८४२. 'स्वयं को पहचानना' आना चाहिए, यदि वो ना आये तो धर्मध्यान आना चाहिए। यदि धर्मध्यान भी ना आये तो समझो फिर मनुष्य जन्म भी ना मिले। यदि स्वयं की पहचान नहीं हुई तो मोक्ष ना मिले।

★★★

८४३. 'धर्मध्यान' ये परोक्ष मोक्ष का कारण है और 'शुक्लध्यान' ये प्रत्यक्ष मोक्ष की लब्धि है।

★★★

८४४. दुर्ध्यान ना होवे इसके लिए तुम जो उपचार करोगे, वो ही धर्मध्यान है!

★★★

८४५. विषयी सुखों में 'पसंद-नापसंद' भाव उत्पन्न होवे, उसमें सहिष्णुता रखकर किसीके प्रति आरोप-भाव न करना, ये धर्मध्यान है।

८४६. 'दु:ख' ये अशाता वेदनीय है। अंदर 'दु:ख के परिणाम होना' ये आर्तध्यान है।

८४७. सच्चा 'ज्ञान' जहाँ होवे, वहाँ आर्तध्यान और रौद्रध्यान बंद हो जाये; अत: फिर संसार के कर्म बंद हो जायें।

★★★

८४८. शुक्लध्यान के अलावा जो जो ध्यान हैं उनमें तादात्म्य अध्यास होवे तो संसार खड़ा हो जाय।

★★★

८४९. इस जगत् को 'जैसा है वैसा', यथार्थ देख सके, 'रिलेटिव' और 'रियल' यथार्थ देख सके, ये शुक्लध्यान !

★★★

८५०. मन व आत्मा तन्मयाकार होवे तो ही आर्तध्यान कहा जाए, और खुद को भी पता न चले कि आर्तध्यान हुआ है ! यदि, ये आर्तध्यान हुआ–ये पता चले, तो वो आर्तध्यान न कहलाए, वो तो मन है।

★★★

८५१. शुक्लध्यानसहितवाली निर्जरा का फल मोक्ष, और धर्मध्यानसहितवाली निर्जरा का फल बहुत ज़बरदस्त पुण्य होवे ! पुण्यानुबंधी पुण्य बँधे !!

★★★

८५२. देह में धर्मध्यान हो तो ही आत्मा में शुक्लध्यान होवे।

८५३. शुद्ध उपयोग यानी सामनेवाले की आत्मा और देह को अलग देख सके। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा निरंतर ध्यान रहे, वो शुक्लध्यान!

८५४. निरंतर स्वयं का 'शुद्ध' स्वरूप देखे और अन्य का भी 'शुद्ध' स्वरूप देखे वो है शुद्ध उपयोग!

★★★

८५५. शुक्लध्यान में सारा जगत् निर्दोष दिखने की शुरुआत होती है। धर्मध्यान में सामनेवाला दोषी दिखे फिर भी उसे निर्दोष ठहराये, उसीका नाम धर्मध्यान-'सामनेवाले का क्या दोष? वह तो निमित्त है। ये मेरे ही कर्म के उदय से वह मुझे आ मिला है!'

★★★

८५६. 'शुक्लध्यान' प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण है। 'धर्मध्यान' परोक्ष मोक्ष का कारण है। 'आर्तध्यान' पशुगति का कारण है। 'रौद्रध्यान' नर्कगति का कारण है।

★★★

८५७. शुक्लध्यान यानी तत्त्वस्वरूप का ध्यान। 'ध्यान' ये स्वाभाविक वस्तु है, जबकि 'शुद्ध उपयोग' में तो जागृतिपूर्वक पुरुषार्थ करना चाहिए।

★★★

८५८. 'ये कौन करता है? मैं कौन हूँ? यह सब क्या है? कर्ता कौन? इसका निमित्त कौन?' यह सब 'एट-ए-टाइम', यथार्थ रूप में हाजिर रहे, ये है शुद्ध उपयोग।

★★★

८५९. 'शुद्ध उपयोगी' को इस जगत् में कुछ भी स्पर्श नहीं करता।

८६०. अपने 'स्वयं' के उपयोग में कब रह सकें? सारी इच्छाएँ मंद हो जाएँ तब।

८६१. सारे जगत् के तमाम जीवों का ज्ञान एक ही आत्मा में है, लेकिन जो ज्ञान अहंकार को एवं सब को ज्ञेय-स्वरूप में देख सके उस ज्ञान को ही 'ज्ञान' कहा है; परंतु वो तो अंशज्ञान है, लेकिन तबसे वहाँ 'उपयोग' कहा जाये। जहाँ 'ज्ञान' है वहाँ उपयोग आंशिक या सर्वांश होता है।

८६२. संपूर्ण शुद्ध उपयोग, ये केवलज्ञान!

८६३. 'मैं इन्दुभाई हूँ'- ये शुभाशुभ उपयोग। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ये ' शुद्ध उपयोग'। शुभाशुभ उपयोग से संसार में 'प्रतिष्ठा' खड़ी हुई!

★★★

८६४. जिसे 'वीतराग' के मार्ग पर चलना है उसे अशुभ के बजाय शुभ में उपयोग रखना चाहिए, और जिसे मोक्ष जाना हो उसे शुद्ध उपयोग रखना चाहिए। जिसे मोक्ष में जाना हो उसे शुभाशुभ के झमेले में नहीं पड़ना है। दोनों को 'निपटारे की बाबत' समझना है।

★★★

८६५. शुद्ध उपयोग यानी कि परमात्म-स्वरूप!

★★★

८६६. 'उपयोग' ये जागृति है।

८६७. जितना 'उपयोग' रहा उतनी सत्ता उत्पन्न हो गई। पाँच घंटे 'उपयोग' रहा तो पाँच घंटे सत्ता उत्पन्न हुई ! संपूर्ण स्वसत्ता उत्पन्न हो गई तो मानो भगवान ही हो गया !!

८६८. 'संसार में नहीं रहते', ऐसा किसे कहेंगे ? जिसे पर-उपयोग ही न हो उसे। ''ज्ञानीपुरुष'' एक क्षण भी संसार में नहीं रहते। जो संसार में नहीं रहते वहीं से मोक्ष मिले ! उनकी कृपा से तो क्या ना मिले ?!

८६९. ''ज्ञानी'' कभी भी रुपये गिनने में अपना समय नहीं बिगाड़ते ! उसमें 'उपयोग' बर्बाद होता है। जहाँ 'इन्टरेस्ट' वहाँ उपयोग !!

★★★

८७०. लोग दो हेतु से जीते हैं : आत्मार्थ – हेतु से जीनेवाला तो शायद ही कोई हो ! बाकी सब लोग तो लक्ष्मी के हेतु से ही जीते हैं। सारा दिन लक्ष्मी, लक्ष्मी और लक्ष्मी की धून !

★★★

८७१. समाधि कब आएगी ? खुद की प्यारी चीज़ को (परमार्थ हेतु) बहने दी जाय तब !

★★★

८७२. लक्ष्मी 'लिमिटेड' है और लोगों की माँग 'अनलिमिटेड' है।

★★★

८७३. खाने की ज़रूरत नहीं है ? शौच जाने की ज़रूरत नहीं है ? ठीक उसी प्रकार लक्ष्मी की भी ज़रूरत है। जैसे याद किए बिना शौच कर्म होता है उसी प्रकार लक्ष्मी भी बिना याद किये आती है।

८७४. कमाई हो तब खेद करना है कि इसको कहाँ खर्च करेंगे ? और जब खर्च खड़ा हो तब मजबूत हो जाना कि चलो, कर्ज़ चुकाने का संयोग मिला ! 'कमाई' ये दायित्व (Liability) है और 'खर्च' ये उसे फेड़ने (लौटाने) का साधन है।

★★★

८७५. 'पैसा चला जाएगा', ऐसी जागृति रखनी ही नहीं है। जिस वक़्त जितना घिस जाय सो ठीक। इसीलिए तो 'पैसा का उपयोग करने' के लिए कहा गया है ताकि लोभ छूटे और बार-बार दिया जा सके!

★★★

८७६. पैसा ग़लत रास्ते पर जाये तो 'कंट्रोल' करें और पैसा यदि सन्मार्ग पर जाये तो 'डि-कंट्रोल' कर देना है।

★★★

८७७. पैसों के 'अंतराय' कब तक रहें ? जब तक कमाने की इच्छा रहती है तब तक। पैसों की ओर दुर्लक्ष होने पर वे थोकबंद आयें।

★★★

८७८. 'इच्छा' ये ही परवशता !

★★★

८७९. जिसे कोई भी इच्छा हो, उसे भगवान ही नहीं कहा जाय।

★★★

८८०. इच्छाएँ तो पुद्‌गल करता है, फिर उसे दबाएँ कैसे ? यदि 'तुम स्वयं' इच्छा करते होते तो उसे बंद कर दो ना ? परंतु ऐसा नहीं हो पाता, अतः 'इच्छा' पुद्‌गल वस्तु है।

८८१. इच्छा होती है, क्योंकि प्रत्याख्यान नहीं हुए। स्मृति में आता है, क्योंकि प्रतिक्रमण नहीं किये।

★★★

८८२. जहाँ सूक्ष्म भी इच्छा है, वहाँ 'वस्तु' प्राप्त नहीं होती।

★★★

८८३. 'ज्ञान' के बिना इच्छा जाती नहीं।

★★★

८८४. इच्छा से ही अंतराय हैं। ज्यों-ज्यों इच्छा घटती जाय, त्यों-त्यों अंतराय टूटते जायें। वहाँ फिर सभी वस्तुएँ प्राप्त होवे।

★★★

८८५. ''ज्ञानीपुरुष'' को एक भी अंतराय क्यों नहीं है? क्योंकि 'उनकी' संपूर्ण निरिच्छक दशा है।

★★★

८८६. ''ज्ञानीपुरुष'' को एक ही इच्छा होवे और वह भी अस्त होती हुई-'जगत्‌कल्याण' की!

★★★

८८७. मनुष्य तो परमात्मा ही है, अनंत ऐश्वर्य प्रकट हो सकता है। ये तो इच्छा करने से मनुष्य हो गया! वरना स्वयं जो चाहे वो प्राप्त कर सकता है; लेकिन अंतराय के कारण प्राप्त नहीं कर पाता।

★★★

८८८. आत्मा और मोक्ष के बीच कितनी दूरी है? मात्र अंतराय है उतनी ही।

★★★

८८९. बिल्कुल 'नेगेटिव' बोले, उससे अंतराय पड़े, और 'पॉज़िटिव' का अंतराय ना पड़े।

८९०. 'हम' स्वयं हैं चेतन और अंतराय है निश्चेतन; अंततः चेतन की, ही जय होती है!

८९१. जो आँख से दिखाई न दे, कान से सुनाई न दे-वो 'चेतन'। कान से सुनाई दे, 'टेलीविजन' दिखाई दे, 'रिकॉर्ड' सुनाई दे-ये 'चेतन' नहीं है। 'चेतन' तो दिव्यचक्षु से दिखाई दे।

८९२. आत्मा यानी चेतन, परमात्मा! उसके एक भी गुण की नक़ल नहीं हो सकती। नक़ल होती है वो तो पुद्‌गल के गुण हैं। 'वाणी' ये 'टेपरिकॉर्ड' है। 'विचार' ये 'डिस्चार्ज' हैं। जो 'डिस्चार्ज' होता है, वो 'पुद्‌गल' है।

८९३. सारे जगत् को 'मैं करता हूँ' ये भ्रांतिजन्य भान है। हक़ीक़त में तो सबका 'डिस्चार्ज' ही हो रहा है, पर उसका उसे भान नहीं। खुद को 'खुद का' ही भान नहीं।

८९४. 'मैं त्रिभोवनदास हूँ', ये ही भ्रांति है और उसमें से 'चार्ज' होता है। 'चार्ज' होना कब बंद होवे? जब 'मैं कौन हूँ' इसका 'यथार्थ' भान होवे तब।

★★★

८९५. पाँच इंद्रियों से जो जो अनुभव में आये वो सब 'डिस्चार्ज' है। लोग तो जब पुण्य के आधार से उनकी मर्ज़ी के अनुसार कुछ होता है तब कहते हैं कि 'मैंने किया', और जब घाटा होता है तब कहते हैं कि 'भगवान ने किया'! या तो फिर कहे कि 'मेरे ग्रह खराब हैं!'

८९६. 'चार्ज' यानी सारे संयोगों का इकठ्ठा होना और 'डिस्चार्ज' यानी सारे संयोगों का अस्त होना।

८९७. 'डिस्चार्ज' किसे कहेंगे ? कि जो बगैर अपनी रुचि के भी अनिवार्य रूप से करना पड़े वो !

८९८. मन-चित्त 'डिस्चार्ज' होते हैं-उसे जगत्‌ने 'चार्ज' माना, इसीलिए मन को स्थिर करने का यत्न करे, चित्त को स्थिर करने का यत्न करे-परंतु ये संभव नहीं।

★★★

८९९. कर्तापद का भान हो तब तक 'चार्ज' होता ही रहे। 'अक्रममार्ग' में ''ज्ञानीपुरुष'' तुम्हारे कर्तापद को निःशेष कर देते हैं। 'मैं करता हूँ' ये भान मिट जाता है और 'कौन करता है' इसकी समझ ज्ञानी दे देते हैं। इससे 'चार्ज' होना बंद हो जाता है। फिर बाक़ी क्या रहा ? मात्र 'डिस्चार्ज' स्वरूप !

★★★

९००. 'चार्ज' होना बंद हो जाय तब से नया संसार बँधना रुक जाये। ''ज्ञानी'' बग़ैर कर्तापद छूटे नहीं।

★★★

९०१. जहाँ 'चार्ज' होना बंद होवे, वहाँ मोक्ष प्राप्ति के लक्षण हैं।

★★★

९०२. 'डिस्चार्ज' जो होता है उसका महत्त्व नहीं, किन्तु अंतर में कौन सा ध्यान बरतता है, इसका महत्त्व है।

★★★

९०३. 'चार्ज' हमेशा 'डिस्चार्ज' होने की फ़िराक़ में रहता है।

९०४. जहाँ खुद 'प्लानिंग' नहीं करता, वो सब केवल 'डिस्चार्ज' है। 'प्लानिंग' करता है, उसमें 'चार्ज' होता है। 'डिस्चार्ज' सहजस्वभावी है, उसमें दु:ख नहीं होवे।

९०५. 'स्वयं' इस जगत् का कर्ता नहीं है। जहाँ स्वयं को कर्ता मानता हैं, ये 'चार्जिंग' है। 'ये सामायिक मैंने किया, ये क्रियाएँ मैंने की', उसका गर्वरस 'स्वयं' चखे, उसीसे 'चार्ज' होता है। गर्वरस बहुत मीठा लगे।

★★★

९०६. 'क्रोध-मान-माया-लोभ' ये 'डिस्चार्जस्वरूप' हैं, परंतु 'स्वरूप का ज्ञान' न हो तो अंदर फिर वो नये 'चार्ज' होते हैं।

★★★

९०७. 'डिस्चार्ज' यानी क्या ? जो 'टाइम' के बिना हटे नहीं। तुम्हारी जल्दबाजी से 'डिस्चार्ज' नहीं होता।

★★★

९०८. संसार चलाने के लिए अहंकार की ज़रूरत नहीं, बल्कि आनेवाला भव बाँधने हेतु अहंकार की ज़रूरत है। आनेवाला भव नहीं बाँधना हो, तो बग़ैर अहंकार के संसार चल सकता है। संसार तो पूरा 'डिस्चार्ज-स्वरूप' है; अत: 'डिस्चार्ज' तो अपनेआप ही होता रहेगा।

★★★

९०९. जो 'डिस्चार्ज' स्वरूप है उसमें लोग अहंकार करते हैं कि 'मेरा कंट्रोल रहता नहीं'। 'मेरा कंट्रोल रहता है', ये भी अहंकार है। ये तो परायी व्यथा अपने सर आयी है, उसमें खुद व्यथित होकर घूमता रहता है।

★★★

९१०. ये जितना बोलते हो उसे 'अहंकार' कहा जाता है। 'वाणी' ये खुला अहंकार है। 'मैंने किया' और 'मैं करूँगा', ऐसा बोले वो तो 'डबल अहंकार' है।

९११. 'ये मुझे नहीं जमेगा' ऐसा बोले ये ही 'मॅडनेस' है, निरा 'इगोइज़म' है। 'नहीं जमेगा', ऐसा बोलना ये गुनाह है।

९१२. 'मैं नहीं माननेवाला', ये बोलना तो बड़े से बड़ा अहंकार है।

९१३. 'मेरी बात सही है', ये एक प्रकार का अहंकार है! उसे भी तो निकालना पड़ेगा न?

९१४. सारी शक्तियों को 'इगोइज़म' खा जाता है, उपर से मार खिलाता है सो अलग।

९१५. जहाँ 'एक्टिविटी' है वहाँ अहंकार है! अहंकार से 'एक्टिविटी' नहीं छूट सकती।

★★★

९१६. 'जिनमुद्रा' क्या कहती है? 'वीतरागों' की पद्मासनयुक्तमुद्रा (जिसमें एक पर एक पैर और हाथ रखे हुए होते हैं) उपदेश देती है कि, ''हे मनुष्यों! यदि समझ है तो एक बात समझ लो। तुम्हारा खाना-पीना, ज़रूरत की हरेक चीज़ तुम लेकर ही आये हो; अतः 'मैं कर्ता हूँ', ये भान छोड़ देना और मोक्ष के लिए प्रयत्न करना!''

९१७. मनुष्य का रूप किस पर आधारित है ? उसे कितना अहंकार है उस पर। ''ज्ञानीपुरुष'' निर्‌हंकारी होते हैं; अतः उनके अद्‌भुत रूप का तो क्या कहना ?!

★★★

९१८. ''ज्ञानीपुरुष'' पूरे ब्रह्मांड के मालिक कहलायें, फिर भी वहाँ तनिक भी 'इगोइज़म' नहीं होता। जहाँ सत्ता नहीं, वहाँ 'इगोइज़म' है और जहाँ सत्ता है वहाँ 'इगोइज़म' नहीं। ''ज्ञानीपुरुष'' का यही तो अजूबा है। ''ज्ञानीपुरुष'' यानी कि प्रकट दीप!

★★★

९१९. बहते अहंकार से कोई हर्ज नहीं, लेकिन अहंकार को ज़रा सा भी पकड़ लेना, इसीका नाम टेढ़ापन। 'बहता अहंकार' ये नाटकीय अहंकार है-उससे कोई हर्ज नहीं।

★★★

९२०. मोक्ष में कौन नहीं जाने देता ? खुद का टेढ़ापन-वक्रताएँ।

★★★

९२१. दादाश्री कहते हैं कि, हमें ज्ञान हुआ उसके पहले की दशा में हममें भी वक्रताएँ थीं। उसकी हमने खोज की तो पता चला कि ये वक्रताएँ ही ज्ञान-प्रकाश नहीं होने देती। उसके बाद वो सभी वक्रताएँ देखीं और उनका विनाश हुआ, तत्पश्चात् 'ज्ञान' प्रकट हुआ। 'स्वयं' ही अपना निरीक्षण करना है कि कहाँ कहाँ वक्रताएँ भरी पड़ी हैं। 'स्वयं' ये 'ऑब्ज़र्वेटरी' ही है।

★★★

९२२. वक्रता रूपी समंदर को पार करना है। हम वक्रता के इस पार खड़े हैं और जाना है उस पार। यदि कोई हमारी वक्रता को दूर करने में निमित्त बने, तो इससे असहज होने के बजाय, उस निमित्त को परम उपकारी मानते हुए समतापूर्वक वेदन करना है।

९२३. इस जगत् में वक्रता के प्रति वक्रता रखोगे तो हल नहीं मिलेगा। वक्रता के प्रति सरलता बरतने से ही हल निकल पायेगा।

९२४. मोक्ष जाना हो तो सरल होना पड़ेगा। वहाँ टेढ़े होने से नहीं चलता, ग्रंथियाँ हटाकर अबुध होना पड़ेगा!

९२५. वक्रता तो बाहर व्यवहार में भी नहीं करनी चाहिए। 'कलेक्टर' के सामने वक्रता करें तो वह क्या करेंगे ? जेल में बंद कर दें। तो फिर भगवान के सामने वक्रता करें तो क्या हो ? भगवान जेल में तो नहीं डालेंगे, पर उनकी कृपा टूट जायेगी।

★★★

९२६. संसार बाधा नहीं बनता, बल्कि तुम्हारी वक्रता और अज्ञानता ही बाधा बनती हैं।

★★★

९२७. अज्ञानदशा का अहंकार 'सजीव' कहलाता है। 'स्वरूपज्ञान' होने के पश्चात् वो निर्जीव हो जाता है। उस 'निर्जीव' अहंकार की यदि तरफ़दारी की कि 'मैं तो ऐसा नहीं हूँ', तो वो फिर से सजीव हो जाये! निर्जीव अहंकार का निबटारा करना है, उसका बचाव नहीं करना है।

★★★

९२८. अहंकार हमेशा ख़ुदका खराब ना दिखे, इस तरह काम करे।

★★★

९२९. 'अहंकार' ये ही अधूरापन है।

९३०. जब तक अहंकार ज़िंदा है, तब तक ममता अंदर भरी रहती है।

९३१. भगवान तो एक ही वस्तु कहते हैं कि तुम्हें यदि इस संसार से ममता बाँधनी हो तो उसके साथ बाँधो, या तो फिर मेरे साथ ममता बाँधो। मेरे साथ बाँधोगे तो चिरंतन सुख मिलेगा और संसार से ममता बाँधोगे तो तुम्हें तृप्ति नहीं होगी!

९३२. 'जिसे' 'अहंकार व ममता' है, 'जिसे' 'मैं करता हूँ' ऐसा भान है, वो सब 'जीव' कहलायें और 'जिसे' 'मैं कर्ता नहीं, बल्कि ज्ञाता-दृष्टा, परमानंद-स्वरूप हूँ' ऐसा भान हो गया, तो वह 'आत्मा' है।

९३३. ये तो कितने सारे प्रकार की ममता ?! बाल-बाल से ममता! यदि एक बाल भी खींचा जाए तो अंदर अकुलाहट हो जाये कि मेरा बाल खींच लिया!!

★★★

९३४. 'ममता' ये ही परिग्रह है, 'वस्तु' परिग्रह नहीं। "ज्ञानी" को ममता नहीं होती, वस्तु भले ही हो।

★★★

९३५. लोगों में निरी ममता ही भरी पड़ी है! केवल कूड़ा-करकट निकालने में ही ममता नहीं रखते!!

★★★

९३६. वस्तु की मूर्छा चली गई यानी अध्यात्म-नुक़सान चला गया!

९३७. बग़ैर ममता का अहंकार होवे तो मोक्ष में जाये ! ममतायुक्त अहंकार के कारण ही तो ये सारा फँसाव हुआ है।

९३८. आत्मा की उपस्थिति में ज़बरदस्त ममता बँध जाये और आत्मा की उपस्थिति में ही ममता वैसे ही ज़बरदस्त रूप से छूट जाय।

९३९. ''ज्ञानी'' के चरणों में पड़े रहने के अलावा और कोई चारा नहीं ! जगत् का दर्शन अनंत मोहनीयवाला है, और उसमें से कोई छूट नहीं सकता।

९४०. मार खाये और भूल जाय, मार खाये और भूल जाय–उसका नाम मोह !

९४१. 'रुचि–अरुचि' ये 'डिस्चार्ज' मोह है; 'राग–द्वेष' ये 'चार्ज' मोह है !

९४२. राग–द्वेष न होवे, ये मोक्षमार्ग !

★★★

९४३. जो कुछ करते हो वो भले ही करते रहो किन्तु राग–द्वेष नहीं करना। 'हम' 'स्वयं' के पद में स्थित रहें, तो राग–द्वेष नहीं होवे।

★★★

९४४. शुभ के प्रति राग नहीं और अशुभ के प्रति द्वेष नहीं–इसका नाम समता ! जिसमें द्वंद्व नहीं, वो है समता ! हालाँकि, व्यवहार में लोग सहनशीलता को 'समता' कहते हैं।

९४५. समभाव यानी द्वेषयुक्त परिवेश में द्वेष ना होवे और रागयुक्त परिवेश में राग न हो।

९४६. कोई फूल चढ़ाये तो राग न होवे और 'पथ्थर' मारे तो द्वेष न होवे-यही है समभाव!

★★★

९४७. इस जगत् में जो भी काम करते हो, उस काम से नहीं बल्कि उसके पीछे यदि राग-द्वेष रहे हों, तो ही नये भव की जिम्मेदारी बनती है। राग-द्वेष न होवें तो जिम्मेदारी नहीं।

★★★

९४८. संसार की बुनियाद राग-द्वेष की है और 'ज्ञान' की बुनियाद वीतरागता की है।

९४९. 'वीतराग विज्ञान' के अलावा अन्य किसी साधन से मोक्ष नहीं। अन्य साधनों से बंधन होता है, उनसे तो केवल समय व्यतीत हो! ''ज्ञानीपुरुष'' से सत्साधन प्राप्त होवे।

★★★

९५०. साधना के दो प्रकार : एक, साध्यभाव के लिए ही करने की साधना और दूसरी, केवल साधना के लिए ही साधना करना वो। साध्यभाव से की जानेवाली साधना ये चरम साधना कहलाती है।

★★★

९५१. शास्त्रों में साधनज्ञान है, साध्यज्ञान नहीं। साध्यज्ञान ''ज्ञानी'' के पास होवे। साध्यज्ञान यानी कि 'आत्मा'- वो ''ज्ञानी'' की कृपा से प्राप्त हो सकती है।

९५२. शास्त्र तो 'हेल्पिंग प्रॉब्लेम' हैं। शास्त्र तो 'डायरेक्शन' (मार्गदर्शन) देते हैं। 'शास्त्र' ये थर्मोमीटर हैं। 'थर्मोमीटर' को क्या कभी दवाई में पीसकर पिलाया जा सकता है ?!

९५३. 'शास्त्र' ये साधन हैं, और साधनों का उपयोग कैसे करना ये भी एक 'सायन्स' है। ये 'सायन्स' न जानने से जीव अनंत अवतार भटकते ही रहता है!

९५४. इस जगत् के ज्ञान को ज्ञान नहीं कहते। वो तो लौकिक ज्ञान है। शास्त्र-ज्ञान तो 'साधन-ज्ञान' कहलाये। साध्यज्ञान ये ही 'ज्ञान' है। शास्त्र भी साधन हैं और शास्त्र में निहित ज्ञान भी साधन है; जबकि 'स्वरूप का ज्ञान' ये साध्य वस्तु है।

९५५. ''ज्ञानी'' तो साधनस्वरूप हैं। साध्य तो 'विज्ञान-स्वरूप आत्मा' है।

९५६. शास्त्र ये तो साध्य प्राप्त करने के अनेक साधनों में से एक साधन है! उसे कैसे हटा सकते हैं ?!

९५७. सच्चा साधन तो वो कि जिससे अहंकार और ममता चले जाएँ।

★★★

९५८. जो साधन साध्य को प्राप्त न कराए, उसे अध्यात्म कह ही नहीं सकते।

★★★

९५९. जगत् में साधन प्राप्त करने के अनेक साधन हैं; परंतु ''ज्ञानीपुरुष'' तो साध्य प्राप्त करने का साधन है।

९६०. समाधि कहाँ खोजते हो ? 'तुम' अपनी आत्मा के 'मूल स्वभाव' में आ जाओ ना ! मोक्ष और समाधि तो आत्मा का स्वभाव ही है।

९६१. हरेक अवस्था में अनासक्त, ये ही पूर्ण समाधि !

९६२. पर-भाव बंद होवे तब समाधि हो जाय।

९६३. जब तुम्हें हमेशा समाधि बरतेगी, तब तुम्हारा 'पूर्ण काम' हुआ कहा जाएगा।

९६४. यदि सर्वस्व उपाधि में भी समाधि लगती हो, तभी जानो कि मुझे ''ज्ञानीपुरुष'' मिले थे !

९६५. जितने सरल उतनी समाधि रहे।

★★★

९६६. बाहर संपूर्ण अशांति होने पर भी अंदर शांति रहे, वो सच्ची शांति। उपाधि में भी समाधि रहे, वो है 'टेस्टेड' समाधि !

★★★

९६७. समाधिसुख कब बरते ? जिसे कुछ भी नहीं चाहिए, लोभ की सारी ग्रंथियाँ छूट जायें, तत्पश्चात् ही समाधि सुख बरते। खुलकर ख़ैरात होने दो, जो ख़ैरात हुआ उतना ही आपका !

९६८. लोभ से ये जगत् टिका हुआ है। तुम्हें जलेबी पसंद हो, और अगर तुम्हें तीन और बगलवाले को चार परोसें, तो तुम्हें मनमें तकलीफ़ हो जावे ! ये लोभ ही है। तीन साडियाँ है फिर भी चौथी लेने जाये, वो लोभ !

★★★

९६९. 'स्वरूप का ज्ञान' होने के पश्चात् ही लोभ जाये।

★★★

९७०. जो चीज़ प्रिय हो गई हो उसकी ही धुन में रहना, इसका नाम लोभ। वो मिल जाये तो भी संतोष न हो !

★★★

९७१. लोभ सभी अंतरशत्रुओं में आगे ही रहे। मान का भी तो लोभ होता है !

★★★

९७२. लोभी हँसी-मज़ाक में भी समय ना बिगाड़े ! पूरा दिन लोभ में ही रहे।

★★★

९७३. यदि हमें लोभ है तो कोई 'गुरु'(धूर्त) मिल ही जाये। हमें कमाने का लोभ हो तब कोई 'गुरु' आ मिले।

★★★

९७४. लोभ और विषय के बीच कभी दोस्ती नहीं होती। लोभी तो सचमुच निर्विषयी होवे ! उसे केवल लक्ष्मी में ही रुचि रहे और वह उसका लोभी हो जाये, फिर साँप बनकर उसकी रक्षा करता फिरे। विषयी ज़्यादा लोभी नहीं होता।

★★★

९७५. लोभ की गाँठ कब अंकुरित हो ? जब निन्यानवे इकठ्ठा हो जाए तब।

९७६. जब तक मान है तब तक वहाँ लोभ नहीं कहा जाये। लोभ तो मान की भी परवाह न करे।

९७७. अंदर लोभ हो, तभी लोकसंज्ञा आ मिले।

९७८. जगत् में यदि संग्रह करोगे तो कोई न कोई उसे खानेवाला मिल ही जाएगा, अतः 'फ्रेश' का 'फ्रेश' ही उपयोग करो।

९७९. लक्ष्मीजी का दुरूपयोग करना ये बड़ा गुनाह है।

★★★

९८०. लोभी के दो 'गुरु': एक धूर्त और दूसरा घाटा। घाटा हो जाए तो लोभ की गाँठ फटाफट टूट जाय!

★★★

९८१. रिक्शा में बैठकर रास्ते में पैसे बिखेरता चल ताकि तेरा लोभी स्वभाव छूट जाये।

★★★

९८२. लोभ यानी क्या ? दूसरों का छीन लेना।

९८३. जिसके पास क्रोध है, वह क्रोध के ताप से सामनेवाले को वश करने का प्रयास करता है और जिसके पास क्रोध नहीं, वह शील नाम के चारित्र्य से सबको वश कर सकता है ! जानवर भी उससे वश हो जायें !!

★★★

९८४. प्रतिकूलता में कषाय होते हैं जबकि अनुकूलता में तो और भी ज़्यादा कषाय होते हैं, पर अनुकूलता के कषाय ठंडे होते हैं। वे राग-कषाय हैं जिनमें लोभ और कपट होवे, और प्रतिकूलता में द्वेष-कषाय यानी क्रोध और मान होवे।

★★★

९८५. आत्मा और निश्चेतन-चेतन, इन दोनों का जोड़ (joint) है कषाय ! "ज्ञानीपुरुष" इन कषायों को निर्मूल कर देते हैं।

★★★

९८६. कषायों को दबाने से वे नहीं जाते। वे तो 'ज्ञान' से ही जायें।

★★★

९८७. कषाय का अभाव, ये ही आनंद !

★★★

९८८. संसारवृक्ष की जड़ें कषाय है, कर्मेन्द्रियाँ या ज्ञानेन्द्रियाँ उसकी मुख्य जड़ें नहीं हैं। कषायरूपी जड़ें ही सारा पानी चूस लेती हैं !

★★★

९८९. जहाँ कषाय उत्पन्न होवे वहाँ से आत्मा बहुत दूर होवे। जहाँ कषाय का अभाव है, वहाँ वीतराग धर्म है और जहाँ कषाय है वहाँ 'रिलेटिव धर्म' है।

९९०. निर्ग्रंथ कब होवे ? कषायों से रहित होवे तब। कषाय ही ग्रंथि हैं।

★★★

९९१. जहाँ कषाय हैं वहाँ समकित नहीं, और जहाँ समकित है वहाँ कषाय नहीं।

९९२. कषायों का निवारण, इसीका नाम मोक्ष। पहले कषाय का निर्वाण होवे उसके बाद 'वो' निर्वाण।

९९३. जो हमें आत्महित न करने दें, वे सारे हमारे विरोधी–कषाय हैं। उनकी हम एक ना चलने दें।

९९४. संसार में किसी भी प्रकार के दुःख हों, उन सभी का कारण मोह है।

९९५. मोह यानि कि नया–नया उत्पन्न होता जाय और नया ही नया दिखाई पड़े, और उसी में तन्मयाकार रहना।

★★★

९९६. सांसारिक हित–अहित का भान चला जाए, ये ही मोह।

★★★

९९७. अहंकार का स्वरूप मोह नहीं बल्कि मोह का स्वरूप अहंकार है। अहंकार का जन्मधाम ही मोह है।

९९८. ज्यों-ज्यों मोह व्याप्त हुआ, त्यों त्यो गड्ढे में गहरे धँसते ही गए!

९९९. ये मोह ही तुम्हें काट-काटकर बर्बाद कर देगा।

१०००. इस जगत् में आकर्षण क्या वस्तु है? प्रकट अग्नि है! वहाँ सचेत रहना चाहिए। 'आकर्षण' ये प्रकट अग्नि है। मोह की जड़ ही आकर्षण है।

१००१. निर्मोही कौन? ''ज्ञानीपुरुष''! उन्हें तो आर-पार हड्डियाँ और माँस दिखे।

१००२. जब तक अज्ञान न हटे, तब तक मोह ना जाये।

१००३. मनुष्य अंदर जितना स्वच्छ, उतने ही बाहर के संयोग सरल! अंदर जितना मैला, उतने बाहर के संयोग बिगड़ें।

★★★

१००४. कोई भी संयोग ऐसे ही नहीं आ मिलता, और यदि आ मिला तो समझो कि उसके पीछे कोई कारण है ही। 'देअर आर कॉज़िज'! अत: ''ज्ञानी'' सभी कारण पूरे होने दें।

★★★

१००५. कई सारे संयोग इकठ्ठे हों, तभी मनुष्य को खाना मिलता है, और कई सारे संयोग इकठ्ठा हों, तब कोई भूखा रहता है! भूखे रहने के लिए तो और ज़्यादा संयोग एकत्रित होने चाहिए। उल्टे के लिए अधिक संयोग और सुल्टे के लिए कम संयोग चाहिए होते हैं।

१००६. अज्ञान से संयोग बदलें और 'ज्ञान' से भी संयोग बदलें। अज्ञान से संयोग उलझन पैदा करें और 'ज्ञान' से वे हल लायें। 'ज्ञान' ही संयोग बदलाये। इसमें भगवान उपर से आयेंगे क्या ?!

१००७. जगत् में 'शुद्धात्मा' और 'संयोग' दो ही वस्तु हैं, परंतु बीच में अहंकार की पच्चर मनुष्य को चैन नहीं लेने देती।

१००८. संयोगों के आधार से अहंकार खड़ा हुआ है और अहंकार के आधार से संयोग टिका हुआ है। जिसका अहंकार गया, उसके संयोग भी गये। 'रॉँग बिलीफ' से ही ये सब खड़ा है!

१००९. इस जगत् में संयोग और आत्मा दो ही हैं। अगर संयोगों के साथ एकात्मभाव हुआ तो 'संसार' और यदि संयोगों के ज्ञाता हुए तो आप हुए 'भगवान'।

★★★

१०१०. जगत् में इतनी सारी चीज़ें हैं, उन्हें संक्षेप में कहें, तो केवल 'शुद्धात्मा' और 'संयोग' ही हैं; संयोग तो वियोगी स्वभाव के हैं, अतः शुद्धात्मा को संयोगों से यह कहना नहीं पड़ेगा कि 'आप जाइए'।

★★★

१०११. भगवान ने कहा है कि जो कोई संयोग आ मिलते हैं उन्हें 'एक्सेप्ट' (मान्य) कर लो! संयोग क़ुदरती हैं, उनमें 'ऐसा करो और ऐसा मत करो', ये नहीं होना चाहिए। सारे संयोग 'व्यवस्थित' हैं, उनका 'समभाव से निबटारा' कीजिए।

१०१२. सारे संयोग तो परिवर्तित होते रहेंगे ! वे स्वयं ‘एडजेस्ट’ नहीं होंगे। ‘एडजेस्ट’ तो आपको ही होना पड़ेगा। संयोगों में भाव नहीं होते पर हमारे अंदर भाव होते हैं। संयोगों को अनुकूल करना हमारा कार्य है। प्रतिकूल संयोग भी वैसे तो अनुकूल ही होते हैं। सीढ़ी चढ़ते वक़्त साँस फूलती है, पर सीढ़ी क्यों चढ़ते हैं ? उपर चढ़ेंगे और उपर जाने का लाभ मिलेगा; यह भाव मन में रहता है !

१०१३. संयोग-वियोग रहित होना ही मोक्ष है !

१०१४. संयोग तो वियोगी स्वभाव के हैं। संयोगों में राग हो तो वियोग में द्वेष होता ही है।

१०१५. कटु के प्रति ‘द्वेष’ और मीठे के प्रति ‘राग’ होना अज्ञानता का स्वभाव है। ‘अज्ञान’ अगर चला जाये तो कड़वा-मीठा जैसा कुछ रहेगा ही नहीं।

★★★

१०१६. राग-द्वेष तो ‘इफ़ेक्ट’ है और अज्ञान ही ‘कॉज़’ है।

★★★

१०१७. जिसके प्रति वीतराग हुए उसके प्रति जागृति रहती है; जहाँ राग-द्वेष है वहाँ जागृति नहीं रहती।

★★★

१०१८. क्लेश का कारण द्वेष है। भगवान ने कहा है कि द्वेष मत रखो, अगर पसंद न आये तो उपेक्षा करो।

१०१९. अति राग होने पर अरुचि पैदा होती है।

१०२०. द्वेष होता है उसी समय राग के कारणों का सेवन होता है। कुछ हद तक का परिचय राग में परिणमित होता है और आगे चलकर 'रिज पॉईन्ट' (चरमसीमा पर) पहुँचने के बाद भी राग बढ़ता रहे तो द्वेष में परिणमित होता है।

१०२१. सारी क्रियाएँ प्राकृतिक हैं; उनमें राग–द्वेष न हो, वही मोक्ष है।

१०२२. जिससे कषाय कम हो वह है धर्म, और जिससे कषाय बढ़े वह है अधर्म। 'कषाय' का खत्म होना, वही है स्वधर्म।

१०२३. चाहे कैसे भी संयोग आ मिलें परंतु जिसकी स्थिरता न टूटे, ध्येय में बदलाव न हो, तब कह सकते हैं कि उसने धर्म प्राप्त किया है।

★★★

१०२४. 'अर्थ', सांसारिक स्वार्थ में परिणत हो, वह है 'अधर्म' और 'आत्मिक स्वार्थ' में परिणत हो उसका नाम है 'धर्म'।

★★★

१०२५. 'अहंकार शून्य' होना ही अध्यात्म है।

१०२६. किसी के छेड़ने पर भी विचलित नहीं होना उसे ही 'अध्यात्म विजय' कहते हैं।

१०२७. धर्म अर्थात् आरोपित भाव से यथार्थ वस्तु की खोज करना और 'दादा' जो कहते हैं वो तो धर्म नहीं, अपितु 'सायन्स' है।

★★★

१०२८. भगवान 'विज्ञान-स्वरूप' हैं, 'ज्ञान-स्वरूप' नहीं।

★★★

१०२९. 'सायन्स' हमेशा अनुभव-ज्ञान ही देता है।

★★★

१०३०. मैं क्या कहता हूँ ? कि 'विज्ञान' को जानो-समझो ! आत्मा क्या है और अनात्मा क्या है, यह जानो !! इसे जानते ही वासनाओं का विलय हो जाएगा।

★★★

१०३१. आत्मा न तो जैन है और न ही वैष्णव। आत्मा वीतराग है। यह वीतराग धर्म है।

★★★

१०३२. वीतराग विज्ञान को धर्म नहीं कह सकते, इसे 'विज्ञान' कहते हैं। धर्म बदलता रहता है, 'विज्ञान' नहीं बदलता।

★★★

१०३३. धर्म कहता है कि 'तुम अन्य को सँभालोगे तो तुम्हें भी कोई सँभालनेवाला मिलेगा, यदि किसी को मारोगे तो तुम्हें भी मारनेवाला मिलेगा !' सारे 'रिलेटिव धर्म' इस प्रकार समझाते हैं।

★★★

१०३४. जब से मनुष्य ने किसी को सुख देना शुरू किया तब से ही धर्म का प्रारंभ हुआ।

१०३५. एक ही प्रकार का धर्म हर व्यक्ति को शांति नहीं दे सकता। मनुष्य जिस डिग्री पर बैठा हो, उसे उसी डिग्री के अनुरूप धर्म चाहिए।

१०३६. यथार्थ धर्म तो वही है जो ठोकर खाने से बचाए।

१०३७. जो मोक्ष पाना चाहता हो, उसे अपना 'सेल्फ रियलाइज' (स्वरूप का ज्ञान) करना होगा, अन्यथा कुछ भी कर लो–मोक्ष नहीं मिलेगा।

१०३८. देह को नमस्कार करने से संसारफल प्राप्त होता है और चैतन्य को नमस्कार करने से मोक्षफल मिलता है।

१०३९. समझ किसे कहेंगे ? जो सामनेवाले की समझदारीपूर्ण बात को 'एक्सेप्ट' कर ले। इस काल में समझदारी की बात मिलना कहाँ आसान है ?!

★★★

१०४०. इस संसार में सबसे बड़ी अधोगति क्या है ? चोरी, कपट, लबारी ? नहीं, लोगों में पूजित होने की कामना करना। इसके जैसी अधोगति की ओर ले जानेवाली कोई चीज़ है ही नहीं। स्वयं अपूज्य होते हुए भी पूजित होने की चाह रखना यह तो बड़ी ग़लत बात है।

१०४१. बड़ा आदमी उसे कहते हैं जो छोटे से छोटा हो सके।

१०४२. जगत् तो कभी यश देगा कभी अपयश, तो फिर हमें इसकी क्या परवा करना ?

१०४३. यश मिले उसे भी देखा करो और अपयश मिले उसे भी, क्योंकि यश-अपयश दोनों पुद्गल हैं, पूरण-गलन हैं।

१०४४. सामनेवाले के सुख को ध्यान में रखना ही हमारा धर्म है।

१०४५. प्रत्येक व्यक्ति को इन तीन बातों का ध्यान रखना चाहिए : मैं कौन-से 'स्टेशन' से आया हूँ? किस 'स्टेशन' पर उतरा हूँ ? और मुझे कौन-से 'स्टेशन' जाना है ?

१०४६. दरकार खुद के 'स्वरूप' की करनी है, बाक़ी सबकी तो बस देखरेख ही रखनी है।

१०४७. चाहे जितना भी वैभव हो परंतु एक क्षण के लिए भी जिसे बंधन सुहाए नहीं, उसे ही वीतराग-विज्ञान को समझने का अधिकारी कहा जायेगा।

१०४८. जिस से मन का समाधान हो वह है धर्म और मन का समाधान न हो वह है अधर्म।

★★★

१०४९. 'मैं जानता हूँ' यही बड़ा भूत है और 'यह मेरा है' यही सबसे बड़ी बला है।

१०५०. लोग तो परसत्ता, परभोक्ता, परक्षेत्र और पर के स्वामी बन बैठे हैं ! जब 'स्व' के स्वामी हुए तो मृत्यु नहीं है, तब तो खुद ही परमात्मा है !!

१०५१. ज्ञान किसे कहा जाय ? हर तरफ से मेल बैठना चाहिए, विरोधाभास पैदा नहीं होना चाहिए। अविरोधाभास सिद्धांत तो उसे कहते हैं कि पचास साल के बाद भी जो कहा जाए उसमें सुसंगतता बनी रहे और विरोधाभास पैदा न हो।

१०५२. सिद्धांत अर्थात् 'एवरीव्हेर एप्लिकेबल', कुछ अन्यथा हो ही नहीं, उसीका नाम सिद्धांत।

१०५३. 'ज्ञानयोग' सिद्धांत है ; 'त्रियोग'(मन, वचन, काया का योग) असिद्धांत है।

१०५४. 'राइट बिलीफ' से ही 'अविरोधाभास' उत्पन्न होता है और 'अविरोधाभास' को 'सिद्धांत' कहते हैं।

★★★

१०५५. 'निश्चित किए हुए ज्ञान' को 'ज्ञान' नहीं कहते, उसे 'सिद्धांत' कहते हैं।

१०५६. किसी भी बाबत के सिद्ध हो जाने पर वह अंतिम हो जाती है ! उसे फिर से सिद्ध नहीं करना पड़ता। जो हमेशा के लिए त्रिकाल सिद्ध हो उसे 'सिद्धांत' कहते हैं।

★★★

१०५७. सिद्धांत किसे कहेंगे ? जो कभी भी असिद्धांत न होने पाये।

१०५८. जब तक 'स्पष्ट वेदन' नहीं होता तब तक 'सिद्धांत' प्राप्त नहीं होता।

★★★

१०५९. जिस वाद पर कभी विवाद न हो, उसे 'सिद्धांत' कहते हैं।

★★★

१०६०. कलियुग में आबरूदार नहीं हुआ करते; कलियुग में तो आबरू सर्वांश जा चुकी है, लेकिन यहाँ तो आबरू की होड़ लगी हुई है!

★★★

१०६१. आबरूदार तो वह है जिसे खुद पर भरोसा है। खुद अर्थात् कौन ? स्वयं के शुद्धात्मा-स्वरूप होने का जिसे बोध हो वही!

★★★

१०६२. भगवान की भाषा में आबरूदार कौन? दृष्टि मात्र से जो 'विश्वकल्याण' करे, वह!

★★★

१०६३. 'ज्ञान' के साथ-साथ 'करेक्टनेस' भी होनी चाहिए। 'ज्ञान' हो पर 'करेक्टनेस' न हो, तो आप तो मोक्ष में जाओगे पर आपके द्वारा अन्य को लाभ नहीं मिलेगा।

★★★

१०६४. 'सबका कल्याण हो', यह भावना पहले तो खुद का ही कल्याण करती है।

★★★

१०६५. जगत् कल्याण करनेवाले के घर में कभी दु:ख होता ही नहीं।

★★★

१०६६. सिद्धगति में आत्मा को कौन जाने नहीं देता ? पुद्गल। जैसे पानी में, मिट्टी लगी हुई तुम्बी को ऊपर कौन नहीं जाने देता ? 'मिट्टी'। खराब परमाणु का वज़न अधिक होता है; वे ही आत्मा को नीचे घसीटते हैं।

१०६७. पौद्गलिक मिट्टी ऐसी है कि कोई एकबार धँस जाने के बाद निकलने का प्रयत्न करे तो वह अंदर धँसता ही चला जाता है।

१०६८. 'पुद्गल' तो आत्मा की जेल (Jail) है।

१०६९. पुद्गल यानी 'पूरण-गलन'; 'क्रेडिट और डेबिट' ! यदि आत्मा को जानोगे तो मोक्ष प्राप्त होगा।

१०७०. जो पुद्गल का रक्षक हुआ वह 'ज्ञानी' नहीं है। 'ज्ञानी' तो आत्मा का (स्वभाव का) ही रक्षक होता है।

१०७१. लोकपूज्य होने के पश्चात् ही मोक्ष में जा सकते हैं। ऐसे ही नहीं जा सकते। 'लोकनिंद्य' होना तो 'अधोगति का कारण' है।

१०७२. जब आपकी आँखों में विष नहीं होगा और चेहरे पर मुक्त-हास्य दिखेगा, तब लोग आपके दर्शन करेंगे।

१०७३. जिनके वाणी, वर्तन और विनय मनोहर हैं, वही लोकपूज्य होते हैं।

१०७४. जो 'लोकपूज्य हुआ' उसे कामना नहीं होती, जो 'अपूज्य होता है' उसे कामना होती है।

१०७५. 'आँखों में स्थिरता' और 'चित्त की प्रसन्नता'- ये दो चीज़ें जिसमें हैं, ऐसे व्यक्ति के दर्शन करने से लाभ होता है।

१०७६. सच्चा सुख क्या है ? चित्त प्रसन्नता ! जिसे चित्त-प्रसन्नता मिल गई, उसे संसार में कोई भीख माँगने की आवश्यकता नहीं है।

१०७७. चित्त-प्रसन्नता को भगवान 'सुख' कहते हैं। कोई गाली दे या जेब काट ले, हर हाल में, हर समय चित्त प्रसन्नता बनी रहती है!

★★★

१०७८. जो प्रसन्न-चित्त हो उसे ही मोक्ष में प्रवेश मिलता है।

★★★

१०७९. चित्त की प्रसन्नता के साथ 'इगोइज़म' हो भी सकता है और नहीं भी। चित्त प्रसन्नता के साथ-साथ 'इगोइज़म' भी हो ऐसे कई संतपुरुष होते हैं। अध्यात्म यात्रा चित्त प्रसन्नता से शुरू होकर 'इगोइज़म' खत्म होने पर पूर्ण होती है। जब से चित्त की प्रसन्नता का प्रारंभ हुआ तब से वे दर्शन योग्य होते हैं! लेकिन निर्-अहंकार और चित्त-प्रसन्नता, ये दोनों साथ में हो, उनकी तो बात ही निराली है।

१०८०. जीतने समय चित्त की प्रसन्नता रहे, जगत् विस्मृत रहता है।

१०८१. इस जगत् में चित्त की एकाग्रता करने के स्थान ही नहीं है। स्थिर हुए बिना चित्त प्रसन्न होता ही नहीं है। जगत् में मन की स्थिरता के स्थान हैं, पर चित्त की स्थिरता के नहीं।

१०८२. मन की स्थिरता का स्थान अर्थात् किसी स्थिर मनवाले महात्मा के दर्शन, जिससे हमारा मन स्थिर होता है; परंतु वहाँ चित्त का ठिकाना नहीं होता!

१०८३. चित्त प्रसन्नता के बिना मुक्त नहीं हो सकते।

१०८४. 'शुद्ध चित्त' ही परमात्मा है।

१०८५. मन स्थिर होने पर स्पंदन नहीं उठते, अतः फल मिलता है और अगर साथ-साथ चित्तशुद्धि भी हो तो काम बन जाये!

★★★

१०८६. जब तक मन स्थिर रहे तब तक तो कुछ नहीं बिगड़ता; मन चंचल हुआ कि समझो काम बिगड़ा। भगवान न तो किसी को देते हैं न ही किसी से लेते हैं, पर भगवान परमानंदी स्वभाव के होने से अगर उनमें मन स्थिर हुआ तो बाहर के सभी काम ठीक तरह से होते हैं। यदि भगवान देते-लेते, तो वे पक्षपाती कहे जाते। यह तो सायन्स है कि मन डोला तो सबकुछ डोल गया समझो!

१०८७. मोक्ष ले जानेवाला भी मन है और संसार में भटकानेवाला भी मन ही है। वह उल्टा हो गया है उसे केवल सीधा करने की ज़रूरत है।

१०८८. 'डिप्रेशन' के आधार पर या 'एलिवेशन के ज़रिये जो विचार उभरते हैं, वे सारे ग़लत हैं। 'नॉर्मालिटी' से जो विचार आते हैं वो ही 'करेक्ट' हैं।

१०८९. विचार तो एक मरी हुई चीज़ है, जीवित नहीं। मरी हुई चीज़ में यदि 'खुद' तन्मयाकार हो, तो वह जिंदा हो जाती है।

१०९०. मन को वश करना तो चौदह लोक के नाथ को वश करने जैसा है।

१०९१. जब हमारा मन ही हमारे कहने में नहीं रहता तो अन्य का तो कैसे रह सकता है ? ऐसी आशा ही नहीं करनी चाहिए।

★★★

१०९२. नियम यह है कि जिसका मन जिस विषय में वश हो, वह अन्य के मन को भी उस विषय में वश कर सकता है।

★★★

१०९३. अन्य के मन जिसके वश रहे वह है 'ज्ञानी'। जब आपका मन पूर्णतः आपके वश में रहेगा तब ही अन्य का मन आपके वश में रहेगा, अन्यथा नहीं।

१०९४. मन से परे कौन हो सकता है ? जिसने मन को जीत लिया हो वह।

★★★

१०९५. मन के पसंद की बात हो तब मन को अलग रखें तो मन वश में हो सकता है।

१०९६. अज्ञान से स्पंदन उठते हैं और ज्ञान से स्पंदन का शमन होता है।

१०९७. अनात्म विभाग के धक्के के कारण भगवान को भी धक्का लगा है; स्पंदनों में से स्पंदन पैदा हुए हैं। अब स्पंदनों को बंद कैसे किया जाय यह 'ज्ञान' ''ज्ञानीपुरुष'' देते हैं।

१०९८. जगत् के आंदोलनों का अनुकरण करने से संसार खड़ा हुआ है और प्रतिकरण से संसार-मुक्ति होती है।

★★★

१०९९. हमारे किए हुए स्पंदन ही हम पर आए हैं ! नासमझी में हमने जो-जो क्रियाएँ की उनकी ही प्रतिक्रिया हुई है।

★★★

११००. इस जगत् में जो सारी क्रियाएँ हो रही हैं, वे बुद्धि से ही होती हैं, ज्ञान की इसमे ज़रूरत नहीं ! 'ज्ञान' तो 'ज्ञान' में ही है ! हाँ, बुद्धि की जो क्रिया होती है उसे भी तो 'ज्ञान' जानता है।

११०१. हरेक क्रिया बंधन है। मोक्ष के लिए क्रिया की आवश्यकता नहीं है; मोक्ष के लिए तो 'ज्ञानक्रिया' की ज़रूरत है। 'अज्ञानक्रिया' से बंधन है। अहंकारी क्रिया को 'अज्ञानक्रिया' कहते हैं और निर्-अहंकारी क्रिया को 'ज्ञानक्रिया' कहा जाता है।

★★★

११०२. आत्मा की प्राप्ति को छोड़कर कहीं भी दृष्टिराग करने जैसा नहीं है। कोई भी स्थान अभिनिवेश करने जैसा नहीं है; न ही रुकने जैसा है।

★★★

११०३. यह ज्ञान 'रियल वस्तु' है, वास्तविक है; जो वास्तविक है वह क्रियाकारी होता है।

★★★

११०४. इस जगत् में जो-जो क्रियाएँ दिखाई देती हैं वे सारी पूरण की हुई गलन हो रही हैं! इसमें मनुष्य को कुछ भी लेना-देना नहीं है! परंतु मनुष्य उसमें अहंकार करता है, कि 'मैंने सामायिक किया, मैंने ध्यान किया' - तो हिसाब बँधा और फँसा !! फिर गर्वरस में ही वह मज़ा करता रहता है!!!

★★★

११०५. पाँच सामायिक (धर्म-विधि) करके 'मैंने पाँच सामायिक किए', ऐसा वह गर्वरस लेता है। सही मायने में कहना क्या चाहिए? 'भगवत् कृपा से आज पाँच सामायिक हुए'। गर्वरस नहीं लेना चाहिए।

★★★

११०६. 'मैंने कितना अच्छा किया', कहकर गर्वरस लिया जाता है। गर्वरस बहुत मीठा लगता है। ऐसे आरोपित भाव से ही दुःख है। भगवान तो परमानंदी है और यही तो अपना स्वरूप है!

★★★

१९०७. देह से किया जाता है–तन के 'स्पेरपार्ट्स'(अंग) करते हैं, और मनुष्य 'इगोइज़म' करता है कि 'मैंने किया।' इसी कारण गर्वरस पैदा होता है, उसे लेकर ही वह जी रहा है। 'मैंने किया, मैंने सुख भोगा, मैंने दु:ख भोगा' इस प्रकार गर्वरस चखता रहता है। जिसका यह गर्वरस छूट गया वह मुक्त हो गया। मनुष्य अनंत जन्मों से यह गर्वरस क्यों चखता है ? क्योंकि, उसने कभी भी आत्मरस चखा ही नहीं है।

१९०८. खानेवाला है पुद्‌गल किन्तु आदमी फालतू अहंकार करता है कि 'मैंने खाया'। उसे पता ही नहीं कि अन्य कोई भी है! इस प्रकार पराई पीड़ा 'खुद' पर ले लेता है।

१९०९. वाक़ई में यदि 'खुद' ही भोगता हो तो भोगनेवाला तो थक जायेगा; पर 'खुद' तो भोगता ही नहीं, केवल (भोगने का)'अहंकार' ही करता है।

१९१०. जितने लोग हैं उतने सारे अहंकार के प्रकार हैं।

१९११. जगत् में कर्ता कोई नहीं है। 'मैं करता हूँ' यह तो 'इगोइज़म' है। 'इगोइज़म' की छत्रछाया में भ्रांति पलती रहती है।

★★★

१९१२. 'मैं कौन हूँ' ये जानने के लिए ''ज्ञानीपुरुष'' के पास जाना पड़ता है। ''ज्ञानीपुरुष'' आपके अहंकार की उपस्थिति में ही 'मैं कौन हूँ' इसका यथार्थ भान करवाते हैं; उसके पश्चात् आपका हिसाब ठीक हो जाता है!

★★★

१११३. जिसे तनिक भी 'मेरेपन' का भान है, वही है 'इगोइज़्म'।

१११४. जितने भाग में 'मैं हूँ' होता है उतने भाग में 'मेरा' नहीं होता; 'मेरा' तो 'मैं' के बाहर होता है।

१११५. जिसका अहंकार चला गया वह भगवान हो गया। जब तक अहंकार है तब तक जीवात्मा। अहंकार गया तो हो गया परमात्मा।

१११६. अहम्-कार अर्थात् मैंने किया! जहाँ खुदने किया ही नहीं, वहाँ 'मैने किया' कहता है-वही है अहंकार। अहंकार से छाती चौड़ी करके कहना कि 'मैंने किया' - वो है मान और बाद में सबसे कहते रहना कि 'मैंने किया' वो 'अभिमान' कहलाता है।

१११७. अपमान की चोट कब तक लगती है? जब तक मान पाने का भिखारीपन है; नाशवंत चीज़ों में भिखारीपन है तब तक।

★★★

१११८. लोग मान दें तो उसे चखने में बाधा नहीं, किन्तु मन में यह भाव रहना चाहिए कि मान चखना ठीक नहीं है।

★★★

१११९. जब तक मान है, आदमी कुरूप दिखता है और किसीको उसके प्रति आकर्षण नहीं होता। सुंदर चेहरा होने पर भी मान के कारण वह कुरूप दिखता है!

१११२०. जिसे अपमान का किंचित् भी भय है वह "ज्ञानी" नहीं; मान की जिसे रुचि है वह "ज्ञानी" नहीं है।

११२१. जब अपमान करनेवाला उपकारक माना जाएगा तब आपके मान का छेदन हो जाएगा। अपमान कर्ता को उपकारी समझने के बजाय अपमान होने पर मनुष्य उदास हो जाता है।

११२२. 'उसने मेरा अपमान किया', ऐसा समझने से भारी पापबंध होता है।

११२३. खुद को तो 'इन्सल्ट' पसंद नहीं होती परंतु औरों की 'इन्सल्ट' करने में लोग शूर होते हैं! इसे मानवता कैसे कहें?!

★★★

११२४. जिसके मन में मान की ग्रंथि हो उसे हमेशा आशंका रहती है कि 'कहीं अपमान न हो जाय, कहीं अपमान न हो जाय' या तो 'कहाँ से मान मिले, कहाँ से मान मिले'; इसीमें ही वह तन्मय रहता है!

★★★

११२५. जब भी कोई हमें 'जय-जय' करे, 'आइए-पधारिए' कहे और हमारी छाती चौड़ी होने लगे, तब तो हम घाटे में ही गए न? सामनेवाले का तो फ़र्ज़ है इसीलिए 'आइए पधारिए' कहता है पर हमें इस पर गर्व नहीं करना चाहिए। हमें तो अपनी 'खाता-बही' तुरंत देख लेनी चाहिए कि कहाँ घाटा हुआ?

११२६. जिसे मान–सम्मान पाने की बहुत आदत हो गयी हो, वह छला जाता है।

११२७. जितना मान मिलेगा उतना ही अपमान भी मिलेगा। इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में सही। अगर आपने तनिक भी पुद्‌गल का सुख चखा तो उतना आपको लौटाना ही पड़ेगा। अतः वीतराग हो जाओ।

११२८. जितना ऊँचाई पर बैठोगे, उतना ही नीचे गिरने का भय।

११२९. 'अपमान को पचाना' ये महान् सामर्थ्य है।

११३०. अहंकार है या नहीं, कैसे पता चले? जब कोई अपमान करे तभी पता चलता है। यदि कोई अपमान करे तो उसे समझपूर्वक निगल लेना चाहिए।

★★★

११३१. जिसे 'ज्ञान' प्राप्त होने के बाद अपमान पचाना आ जाय तो वह "ज्ञानी" हो जाय और 'ज्ञान' प्राप्त हुए बिना जो अपमान को पचा जाय, वह बेशरम हो जाय।

★★★

११३२. अपनी ही बात की रक्षा करना यही सबसे बड़ी हिंसा है! 'खुद की बात ही सही है' ऐसा दृढ़तापूर्वक प्रतिपादन–वही हिंसा है।

११३३. मनुष्य में मान के साथ–साथ यदि कपट भी है तो 'जागृति' उत्पन्न नहीं होती। मान के अंदर यदि कपट भी है तो फिर उसे मान होने का पता ही न चले।

११३४. अभिमान क्या है ? पौद्गलिक 'वेइट' (संपदा) को, खुद का 'वेइट' मानना; 'मैं बड़ा हूँ' ऐसा मानना।

११३५. अभिमान अर्थात् मान का प्रदर्शन !

११३६. स्वमान अर्थात् अपमान न हो इसके लिए रक्षण करना।

११३७. व्यवहार में 'स्वमान' यह सद्गुण कहलाता है और अभिमान 'दुर्गुण' कहलाता है।

११३८. स्वमान यह अज्ञान दशा में सद्गुण की 'लिमिट' है !

★★★

११३९. मान तो ऐसा है कि, अमुक सीमा से आगे मनुष्य अपमानित हो तो वह बेशरम हो जाता है और अमुक प्रमाण में मान मिलता रहे तो उसे पुष्टि मिलती रहती है, और मान अगर बहुत अधिक मिलने लगे तो मान की भूख मिट जाती है।

★★★

११४०. मनुष्य को प्रमाण से ज़्यादा मान दिया जाय तो ऊब जाता है और यदि प्रमाण से ज़्यादा अपमान मिले तो उसे भीतर अकुलाहट हो जाती है।

११४१. अपमान का भय चला जाय तो 'व्यवहार' (अज्ञान अवस्था) में लोग बेशरम हो जाते हैं और 'निश्चय' (आत्म-जागृति) में अपमान का डर चला जाय तो मनुष्य स्वतंत्र हो जाता है।

११४२. मनुष्य जितना मान का प्रेमी हो उतना अपमान का प्रेमी हो सकता है क्या ? जितना मुनाफ़े का प्रेमी है उतना घाटे का प्रेमी हो सकता है क्या ?

११४३. आखिरकार निर्‌अहंकारी होना होगा ! मात्र निर्मानपन नहीं चलेगा। निर्मानपन का अहंकार तो बहुत सूक्ष्म है, जैसे कि ऊपर के सिंग कट गये पर अंदर के तो रह गये ! अंदर के सिंग में ही अंदर की चुभन उत्पन्न होती है।

★★★

११४४. अनंत जन्मों से इस तरह कब तक भटकते रहोगे ? खुद का प्रकाश तो है ही नहीं, ऐसे ही अंधेरे में कब तक भटकते रहोगे ? मनुष्य अंधेरे में कोटि-कोटि योजन चलता रहा है, किन्तु प्रकाश की किरण तक नही देखी क्योंकि सही मार्ग मिला ही नहीं। कभी तो सच्ची बात जाननी पड़ेगी न ?

११४५. अनंतकाल से स्त्री-पुरुष एक-दूसरे में खोए रहे हैं, और इसी में ही भीतर का परमात्मापन गँवा दिया !

★★★

११४६. यूँ तो संसार दिखने में अति आकर्षक लगता है, परंतु अंदर पैठने के बाद उससे छूट नहीं पाते।

★★★

११४७. मुक्ति किसे कहते हैं ? देह होने के बावजूद भी हमें परवशता न लगे।

११४८. अपमान करो फिर भी जो आशीर्वाद दे, ऐसे तो एक ''ज्ञानीपुरुष'' ही होते हैं!

११४९. इस जगत् में जानकर भी अनजान रहना, यही तो सबसे बड़ा पुरुषार्थ है न ?! जानते हुए भी अनजान रहे!

११५०. अपने मत का आग्रह न छूटे तब तक मनुष्य मोक्ष का अधिकारी है ही नहीं। जब तक मनुष्य किसी मत में है तब तक वो मोक्ष के लायक भी नहीं है, केवल भौतिक सुखों के ही लायक रहता है और देवगति के लिए भी।

★★★

११५१. प्रत्येक व्यक्ति को स्नेह-आधार तो चाहिए ही। अगर वो न मिले तो उसे अकुलाहट हो जाती है! अतः घर में स्नेह न मिले तो वह उसे बाहर खोजता है। सिर्फ ज्ञानीपुरुष को ही किसी के स्नेह-आधार की आवश्यकता नहीं होती; क्योंकि वे निरावलंब होते हैं। अन्य लोग इनका अवलंबन भले ही लें ; किन्तु वे किसी पर अवलंबित नहीं होते। वर्ल्ड में अकेले ज्ञानी ही ऐसे होते हैं, जो निरावलंब रह पाते हैं।

★★★

११५२. जगत् के अवलंबन तो हमें दगा देंगे; समय आनेपर खिसक जाएंगे । इनसे अच्छा तो तकिया-कि जो 'टाइम' आने पर खिसके तो नहीं! जीता-जागता हो वो तो खिसक जाय।

११५३. आत्मा के सिवा आपने जो-जो अवलंबन लिए हैं, उनसे जब तक मुक्त नहीं होते तब तक काम नहीं बनेगा।

११५४. आधार के बिना छोटा बच्चा भी यहाँ नहीं बैठ पाता, कोई न कोई अवलंबन तो चाहिए ही! भौतिक अवलंबन के बिना कोई रह नहीं पाता। 'स्वरूप' का अवलंबन मिलने पर भौतिक अवलंबन की आवश्यकता नहीं रहती। तब तो 'खुद' निरावलंब ही हो गया!

११५५. पुद्गल का अवलंबन लेना ग़लत है। आत्मा का ही अवलंबन लेना चाहिए।

११५६. 'सत्' शब्द ३६० 'डिग्री' का है। मनुष्य जिस 'डिग्री' पर है उसे अपना ज्ञान सत्य लगता है। किन्तु जो चरम 'सत्' है वह तो 'सेन्टर' में होता है।

★★★

११५७. जगत् 'थियरी ऑफ रिलेटीविटी' के हिसाब से सत्य है; 'रियालिटी' के हिसाब से सत्य नहीं है।

★★★

११५८. भगवान ने कहा है कि तुम अपनी मान्यता को पकड़ के मत रखना! पाँच लोग जो कहे वह मान जाना! जो पकड़े रहता है वह अकेला रह जाता है। अगर खींच के रखोगे तो तुम्हें भी नुक़सान होगा और सामनेवाले को भी। यह सत्य-असत्य तो 'रिलेटीव सत्य' है-व्यवहार सत्य है! उसकी खींचा-तानी नहीं करनी है।

११५९. सत्य को यदि सत्य साबित करने पर तुले रहे तो वह असत्य होकर रह जाएगा। इस जगत् में सत्य को साबित करने पर तुले रहने जैसा है नहीं।

११६०. भगवान ने क्या कहा है ? बुरे को बुरा जानो और अच्छे को अच्छा जानो। किन्तु उसे बुरा जानने पर उस पर किंचित् मात्र भी द्वेष नहीं रहना चाहिए और उसे अच्छा जानने पर उस पर किंचित् मात्र राग नहीं रहना चाहिए। हाँ, बुरे को 'बुरा' न जानेंगे तो अच्छे को 'अच्छा' नहीं जान पाएँगे।

११६१. 'निश्चय' अर्थात् पूर्ण सत्य और 'व्यवहार' यानी कुछ हद तक का सत्य।

११६२. जगत् में स्थायी सत्य जैसा कुछ भी नहीं होता। जिस बात के लिए सामनेवाले ने आपत्ति उठाई वह सब बात ग़लत। सभी बातों में लोग कहाँ आपत्ति उठाते हैं ?

११६३. जब तक 'सत्य' का आग्रह रहता है, तब तक वीतराग की पहचान नहीं हो पाती।

११६४. जहाँ आग्रह है, वहाँ संसार है।

११६५. जहाँ तनिक भी आग्रह है, वहाँ धर्म नहीं है।

११६६. एक ही लक्ष्य रखो कि 'आत्मा को जानना है!' 'ये करना-वो करना', ऐसे किसी भी आग्रह में मत पड़ना। जिस समय जो हुआ सो ठीक।

११६७. 'निराग्रही होना' यह वीतरागता का मार्ग है! अतः किसी भी प्रकार का आग्रह छोड़ दें। 'सत्य' के आग्रह को भी भगवान ने 'अज्ञानता' ही कहा है। ज्ञानीपुरुष में नाम मात्र भी आग्रह नहीं होता।

११६८. मताग्रह से कभी भी मोक्ष नहीं होता। निराग्रही का ही मोक्ष होता है।

११६९. 'वीतरागविज्ञान' में किंचित् भी कदाग्रह नहीं होता और मताग्रह तो बिल्कुल नहीं होता।

११७०. खींच या हठाग्रह होने ही नहीं चाहिए। जो खींच हमारे 'चली जा' कहने से चली जाय, ऐसी खींच में कोई ख़ास हर्ज नहीं!

★★★

११७१. इस जगत् में ऐसा कोई सत्य नहीं जिसका आग्रह करने जैसा हो। जिसका आग्रह किया वह सत्य ही नहीं।

११७२. जहाँ आग्रह है वहाँ पकड़ है और जहाँ पकड़ है वहाँ व्यथा है!

११७३. अनिच्छा होने के बावजूद भी किसी के आग्रह से हमें चाय पीनी पड़े तो यह हमारा ही दोष; आग्रह करनेवाले को दोष तो बाद में लगेगा।

११७४. जिसमें आग्रह का ज़हर न हो उसकी सारी गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं।

११७५. व्यक्तिने जिन विषयों में आग्रह किये हैं, अभिप्राय रक्खे हैं – उसे उन्हीं के ही विचार आते रहते हैं।

११७६. जो हर पल परिवर्तित हो रहा है ऐसे इस जगत् के बारे में खुद का अभिप्राय देना यही तो अपनी भूल है।

११७७. जिसके बारे में जितने भी अभिप्राय बनाएँ हैं, उन्हें छोड़ने पर ही हम सहज हो पाएंगे। किसी भी बाबत में बँधे हुए अभिप्राय हमें चुभते ही रहते हैं, अतः हम उन्हें जब छोड़ेंगे तब ही तो सहज हो पाएंगे।

११७८. अभिप्राय तो यही रखना है कि यह देह दग़ा ही है!

११७९. 'ओपन-माइन्ड' (खुला मन) हो तभी 'करेक्ट' अभिप्राय दिया जा सकता है।

११८०. पसंदगी तो भ्रांत अभिप्राय है।

११८१. किसी भी प्रकार का अभिप्राय देना ये ज़िम्मेदारी है।

११८२. अभिप्राय बनने से राग-द्वेष होता है ! जिसके लिए अभिप्राय नहीं उसके प्रति राग-द्वेष नहीं।

११८३. विषय राग-द्वेष युक्त नहीं हैं; 'अभिप्राय की मान्यता' ही राग-द्वेष है।

११८४. प्रकृतिस्वभाव तो अभिप्राय रखे भी, किन्तु 'हमें' खुद अभिप्रायरहित होना है। 'हम' अलग, प्रकृति अलग। 'हमें' अपनी अलग भूमिका करनी है, प्रकृति की पीड़ा में न उतरें।

११८५. आत्मा का क्रियावादपन अज्ञानता के कारण ही माना जाता है, उसको लेकर के ही अंतःकरण पैदा हुआ, प्रकृति पैदा हुई।

११८६. सामनेवाले की प्रकृति की पहचान हो तभी उसके प्रति वीतरागता रह पाती है। प्रकृति की पहचान होना यानी 'ज्ञान' और 'ज्ञान' होने पर वह वर्तन में आता है।

★★★

११८७. मनुष्य के मन-वचन-काया और प्रकृति जिस प्रकार से सर्जन हुए हैं, उसी प्रकार से विसर्जन होंगे।

★★★

११८८. मनुष्य का जो-जो प्रकृति स्वभाव 'पब्लिक' के साथ 'एडजेस्ट' न हो, वह सब ग़लत प्रकृति।

११८९. जैसे-जैसे प्रकृति को 'देखें' वैसे-वैसे वह नरम होती है, पर जब तक प्रकृति से अलग रहकर उसे 'देखें' नहीं, तब तक उसका ज़ोर कम नहीं होता।

११९०. ''ज्ञानी'' भी प्रकृति में है, किन्तु प्रकृति में रह कर भी जो 'खुद' अलग रहे वह है ''ज्ञानी''।

११९१. 'स्वभाव' पुरुष है और 'भ्रांति' प्रकृति है।

११९२. पुरुष का स्वभाव 'ज्ञायक' है और प्रकृति का स्वभाव तो 'डान्सिंग' का है।

११९३. खुद एक 'सेकंड' के लिए भी 'पुरुष' हो जाय तो बहुत बड़ी बात। एक 'सेकंड' भी जो 'पुरुष' हुआ, तो वह परमात्मा हो गया। एक 'सेकंड' के लिए भी कोई 'पुरुष' हुआ नहीं।

११९४. प्रकृति दिखती है जीवंत लेकिन वास्तव में वह जीवंत नहीं है। लोग आमने-सामने जो कुछ भी करते हैं, तूफ़ान करते हैं उसमें भी चेतन नहीं है। मनुष्य को केवल 'रॉंग बिलीफ' ही है कि 'मैंने किया'! ये सब कुछ आत्मा की उपस्थिति में हो रहा है; उसकी सिर्फ़ उपस्थिति ही है। इसमें ज़िम्मेदार कौन? इसमें भूल क्या है? करता है कोई और, लेकिन मनुष्य कहता है कि 'मैं कर रहा हूँ', यही तो भूल है! इसे सुधार लो, तो हल मिल जाय!!

११९५. जो खुद की भूलें देखे वह परमात्मा हो सकता है।

११९६. जब से खुद की भूलें देखना प्रारंभ हुआ, तब से परमात्मा होने की शुरुआत हो गई।

★★★

११९७. जो खुद के सारे दोष देख सकता है, वह तो मानों भगवान से भी ऊपर है!

११९८. जब तक पूर्ण जागृति उत्पन्न न हो, तब तक 'खुद' अपने सारे दोष नहीं देख सकता; और वहाँ तक कोई निर्दोष नहीं हो पाता!

११९९. जब तक जगत् दोषित दिख रहा है तब तक इन्द्रियज्ञान है! और तब तक अंदर शुद्धिकरण नहीं हुआ।

१२००. जब तक जगत् के दोष दिखाई देंगे तब तक आत्मा का एक अक्षर भी न जान पाओगे। जिसे निज दोष दिखे, वही तो आत्मा है!

★★★

१२०१. जब खुद अपने दोष देखे तब आप ही स्वयंज्योति सुखधाम हो जाय।

१२०२. जब खुद ही अपने दोष देखने लगोगे तब औरों के दोष देखने की फुरसत नहीं रहेगी।

१२०३. स्वदोष एवं स्वकल्पना से ही यह सब संसार उत्पन्न हुआ है।

१२०४. इस जगत् में किसीकी भी कमी निकालने जैसा नहीं। कमी निकाली कि कर्म बंधन हुआ समझो।

१२०५. हमें स्वयं भूल रहित हो जाना चाहिए ताकि हमारा कोई ऊपरी न रहे।

१२०६. भगवान भी जिसकी ग़लती निकाल न पाए, मानों वही भगवान का ऊपरी ! और वही भगवान से लड़ सकता है !

१२०७. जहाँ प्रेम हैं वहाँ दोष नहीं दिखता। स्वार्थयुक्त प्रेम उपजने पर ही सारे दोष नज़र आते हैं।

१२०८. इस जगत् में यदि कोई तुम्हें कुछ भी नुक़सान पहुँचा रहा है, वह तो निमित्त मात्र है; इसके लिए 'रिस्पोन्सिबल' (जिम्मेदार) तुम ही हो। कोई किसीको कुछ भी न कर सके, ऐसा स्वतंत्र यह जगत् है। यदि कोई कुछ भी चाहे वो कर सकता तो भय की कोई सीमा न रहती, कोई किसीको मोक्ष में जाने ही नहीं देता।

१२०९. हमारा कुछ 'हिसाब' हो, तब ही कोई व्यक्ति हमें कुछ कर सकता है। अगर हमने कुछ भी नहीं किया तो कोई नाम नहीं लेगा। यह सब तो हमारे समर्थन देने के कारण ही होता है।

१२१०. अगर कोई हमारी कमी निकाले तो समझना कि हमारे अंदर कोई कमी है। यदि कोई टेढ़ा ही बोलनेवाला हो, तो बात अलग है! हाँलाकि ऐसा शायद ही हो।

१२११. ऐसे तो किसी का कभी भी कोई गुनाह होता ही नहीं ! जो गुनाह दिख रहे हैं, वही हमारी कमी है।

१२१२. 'दूसरों की गलतियाँ देखना' तो भयंकर भूल है।

१२१३. औरों को बुरा देखने या कहने से खुद ही बुरे हो जाते हैं। जब लोग अच्छे दिखेंगे तब आप खुद भी अच्छे हो जाओगे।

१२१४. 'किसी का भी दोष दिखना' यह बाबत 'निकाली'(कर्म-परिणाम) नहीं, अपितु 'ग्रहणीय'(कर्म बंधन) है।

१२१५. हमारी दोषबुद्धि से ही अन्य के दोष दिखते हैं। हम तनिक भी उल्टा चले कि सारे लोग दोषित दिखने लगेंगे।

★★★

१२१६. ''ज्ञानीपुरुष'' को 'आत्मा' के अलावा और कुछ भी सुहाना नहीं लगता। वैसे तो इस जगत् में बुरी तो कोई चीज़ है ही नहीं। 'अपनी' 'बाऊन्ड्री' चूकना, यही बुरा है।

★★★

१२१७. खुद की ग़लती 'खुद को' नज़र नहीं आए, इसी का नाम है जगत् !

१२१८. खुदकी ग़लती 'खुद को' दिखाई दे, उसीका नाम है समकित !

१२१९. जहाँ भगवान भी पहुँच नहीं पाते, उस स्थिति पर ''ज्ञानी'' बैठे होते हैं, क्योंकि भगवान के पास बोलने की शक्ति नहीं है, आशीर्वाद देने की शक्ति नहीं हैं, जबकि ये सारी शक्तियाँ ''ज्ञानी'' के पास हैं, इसीलिए भगवान 'ज्ञानी' के वश हुए हैं, अन्य किसीको नहीं !

१२२०. ये जो सारे 'रिलेटिव धर्म' हैं, वे सब प्राकृत धर्म हैं। जिसे भय पसंद है उसके लिए प्राकृत धर्म सही है, किन्तु जिसे निर्भयता चाहिए, जिसे वीतरागता पसंद हो, उसे तो 'रियलधर्म' में आना पड़ेगा !

१२२१. धर्म किसे कहेंगे ? कि जहाँ अधर्म न हो। अधर्म है वहाँ धर्म नहीं हो सकता। दोनों में से एक ही होता है ! प्रत्येक भावना के पीछे दो में से एक ही होता है, या तो धर्म या तो अधर्म।

★★★

१२२२. इस मन-वचन-काया के एकाकार होने को भगवान ने 'मुख्य धर्म' कहा है। यदि वे एकाकार नहीं रहते हैं तो हमें ऐसी भावना रखनी है कि 'मुझे एकाकार रखना है' ! यदि हम ऐसा निश्चय करें, तो कभी न कभी तो वह फलित होगा।

१२२३. धर्म तो उसे कहेंगे जो आध्यात्मिकता के सारे साधन उपलब्ध करा दे।

१२२४. ''ज्ञानीपुरुष'' के पास तमाम धर्मों का सार होता है।

१२२५. प्रकृति धर्म क्या कहता है ? प्राकृत धर्म की रचना तो देखो, बड़े-बड़े ज्ञानियों को भी उसमें रहना पड़ा है ! प्राकृत धर्म को तो पहचानना ही पड़ेगा। 'ज्ञाता-दृष्टा' यही आत्मा का धर्म है, अन्य सभी प्राकृत धर्म !

★★★

१२२६. जो एक क्षण भी आत्मा की आराधना करे तो उसका मोक्ष हुए बिना नहीं रहे, ऐसा पौद्‌गलिक रमणतायुक्त यह जगत् है।

★★★

१२२७. आराधना अर्थात् ऊँचे चढ़ना। ऐसे ऊँचे चढ़े हुए व्यक्ति के साथ जुड़े रहें तो हम भी ऊँचे उठ सकते हैं, और यदि उनकी बुराई करेंगे तो नीचे गिरेंगे।

★★★

१२२८. हमसे जो दो 'डिग्री' ऊपर है उनके प्रति गुण दृष्टि रखें, उनका गुणगान करें, उनकी भक्ति करें, उनकी सेवा करें तो यह 'आराधना' कही जायेगी। उनकी बुराई करें या निंदा करें तो वह 'विराधना' कही जायेगी ! विराधना से पतन होता है; आराधना से उन्नति होती है।

★★★

१२२९. ''ज्ञानीपुरुष''की आराधना करना शुद्धात्मा की आराधना करने के तुल्य है, वही परमात्मा की आराधना है और वही मोक्ष का प्रमुख कारण है।

★★★

१२३०. आराधना और भजना में क्या अंतर ? आराधना का अर्थ है बार-बार दृष्टि(ध्यान) का उस तरफ़ जाना और भजना अर्थात् निरंतर तन्मयाकार रहना । आराधना और भजना अपने 'स्वरूप' की ही करनी है। बाक़ी सब तो सहजभाव से चलता ही रहेगा !

★★★

१२३१. अविनय और विराधना में क्या फ़र्क़ है ? अविनय अर्थात् विनय नहीं करना और विराधना अर्थात् विरोध करना।

१२३२. ''ज्ञानी'' की विराधना ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य इन सब को अवरुद्ध करती है!

१२३३. जो ''ज्ञानीपुरुष'' और परमात्मा में फ़र्क़ माने वो मुमुक्षु ही नहीं है। ''ज्ञानीपुरुष'' को थोड़ी-सी उपाधि रहती है और परमात्मा को कोई उपाधि नहीं होती।

१२३४. ''ज्ञानीपुरुष'' देह के साथ 'आत्मस्वरूप' हुए हैं।

१२३५. सारी दुनिया का सबसे बड़ा आश्चर्य 'आत्मा' है! उसे पा लिया तो सब कुछ पा लिया!!

१२३६. समकित अर्थात् आत्मा की पहचान!

★★★

१२३७. अपनी ही आत्मा को पहचानने के लिए ये कितनी माथापच्ची ?! अपने घर में ही जो बैठा है, फिर भी उसे नहीं पहचानते और लोग कहते हैं, कि 'फलाँ को पहचानता हूँ, ढिकने को पहचानता हूँ!!' अरे, इसके बजाय 'खुद' को पहचानो न!

★★★

१२३८. 'मैं स्वयं कौन हूँ' यह नहीं जानना ही सबसे बड़ा आत्मघात है।

१२३९. प्रयोगी प्रयोगस्वरूप हो जाता है, यही तो है भ्रांति !

१२४०. आत्मज्ञान किसे कहेंगे ? जो 'ज्ञान' 'ज्ञेय' में परिणमन होता था उस 'ज्ञान' का 'ज्ञाता' में परिणमन होना।

१२४१. आत्मा का अनुभव अर्थात् क्या ? निरंतर परमानंद की स्थिति !

१२४२. चेतन का आनंद एक बार आने के बाद नहीं जाता। चेतन का आनंद सनातन होता है।

१२४३. अज्ञानवश मानसिक आनंद भोगा, यही है संसार का कारण ! 'ज्ञान' का ही आनंद भोगना चाहिए।

★★★

१२४४. ग़लत समझ दूर हो और सही समझ प्राप्त हो, वही आनंद है।

★★★

१२४५. जब तक व्यक्ति संसार-व्यवहार में है तब तक जो है वो मानसिक आनंद और आत्मा को जानने के बाद है आत्मा का आनंद !

★★★

१२४६. मन का धर्म, बुद्धि का धर्म, चित्त का धर्म, अहंकार का धर्म-ये सारे धर्म और आत्मा के धर्म, सब अपने-अपने धर्म में आ जाय उसीका नाम है 'ज्ञान' । और अन्य किसी एक के धर्म पर 'हम' अतिक्रमण करें तो हुआ अज्ञान !

१२४७. आत्मा का स्वभाव क्या है ? अन्य सभी के धर्म को देखना; 'कौन, किस-किस धर्म को कैसे निभा रहा है' उसे देखना-यही है आत्मा का धर्म।

१२४८. चित्तशुद्धि हो गयी, उसीका नाम है क्षायक दर्शन।

१२४९. चित्तवृत्ति भगवान के समक्ष निर्मल हो सकती है, पर ये तो लोगों को नहीं आता। चित्तवृत्ति को निर्मल करने का न्यूनतम उपाय है अल्पतम स्पृहावाले-निःस्पृही लोगों की संगति और चित्तवृत्ति को पूर्णतः निर्मल करने का श्रेष्ठतम उपाय है 'वीतराग' का निदिध्यासन। चित्तवृत्ति के निर्मल होने पर ''ज्ञानीपुरुष'' याद आने लगते हैं।

१२५०. जो वृत्तियाँ अनादि काल से बाहर भटक रही थीं, वे अंदर आकर निज घर में प्रवेश करें, उसे 'निवृत्ति' कहते हैं।

★★★

१२५१. चित्त अर्द्ध-जीवित है जबकि मन बिलकुल 'फिज़िकल' है।

★★★

१२५२. विचारों की घुमरी चलती हो तब उसे मन कहा जाता है। मन उस वक़्त स्वतंत्र रहता है। वृत्तियों का उससे कुछ लेना-देना नहीं। वृत्तियाँ तो बाद में उत्पन्न होती हैं और इधर-उधर होती रहती हैं।

१२५३. विचारों को कैसे रोका जाय ? विचारों को कह दो कि 'आप अपनी जानो, हम आपके पक्ष में नहीं !' मतलब आप भगवान के पक्ष में आ गए।

१२५४. उल्टे विचार से संसार बँधा, सीधे विचार से भी संसार बँधा, 'निर्विचार' होने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

१२५५. आनेवाला भव मन पर आधारित है। काया का आधार तो क्षीण हो जाएगा ।

१२५६. भावमन यह 'चार्ज' मन है और द्रव्यमन 'डिस्चार्ज' मन है। भावमन संसार पैदा करता है और द्रव्य मन संसार का निवारण करता है। अहंकार गया अर्थात् भावमन चला गया।

१२५७. जगत् क्या सिखाता है ? अहंकार सिखाता है; और अहंकार से तो फिर बहुत सारे पर्याय पैदा होते हैं!

१२५८. अहंकार की शून्यता के लिए ''ज्ञानीपुरुष'' हमारे अंदर शुद्धात्मा का अवबोध करवा दें।

★★★

१२५९. ''ज्ञानी'' के चरण की वेल्यू अमाप है। ज्ञानी का चरण तो 'इगोइज़म' को पिघलाने का एक मात्र 'सोलवन्ट' है।

★★★

१२६०. जब तक 'मैं-पने' का 'इगोइज़म' और 'मेरे-पने' का पक्षपात हो, तब तक मुक्ति कैसे हो पाये ?!

★★★

१२६१. 'मैं हसमुखलाल हूँ', यह आरोपित भाव है, अतः रात-दिन 'आरोपनामा' बनता ही रहता है।

१२६२. वास्तव में बाह्यकरण बाधक नहीं, अंत:करण बाधक है।

१२६३. 'सेन्सिटिव' व्यक्ति को कोई कुछ कहे तो तुरंत ही 'इफेक्ट' होता है; वास्तव में 'शब्द' तो 'रिकॉर्ड' मात्र है।

१२६४. कोई प्रेमभग्न है या तो अहंकारभग्न है, इसके कारण उसे बहुत मार पड़ती है।

१२६५. जहाँ 'इगोइज़म' है वहाँ 'ज्ञान' नहीं, और जहाँ 'ज्ञान' है वहाँ 'इगोइज़म' नहीं होता।

१२६६. 'सहनशीलता' यह अहंकार का गुण है।

१२६७. हक़ीक़त में तो, जो सहन करता है वह अपना 'केस' कुदरत को सौंपता है। वैसे तो किसीको भी दंड देने की ज़रूरत नहीं; कुदरत ही उसे दंड देगी।

★★★

१२६८. 'मुझसे सहन नहीं होता' यह कहना असहनशक्ति है, और 'मुझसे सहन होता है', यही है सहनशक्ति !

★★★

१२६९. जिसके साथ 'नहीं जमती' वहीं तो हमें शक्ति प्रकट करना है। जिससे 'जमती है' वहाँ तो शक्ति है ही। 'नहीं जमना' तो निर्बलता है।

१२७०. जहाँ शुद्ध प्रेम है, वहाँ 'खींच'(आग्रह) नहीं होती। 'खींच' तो आसक्ति है।

१२७१. संसार में सब 'रिलेशन संबंध' हैं, ऐसा यदि समझें तो हल निकलेगा, किन्तु यदि उन्हें 'सच्चे संबंध' माना तो आग्रह रहेगा। 'रिलेशन संबंध' में तो 'मेरी बात सही', ऐसा नहीं करना होता। बल्कि 'लो, आपकी बात सही', कहकर हल निकालिए।

१२७२. 'हमें क्या ?' ऐसा कहनेवाला तो कुदरत का बड़ा गुनहगार है।

१२७३. जहाँ आत्मा को भूल जायें, समझो वह स्थान हमारा नहीं।

१२७४. हर प्रकार से जो मन का समाधान कराये, वही संपूर्ण 'ज्ञान' और वही सर्वसमाधानी 'ज्ञान' है।

१२७५. संसार का दोष नहीं है, संसार तो अच्छा है। लेकिन आपकी समझ ही जब उल्टी हो तो उसमें भला संसार क्या कर सकता है ?!

१२७६. समकित यानी जिसमें मनुष्य किसी भी स्थिति में सीधा ही चले।

★★★

१२७७. जो उल्टा करे वह मिथ्यात्वी और सीधा करे वह समकिती।

१२७८. आचरण यानी यथार्थ समझ में आना।

१२७९. 'यह' मार्ग किसीको जबरन ले जाने का नहीं; किन्तु 'इस' मार्ग पर समझकर चलना है।

१२८०. जहाँ 'करना' है, वहाँ धर्म उत्पन्न होता है और जहाँ 'समझना' है वहाँ मोक्ष उत्पन्न होता है।

१२८१. 'मैं करता हूँ' – ये जब तक छूटा नहीं, तब तक समझो 'यथार्थ धर्म' का एक अक्षर भी नहीं पाया ! तब तक तो 'शुभाशुभ धर्म' ही है।

१२८२. जो बंधन में से मुक्ति कराए, वही है यथार्थ धर्म !

१२८३. जो भूल अपने सिर पे ले ले, वही तो सच्चा इंसान हुआ न ? दुराग्रह नहीं करना है। दुराग्रह करने की बजाय, अन्य का दोष निकालने के बदले, वो चूक अपने सिर पर ले लो न !

★★★

१२८४. जो सीधा हुआ उसीका ही मोक्ष है, अगर सीधे नहीं होंगे तो लोग ठोक-बजाकर सीधा कर देंगे। मोक्ष का द्वार तो संकरा है, अगर टेढ़ापन है तो अंदर कैसे प्रवेश कर पाओगे ?!

★★★

१२८५. अगर अंदर उल्टा हो तो बाहर भी उल्टा ही दिखेगा। अतः खुद की ही पड़ताल करें कि अन्य लोगों को तो नहीं चुभता, सिर्फ़ मुझे ही क्यों चुभता है ? अतः मेरे अंदर ही उल्टा है।

१२८६. खुद को जिसमें 'इन्टरेस्ट' (रस) है, उस विषय में मनुष्य को अपनी ग़लती नज़र नहीं आती।

१२८७. अन्य का दोष दिखाई देता है वह अपने ही दोष का प्रतिघोष है, बड़े से बड़ा दोष हमारा ही है! उसे 'पागल अहंकार' कहते हैं।

१२८८. सच्चा 'ज्ञान' जानने पर वो दुःख को कम करता है और सुख को बढ़ाता है। उसे जानने पर भी हम कमज़ोर पड़ जाय, वह तो खुद की ही भूल हुई ना ?!

१२८९. जब किसीका खुद गुमराह होने का योग हो, तब वह सच्ची बात नहीं मानता, कुछ और ही मानेगा।

१२९०. जो 'शुद्धात्मा' के ख़याल में ही रहा करता है वह 'ख्यातनाम' होता है। ऐसा कोई व्यक्ति 'प्रख्यातनाम' नहीं हुआ, किन्तु 'ख्यातनाम' कहलाया; प्रख्याति तो 'एबोव नॉर्मालिटी' से ही होती है।

★★★

१२९१. जो खुद का 'प्रोपेगेंडा' करता है उसकी प्रख्याति होती है, और जो गुप्त रहता है, उसकी ख्याति होती है। ख्याति मूल्यवान है, नहीं कि प्रख्याति।

१२९२. जहाँ कहीं कुछ 'पॉलिश्ड' है वहाँ रुकना नहीं, अन्यथा फँस जाओगे।

१२९३. धर्म में जब पैसों का व्यवहार बंद हो जाएगा, तब धर्म शोभायमान होगा।

★★★

१२९४. 'लाइफ' को जीते हुए ही मोक्ष में जाना है। 'लाइफ' न तो 'एबोव नॉर्मल ' हो, न तो 'बीलो नॉर्मल' हो, किन्तु 'नॉर्मल' होनी चाहिए।

★★★

१२९५. हमें सीधा होने की ज़रूरत है, साधु होने की नहीं।

★★★

१२९६. पति के लिए पत्नी, 'काउन्टर वेइट' है, अगर वह भी कम पड़ जाय वहाँ बेटियाँ 'काउन्टर वेइट' हैं। 'काउन्टर वेइट' के बिना नहीं चलता, अन्यथा जीवन उलट-पुलट हो जाता है।

★★★

१२९७. जो कुछ भी 'फ्री ऑफ कोस्ट' है वह सब अनिवार्य है।

★★★

१२९८. इस जगत् में कोई भी चीज़ मुफ्त नहीं होती ! जो कुछ आपका ही है, वही आपको आ मिलता है !!

★★★

१२९९. जो सही अर्थ में 'स्वार्थी'(स्व-अर्थी) है वही परमात्मा हो सकता है। लोग जो यह सब कर रहे हैं वो तो परार्थ है। स्वार्थी तो वह है जो 'स्व' का अर्थ साध ले।

★★★

१३००. सच्चा स्वार्थ तो है 'खुद का मोक्ष' और 'खुद के स्वरूप' की प्राप्ति !

१३०१. परमार्थ करते करते ही ‘स्वार्थ’(स्व–अर्थ) प्राप्त होता है। ‘स्वार्थ’ साधने के लिए ही परमार्थ करना होता है; ’स्वार्थ’ की संप्राप्ति के बाद परमार्थ करने की आवश्यकता नहीं रहती।

१३०२. आचरण में दुर्गंध कैसे फैलती है? ‘इगोइज़म’ एवं अन्य दुर्गुणों से।

१३०३. जो हर्षित होता है उसे शोक अनुभव करने का वक़्त आता है।

१३०४. व्यवहार में लोग चिपक जाते हैं, यह उनकी भूल है। चिपक जाते हैं इसलिए तो इस जगत् की मार खानी पड़ती है।

१३०५. माया अर्थात् घोर अज्ञानता! अज्ञानता को लेकर ही ये दुःख हैं। इस जगत् में दुःख नहीं है; यदि है तो सबको होना चाहिए।

★★★

१३०६. धर्म के आने से माया की लूट बंद हो जाती है और अधर्म के आने से माया की लूट शुरू हो जाती है।

★★★

१३०७. जहाँ उजाला हुआ वहाँ माया प्रवेश नहीं कर पाती। अंधेरा होते ही माया पैठ जाती है। ‘‘ज्ञानीपुरुष’’ कुछ ऐसा कर देते हैं कि आपकी माया हमेशा के लिए चली जाय।

१३०८. 'मायारहित सुख' ही 'सच्चा सुख' है।

१३०९. जन्म माया कराती है, विवाह माया कराती है, और मरण भी माया कराती है; पर इसमें शर्त यही है कि साम्राज्य माया का नहीं है। साम्राज्य तो आपका है। अत: आपकी इच्छा के बिना कुछ नहीं होता। आपने पूर्वजन्म में जो हस्ताक्षर (समर्थन) किए हैं, उसीका फल माया देती है।

१३१०. इस 'रिलेटिव' को देखकर ही उलझन पैदा हुई, उसीका नाम है संसार; यदि 'रियल' को देखा होता तो ऐसा होता ही नहीं!

१३११. जहाँ सच्ची बात है वहाँ उलझन नहीं, किन्तु जहाँ सच्ची बात नहीं है, वहाँ लोग खिलौनों से खेलने की उलझन में ही रहते हैं।

★★★

१३१२. इस जगत् में जिसकी उलझन चली गयी उसे 'संपूर्ण पुरुष' कहते हैं।

★★★

१३१३. जगत् में लोग उलझनों के कारण फँसे हुए हैं, न कि व्याधियों से। 'व्याधियाँ' तो उलझनों से ही उत्पन्न होती हैं। देखिए इन पेड़-पौधों को कभी व्याधि होती है ? इन कौओं को कभी 'पॅरालिसिस' या 'हाई ब्लड्प्रेशर' होता है क्या ?!

१३१४. जो उलझे हुए हैं उन्हें और ज़्यादा ना उलझायें तो लाभ होगा; यदि उनकी उलझन सुलझा दें तो फिर बहुत लाभ होगा; किन्तु यदि उलझे हुए को और उलझायें तो क्या हो ? हर किसी में भगवान तो बैठे हैं न!

★★★

१३१५. रुपयों का बोझ रखने जैसा नहीं है। पैसे 'बैंक' में जमा होने पर खुशी होती है और चले जाने पर दु:ख होता है। वैसे तो इस जगत् में खुश होने जैसा कुछ भी नहीं है, क्योंकि सब कुछ 'टेम्परारी' है।

★★★

१३१६. लक्ष्मी यदि सहज भाव से इकट्ठा होती है तो होने दें, परंतु उसका आधार नहीं लेना है। लक्ष्मी का आधार लेकर खुशी तो होगी, किन्तु वह आधार कब खिसक जायेगा यह कह नहीं सकते! अत: पहले से ही सचेत रहें, ताकि अशाता-वेदनीय में आप विचलित न हो जाएँ।

★★★

१३१७. हमारे भीतर अनंत शक्ति है ! इतनी कि आप जैसा सोचेंगे वैसा तुरंत बाहर हो जाएगा !! किन्तु लोग तो प्रयत्न करके विचारों के पीछे पड़ जाते हैं, फिर भी वो रूपक में नहीं आता, इस हद तक लोग दिवालिया हो चुके हैं। कलियुग आया है ना!

★★★

१३१८. भगवान ने कहा है कि 'हिसाब मत लगाना! यदि भविष्यकाल का ज्ञान है तो ही हिसाब लगा सकते हो।' अरे, हिसाब लगाना ही है तो 'यदि कल मर गए तो ?'-ऐसा हिसाब भी लगाओ न!

★★★

१३१९. ईमानदारी से व्यापार करो और फिर 'जो हुआ सो सही', लेकिन हिसाब मत लगाना।

१३२०. हर किसी व्यवसाय के दो 'बेटे' होते हैं-घाटा और मुनाफ़ा; यूँ तो 'घाटा' नामक बेटा किसीको पसंद नहीं, लेकिन दोनों अवश्य होते ही हैं, दोनों ने जन्म जो लिया है !

१३२१. पैसों के पीछे ही क्यूँ पड़े हो ? 'कहाँ से पैसा लाऊँ ? कहाँ से पैसा कमाऊँ' ?! अरे ! श्मशान में क्यूँ रुपये खोजते हो ?! इस दौड़ में तुम्हारा संसार तो श्मशान जैसा हो गया है, जिस में प्रेम जैसा कुछ दिखाई नहीं पड़ता ! पैसा कैसे आनेवाला है, उसका रास्ता तो कुदरती है, 'सायन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' है। हमें उसके पीछे पड़ने की क्या ज़रूरत है ? अरे ! पैसा ही हमें मुक्त करे तो बहुत अच्छा हो !

१३२२. लक्ष्मी कब नहीं मिलती ? कोई जब औरों की निंदा-बुराई करता रहे तब। मन की स्वच्छता, वाणी की स्वच्छता और देह की स्वच्छता हो तो लक्ष्मी मिले।

१३२३. हक़ीक़त में तो छलनेवाले ही छले जाते हैं, छला हुआ व्यक्ति तो अनुभव पाता है और सीखता है। जो भी ग़लत तरीके से कमाया हुआ धन है, वह लूट जाएगा; और जो सही तरीके से कमाया हुआ धन है, उसका सदुपयोग होगा।

१३२४. इस जगत् में 'जानबूझकर छले जाने' से बढ़कर प्रगति का कोई मार्ग ही नहीं है !

१३२५. जो जानते-समझते हुए भी छला जाये वही है मोक्ष का अधिकारी !

१३२६. विश्वासघात होने पर लोग दोस्त को भी छोड़ देते हैं। लेकिन नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि हर एक में परमात्म-शक्ति होती है। और यदि उसे 'स्वरूपज्ञान' प्राप्त हो जाय, तो परमात्म दशा भी आ जाय !!

१३२७. जब तक अहंकार शून्यता को प्राप्त नहीं होता, तब तक संसार में भय ही भय है।

१३२८. अहंकार को ही भय होता है। "ज्ञानीपुरुष" में अहंकार नहीं है, अतः उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं होता ।

१३२९. इस संसार का इतना ज़्यादा भय ना रखें कि आपका परलोक बिगड़ जाय।

१३३०. वीतराग कब कहा जाय ? जब इस जगत् में किसी भी चीज़ संबंधी भय न लगे तब।

१३३१. तुम्हें डर किस बात का ? तुम तो स्वयं परमात्मा हो ! परमात्मा अगर डर जाय तो जगत् भी डर जाएगा ! हमारा 'स्वरूप' तो प्रकृति से परे है।

★★★

१३३२. जगत् में डरने जैसा कुछ नहीं है; जो भी होगा वो पुद्‌गल को ही होगा न ?!

१३३३. भय किसे होता है ? जिसे लोभ है उसे।

१३३४. वीतराग का सार क्या ? निर्भयता !

१३३५. जो निरंतर गारव(गर्व)रस में-ठंडक में रखते हैं, वे कषाय ही संसार में भटकाते हैं।

१३३६. जब अपमान का भय नहीं रहेगा तब कोई अपमान नहीं करेगा, यह नियम है। जब तक भय है तब तक वो 'व्यापार' है; जैसे ही भय गया, समझो 'व्यापार' बंद !

१३३७. संसार या क्रियाएँ बाधक नहीं बनती; कषाय ही बाधक बनते हैं।

१३३८. क्रोध-मान-माया-लोभ में ही जगत् के सारे विषय समा जाते हैं। 'क्रोध' और 'माया'ये तो रक्षक हैं; मूलतः लोभ से ही यह सब उत्पन्न हुआ है। मानी व्यक्ति को मान का लोभ होता है, कपट फिर मान की रक्षा करता है !

१३३९. इस जगत् में जो सरल नहीं, वो सभी कपट युक्त हैं।

१३४०. एक भी संयोग का लोभ है तब तक संसार में आना पड़ता है और भटकते रहना पड़ता है।

१३४१. मान का भी तो लोभ होता है; और लोभ से ही संयोग खड़े हो जाते हैं। संयोग खड़े होने पर संसार खड़ा हो जाता है।

१३४२. 'दर्शन मोहनीय' से ही सारी मान्यता खड़ी हुई; उसीसे ये कषाय खड़े हुए। अभी कषाय से जुड़े हुए है पर कषाय पैदा कैसे हुए ? 'दर्शन मोहनीय' से।

१३४३. जब तक अकषायी न हो जाय, तब तक हर कोई दु:खी ही रहता है।

१३४४. जिसके कषाय चले गए वह 'दर्शन' करने योग्य है। अकषायभाव, यही तो है ''ज्ञानी'' !

१३४५. 'अकषायभाव' ही परमात्मभाव है। जिसके कषाय चले गए, तो समझो वह पूरे ब्रह्मांड का स्वामी हो गया !

१३४६. एक भी अकषायी व्यक्ति के दर्शन करने से अपने आप सारे पाप धुल जाते हैं ! ''ज्ञानीपुरुष'' के सिवा कोई अकषायी व्यक्ति नहीं होता।

★★★

१३४७. जहाँ कषाय है वहाँ वीतराग धर्म ही नहीं है । त्याग की आवश्यकता भगवान को नहीं; कषायरहित होने की आवश्यकता है। कषायरहित होने को 'मोक्षधर्म' कहते हैं और त्याग को 'संसार धर्म'।

★★★

१३४८. जहाँ कषाय है वहाँ केवल परिग्रह की गठरियाँ ही हैं; फिर चाहे वह हिमालय में पड़ा रहता हो या गुफा में ! जहाँ कषाय का अभाव है वहाँ परिग्रह का अभाव है; चाहे फिर वह राजमहल में क्यों न रहता हो ?!

★★★

१३४९. शुद्ध उपयोगी को कषायभाव होता ही नहीं।

१३५०. चाहे जैसे भी संयोग हो, पर अंदर चंचलता नहीं होनी चाहिए। अंदर चंचलता हुई तो समझ लेना कि कषाय अभी तक छूटे नहीं!

१३५१. जेब कट जाने पर भी कषाय खड़े न होने दे, वही है 'ज्ञान'!

१३५२. जो 'ज्ञान' विकल्प खड़े न होने दे वह निर्विकल्प ज्ञान है; वही निर्विकल्प आत्मा है और वही परमात्मा है!

१३५३. आत्मा कैसी है? कल्पस्वरूप है। 'मैं खेतशीभाई हूँ' ऐसा लगे, यह है विशेषभाव अर्थात् विकल्प हुआ। 'मैं मालिक हूँ' यह दूसरा विकल्प, 'इनका चाचा हूँ', यह तीसरा विकल्प; इस प्रकार सारे केवल विकल्प ही हैं!

★★★

१३५४. स्वयं कल्पस्वरूप है, अतः जैसा चिंतवन करे वैसा हो जाय। तो फिर उसे 'निर्विकल्पी' क्यों कहा? विकल्पी हुआ इसीलिए 'निर्विकल्पी' कहना पड़ा।

★★★

१३५५. यदि आप कहें कि 'अब मैं बूढ़ा दिखने लगा हूँ' तो वैसा दिखना प्रारंभ हो जाता है; और यदि आप कहें कि 'मैं अब युवा दिखने लगा हूँ', तो युवा दिखना प्रारंभ हो जाता है। जैसी कल्पना करो, वैसा दिखता है। आत्मा कल्पस्वरूप है और विकल्प करने पर संसार खड़ा होता है! निर्विकल्प में आ जाने पर 'मूल स्वरूप' में आ जाते हो।

१३५६. मनुष्य को 'रॉंग बिलीफ' ही अंदर काटती रहती है, बाहर से कुछ नहीं काटता।

१३५७. बाहर का कार्य कब सुधरे ? भीतर शांति होने पर।

१३५८. साकारभाव को निराकारभाव करना होगा । आत्मा तो निराकार है लेकिन उसके लिए अभिप्राय रखा, वही तो हुआ साकारभाव । निराकारी के लिए साकारभाव रखना तो विरोधाभास हुआ। इसी विरोधाभास को दूर करने के लिए निराकार भाव में आना होगा। ''ज्ञानीपुरुष'' निराकार को निराकार ही देखते हैं और निराकारभाव में रहते हैं। आत्मा जो निराकार है उसके लिए साकार भाव करने से तो आत्मा का ही खंडन हुआ; यह कितनी बड़ी भूल हुई !

१३५९. मोक्ष कब होगा ? जब आपका ज्ञान, आपकी समझ भूलरहित होगी तब। भूल से ही अटके हुए हो। 'मैं शांतिलाल हूँ, इस स्त्री का पति हूँ, इस बच्चे का पिता हूँ, मैं अस्सी साल का हूँ' – ऐसा कहते हो। ये कितनी सारी भूलें ! ये तो भूलों की परंपरा हुई। ये तो मूल में ही भूल है ! मात्र यही नासमझी है और इसीसे ही मोक्ष रुका हुआ है। केवल सही समझ से ही मोक्ष प्राप्त होगा !

१३६०. वास्तव में कोई दोषी है ही नहीं। किसी की प्रकृति जब कुछ करती है, उस समय उसकी आत्मा मालिक नहीं होती। प्रकृति जब सर्जित होती है, उस वक़्त आत्मा भ्रांति से मालिक बन बैठती है, और जब प्रकृति विसर्जित होती है उस वक़्त आत्मा मालिक नहीं होती।

१३६१. ये जो सारे प्रकृतिगत दोष हैं, इन्हें लोग चेतन के दोष मानते हैं; इसी कारण तो यह संसार खड़ा रहा है।

१३६२. कोई भी मनुष्य दुःखी है ही नहीं ! तुम जो दुःख का शोर मचा रहे हो, वह तुम्हारी भूलसे ही है।

१३६३. किसी को पराया माना यही भूल है। सब लोग अपना ही स्वरूप है, पर यह समझ में आना चाहिए न ? किसी को पराया समझा इसलिए उसे मारा, परंतु वो मार तो खुद को ही पड़ती है !

१३६४. भगवान कहते हैं कि तुम जो-जो करते हो उसकी प्रतिक्रिया ही तुम्हें दंड देती रहेगी; तुम्हें दंड देने के लिए मुझे आना नहीं पड़ता।

★★★

१३६५. जो गुनहगार था, उसे आपकी दृष्टिने निर्दोष मानकर मुक्त किया क्या ? अगर ऐसा हुआ तो यही 'ज्ञान' है और 'ज्ञान' ही परमात्मा है जिसमें अवस्था भी दिखेगी और साथ साथ परमात्मा भी दिखेंगे। अवस्था का निबटारा किया तो हिसाब चुकता हुआ।

★★★

१३६६. मनुष्यमात्र से भूल हो जाती है, इसमें क्या घबराना ? यदि भूल निरस्त करनेवाले (''ज्ञानीपुरुष'') के पास जाकर कहें कि 'साहब ! मुझसे ऐसी ऐसी भूलें होती हैं', तो वे रास्ता दिखायेंगे।

१३६७. जो खुद के गुनाह कि जिम्मेदारी ईश्वर पे ना डालकर खुद पर ही ले लेगा, उसे कुदरत माफ़ करेगी। भगवान जो वास्तव में कुछ भी नहीं करते, वहाँ 'भगवान करते हैं', ऐसा कहनेवाले बहुत बड़ा जोखिम मोल लेते हैं!

★★★

१३६८. भगवान अगर कर्ता होता, तो समस्या अंतहीन हो जाती! बनानेवाला भगवान, और हम बन गए! फिर तो हम उनके खिलौने हुए और हो गया कल्याण! यदि ऐसा ही रहा तो हमारा मोक्ष कब होगा? वास्तव में न तो कोई आपका 'ऊपरी' है और न ही कोई 'अन्डरहेन्ड'!

★★★

१३६९. तुम्हारा कोई ऊपरी ही नहीं है, फिर भी लोग ऐसे मुँह लटकाये हुए घूम रहे हैं जैसे कि 'वो मेरा कुछ ले लेंगे!' अरे भाई, पूरे ब्रह्मांड के मालिक हो तुम, फिर कोई तुम्हारा क्या छिन लेगा?!

★★★

१३७०. 'अक्रम विज्ञान' तो ऐसा है कि परमात्मा भी जवाब माँगनेवाला नहीं!

★★★

१३७१. आपको 'अन्डरहॅन्ड' रखने की आदत है इसीलिए तो आपको ऊपरी मिलते हैं, वरना यहाँ न तो कोई ऊपरी है, और ना ही कोई 'अन्डरहॅन्ड' – ऐसा है यह 'वर्ल्ड'।

★★★

१३७२. जो कभी 'अन्डरहॅन्ड' को फटकार नहीं लगाता उसका 'वर्ल्ड' में कोई 'बॉस' ही नहीं होता।

★★★

१३७३. भगवान के जो ऊपरी हुए उनका काम बन गया और पत्नी के जो ऊपरी हुए वे तो मार खाकर मर गए!

१३७४. लोगों को तो भगवान की खोज की क़ीमत ही नहीं है। इसके बारे में कोई गहराई में जाता ही नहीं; केवल पैसा कैसे कमाया जाय इसके बारे में ही गहराई में जाते हैं! लोग तो 'ज्यॉग्राफी' देखेंगे कि 'किस स्टेशन पर उतरेंगे ? अच्छा खाना-पीना कहाँ मिलेगा ?' ऐसी सब खोज करेंगे पर भगवान तो सस्ता है ना! उसकी तो कोई क़ीमत ही नहीं! उसके बारे में तो कोई खोजबीन करनी ही नहीं!

★★★

१३७५. जीव मात्र में भगवान बैठे हुए हैं, चैतन्यरूप में! इसका तो किसीको भान ही नहीं। वह 'चेतन' ही तो परमेश्वर है। शुद्ध चेतन अर्थात् शुद्ध आत्मा, वही तो है परमात्मा!

★★★

१३७६. भगवान का नाम कब याद आता है ? जब हमें उनकी ओर से कोई लाभ होता है, उनके प्रति जब प्रेम आता है, तब।

★★★

१३७७. खुदा को पहचानने पर 'आपखुदी' निकल जाय।

★★★

१३७८. खुदा को पहचानना होगा। बग़ैर खुदा को पहचाने, अल्लाह नहीं मिलते। खुदाई सत्ता प्राप्त होनी चाहिए। खुदाई सत्ता तो केवल सुख का धाम है! वहाँ दु:ख किंचित् भी नहीं होता, यदि कोई गाली भी दे तो भी सुख उपजेगा!!

★★★

१३७९. 'भगवान' और 'परमात्मा' ये दो शब्द बोले जाते हैं, मुसलमान भी 'खुदा' और 'अल्लाह' दो शब्द बोलते हैं। 'अल्लाह' अर्थात् परमात्मा और 'खुदा' अर्थात् भगवान!

★★★

१३८०. जिसे भगवान में निष्ठा बैठी, वो है ब्रह्मनिष्ठ!

१३८१. मोक्ष में जानेवाले कैसे होते हैं ? वे तो 'स्वयं' का सुख ही भोगते हैं।

१३८२. 'मैं कौन हूँ', यह जानने पर ही कोई आत्मलक्षी हो सकता है।

१३८३. आत्मा को जाने बिना स्वसत्ता उत्पन्न ही नहीं होती।

१३८४. शादी एवं व्यावहारिक प्रसंगों को निपटाना है, वह तुम भी निपटाते हो, और ''ज्ञानीपुरुष'' भी तो निपटाते हैं। लेकिन तुम तन्मयाकार होकर निपटाते हो और ''ज्ञानीपुरुष'' असंगभाव से निपटाते हैं। यहाँ केवल भूमिका को ही बदलना है।

★★★

१३८५. कहा जाता है कि 'भगवान अवतार धारण करते हैं', मगर यह ग़लत है। महापुरुषों के अंतिम दो-तीन अवतार जब बाक़ी होते हैं तब से वे 'अवतारी' कहलाते हैं। कर्म करना तो भगवान के बस में ही नहीं और न तो है मनुष्य के बस में। केवल भ्रांति से उसे ऐसा लगता है कि 'मैंने किया'।

१३८६. 'कर्मसहित' होता है वह जीव, 'कर्मरहित' होती है वह आत्मा।

१३८७. 'अच्छे कर्म' भी भ्रांति है और 'बुरे कर्म' भी भ्रांति ही है, पर इस वजह से 'अच्छे कर्म' छोड़ने को ''ज्ञानीपुरुष'' नहीं कहते। 'बुरे' से 'अच्छे' की ओर जाना तो अच्छी बात है; फिर भी भ्रांति नहीं जाती। सच्चे धर्म की शुरुआत तो भ्रांति जाने के बाद ही होती है।

१३८८. जहाँ कहीं भी पाप और पुण्य की बात है, वहाँ सच्चा धर्म है ही नहीं। सच्चा धर्म तो पुण्य और पाप से परे है। जहाँ पुण्य-पाप को 'हेय' माना जाता है और 'उपादेय' खुद के 'स्वरूप' को माना जाता है वहाँ पर ही सच्चा धर्म है।

१३८९. भगवान ने 'धर्म' किसे कहा है? त्याग को धर्म नहीं कहा अपितु कषाय रहित होने को 'धर्म' कहा है, या फिर मंदकषाय को 'धर्म' कहा है! केवल इन दोनों को ही 'धर्म' कहा है।

१३९०. जिससे सर्व दुःखों से मुक्ति हो, वही है यथार्थ धर्म। अहंकार जाय, 'राँग बिलीफ' जाय, वही है यथार्थ धर्म। 'राँग बिलीफ' के होते हुए कभी यथार्थ धर्म नहीं होता।

१३९१. जब तक 'इगोइज़्म' है तब तक सच्चा धर्म हो ही कैसे सकता है?!

१३९२. 'इगोइज़्म' ही अधर्म है और 'इगोइज़्म' न हो वह धर्म है। प्रत्यक्ष 'ज्ञानी' की उपस्थिति के बिना 'इगोइज़्म' घटता नहीं ।

१३९३. धर्म तो उसे कहेंगे जो धर्म होकर परिणमित हो। धर्म होकर परिणमित होना किसे कहते हैं? कि यदि कोई गाली दे, उस वक्त धर्म हमारी मदद करता है, और हम पर उसका कोई असर नहीं होने देता।

१३९४. किसीने गाली दी, तो क्या यह अव्यवहार है ? नहीं, व्यवहार है। 'ज्ञानी' को अगर कोई गाली दे तो वे खुश होते हैं कि चलो अच्छा हुआ–बंधन से मुक्त हुए; जब कि अज्ञानी तो उसे धक्का मारेगा।

१३९५. उदयकर्म में राग–द्वेष नहीं करना, यही धर्म है!

१३९६. उदय में जो जुड़े नहीं वह है 'ज्ञानी'। अज्ञानी तो उदय में जुड़े बिना रह ही नहीं पाता।

१३९७. इन पाँचों इन्द्रियों से जो कुछ दिखता है वह सब उदयाधीन है। इन पाँचों इंद्रियों की क्षयोपशम शक्ति ही जब उदयाधीन है ; तो फिर वो जो देखती है वह सब तो उदयाधीन ही हुआ न ?!

★★★

१३९८. उदय तो हर एक के बदलते रहते हैं! किन्तु उदय में समता भाव से रहना ही 'ज्ञानी' का फ़र्ज़ है !!

१३९९. उदयकर्म स्वपरिणामी होते हैं ! अत: उदयकर्म जो करे वही ठीक, उसमें तुम टेढ़े मत होना। उदयकर्म अर्थात् फल देने के लिए सन्मुख हुई वस्तु। मगर इंसान उसमें दख़ल दिए बिना नहीं रहता !

१४००. उदय के 'ज्ञाता' होने पर हल निकलेगा और उदय के 'भोक्ता' हुए तो मार पड़ेगी। वास्तव में उदय तो 'स्वयं का' होता ही नहीं।

१४०१. जिसका उदयकर्म का गर्व चला गया तो समझो उसने 'आत्मा को प्राप्त' किया।

१४०२. अहंकार को खुद की आँख नहीं होती, कभी-कभार वह बुद्धि की आँख से देखता है। अब अंधे का संग करने से क्या होगा ?

१४०३. इस जगत् में मनुष्य दो चीज़ों के आधार पर जीता है : 'स्वरूप' का आधार या तो 'अहंकार' का आधार।

१४०४. आधार-आधारी संबंध पर यह जगत् टिका हुआ है। आधार को हटाया तो आधारी मुक्त हो जाएगा।

★★★

१४०५. 'अहंकार' से संसार उठ खड़ा हुआ है और 'अहम्' विलय होने पर मनुष्य मुक्त ही है। 'अहम्' किस आधार पर खड़ा है ? 'अज्ञान' के आधार पर।

१४०६. यह संसार किसके आधार पर टिका है ? अज्ञान के। जगत् अच्छी आदतों को आधार देता है और बुरी आदतों को दूर करता रहता है। आधार खिसका, तो मानों सब कुछ चला गया !

१४०७. आत्मा में आधार-आधारी संबंध नहीं है। आधार-आधारी संबंध तो इस दुनियादारी की 'टेम्परारी' वस्तुओं को है, न कि परमेनन्ट वस्तुओं को। इन पाँच इन्द्रियों से जो कुछ दिखाई देता है, वह सब आधार-आधारी संबंध से है।

१४०८. जो सापेक्ष संबंध है वह आधारी होता है; 'मैं वीरचंद हूँ'-कहें तब तक वो टिका रहता है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा भान होने पर 'तुम' आधार देना छोड़ देते हो, अतः वो निरस्त हो जाता है।

★★★

१४०९. संसार को आधार कौन देता है ? 'खुद' ही ! अगर मोक्ष में जाना है तो संसार को निराधार करना पड़ेगा।

★★★

१४१०. लोग क्या कहते हैं ? कर्मों का गिन-गिन कर नाश करो ! ऐसे तो इसका अंत कब हो ? ''ज्ञानीपुरुष'' की यह 'साइन्टिफिक' खोज है कि 'मूल वस्तु' को ही निराधार कर डालो, तो अन्य सबकुछ अपने आप ही निरस्त हो जाएगा !

★★★

१४११. यह सारा जगत् 'राँग बिलीफ' के आधार पर ही चल रहा है। संसार में दुःख क्यों है ? 'राँग बिलीफ' मिली है, इसलिए। 'राइट बिलीफ' से तो दुःख रहता ही नहीं।

★★★

१४१२. 'राइट बिलीफ' हो जाय तो जगत् अलग प्रकार का ही दिखाई देगा ! 'राइट बिलीफ' अविनाशी की ओर ले जाय, और 'रॉंग बिलीफ' संसार की ओर ले जाय।

१४१३. ज्ञान-मान्यता अर्थात् समकित ! अज्ञान-मान्यता अर्थात् मिथ्यात्व !!

१४१४. प्राप्त करने योग्य क्या है ? समकित। इस बात को सभी जैनों ने माना है। समकित प्राप्त करने के लिए ही तो ये अनंत जन्म हुए हैं। समकित अर्थात् सम्यक् दर्शन ! और मिथ्यादर्शन है-'मैं खुशालभाई हूँ'; ये जो तुम्हारी श्रद्धा है वो मिथ्याश्रद्धा है।

१४१५. 'स्वभाव' को पा लेना, यही है समकित।

१४१६. 'स्वरूप' की मात्र श्रद्धा ही बैठ गई तो जगत् में कहीं भी डर लगेगा ही नहीं, सारा भय चला जाय।

★★★

१४१७. अंदर जो आत्मा बैठी है, उस पर यदि श्रद्धा हो, तो इस जगत् में हर चीज़ आपको आ मिलती है।

★★★

१४१८. भगवान तो ऐसा कहते हैं, कि 'तुम साफ़-साफ़ ये कह दो कि मुझे भगवान ही चाहिए या तो कह दो कि मुझे संसार चाहिए-तो मैं तुझे वो दूँ।' मगर लोगों को तो भगवान कहाँ चाहिए होता है ?! उनको तो बस घर चाहिए और बीवी-बच्चे चाहिए।

१४१९. किसी को परेशान करके कभी कोई मोक्ष नहीं जा सकता ! यदि कोई हमें परेशान करे तो हमें शांति रखनी चाहिए लेकिन उसका बदला लेने गए तो समझो कि आपका मोक्ष छूट गया !

१४२०. समकित अर्थात् सीधी दृष्टि ! उल्टी दृष्टि क्या करेगी ? वो तो कहेगी, 'उसने मेरा नुक़सान किया, इसने मेरा फ़ायदा किया, उसने मेरा अपमान किया, मुझे दुःख दिया, इसने मुझे सुख दिया'। दुःख देनेवाला या सुख देनेवाला बाहर कोई है ही नहीं, सब अंदर ही है !

१४२१. 'क्रोध-मान-माया-लोभ' ये ही दुःख देते हैं और वो ही तुम्हारे दुश्मन हैं, बाहर कोई दुश्मन नहीं है। बाहरवाला तो निमित्त है। उल्टी दृष्टि के कारण ही तुम निमित्त को काटने दौड़ते हो ! समकित हो जाय तो समझना कि हल आ गया।

१४२२. मोक्षमार्ग लेने के बाद प्रगति कभी भी ना रुके, यही हमारा हेतु होना चाहिए।

१४२३. संसार में चाहे कुछ भी करो, वह सब संसारदृष्टि है। जब तक दृष्टिभेद न हो, तब तक समझो तुमने कुछ पाया ही नहीं।

१४२४. प्रश्नकर्ता : क्या संसार की सारी क्रियाएँ व्यर्थ ही जाती हैं ?

दादाजी : नहीं, यह तो हेतु पर निर्भर है। यदि मुक्ति का हेतु हो तो वैसे संयोग आ मिलते हैं, और यदि विषय का हेतु हो तो वैसे संयोग मिल जाते हैं।

१४२५. ''ज्ञानीपुरुष'' मात्र यह दृष्टिभेद कर देते हैं कि 'ये सांसारिक दृष्टि और ये आत्मदृष्टि'; ऐसा दृष्टिभेद कर देते हैं। अन्यथा अपनेआप तो दृष्टि कभी भी बदलती नहीं। विकल्पी की दृष्टि कभी भी निर्विकल्पी नहीं हो सकती।

★★★

१४२६. यदि तुम्हारा सिर्फ़ मोक्ष का ही हेतु दृढ़ होगा तो तुम अवश्य वह मार्ग पाओगे। जो मुँह से मोक्ष की बात करे परंतु अंदर संसार के तरह-तरह के हेतु हों, वो मोक्षमार्ग कभी नहीं पाता।

१४२७. जगत् सारा कल्पना से ही खड़ा है, इसमें धर्म भी कल्पनारूपी है! मात्र 'वास्तविकता' ही निर्विकल्प है।

१४२८. 'जगत् के धर्म' विकल्प हैं। विकल्प के दो विभाग हैं-एक शुभ और दूसरा अशुभ। जगत् के धर्म शुभ विकल्प में हैं और मोक्ष निर्विकल्प में है।

१४२९. 'मेरा' और 'मैं' चला जाय-यही है निर्विकल्प!

१४३०. जहाँ 'इगोइज़म' है वहाँ भगवान नहीं, जहाँ भगवान है वहाँ 'इगोइज़म' नहीं।

१४३१. 'इगोइज़म' दो प्रकार के हैं : एक ज़िंदा और दूसरा मृतप्राय। जब तक ज़िंदा 'इगोइज़म' है तब तक किसीको आत्मा का प्रज्ञान न होवे।

१४३२. अहंकार के केन्द्र से संसार के सारे अवबोध अच्छे से बैठ जायें, किंतु अहंकार के केन्द्र से 'शुद्धात्मा' का अवबोध नहीं बैठ पाता।

१४३३. अहंकार है तो आत्मा का लाभ नहीं मिलता और आत्मा है तो अहंकार का लाभ नहीं मिलता।

१४३४. क्या अहंकार का भी लाभ हो सकता है ? इस अहंकार के लाभवश ही तो लोग बेटियों की शादी करते हैं, बेटों की शादी करते हैं, बाप होकर फिरते हैं और 'मेरा-मेरा' करते रहते हैं। सारा जगत् अहंकार का ही लाभ भोग रहा है और ''ज्ञानी'' आत्मा का लाभ भोगते हैं।

१४३५. मुक्ति स्व-उपार्जित है और संसार अहंकार-उपार्जित है।

१४३६. भ्रांति चली जाय तो 'यथातथ' दिखता है, अत: अज्ञान चला जाता है। अज्ञान के जाने से माया चली जाती है। भगवान की माया गई तो समझो हल मिल गया।

१४३७. माया अर्थात् जो वस्तु जिस स्वरूप में है वैसी न दिखे, पर अलग ही स्वरूप में दिखाई दे।

१४३८. जहाँ जो 'वस्तु' नहीं, वहाँ उस 'वस्तु' की कल्पना की जाय, वही माया है।

१४३९. माया अर्थात् खुद के 'स्वरूप' की अज्ञानता!

१४४०. जिस संपत्ति का कैफ़ चढ़े वह सब पुद्‌गल है ! चाहे फिर वह विद्या हो, या 'ज्ञान' हो, या कुछ भी हो, वह सब माया ही है। यह माया जो चिपकी है, न जाने कब छूटेगी ?!

१४४१. वस्तु या आँखें माया नहीं है, परंतु इंद्रियों का जो आकर्षण होता है वही माया है।

१४४२. पौद्‌गलिकरुप में कोई जितेंद्रिय जिन नहीं हुआ ! यह 'ज्ञान' हो तो ही जितेन्द्रिय जिन हो पाए। अज्ञान के होते हुए इंद्रियों को जीत ले ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि इंद्रियाँ पूरण-गलन स्वभाव की होती हैं। एक को जीतो तो दूसरी बेकाबू हो जाय !

१४४३. 'वीतरागों' का क्या कहना है ? 'मैं चंदुलाल हूँ' यह ज्ञेय है, फिर भी भ्रांति से वह उसे ज्ञाता मानता है। ज्ञाता जब ज्ञातापद में आए और ज्ञेय जब ज्ञेयपद में आए, तब उसे हम 'जितेन्द्रिय जिन' कहेंगे।

★★★

१४४४. ये लोग जो जानते हैं वह मोक्ष मार्ग नहीं है, वह तो संसार मार्ग है। मोक्ष मार्ग कल्पित नहीं है, बल्कि शुद्धमार्ग है कि जहाँ कोई चिंता नहीं होती, उपाधि नहीं होती अपितु उपाधि में भी समाधि रहती है !

★★★

१४४५. भगवान ने कहा, 'क्या करने से मोक्ष हो ?' समकित होने से या ''ज्ञानीपुरुष'' की कृपा होने पर।

१४४६. समकित के बिना जो कुछ भी किया जाए वह सारा बंधन ही है, चाहे फिर कोई दान दे रहा हो या दया कर रहा हो !

१४४७. समकित तो दृष्टि है ! दृष्टि बदली तब से समकित हुआ।

१४४८. समकित-दृष्टि होने पर मनुष्य सीधा करे और मिथ्यादृष्टि तो सीधे को उल्टा कर दे।

१४४९. समकित रात-दिन काम करता रहता है और मिथ्यात्व भी रात-दिन काम करता रहता है। समकित मोक्ष में ले जाएगा और मिथ्यात्व संसार में भटकाएगा।

१४५०. कोई यदि पूछे कि मोक्ष में जाने का थर्मामीटर कौन-सा है ? 'अंदर सब सीधा चलता रहे वही।'

★★★

१४५१. उल्टा चलने पर मनुष्य नीचे उतरता है और सीधा चलने पर ऊपर उठता है।

★★★

१४५२. 'अक्रममार्ग' और क्रमिक मार्ग दो अलग मार्ग हैं ! ज्ञान की दृष्टि से दोनों एक हैं, परंतु क्रमिक मार्ग 'करने का' मार्ग है और यह अक्रममार्ग 'लगाम छोड़ देने का' मार्ग है !

★★★

१४५३. 'खुद', 'स्वयं को' जानता नहीं, यही है सबसे बड़ी माया ! अज्ञान के हटते ही माया दूर चली जाती है !!

१४५४. अहंकार खत्म हुआ कि हुए परमात्मा ! 'अहंकार' ही माया है।

१४५५. इस 'टीपॉय' में ममता का एक भी परमाणु नहीं, उसमें कुछ आत्म-भाव नहीं है ! लेकिन यदि इसमें किसी का ममताभाव है, तो इस 'टीपॉय' को जला दें तो दोष लगेगा।

१४५६. कोई बहुत उल्टा बोलता हो उसे हम डाँटे, ये कैसी बात हुई ? जैसे पाख़ाने से बदबू आती हो तो क्या उसके दरवाजे पर लात मारते रहने से वो खुशबूदार हो जाएगा ?!

१४५७. सामनेवाले को जैसा दिखाई दे वैसा हमें 'एक्सेप्ट' करना चाहिए ! जैसा हमें दिखाई दे वैसा ही सामनेवाले को 'एक्सेप्ट' कराने पर क्यों तुले रहें ?

१४५८. सामनेवाले का ख़याल करना यह मनुष्यत्व है।

१४५९. व्यवहार में 'एडजेस्टमेंट' लेने को इस काल में 'ज्ञान' कहा गया है। 'डिसएडजेस्टमेंट' को 'एडजेस्ट' करना है।

★★★

१४६०. 'व्यवहार क्या है ?' इतना ही यदि समझ लिया तो मोक्ष हो जाये। सारा व्यवहार 'रिलेटिव' है और 'ऑल दीज़ रिलेटिव्स आर टेम्परेरी एडजेस्टमेंट्स'।

१४६१. जो 'रिलेटिव' है वह सब व्यवहार है, नाशवंत है। नाशवंत में खुद को आरोपित करना यह 'रॉंग बिलीफ' है।

१४६२. 'मेरा-तेरा' यह तो व्यवहार है। सामनेवाला गाली दे ऐसा व्यवहार यदि पसंद हो तो तुम वैसा व्यवहार करो, और लेन-देन चालू रखो।

१४६३. इस कुदरत के घर न तो निश्चय में दुःख है और न ही व्यवहार में। सारे जगत् के पास यह समझ न होने से व्यवहार दुःखदायी बन गया है। लोगों को व्यवहार आता ही नहीं। व्यवहार तो निर्लेप होना चाहिए। निर्लेप व्यवहार के पश्चात् आनंद की सीमा नहीं रहती।

१४६४. निर्लेप व्यवहार अर्थात् क्या ? कोई अच्छी चीज़ देखी तो उसे देखकर आनंदित होना, पर वहाँ चिपके नहीं रहना है, बल्कि आगे बढ़ते रहना है ! तब बबूल भी अच्छा लगेगा और गुलाब भी अच्छा लगेगा; लेकिन लोग तो चिपक जाते हैं। 'चिपक जाते हैं' यही दुःख है !

१४६५. ''ज्ञानीपुरुष'' का व्यवहार निर्लेप होता है ! उनके पास जाने से हमें हल मिल जाता है। वे हमें दिखायेंगे कि ये 'करेक्ट' है और ये 'इन्करेक्ट' है !

१४६६. कुदरत इतनी सुंदर और लावण्यमयी है कि क्या कहें ! पर उसका रूप मनुष्य ने किसी एक स्थान पर केंद्रित कर दिया, अतः उसे अन्य किसी स्थान पर रूप दिखता नहीं है।

१४६७. घर में सब लोग एक हो गए, परस्पर समाधान करके भी एक हो जाना, यही है वीतराग भाव और 'अलग हो जाना' वो है राग-द्वेष !

१४६८. इंद्रियों से देखते हैं, जानते हैं अपितु राग-द्वेष नहीं होता यह अतीन्द्रिय ज्ञान है। जिसे राग-द्वेष है वह तो इंद्रिय ज्ञान से देखता है, जानता है।

१४६९. जहाँ 'मैं' नहीं हूँ वहाँ 'मैं हूँ' ऐसा बोलना, यही बड़े से बड़ा राग है !

१४७०. मन परेशान नहीं करता किन्तु राग-द्वेष परेशान करते हैं। राग-द्वेष के कारण ही स्मृति है।

१४७१. राग यदि ज्ञानी पर बैठ जाय तो वह प्रशस्त राग हुआ, उससे तो काम बन गया समझो ! उससे अन्य सभी के ऊपर जो राग है वो उड़ जाय क्योंकि ''ज्ञानी'' वीतराग है। वीतराग के प्रति राग, सर्व दुःखों से मुक्त कराता है।

१४७२. वीतरागी मार्ग कैसा है ? 'देनेवाला' और 'लेनेवाला' दोनों को कमाई होती है, जबकि संसार मार्ग में 'देनेवाला' गँवाता है और 'लेनेवाला' कमाता है।

१४७३. जीवन में दो प्रकार से ध्येय निश्चित करना होता है : ''ज्ञानीपुरुष'' यदि हमें ना मिले तो संसार में ऐसे जिएँ कि किसी के लिए हम किंचित्‌मात्र भी दु:खदायी न बनें; हमसे किसी को किंचित्‌मात्र भी दु:ख न पहुँचे यह सबसे बड़ा ध्येय होना चाहिए! दूसरा, यदि प्रत्यक्ष ''ज्ञानीपुरुष'' मिल जाय तो उनके सत्संग में रहना जिससे कि आपके सारे काम बन जाय और सारे 'पज़ल्स' 'सॉल्व' हो जाय!

१४७४. मनुष्य का ध्येय क्या हो ? हिन्दुस्तान के मनुष्य तो सच में परमात्मा हो सकते हैं। खुद का परमात्मपद प्राप्त करना यही चरम ध्येय है।

१४७५. जिसमें जो कुछ भी कौशल्य है वह अहंकार के आधार पर होता है। 'ज्ञानी,' को कुछ भी नहीं आता, उन्हें अहंकार जो नहीं!

★★★

१४७६. ''ज्ञानीपुरुष'' कहते हैं कि संसार में 'मुझे' कुछ भी नहीं आता। 'मैं' कुछ भी नहीं जानता। 'मैं' तो 'आत्मा' की बात ही जानता हूँ, आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है यह मैं जानता हूँ। आत्मा जो भी देख सकती है, वो सब 'मैं' देख सकता हूँ!

१४७७. जब 'मेरा खुद का कौशल' ऐसा कुछ स्वामीत्वभाव रहेगा ही नहीं तब ''भगवान'' के समान सत्ता उत्पन्न होगी! अर्थात् जो चाहो सो हाज़िर हो जाय!!

१४७८. इस जगत् में जिसे किसी ''कौशल्य'' का स्वामीत्वभाव न हो और यह 'व्यवस्थित' है, ऐसा समझ में आ जाय, ऐसा अनुभव में भी आ जाय-उसे 'आत्मज्ञान हो गया' ऐसा कह सकते हैं।

★★★

१४७९. 'मुझे समझ नहीं है' ऐसा मान कर व्यवहार करें तो वह बेहतर रहेगा, किन्तु 'मैं' समझता हूँ' ऐसा मान कर व्यवहार करोगे तो काम बिगड़ जायेगा।

★★★

१४८०. यह सारा संसार गोल ही गोल है, इसका कोई अंतिम छोर ही नहीं, अतः भव-भ्रमण का अंत खोजने के लिए ''ज्ञानीपुरुष'' को पूछें कि ''मैं कब तक ऐसे भटकता रहूँगा ? मैं तो इस संसार में न जाने कब से भटक रहा हूँ, कोल्हू के बैल की भाँति। ''ज्ञानीपुरुष'' से कहें कि 'मुझे इससे छुटकारा दिलाइए'।

★★★

१४८१. व्यवहार यानी कि 'सुपरफ्लुअस' ! किन्तु व्यवहार में जब लोग बोलते हैं तो 'फ़ुलस्टॉप' रख देते हैं !! पर नहीं, व्यवहार में तो 'कॉमा' होना चाहिए, पर लोगों ने वहाँ 'फ़ुलस्टॉप' रख दिया। 'मैं नटुभाई हूँ' यहाँ 'कॉमा' हो और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' यहाँ पर 'फ़ुलस्टॉप' हो।

★★★

१४८२. व्यवहार अर्थात् 'सुपरफ्लुअस', किन्तु 'सुपरफ्लुअस' रहने के बजाय जगत् के लोग व्यवहार को ही 'निश्चय' मान बैठे हैं और कहते भी हैं कि-'ऐसा ही होना चाहिए, ऐसा ही करना चाहिए'।

१४८३. जैसे जलेबी खाने के बाद चाय फीकी लगती है, उसी प्रकार आत्मा का सुख चखने के बाद संसार के सुख फीके लगते हैं। जब तक संसार के सुख फीके नहीं लगते तब तक संसार छूटता नहीं।

★★★

१४८४. जलेबी में सुख नहीं, आपकी कल्पना में सुख है।

★★★

१४८५. कल्पित सुख के व्यापार में दुःख भी साथ-साथ ही रहता है।

★★★

१४८६. सुख भी वेदना है और दुःख भी वेदना है। सुख जब वेदना ही है, तो उसे सुख कैसे कहा जाय ? जो सुख ज़्यादा चखने पर दुःखदायी बन जाय, उसे सुख कैसे कह सकते हैं ? ये तो सब भ्रांतिवालों का जंजाल है ! जिस सुख के समुद्र में पड़े रहने पर भी उसके प्रति अरुचि पैदा न हो, वही है 'सच्चा सुख'।

★★★

१४८७. स्व-सुख स्वयं की समश्रेणी में है ! 'समश्रेणी में' अर्थात् तराजू में 'अपना' पलड़ा ऊपर ना जाय और संसार का पलड़ा नीचे ना जाय।

★★★

१४८८. तुमको यदि सुख प्रिय है तो जिसमें सुख हो उसकी भजना करो। सुख तो भगवान में है। भगवान तो अनंत सुख के धाम हैं ! यदि जड़ की भजना करोगे तो दुःख ही मिलेगा क्योंकि जड़ में दुःख ही है।

१४८९. 'वीतराग का विज्ञान' अर्थात् क्या ? जिसमें कोई दु:ख ही नहीं रहता। वीतराग का एक अक्षर भी यदि समझ में आ जाए तो दु:ख रहेगा ही नहीं, परंतु महावीर का एक शब्द भी कोई नहीं समझा।

★★★

१४९०. कुछ लोग कहते हैं कि ''ज्ञानीपुरुष'' रियल में सुखी होते हैं, परंतु रिलेटिव में सुखी या दु:खी हो सकते हैं। इसपर मैं कहता हूँ कि, 'नहीं, ''ज्ञानीपुरुष'' रिलेटिव को रिलेटिव ही जानते हैं, अत: रिलेटिव में भी सुखी होते हैं।'

★★★

१४९१. ''ज्ञानीपुरुष'' जो 'ज्ञान' देते हैं उस 'ज्ञान' से शांति तो रहेगी, परंतु 'इस' 'विज्ञान' को बिना जाने-बिना समझे नहीं चलेगा। जैसे 'विज्ञान' के किसी प्रयोग के लिए जो सामग्री ज़रूरी है, क्या उसमें से एक भी वस्तु ना हो तो चलेगा ? नहीं चलेगा। ठीक वैसे ही ''ज्ञानीपुरुष'' का यह 'विज्ञान' भी पूरी तरह से समझना होगा।

★★★

१४९२. झल्लाहट-बेचैनी ना हो वही है अंतरंग शांति । बहिरंग में चित्त एकाग्र होने पर अंतरंग(शांति) टूट जाय। बहिरंग से ही तो यह सारा जगत् खड़ा हुआ है।

★★★

१४९३. सच का आग्रही व्यक्ति लोगों को बहुत दु:ख पहुँचाता है, अत: उसे दु:ख ही मिलते हैं। ऐसा व्यक्ति 'मैं सच्चा हूँ' ऐसा मानते हुए सबको बहुत दु:ख पहुँचाता है।

★★★

१४९४. यदि कोई व्यक्ति पाँच, दस, या सौ लोगों के मन को स्थिर कर सके तब समझें कि कुछ काम हुआ ! औरों के मन को स्थिर कौन कर सकता है ? जिसका खुद का मन स्थिर हो वही।

१४९५. जगत् में लोगों को खुद का मन ही स्वामी बनकर परेशान करता है, ऐसे में खुद को सामनेवाले के मन का स्वामी मानकर चलें, तो फिर कैसी दशा होगी ?!

१४९६. मन से कोई कैसे विलग हो पाये ? जीते जी यदि 'मर गया हूँ' ऐसा मान ले तो !

१४९७. आत्मस्वरूप से तो खुद कभी मरता ही नहीं, केवल 'बिलीफ' ही मरती हैं।

१४९८. ''ज्ञानीजन'' ने कहा है कि जीते जी 'मर गया हूँ' ऐसा मान ले उसे फिर कभी मरण नहीं आता !

१४९९. जन्म हुआ तभी से ही आरी चालू हो जाती है। लेकिन लोग 'लकड़ा' पूरा कट कर अलग हो जाने को 'मरण' कहते हैं ! वास्तव में वो तो पहले से ही कट रहा था !

★★★

१५००. लोग तो 'बुख़ार' के जाने को 'बुख़ार आया' कहते हैं ! लेकिन बुख़ार जो अंदर पड़ा रहा था, जो कि विकारी भोजन का परिणाम है, उसे 'वाइटेलिटी पावर' गर्मी उत्पन्न करके शुद्धि प्रदान करता है।

★★★

१५०१. जीवन में 'मर जाने की भावना करना' ये आर्तध्यान और रौद्रध्यान है और 'न मरने की भावना करना' ये भी आर्तध्यान और रौद्रध्यान है। जब 'स्टेशन' आये तब उतर जाना। 'मरने की' या तो 'ना मरने की' भावना ना करें !

१५०२. जिस दुनिया में मरना ही हो ऐसी दुनिया क्या संजोना ?! 'हम' तो अमर हैं !

१५०३. समाधिमरण यानी खुद के 'स्वरूप' के अलावा और कुछ याद ही न हो, मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार कुछ भी उपस्थित न होवे, सिर्फ़ आत्मस्वरूप में ही रहे।

१५०४. 'अनडिसाइडेड' (अनिर्णित) विचार इसका नाम मन ! 'डिसाइडेड' (निर्णित) विचार इसका नाम बुद्धि !!

१५०५. बुद्धि संसारानुगामी है।

१५०६. सारा जगत् बुद्धि में ही पड़ा रहा है। बुद्धि में से जो ज्ञान-प्रकाश में आये, तत्पश्चात् वो परमात्मस्वरूप होने लगे !

★★★

१५०७. बुद्धि संसार की हरेक बाबत में नफ़ा-नुक़सान दिखाये। बुद्धि द्वंद्व दिखाये। 'बुद्धि' द्वंद्व की जननी है।

★★★

१५०८. जगत् के जो 'रिलेटिव धर्म' हैं, वे बुद्धि प्रकाशक हैं। बुद्धि से आगे की बात शब्द में व्यक्त नहीं हो पाती।

१५०९. विपरीत बुद्धि हो जाय, ये तो इस काल का विचित्र नियम ही हो चुका है न ! इसमें जो सावधानी बरत के चले, वो ही जीते।

१५१०. सच्ची बुद्धि तो वही जो काम का हल निकाल दे, बाकी सारी बुद्धि तो अतिरिक्त है-ये तो नुक़सान करे !

१५११. जो यथार्थ वस्तु को दिखाये, वो है सम्यक् बुद्धि !

१५१२. जो किसीका नुक़सान न होने दे और खुदका भी किंचित्‌मात्र नुक़सान न करे, वो बुद्धिमान !

१५१३. 'बुद्धि' ये आज की कमाई है, आज का 'एक्सपीरियन्स' है, जबकि 'अक़्ल' ये तो कुदरती उपहार है।

★★★

१५१४. बुद्धि किसे कहेंगे ? जो क्रोध-मान-माया-लोभ का विश्लेषण करे और इन सब के प्रभाव में ना आये ताकि घर में कलह न हो, वो 'एवरीव्हेर' 'एड्‌जेस्टमेंट' कराए।

★★★

१५१५. जहाँ बुद्धि का उपयोग है वहाँ मोक्ष नहीं, और जहाँ मोक्ष है वहाँ बुद्धि की ज़रूरत नहीं, बल्कि 'समझ' की 'ज़रूरत' है।

१५१६. जिसमें अधिक सूझ-बूझ होवे उसे 'अकलमंद' कहा जाए। 'अधिक सूझ उभरे' ये तो कुदरत का तोहफ़ा है। किसीमें सूझ अधिक हो, और बुद्धि न भी हो।

★★★

१५१७. जिनकी बुद्धि के 'रिवोल्युशन' अधिक उनकी समझशक्ति ज़्यादा होवे, वे तो कहने से पहले ही समझ जाएँ। मजदूरों को 'मिनट' के पाँच 'रिवोल्युशन' भी ना हो जबकि 'इन्टेलिजेन्ट' में 'मिनट' के हज़ार-दो हज़ार रिवोल्युशन होते हैं। जिसके 'रिवोल्युशन' अधिक, उसे ये 'ज्ञान' उतना जल्दी समझ में आ जाये।

★★★

१५१८. बुद्धि उल्टी चले तो ये कपट है, और सीधी चले तो काम बना दे।

१५१९. 'मैं वीरचंद हूँ' बोलना ये ही कपट है। मूल में ही जब 'वीरचंद' नाम कहा, तब से ही सब कपट किया समझो! क्योंकि तुमने 'स्वयं' को छिपाकर अन्य नाम जो धारण किया!!

★★★

१५२०. चैतन्य यदि इंद्रियगम्य होता, तो हमें भगवान को खोजना ही नहीं पड़ता, जन्म से ही वे आँखों से दिखाई देते। जहाँ इंद्रिय का ना चले, मन का ना चले, बुद्धि का ना चले, किसी का भी ना चले तभी भगवान दिखते हैं! इसीलिए तो कहते हैं कि 'मैं हृदय में ही हूँ।' 'आड़ी त्राटी कपट की, तासे दिसत नाहीं!'

१५२१. जो 'ओपन माइन्ड' रखे, उसे भगवान दिखे।

१५२२. 'क्रोध' ये मान की रक्षा करता है। 'कपट' ये लोभ की रक्षा करता है।

१५२३. स्त्रियों को कपट का आवरण होवे, अतः उन्हें अपने कपट का पता नहीं चलता, ये स्वभाव है। पुरुषों को अहंकार की गुत्थी होवे, अतः वो गुत्थी उन्हें अपने अहंकार को दिखने न दे। 'स्वरूपज्ञान' के पश्चात् पुरुषों को खुद के अहंकार को देखते रहना है और स्त्रियों को अपने कपट को देखते रहना है।

★★★

१५२४. कपट हो वहाँ थप्पड़ मिले और मान का फल गालियाँ मिलें। ये ''ज्ञानी'' की खोज है!

★★★

१५२५. जगत् हमारा ही 'फोटो' है। तुम्हारे अंदर कपट है, तब तक सामनेवाला तुम्हारे साथ कपट करेगा।

★★★

१५२६. गुप्त काम करते रहना ये कपट कहलाये, कपट का पता तो करनेवाले को भी नहीं चलता। झूठ भी कपट ही है।

★★★

१५२७. लोग परमात्मा को मानते तो हैं, है ना ? और गुप्त काम भी तो करते हैं! जो परमात्मा तुम्हारी सभी क्रियाओं को जानता है, उनसे कैसे गुप्त रहेगा ?! यदि भगवान को पहचानना हो, तो फिर गुप्त काम नहीं करना है।

★★★

१५२८. गुप्त काम करने की आदत को कैसे सुधारा जाये ? उन कामों को ज़ाहिर कर दो, ताकि लोकभय चला जाए।

★★★

१५२९. कपट को खुला कर देने से मन बंधन में आ जाए; खुला करने से मन को वश कर सकते हैं।

१५३०. घाटा होने पर भी सामनेवाले को खुलकर कह दो ताकि वह अच्छी भावना करे जिससे 'वो' परमाणु उड़ जाएँ और तुम हलके हो जाओ। अकेले ही उलझन में रहने से तो अधिक बोझा लगे।

१५३१. संसार में पूर्ण प्राप्ति किसे हो ? कि जहाँ कपट न हो। कपट न हो तब तक सभी वस्तुएँ आ मिले। इस जगत् में सबकुछ अपने आप चले ऐसा है, मगर मनुष्य कपट किए बिना नहीं रहता, अतः सब बिगड़ जाता है!

१५३२. दादाश्री कहते हैं कि यदि हम से कभी किसी को दुःख पहुँचे ऐसा बोल दिया जाए, तो उसे सुधारने के लिए कहना है कि 'भाई, हमारा दिमाग पहले से ही ज़रा ऐसा है !' अतः सामनेवाला खुश हो जाये !!

१५३३. यदि हमें छूटना है, तो स्पर्धा में नहीं रहना है। जब तक हम स्पर्धा में रहते हैं तब तक सामनेवाला उसके दोष और हम अपने दोष छिपाते रहेंगे !

१५३४. जहाँ स्पर्धा है वहाँ 'ज्ञान' प्रकट नहीं होता।

१५३५. स्पर्धा ये कुसंग है।

१५३६. जहाँ स्पर्धा वहाँ संसार और जहाँ स्पर्धा न हो वहाँ 'ज्ञान'।

१५३७. इस 'रेसकोर्स' में किसी का 'नंबर' नहीं आया, ये तो बस हाँफ-हाँफ कर मर जाना है ! ज्ञानी तो कभी इस प्रकार की दौड़ में उतरते ही नहीं। वे तो बस इतना ही कहें कि 'भाई, ये मेरे बस की बात नहीं।'

★★★

१५३८. अनंत जन्म इस 'रेसकॉर्स' में दौड़ते रहोगे, फिर भी आख़िरकार तो तुम छले ही जाओगे- ऐसा ये जगत् है ! सब कुछ बेकार जाएगा, ऊपर से बेशुमार मार खानी पड़ेगी !! बजाय इसके, भागो यहाँसे और अपनी 'असली जगह' खोज लो, जो कि अपना 'मूल स्वरूप' है !

★★★

१५३९. ये 'अक्रमविज्ञान' है । जैसे ही तुम 'रेसकोर्स' में से निकल गए, शीघ्र ही तुम्हारी 'पर्सनालिटी' निखरेगी। जो 'रेसकॉर्स' में है उसकी 'पर्सनालिटी' प्रभावी नहीं होती, ऐसे किसी की भी नहीं।

१५४०. इस जगत् को कोई जीत ही नहीं पाया, अतः ज्ञानी की एक गहरी खोज है-जिससे इस जगत् को जीत पायें ! ऐसा कहें कि 'हम तो हार कर बैठे हैं, यदि तुम्हें जीतना हो तो आओ'।

१५४१. हारने के बाद जो जीते हुए को आशीर्वाद दे, वह मोक्ष जाए, 'कम्प्लीट' हो जाय।

१५४२. जीतने जाओगे तो बैर बँधेगा और हार जाओगे तो बैर छूट जाएगा।

१५४३. आप कहें कि 'हम तो हारे हुए ही हैं', तो जगत् आपको छोड़ देगा ! ये खोज ''ज्ञानीपुरुष'' ने की है, वे कहते हैं कि जगत् को जीतने का यत्न करने में हमें कई जन्म लेने पड़े। अत: 'हम हार गए' ऐसा कहकर बैठ गए।

१५४४. ''ज्ञानीपुरुष'' का एक अक्षर भी यदि समझ में आ गया, तो कल्याण ही हो जाय !

१५४५. हमें बहते पानी में बाधा पैदा नहीं करनी चाहिए ! ये सब तो अपने आप चलता ही रहता है, इसमें कुछ रुकनेवाला नहीं है ! दख़ल करने से तो बिगड़ जाये।

१५४६. यह काल बड़ा विचित्र है ! दख़लअंदाजी करने जैसा नहीं। किसी को अच्छा बोलना आता ही नहीं ! ऐसा बोलते हैं कि हमें 'हेडेक' हो जाए !!

★★★

१५४७. हमारे कारण सामनेवाला बेचैन हो, ऐसा बोलना ये बहुत बड़ा गुनाह है। बल्कि ऐसा यदि कोई बोला हो, तो उसे ढाँक दे, वही मनुष्य कहलाये।

★★★

१५४८. इस जगत् में कोई तुम्हें दख़ल दे सके ऐसी स्थिति में है ही नहीं, अत: 'वर्ल्ड' का दोष ना निकालें। तुम्हारा ही दोष है। तुमने जितनी दख़ल की है, उसी के ही ये प्रतिघोष हैं। तुमने यदि कोई दख़ल न दी हों तो, फिर उसका कोई प्रतिघोष तुम्हें न लगे।

१५४९. जिसने किंचित् मात्र भी दख़ल न की हो, उसे कोई जरा भी छू ना सके; ऐसा कोई यदि बागियों के गाँव में भी पहुँच गया तो, वे भी उसे 'साहब, साहब' कहते हुए भोजन कराएँ। उसके पास चाहे कितने भी हीरे क्यूँ ना हों, तो भी वे उन्हें छू तक न सकें। और दूसरा कोई दस 'पुलिस' लेकर गया हो तो भी वह लुट जाये।

१५५०. एक मच्छर भी तुम्हें छू नहीं पाए ऐसा न्याययुक्त ये जगत् है–यदि तुम दख़ल ना करो तो। तुम्हारी दख़लअंदाजी बंद हो जायेगी, तो सब कुछ बंद हो जायेगा!

१५५१. मनुष्यगति में आने के पश्चात् यदि मनुष्य 'स्व–स्वभाव' में रहकर विसर्जन में दख़ल न करे, तो वो मोक्ष जाये ही। और यदि दख़ल करे तो दूसरी गति में चला जाये!

१५५२. एक ही वाक्य में सारे जगत् का स्पष्टीकरण है कि – 'जो विसर्जित होता है वो पुराना है और जो सृजन होता है वो नया है।' बाह्यतः कोई कुचारित्र्य का विसर्जन भी करता हो, किन्तु "ज्ञानीपुरुष" से सीखा हुआ ज्ञान लाया हो तो उससे, संभवतः साथ–साथ वह अंदर उर्ध्वगति का सृजन भी कर रहा हो।

१५५३. 'सृजन करना' ये 'तुम्हारी' सत्ता है और 'विसर्जन करना' ये 'कुदरत' की सत्ता है। अतः सृजन करना ही है तो सरल सृजन करना। 'तुम्हारे' किये हुये सृजन को कुदरत विसर्जन किए बिना छोड़ेगी नहीं।

१५५४. सारा जगत् जो भी करता है वो सब कुदरती विसर्जन ही है ! चाहे फिर जप करो, तप करो, सब कुदरती विसर्जन है । फूल चढ़ानेवाले का उपकार क्या ? और जेब काटनेवाले का अपकार क्या ?! सृजन में स्वयं निमित्त होता है और विसर्जन तो कुदरत ही करती है । यह 'वीतरागों' की चरम दृष्टि है !

१५५५. विसर्जन 'नेचर' के हाथ में है, इसीलिए ये बेचैनी है, इसी कारण ये सारे परवशता के दुःख हैं । कई बार मानवजीवन में ऐसा वक़्त आ जाता है कि एक घंटा बिताना भी मुश्किल हो जाये !

१५५६. पूर्व में की गई योजनाएँ यदि लपेटी जा रही हों तो मनुष्य के अंदर 'चुभन' होती रहे और खुल रही हों तो वह शांतभाव से रहे।

१५५७. योजना करते समय कोई भी बदलाव संभव है, किन्तु जब योजना रूपक में आने लगे तब कोई बदलाव नहीं किया जा सकता, क्योंकि ये जगत् स्वयं ही सूक्ष्म से स्थूल रूप में परिणत हुआ है; अर्थात् 'सेकेन्ड स्टेज' में आया हुआ है, वो 'फर्स्ट स्टेज' में नहीं है। 'फर्स्ट स्टेज' में बदलाव संभव है।

१५५८. जगत् का स्वभाव 'सर्जनात्मक' ही है, 'विसर्जनात्मक भाग' ये तो 'रिएक्शन' है।

१५५९. एक हक़ीक़त से आत्मा सर्जक है, दूसरी हक़ीक़त से आत्मा सर्जक नहीं है।

१५६०. जहाँ ज़रा सा भी कर्तापन है वहाँ बंधन है और जहाँ केवल जानना-समझना है, वहाँ मोक्ष है।

१५६१. मनुष्य जितना समझे उतना शमन हो जाय, और जितना शमन हो गया उतनी मुक्ति। यहीं पर ही मुक्ति का अनुभव हो जाये ! शमन हो जाना यानी मोक्ष में अर्थात् 'स्व-स्वरूप' में शमन हो जाना।

१५६२. समझ हमेशा शमन करे। शमन हो जाने का चरम अंश वो मोक्ष ! बुद्धि से उफनता है और समझ से शमन होता है।

१५६३. सम्यक् समझ किसे कहेंगे ? जो दुःख में से सुख का शोधन करे।

१५६४. दुःख किसका चला जाये ? जो भौतिक सुख का 'ऑपरेशन' कर डाले उसका !

१५६५. 'नेचर' के विरुद्ध चलने से ही तो ये सारे दुःख हैं। 'नेचर' सब कुछ 'एडजेस्ट' करती है, लेकिन मनुष्य स्वयं 'नेचर' के विरुद्ध अहंकार करता है।

१५६६. आत्मा में परम सुख ही है, किन्तु कलुषित भाव के कारण सुख पर आवरण आ जाता है।

१५६७. सत्-सुख का वियोग होने पर असत्-सुख का संयोग होवे।

१५६८. किसी भी मनुष्य या जीव को 'हमारे' कारण ज़रासा भी त्रास या बाधा उत्पन्न न हो, ये ही 'आत्मधर्म' है।

★★★

१५६९. तुम यदि सच्चे हो तो दुनिया में कोई तुम्हारा नाम तक न ले सके। जगत् में यदि तुम किसी को दुःख नहीं देते, ना ही किसी को दुःख देने की तुम्हारी कोई भावना है, तो तुम्हें कोई दुःख नहीं दे सकता।

★★★

१५७०. हमें जो किंचित्मात्र भी दुःख होता है वो हमारे दिये हुए दुःखों के ही प्रत्याघात हैं, अतः तुम्हें अनुकूल हो वैसा करना।

★★★

१५७१. दुःख आये ही क्यों ?! स्वयं परमात्मा है, फिर उसे दुःख कैसे ? अहंकार ही दुःख खड़ा करता है और भुगतता भी अहंकार ही है। परमात्मा कुछ नहीं भुगतते।

★★★

१५७२. भगवान दुःख को जानते हैं, पर वेदते नहीं!

★★★

१५७३. इस जगत् में जो रोना है वो उल्टी समझ से है, और जो हँसना है वो भी उल्टी समझ से है। रोने-हँसने जैसा ये जगत् नहीं। जगत् तो रमणीय है।

★★★

१५७४. इस दुनिया में सारे दुःख केवल माने हुए हैं, 'रॉंग बिलीफ' हैं। लोगों को दुःख का आभास होता है, भास्यमान अनुभव होता है, दुःख प्रत्यक्ष दिखाई देकर अनुभव में नहीं आते। भास्यमान अनुभव होना यानी सारी रात भूत की आशंका से डरते रहना।

१५७५. लोग दिनभर कटु या मीठे फल भुगतते ही रहते हैं। भुगतने के लिए ही तो ये जनम मिला है!

१५७६. शातावेदनीय और अशातावेदनीय कब तक रहें? जब तक अपरिपक्वता हो तब तक! आगे चलकर तो शाता-अशाता में केवल ज्ञायकस्वभाव होवे।

१५७७. जो 'टेस्ट'(स्वाद) को जाने, वो आत्मा। जो 'टेस्ट' को भोगे वो आत्मा नहीं।

१५७८. खुदा तो सभी को 'लाइट' देते हैं। जिसे बदमाशी करनी हो उसे भी 'लाइट' देते हैं, जिसे चोरी करनी हो उसे भी 'लाइट' देते हैं, लेकिन जोखिम 'तुम्हारा' है। खुदा ने क्या कहा? कि तुम ही इस जगत् के मालिक हो। मेरे क़ायदों का पालन करोगे तो तुम्हें खुदाई सत्ता मिलेगी!

१५७९. इस संसार में दुःख जो है, वो तो यूँ ही चला जाए ऐसा है, पर लोग उसे थाम के रखते हैं।

★★★

१५८०. तुम आत्मा हो और ये पुद्गल है। यदि तुम डर गए तो पुद्गल तुम पर हावी हो जाएगा। भले ही सारा 'वर्ल्ड' इधर-उधर हो जाय, फिर भी हमें नहीं डरना है। इस देह को पक्षाघात हो जाय या जल भी जाये फिर भी 'हमें कोई घाटा नहीं होता'। घाटा होगा तो पुद्गल का। 'स्वयं हमें' तो कभी घाटा होता ही नहीं। दोनों के व्यापार अलग, व्यवहार अलग और 'दुकान' भी अलग!

१५८१. बाहर किसी को दुःख देने पर तुम्हारे ही अंदर दुःख चालू हो जाय! ये 'वीतरागों' का सायन्स है। यदि एक जनम सबके दुःख ले लोगे तो अनंत जन्मों की कसर निकल जाएगी!

१५८२. जिसने एक दु:ख को पार कर लिया, उसमें बहुतेरे दु:खों को पार करने की शक्ति आ जाये। फिर तो वह दु:खों को पार करनेवाला शूरवीर हो गया समझो !

१५८३. 'बाहर की शाता-अशाता' ये 'व्यवस्थित' के अधीन है, और 'अंदर की शाता रहे' ये पुरुषार्थ है।

१५८४. आत्मा के उपयोग के बग़ैर सुख उत्पन्न होवे ही नहीं।

१५८५. यदि तुम्हारा कोई बहुत बुरा दोष हो, लेकिन तुम उसका खूब पश्चात्ताप करो, 'हार्टिली' पश्चात्ताप करो तो वह दोष निकल ही जाये, परंतु लोग 'हार्टिली' पश्चात्ताप नहीं करते ना ? केवल ऊपर-ऊपर से ही बोलते हैं कि मेरा दोष है !

१५८६. मन का स्वभाव संसारी है। यदि कोई देर से आया तो मन बोले कि 'क्या ग़लत समय में ये आ गया ?' इससे तो लोहे की बेड़ी लगी समझो !

★★★

१५८७. अज्ञानदशा में लोहे की बहुत बेड़ियाँ लग जाएँ। मन क्या कहता है ? कि मुझे समाधान दो। अत: ये 'व्यवस्थित है' कहें, तो मन को समाधान मिले। सामनेवाले के लिए मन में बुरा विचार आये तो मन को शुद्ध करो, उससे क्षमा माँग लो।

★★★

१५८८. "ज्ञानी" की आज्ञा मन का शुद्धिकरण करती है; 'स्वरूप का ज्ञान' मन को किसी भी संयोगों में समाधान देगा।

१५८९. जो कुछ मन में चित्रण करें वो मुँह से बोल दें, तो मोक्ष जल्दी हो जाये। मन तो इतना चंचल है कि चाहे जितने घाट गढ़ता ही रहे और अनंत अवतार बिगाड दे।

१५९०. इस काल के संयोगों के कारण विचार बहुत बढ़ गए हैं ! पसंदीदा विचारों में तन्मयाकार रहने से 'एलिवेशन' आये, जो अत्यंत नुक़सानदेह है। और नापसंद विचारों में रहे तो 'डिप्रेशन' आये।

१५९१. पसंद हो भी किन्तु राग नहीं होना चाहिए; नापसंद भी हो किन्तु द्वेष नहीं होना चाहिए। 'पसंद व नापसंद' ये मन का धर्म है, वो 'हमारा' धर्म नहीं !

१५९२. इस जगत् में कोई ऐसी वस्तु नहीं होती जो ''ज्ञानीपुरुष'' को पसंद हो और कोई ऐसी वस्तु भी नहीं होती जो 'उन्हें' ना-पसंद हो।

★★★

१५९३. ना-पसंद को पसंद करोगे तो रास्ता मिलेगा !

★★★

१५९४. 'पसंद-नापसंद', 'अच्छा-बुरा', 'नफ़ा-नुक़सान' ये सारे द्वंद्व किसने खड़े किए ? समाज ने। भगवान के घर द्वंद्व नहीं है। एक ओर अनाज हो और दूसरी ओर पाख़ाना हो, तो भगवान की दृष्टि में दोनों ही 'मटिरियल' हैं ! भगवान इसे क्या कहेंगे ? 'ऑल आर मटिरियल्स' (सब कुछ पुद्गल ही है।) !

१५९५. ये जो 'अच्छा-बुरा' दिखता है वो पुद्‌गल की विभाविक अवस्था है। उसे बाँटना मत कि ये अच्छा या वो बुरा ! द्वंद्ववालों ने ये विभाजित किया है, ये सब विकल्प हैं। 'निर्विकल्पी' को तो 'अच्छा-बुरा' दोनों विभाविक अवस्था दिखाई दे।

१५९६. 'रिलेटिव' ये द्वंद्व है।

१५९७. जिसने द्वंद्वों को जीत लिया, वो अद्वैत ! पारदर्शक दृष्टि से द्वंद्वातीत हुआ जा सकता है।

१५९८. यदि मोक्ष जाना हो तो 'अच्छे-बुरे' के द्वंद्व को निकाल देना होगा ! यदि शुभ में आना है तो बुरी वस्तु का तिरस्कार करो और अच्छी वस्तु के प्रति राग करो। शुद्ध दृष्टि में तो अच्छी या बुरी वस्तु के प्रति राग या द्वेष नहीं होता।

१५९९. जगत् में 'अच्छा-बुरा' है ही नहीं। ये तो दृष्टि की मलिनता है ! यही मिथ्यात्व है और यही है दृष्टिविष !!

★★★

१६००. द्वंद्व क्या हैं ? जो संसार ही खड़ा कर दे। और यदि मोक्ष मिल जाये, तो हो गए द्वंद्वातीत !

१६०१. मोक्ष जाने की भाषा द्वंद्वातीत है; संसार की भाषा द्वंद्वयुक्त है।

१६०२. जब इस जगत् में कोई भी द्वंद्व असर न करे, कोई भी वस्तु असर ना करे, और 'मैं परमात्मा हूँ', ऐसा भान हो जाये तो समझो हो गया कल्याण !

१६०३. मन-वचन-काया ये 'इफेक्टिव' हैं। इनका इफेक्ट 'स्वयं को' कब न हो ? जब 'स्वयं को' 'स्वयं का' भान हो जाये तब; 'मैं परमात्मा ही हूँ' ऐसा भान हो जाये तब।

★★★

१६०४. माता के पेट में से बच्चा उल्टे-सिर की तरफ से बाहर आता है, ये किसने किया ? क्या बच्चा पलट सकता है ? क्या डॉक्टर खींचता है ? क्या माँ धकेलती है ? ये कौन करता है ? ये तो 'इफेक्ट' है,'परिणाम' है। 'कॉज़िज़' जो थे, उनके 'परिणाम' स्वाभाविक रूप से हो जायें !

★★★

१६०५. 'इफेक्ट' के आधार पर ये सारा जगत् चल रहा है ! भगवान ने इसमें हाथ नहीं डाला। ये बात समझ में नहीं आयी, अतः लोगों ने ये भगवान के सर मढ़ दिया !

★★★

१६०६. मन-वचन-काया के परमाणु ये 'इफेक्टिव' हैं ! 'सायन्स' क्या कहता है ? 'इफेक्ट' क्यों अनुभव करते हो ? 'इफेक्ट' को तो बस जानना ही है।

★★★

१६०७. 'इफेक्ट्स' को अनुभव करें तो बंधन होवे ! 'इफेक्ट्स' को खुद अकेले ही अनुभव करें तो भारी कर्मबंध ना पड़े, पर यदि सामनेवाले को भी उसमें लपेटें तो बंधन और भारी हो जायें।

१६०८. मन-वचन-काया 'इफेक्टिव' हों, बाहर का वातावरण 'इफेक्टिव' हो, फिर भी इनमें आत्मा 'इन-इफेक्टिव' रहे, वो है चरम दशा!

१६०९. क्रिया से मोक्ष नहीं, बल्कि समझ से मोक्ष होवे। क्रिया का फल संसार है।

१६१०. संसार में सभी चीज़ें हैं, पर तुम्हारे हिस्से में क्या आया, ये देख लो। यदि तुम सच्चे हो तो तुम्हें सबकुछ आ मिलेगा। लोग कहते हैं कि सच्चे व्यक्ति की ईश्वर मदद करते हैं! परंतु ऐसा नहीं। सच्चे व्यक्ति को ऐश्वर्य मिलता है। तुम्हारे पास सच्ची नीयत, सत्य और सच्ची निष्ठा होनी चाहिए।

१६११. संसार यानी संसरण! निरंतर परिवर्तन होता ही रहे वो संसार !!

१६१२. परिस्थिति बदलेगी, किन्तु 'ज्ञान' नहीं बदले।

१६१३. करण के स्वामी, वो है संसारी।

१६१४. जो व्यवहार में है और जिनकी व्यवहार में ही वर्तना है, वे सारे संसारी। 'सिद्ध' को तो व्यवहार की वर्तना ही न होवे, अतः वे असंसारी हैं। एक और प्रकार के (मनुष्य) हैं जो संसार में होने पर भी जिन्हें व्यवहार की वर्तना नहीं होती, वे "ज्ञानीपुरुष" 'असंसारी' कहलायें।

१६१५. इस जगत् में जो बाहर है, वो ही अंदर है ! जो दोष बाहर दिखते हैं, वो ही अंदर हैं !! ब्रह्मांड जो बाहर है, वो ही अंदर है !!! अगर बाहर सबके साथ ठीकठाक हो गया, तो अंदर भी सब ठीकठाक हो जाएगा, फिर अंदर कोई शोर नहीं मचायेगा।

१६१६. अपने हक़ का जो खाये, उसे मनुष्य गति मिले; बिना हक़ का जो खाये उसे पशु गति मिले, अपने हक़ का जो दूसरों को दे दे उसे मिले देवगति और दूसरों के हक़ का मार के छीन ले उसे तो नरकगति मिले।

१६१७. संसार यानी उपाधि ! हमारा कुछ भी नहीं !! यहाँ तो उपाधि के बीज बोये जाएँ और फिर उपाधि उगे !!!

१६१८. "ज्ञानीपुरुष" का ये 'ज्ञान' तो संसार का निष्कर्ष है-कि क्या करने से सुखी हों और क्या करने से दुःखी ?!

★★★

१६१९. व्यवहार आदर्श होना चाहिए ! यदि व्यवहार में कंजूसी करें तो कषायी हो जायें। ये संसार तो नाव है ! इस नौका में चाय-नास्ता सब कुछ करें पर याद रखें कि इस के द्वारा किनारे पहुँचना है।

★★★

१६२०. कषाय है वहाँ अग्नि है, जो कि धधगती भट्ठी है।

१६२१. सामनेवाले को 'नासमझ' कहना ये खुला कषाय है।

१६२२. सारे जगत् को कषाय पसंद नहीं, फिर भी सारे जगत् के कषाय इच्छापूर्वकवाले हैं। क्रोध करना पसंद नहीं, फिर भी कहेंगे कि बिना क्रोध किए तो कैसे चले ?!

१६२३. जहाँ कषाय हैं, वहाँ संसार है। जहाँ क्रोध-मान-माया-लोभ हैं, वहाँ संसारी जीव ही हैं, फिर चाहे वह त्यागी हो या गृहस्थ हो। और जहाँ क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं है, वहाँ गृहस्थ हो या त्यागी, वह 'असंसारी' कहलाये।

१६२४. जहाँ क्रोध-मान-माया-लोभ न हो, वहाँ व्यवहार स्वच्छ होता है, या तो फिर जहाँ उनके प्रति उपयोग रहता हो, वो भी ठीक कहा जाय।

१६२५. क्रोध-मान-माया-लोभ का संयम होवे, उसी का नाम संयम ! जो त्याग करे उसे 'संयमी' नहीं कह सकते, वह तो 'त्यागी' कहलाए।

१६२६. कषायों के संयम को ही 'संयम' कहा जाता है।

१६२७. जिसे हिंसक भाव न रहे वह 'संयमी' कहा जाये। जहाँ क्रोध-मान-माया-लोभ में भी हिंसक भाव न रहे, उसीका नाम संयम। संयमी मोक्ष में जाये।

१६२८. संसार के दो प्रकार : 'त्यागी' भी संसार है और 'गृहस्थी' भी संसार है। त्यागी को 'त्याग करता हूँ, त्याग करता हूँ' ऐसा ज्ञान बरते; गृहस्थी को 'ग्रहण करता हूँ, लेता हूँ, देता हूँ,' ऐसा ज्ञान बरते ! परंतु आत्मा को जान लें तो मोक्ष हो जाये। आत्मा को किससे जानें ? ''ज्ञानीपुरुष'' से।

१६२९. जगत् के 'ऑल व्यूपॉइन्ट्स' को जो देख सकें, वे होते हैं तरणतारणहार।

१६३०. जब अहंकार शत-प्रतिशत शुद्ध होवे तभी व्यवहार शुद्ध होवे।

१६३१. 'रिश्ते-नाते' तो सारी 'परदेश' की कमाई है, साथ आये केवल 'स्वदेश' की कमाई।

१६३२. इस दुनिया में कोई भी 'तुम्हारा' सचमुच सगा नहीं है। ये सगे-संबंधी तो सारे 'रिलेशन स्वरूप' से हैं, 'रिलेटिव व्यूपोइन्ट' से हैं। ये सब तो व्यर्थ ही रुलाते हैं।

★★★

१६३३. ''ज्ञानी'' सारे दुःखों से मुक्ति दिलायें ! बाहर तो दुषमकाल है, कलियुग है। लोग तो उल्टे आपका जो कुछ सुख है, वो भी छिन लेंगे !

★★★

१६३४. आत्मधर्म करते हुए जो 'बायप्रोडक्ट' उत्पन्न होवे, वो है संसार-ये 'फ्री ऑफ कॉस्ट' (मुफ्त) मिलता है।

१६३५. संसार में 'बाय प्रोडक्ट' रूप में जो अहंकार है, उससे सहज रूप से संसार चलता है। लेकिन वहाँ अहंकार का विस्तार करने से तो अपार चिंता पैदा हो गई!

१६३६. 'जो' अहंकार ना करे, उसका संसार-भ्रमण हो जाये बंद!

१६३७. अहंकार गया यानी सारे जगत् की सभी पौद्‌गलिक 'मेटर' का त्याग हो गया। जहाँ अहंकार हो वहाँ ममता होती है और जहाँ ममता हो वहाँ छिपा हुआ भी अहंकार ही, होता है। 'स्वरूपज्ञान' होने पर अहंकार और ममता दोनों ही बिदा हो जायें; केवल 'ड्रामेटिक' अहंकार और ममता रहें।

१६३८. हरेक प्राणी में अहंकार बीजरूप से होता है, वो फिर वृक्षरूप में मनुष्य के अंदर परिणत होता है। यदि 'इगोइज़्म' नष्ट हो जाय तो 'स्वयं' ही 'परमात्मा' हो जाय।

१६३९. अहंकार का स्वभाव क्या? उसकी सत्ता में जो कुछ होवे, वो उन सब का उपयोग कर डाले।

१६४०. जब तक हमारी दृष्टि मल-युक्त है, तब तक अहंकार दिखाई दे, अतः मल दूर करना है।

१६४१. जैसी दृष्टि खड़ी हो, वैसी सृष्टि खड़ी कर दे। 'ये मेरा' ऐसी दृष्टि खड़ी हो, तो फिर 'और सब पराया' ऐसी सृष्टि दिखाई दे।

१६४२. जो हमारा दृष्टिदोष कम करे उसीका नाम धर्म ! दृष्टिदोष को बढ़ाये वो अधर्म !! 'संसार' ये दृष्टिदोष का ही परिणाम है।

१६४३. ये सब दृष्टिदोष का ही परिणाम है ! जब दृष्टिदोष चला जाये, तब जगत् 'जैसा है वैसा' दिखे। जिसका दृष्टिदोष चला गया हो ऐसे 'अनुभवी पुरुष' के पास बैठने से हमारा दृष्टिदोष भी चला जाये, अन्य किसी उपाय से नहीं।

१६४४. लोकदृष्टि है वहाँ परमात्मा नहीं। परमात्मा है वहाँ लोकदृष्टि नहीं।

१६४५. ये तो सारे भूत हैं ! तुम डरो तो भूत लग जाये। अंदर से कोई चिल्लाए कि-'फाँसी पर चढ़ा दिया तो ?' तब कहना कि 'हाँ करेक्ट है।' आत्मा को फाँसी नहीं लग सकती, आत्मा को क्या लेना देना ? सारी पुद्‌गल की करामात है ! 'फाँसी' ये पुद्‌गल है और 'फाँसी पर चढ़ानेवाला' भी पुद्‌गल है। आत्मा को तो कभी फाँसी हुई ही नहीं। मनुष्य की दृष्टि ये नहीं समझ पाने के कारण उसे घबराहट होती है, परंतु ज्ञानी की दृष्टि से उसकी दृष्टि मिल गई तो बन गया काम ! इसके लिए ज्ञानी के पास उनके परिचय में रहना पड़े !!

१६४६. वस्तु एक ही है परंतु भ्रांति के कारण रुचि-अरुचि होती है; क्योंकि हरेक की दृष्टि भिन्न-भिन्न है।

१६४७. इस जगत् में अपार सुख है, यदि उसका 'सायन्स' जान लें तो ! 'सायन्स' से सुख हो सकता है । भ्रमित हुए हो, 'राँग बिलीफ' भरी है, इसलिए तुम दुःखी हो गए हो ! यदि 'राँग बिलीफ' निकल जाये और 'राइट बिलीफ' बैठ जाये, तो केवल सुख ही है।

१६४८. जब तक 'राँग बिलीफ' नहीं जाए, तब तक लुटते ही जाओगे।

१६४९. जब तक भ्रांति का चलन है, तब तक भ्रांति की विचारश्रेणी है, और तब तक दुःख ही है। ''ज्ञानी''यों की भाषा में कोई दुःख-सुख नहीं।

★★★

१६५०. 'परभाव' को 'अपना' भाव मानना, ये ही भ्रांति ! करता है कोई और लेकिन 'मैं करता हूँ' ऐसा मानना-ये ही भ्रांति !!

★★★

१६५१. जहाँ 'मैं' नहीं, वहाँ 'मैं' को मानना ये है तिरोभाव ! जहाँ 'मैं' हूँ, वहीं पर 'मैं' मानना, ये है आविर्भाव !!

★★★

१६५२. संपूर्ण अस्थिर वातावरण में स्थिर रहने का भाव करो तो स्थिर रह पाओगे, क्योंकि तुम्हारा स्व-स्वभाव स्थिर ही है, फिर अस्थिर के साथ क्या लेना-देना ?!

★★★

१६५३. अशुभ भाव से पाप बँधे, शुभ भाव से पुण्य बँधे और शुद्ध भाव से मोक्ष।

१६५४. इंद्रियज्ञान सारे भाव खड़ा करे जबकि अतीन्द्रिय ज्ञान भावों को पैदा ही न होने दे।

१६५५. वस्तु की मूर्च्छा की चिपचिपाहट यदि एक घंटे के लिए भी चिपक जाये तो वो सौ-सौ साल तक लगी रहे ! उल्लासमय परिणाम और तन्मयाकार भाव के कारण वस्तुओं की बुरी आदत ब्रह्मा के दिन जितनी लंबी चले, अतः कहीं 'उपयोग' रखने जैसा नहीं।

१६५६. 'उदासीन' को कुछ नहीं छू पाये। 'स्वरूपज्ञान' के बाद पुरुषार्थ करें, तो उदासीन रह सकते हैं।

१६५७. तुम जिस वस्तु के लिए लायक हो, वो वस्तु तुम्हें घर बैठे आ मिलेगी, बशर्ते तुम्हारी शुद्धता हो। तुम्हारी शुद्धता यानी ये भाव रहे कि ''इस जगत् के किसी जीव को मुझसे दुःख न पहुँचे। और मुझे कोई दुःख दे तो वो कुदरती न्याय है।''

१६५८. 'वीतराग' कहते हैं, 'तुम्हें जो अनुकूल हो ऐसे भाव करो। तुम्हें यदि मेरे पर विषय के भाव आयें तो विषय के करो, निर्विषयी भाव आयें तो वो करो, धर्म के आयें तो धर्म के भाव करो, पूज्यपद के भाव आये तो पूज्यपद के करो, और गाली देना हो तो गाली दो। मेरी किसी के प्रति चुनौती नहीं।' जिसे किसी के प्रति चुनौती-भाव नहीं, वो मोक्ष जाये और चुनौतीवालों का तो यहीं मुक़ाम रहता है !

१६५९. सारा जगत् 'जिसे' 'मेरा' समझता है, 'वो' 'मेरा' नहीं है-ये 'ज्ञान' ये ही आत्मा है !

१६६०. ज्ञान के दो प्रकार : एक, संसार में क्या सही और क्या ग़लत ? क्या हितकर और क्या अहितकर ? ये ज्ञान। दूसरा मोक्षमार्ग का ज्ञान। मोक्ष का 'ज्ञान' मिले तो सांसारिक हित-अहित का ज्ञान भी उसे मिल ही जाये, या तो ये फिर सांसारिक हित-अहित जाननेवाले संतों से मिले।

★★★

१६६१. देखने में आया अर्थात् समझ में आया और जानने में आया अर्थात् 'ज्ञान' में आया। देखने में और जानने में काफ़ी अंतर है!

★★★

१६६२. तीन प्रकार की बातें : (१) 'ज्ञान'पूर्वक की हुई बातें (२) बुद्धिपूर्वक की हुई बातें और (३) अबुद्धिपूर्वक की हुई बातें। इन तीन प्रकार की बातों से जगत् चल रहा है! अबुद्धिपूर्वकवालों की बातें बुद्धिपूर्वकवालों को ग़लत लगे। बुद्धिपूर्वकवालों की बातें अबुद्धिपूर्वकवालों को ग़लत लगे; और जहाँ 'ज्ञान'पूर्वक की बातें हैं, वहाँ तो कुछ भी 'सही-ग़लत' नहीं होता।

★★★

१६६३. कई लोग कहते हैं, 'हम ज्ञाता-दृष्टा हैं'। अरे कहाँ का ज्ञाता-दृष्टा ? 'तुम' तो अभी 'नगीनदास' ही हो ना! 'आत्मा' होने के बाद, आत्मा का 'लक्ष्य' बैठने के बाद ही ज्ञाता-दृष्टा पद शुरू होवे।

★★★

१६६४. 'ज्ञान' किसे कहेंगे ? जो ज़रूरत पड़ने पर अवश्य हाज़िर हो जाये! वो 'ज्ञान' देनेवाला कौन होना चाहिए ? ये कोई भी देवे तो ना चले! ज्ञानदाता तो वचनबलवाला होना चाहिए, तो ही वो ज्ञान ज़रूरत पड़ने पर हाज़िर हो जाये। अगर 'ज्ञान' हाज़िर न होवे तो काम ना बने।

★★★

१६६५. ‘रिलेटिव’ वस्तुओं को ‘इन्वाइट’ करना योग्य नहीं। तो फिर ‘इन्वाइट’ करने योग्य क्या है? हमें तो ‘जिस गाँव’ जाना है उसका ‘ज्ञान’ जानना है।

१६६६. जब तक क्रिया का कर्ता ‘खुद’ है, तब तक अज्ञानता है। ‘अज्ञानता’ संसार का कारण है।

१६६७. साक्षीभाव और ज्ञाता-दृष्टा (भाव) में बड़ा फ़र्क़ है। साक्षीभाव कोई संतपुरुष को होवे, तत्पश्चात् उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रयत्न करना पड़े। साक्षीभाव होने पर भी भ्रांति न निकली होवे! चरम पद तो ज्ञाता-दृष्टाभाव में है।

१६६८. भगवान को साक्षी होने की ज़रूरत नहीं! उन्हें थोड़े ही न ‘कोर्ट’ में जाना है?! ये तो ‘तुम्हें’ साक्षी होना है, ताकि कर्म ना बँधे। और भगवान तो केवल ‘देखा’ ही करते हैं।

१६६९. साक्षीरूप में भगवान रहते हैं लेकिन वे लौकिक भगवान हैं! लौकिक भगवान अर्थात् ‘इगोइज़्म’ साक्षीरूप में है। साक्षीरूप में हमेशा रहे तो उसे कर्म ना बँधे।

★★★

१६७०. बस इतना ही जानना है : ‘I’ और ‘My’ का ‘सेपरेशन’ कर लो ना! तो फिर पूरा शास्त्र समझ गये! सारा ब्रह्मांड समझ गये!!

★★★

१६७१. ‘I’ ये वस्तुस्वरूप में है और ‘My’ ये संयोगस्वरूप में है। संयोगस्वरूप और वस्तुस्वरूप ये दोनों अलग हैं।

१६७२. स्थूल 'My' को छाँटना आ जाये, फिर सूक्ष्म को छाँटना है, फिर सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम को छाँटना है ! इन सबको छाँटते-छाँटते 'I'अलग हो जाये।

१६७३. 'I' एब्सोल्यूट है, उसे 'My' के भूत लगे हुए हैं।

१६७४. 'I' ये ही तुम 'स्वयं' हो, इतना ही 'रियलाइज़' करना है।

१६७५. स्थूल 'My' को छाँटना तो सबको आ जाये ! परंतु सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम 'My' को छाँटना कैसे आये ? ये तो ''ज्ञानीपुरुष'' का काम !

१६७६. 'I' with 'My' इसी का नाम जीवात्मा ! 'मैं हूँ और यह सब मेरा है' ये जीवात्मदशा और 'मैं ही हूँ और मेरा नहीं' ये है परमात्मदशा !!

★★★

१६७७. 'I' यानी 'मैं' और 'My' यानी 'मेरा'। 'My' सब परिग्रह है। परिग्रह जितना उठा सको, उतना ही रखो।

★★★

१६७८. 'I' और 'My' दोनों अलग ही दिशा के रास्ते हैं, वे दोनों कभी मिलते नहीं। लोग कहते हैं कि 'माय वाइफ- हम दोनों एक ही हैं', पर एक तो कह ही नहीं सकते न ? दोनों 'I' तो अलग ही हैं न ?

१६७९. संसार में सुखी होने का एक ही रास्ता है : 'My' को छोड़कर लोगों की सेवा करने में लग जाओ!

★★★

१६८०. जिसे 'My' कहा जाता है वो सब कुछ पराया है। 'I' ये 'स्वयं' है और 'My' ये सब पराया है, पुद्गल है। व्यवहार में 'यह मेरा है', ऐसा बोलने में हर्ज नहीं, परंतु अंदर 'I'- 'मैं' कौन हूँ? ये निश्चित कर लेना चाहिए।

★★★

१६८१. आत्मा के सिवा बाक़ी सब क्या है? व्यवहार है! और व्यवहार 'पराश्रित' है। 'पराश्रित' को लोगों ने 'स्वाश्रित' माना, और तुमने भी मान लिया। एक बार रोग पैठ गया तो फिर निकले कैसे? यह संसाररोग बढ़ते बढ़ते 'क्रोनिक' हो गया। उससे कैसे छूटें? यदि 'विज्ञान' मिले तो छूट पायें।

★★★

१६८२. मन-वचन-काया के परमाणु 'इफेक्टिव' हैं, अतः 'वस्तु' 'अच्छी-बुरी' दिखती है। वे अच्छे को 'बुरा' और बुरे को 'अच्छा' दिखाते हैं और इसी से अभिप्राय बँधता है। मन-वचन-काया के परमाणु ही अभिप्राय बताते हैं।

★★★

१६८३. यदि बाघ के प्रति प्रतिक्रमण करें तो बाघ भी हमारे कहने के मुताबिक करे। वैसे तो 'बाघ' और 'मनुष्य' में कोई फ़र्क़ नहीं, फ़र्क़ तो तुम्हारे स्पंदनों का है, अतः उसे असर होता है!

★★★

१६८४. 'बाघ हिंसक है' ऐसा तुम्हारे मन में ध्यान हो तब तक वह हिंसक ही रहे, और 'बाघ शुद्धात्मा है' ऐसा ध्यान रहे तो बाघ हिंसक न रहे। सब कुछ हो सकता है!

१६८५. किसी के प्रति हमारे अंदर एक ही बार 'परिणाम' बिगड़े कि 'उसको सबक सिखाना है'; अत: ये तो भगवान की साक्षी में निकली हुई बात, वो कैसे व्यर्थ जाये ?! परिणाम यदि न बिगड़े तो कोई हानि नहीं, सब शांत हो जाये, बंद हो जाये !

१६८६. जो परिणाम हो गया, उसकी चिंता नहीं करनी है, बल्कि जिसके आधार पर वो परिणाम होवे, वहाँ ध्यान रखना है।

१६८७. अकल किसे कहेंगे ? कि जिसने कभी किसी की भी नक़ल न की हो।

१६८८. 'मेरे कारण किसी को तकलीफ़ न पहुँचे' ऐसी समझ रहे, फिर तो काम हो ही गया न !

१६८९. ''ज्ञानीपुरुष'' कहतें हैं कि 'हम तो जान गये कि कौन घूँसा मार रहा है ?' सब कुछ तुम्हारा ही किया-धरा है ! 'नो बडी इज़ रिस्पोन्सिबल फॉर यू, यू आर होल एन्ड सोल रिस्पोन्सिबल फोर योरसेल्फ।'

★★★

१६९०. ये जगत् अनादिकाल से परिवर्तनशील ही है, परंतु 'राउन्ड' होने के कारण उसका 'एन्ड' मिलता ही नहीं।

१६९१. कुदरत का नियम ऐसा है कि हर एक को अपनी ज़रूरत के मुताबिक सुख मिल ही जाये, हर किसी का भरा हुआ 'टेन्डर' पूरा होता ही है।

१६९२. दृष्टि बदल जाय कि मेरे पास सोफा नहीं है, तो सोफा उधार लेकर आये और महीने का डेढ़ टका ब्याज भी चुकाए! सचमुच 'नेसेसिटी' कितनी है ये सबसे पहले नोट करना चाहिए।

१६९३. 'ठीक-ठाक है' ऐसा न बोलें, बल्कि 'अच्छा है' ऐसा बोलें, अतः अच्छा ही होगा।

१६९४. तीनों मंत्र इकट्ठे बोलें। ये सभी 'मंत्र' तो देवों को खुश करने के साधन हैं।

१६९५. संत हमें धर्म के मार्ग पर ले जायें और ''ज्ञानीपुरुष'' मुक्ति दिलायें।

१६९६. 'सभी को हम खुश रखें' ये ही सबसे बड़ा धर्म है।

१६९७. व्यवहारचारित्र यानी किसी भी स्त्री को दुःख न हो ऐसे बरतें, किसी स्त्री के प्रति दृष्टि न बिगड़े।

१६९८. व्यसन कहाँ हैं? जो गुप्त रखे हैं, वे ही व्यसन हैं। जो खुले दिखाई दें, उन्हें व्यसन नहीं कहते।

१६९९. दुनिया में कुछ भी अनायास नहीं होता। अंदर 'कवर्ड कॉज़िज' (गुप्त कारण) होते ही हैं। 'अनायास' ये भी आयास का ही फल है।

१७००. बीती तिथि तो ज्योतिषी भी नहीं देखता लेकिन ये अक्लमंद याद रखते हैं कि – 'इसने मेरे साथ धोखा किया था, उसने मुझे बेअक्ल कहा था !' ये वाणी का प्रवाह तो पानी के प्रवाह जैसा है, उसे कैसे पूछें कि तुम किस मार्ग से आये ?!

★★★

१७०१. व्यक्ति किसे कहा जाये ? देहधारी में जो ज़रासा व्यक्त हुआ हो उसे 'व्यक्ति' कहा जाये। यदि संपूर्ण व्यक्त हुआ हो तो वह 'विशेष व्यक्ति' कहलाये !

★★★

१७०२. इस जगत् में जो 'पॉइजन' हो वो संत पुरुष पीयेंगे और अमृत को जगत् पीएगा, क्योंकि जगत् के लोग निर्बल हैं।

★★★

१७०३. पवित्र भूमी में अगर वहाँ के आचार-विचार का पालन न करें, तो ज़बरदस्त बंधन होवे, नरकगति बँध जाये।

★★★

१७०४. हरेक मनुष्य को इतना तैयार होना चाहिए कि कोई भी जगह उसे बोझरुप न लगे। जगह उससे भले ही ऊब जाय, पर खुद न ऊबे ! ऐसे तैयार होना है। जगत् में अनंत स्थान हैं, अपार क्षेत्र हैं !! अनंत क्षेत्र हैं !

★★★

१७०५. सामनेवाले का 'व्यूपॉइन्ट' क्या है, वो जानकर बोलिए। अपनी ही दृष्टि से तोलकर या जोड़कर बोलना ये गुनाह है।

१७०६. जगत् में तुम्हारी ज़रूरत की हर चीज़ अग्रिम रूप से तैयार रहती है, क्योंकि अंदर परमात्मा बैठे हैं ! बशर्ते मन-वचन-काया की दख़लअंदाजी न हो तो !!

१७०७. जो साधन साध्य ना बताये वो साधन किस काम का ?!

१७०८. धर्म अर्थात् भलाई करना और अधर्म अर्थात् दु:ख देना ! ये 'धर्माधर्म' कहा जाये, जबकि 'सायन्स' तो धर्माधर्म से परे है।

१७०९. अशुभ में से शुभ होना ये अहंकार से संभव है, परंतु शुभ में से शुद्ध में आने के लिए अहंकार का काम नहीं। वहाँ से आगे के सोपान चढ़ने के लिए सीढ़ी कहाँ है, ये पता ही ना चले ना ! इसी वजह से तो सब रुका हुआ है।

१७१०. शुभ में से शुद्ध में कैसे जायें ? इसके लिए शब्द नहीं है ! ये तो जब ''ज्ञानीपुरुष'' 'स्वरूप का भान' कराएँ, और भगवान की कृपा प्रदान करवाएँ तो काम बने।

१७११. दादाश्री कहते हैं कि १९५८ में यह ज्ञान प्रकट हुआ, उसी दिन से हम ''ज्ञानी'' हुए !! उससे पहले तो हम भी अज्ञानी ही थे न !

१७१२. इस भव में तुम्हें केवल इतना ही करना है कि सामनेवाले को निमित्त जानकर तुम्हें शांत रहना है, मन को ज़रा भी बिगड़ने नहीं देना है। फिर भी मन बिगड़े तो निमित्त की माफ़ी माँग लेना कि 'हे निमित्त ! तुम तो निमित्त हो। मेरा मन बिगड़ा, अतः मैं माफ़ी माँगता हूँ।' बस इतना ही करना है, ये ही पुरुषार्थ है !

★★★

१७१३. सभी निमित्त लेकर ही आयें हुए हैं। मैं भी निमित्त लेकर आया हूँ। इस देह से इतने कार्य इनके द्वारा होंगे ऐसा निमित्त होता है।

★★★

१७१४. किसी ने कहा 'मेरी दाढ़ दुःख रही है'। अरे ! तेरी ही दाढ़ तुझे क्यों दुःखेगी ? ये तो विरोधाभासी वाक्य बोल दिया ! जो तेरा है वह तुझे कभी दुःख नहीं देगा और जो तेरा नहीं है, वो तुझे दुःख दिये बिना रहेगा नहीं ! इसका तुम विवरण करके लाओ तो हल निकले ना ?

★★★

१७१५. धीरज कोई रखने की वस्तु नहीं अपितु धीरज तो सीखने की वस्तु है। धीरज कैसे सीख पायें ? ये तो धीरजवाले के पास बैठने से, और धीरजवाले को देखने से सीख पायें।

★★★

१७१६. बाहर बिगड़ गया हो तो भले ही बिगड़ गया किन्तु तुम अंदर मत बिगड़ने देना। क़र्ज़ लौटाने की स्थिति न हो तब भी अंदर से ये साफ़ रखना कि 'क़र्ज़ लौटाना ही है !' यदि तुमने अंदर का भाव बिगड़ने नहीं दिया तो क़र्ज़ चुकाने का समय आयेगा ही !!

★★★

१७१७. लोग मित्रता तोड़ते हैं तो अंदर से और बाहर से, दोनों तरफ से तोड़ देते हैं। संयोगवशात् यदि बाहर का बिगड़ा किन्तु अंदर का तो बिगड़ना ही नहीं चाहिए।

१७१८. अंदर का न बिगड़ा अर्थात् 'हमारा' ना बिगड़ा। बाहर का बिगड़ा हुआ तो चिता में जायेगा! बाहर का तो सुधरे या ना भी सुधरे !!

१७१९. यदि अंदर कुछ न बिगड़े तो बाहर कुछ भी नहीं बिगड़ता! जगत् का ये गुप्त रहस्य है।

१७२०. बहुत क़र्ज़ बढ़ जाने पर लोग पहले सोचते हैं कि 'लौटाना है' ! फिर सोचेंगे 'ना लौटाऊँ तो भी क्या ?' अब ये भाव बिगड़ गया !! अंदर से ऐसा समर्थन ना करें।

१७२१. सबको अंदर से जो आवाज़ आती है, 'इन्फोर्मेशन' (सूचना) मिलती है, ये उनके पुण्य-पाप के कारण होता है। सब ज्ञान-दर्शन अंदर ही है, अंदर से सभी संदेश मिलें, लेकिन कब तक ? जब तक तुम उन्हें न रोको ! भीतर की सूचना का उल्लंघन करोगे तो 'इन्फोर्मेशन' आना बंद हो जायेगी।

१७२२. आत्मा परमात्म-स्वरूप है! वो न तो ग़लत सुझाये, ना ही सही सुझाये। ऐसा है कि पाप का उदय आने पर ग़लत सूझे, और पुण्य का उदय आने पर सही दिखाये। इसमें आत्मा कुछ भी नहीं करती, वो तो मात्र स्पंदनों को 'देखती' ही रहती है।

१७२३. इस संसार में ये मन-वचन-काया के तीन भूत लगे हुए हैं।

१७२४. सभी पौद्गलिक क्रिया संसारफल दे, विफल न जाये। अगर तुम गन्ना बोओगे तो 'मीठा' खाओगे, और करेला बोओगे तो 'कड़ुआ' खाओगे! जो रस तुम्हें पसंद हो वो बोओ और यदि मोक्ष में जाना हो तो बुआई ही बंद कर दो, बीज डालना ही बंद कर दो।

१७२५. अज्ञानभाव से जो कुछ किया जाता है वो सब बंधन है। और ज्ञानभाव से जो किया जाये वो सब मुक्ति दिलाये।

१७२६. किसीका भी अहंकार भग्न करके हम कभी सुखी नहीं हो सकते। अहंकार तो उसका जीवन है!

१७२७. जिस 'इगोइज़म' का उपयोग दूसरों को दुःख देने के लिए किया जाये वो खुद को ही दुःख दे। जिस 'इगोइज़म' का उपयोग दूसरों को सुख देने के लिए किया जाये वो खुद के ही सुख का कारण हो जाये।

१७२८. अभिमान निवृत्त न होवे तब तक केवल दुःख, दुःख और दुःख ही होता है।

१७२९. अहंकार यानी क्या? अंध होना-स्वयं की दृष्टि गँवाकर। "ज्ञानी" अहंकार निकाल देवे।

१७३०. सबसे बड़ी निर्बलता कौन सी? 'इगोइज़म'! चाहे कितना भी गुणवान क्यों न हों, लेकिन यदि 'इगोइज़म' है तो वो 'युजलेस' (व्यर्थ) है। गुणवान तो नम्रतायुक्त होवे, तभी काम का।

१७३१. अहंकार कैसा होना चाहिए ? लोग 'एक्सेप्ट' करें ऐसा।

१७३२. 'इगोइज़म' होने में हर्ज नहीं, परंतु वो 'नॉर्मल' होना चाहिए। 'नॉर्मल इगोइज़म' यानी जिससे सामनेवाले को दुःख न पहुँचे।

१७३३. मनुष्य भूतकाल को क्यों जुगालता है ? वो घायल अहंकार का इस प्रकार इलाज करता है।

१७३४. अहंकार और लक्ष्मी के बीच बड़ा बैर है ! जो काम करना हो उसकी सीमा तक अहंकार होना चाहिए; उससे अधिक-जो फैला हुआ अहंकार होता है, उसके और लक्ष्मी के बीच बड़ा बैर होता है !! वहाँ से लक्ष्मी दूर रहे।

१७३५. मनुष्य केवल अहंकार करते हुए फिरे और आख़िरकार जाये चिता में, ऐसी दयाजनक स्थिति है ! और यदि कोई बहुत अच्छा इंसान हो तो उसे चंदन की लकड़ियाँ मिलें, किन्तु है तो लकड़ियाँ ही न ?! जो मरे ही नहीं वो सच्चा शूरवीर !

१७३६. एक अकेला 'ज्ञान' ही मुक्ति देनेवाला है। सारे साधन बंधनरूप हैं।

१७३७. वैसे तो जगत् में किसी भी वस्तु की 'वेल्यू' नहीं, लेकिन किसी भी वस्तु को डी-वेल्यू नहीं करना है।

१७३८. इस दुनिया में किसकी क़ीमत ज़्यादा ? जिसकी कमी हो, उसकी।

१७३९. कला की क़ीमत नहीं, बल्कि कलाकार कम हैं या ज़्यादा इस पर उसकी क़ीमत होती है।

★★★

१७४०. कुछ लोग कहते हैं न कि 'मेरी क़ीमत ही नहीं की ?' अरे, तुम्हारी क़ीमत थी ही क्या ? जाकर पूछो दरिया से कि 'मेरी क्या क़ीमत ?' एक लहर आएगी और तुम्हें अपने साथ बहा ले जाएगी ! कितनी सारी लहरों का वो मालिक, तुम्हारे जैसे कईयों को बहाकर ले गया ! क़ीमत तो उसकी है, जिसे राग-द्वेष न होवे।

१७४१. जब रुपया सस्ता हो तब मनुष्य महँगा होवे और जब रुपया महँगा हो तो मनुष्य सस्ता होवे। अभी मनुष्य सस्ता है, कल फिर वह महँगा हो जायेगा।

१७४२. ये चुड़ियाँ कितनी सुंदर हैं ! लेकिन किसी पुरुष को पहनाएँ तो उसे पसंद नहीं आए, क्योंकि अपनी क़ीमत उसने खुद तय की है। थर्मोमीटर और बुख़ार, दोनों एक कैसे हो सकते हैं ?!!

★★★

१७४३. घर में अपना चलन न रखें। जो चलन रखता है उसे भटकना पड़ता है। नहीं चलनेवाले सिक्कों को लोग पूजा में रखते हैं !! वाइफ के साथ 'फ्रेन्ड' जैसे रहें। वो तुम्हारी 'फ्रेन्ड' और तुम उसके 'फ्रेन्ड' !

१७४४. धंधे में चालाकी करोगे तो भी उतना ही मुनाफ़ा होगा और चालाकी नहीं करोगे तो भी उतना ही मुनाफ़ा मिलेगा ! चालाकी तो तुम्हारे लिए अगले भव की ज़िम्मेदारी खड़ी करे । अत: भगवान ने चालाकी करने से मना किया है। फ़ायदा, कुछ नहीं, नुक़सान बेशुमार !

१७४५. दृष्टि सीधी हो तब खुद के ही दोष दिखें और उलटी दृष्टि हो तब सामनेवाले के दोष दिखें।

१७४६. जैसी 'ड्रॉईंग' बनी हुई है तद्नुसार सब चलता रहता है, इसे 'तुम' बस 'देखो' । 'इच्छाएँ' ये भी तो 'ड्रॉईंग' हैं।

१७४७. खुद की नीयत ही चोर है, वरना दुनिया में कोई तुम्हारा चुरा ले ये संभव ही नहीं, कोई तुम्हें लूट सके ऐसा है ही नहीं। खुद की नीयत ही लुटवाती है। लूटनेवाला तो निमित्त है। बाक़ी हिसाब तो तुम्हारा ही है।

★★★

१७४८. लोग तो जो कोई मिल जाये उसीसे बातों में लग जाते हैं। बस, कोई मिलना चाहिए ! इन बातों में तो अनंत शक्तियाँ बर्बाद हो जाती हैं !

★★★

१७४९. कोई वस्तु सही ठहराने की कोशिश करें तो वो ज़्यादा ग़लत हो जाये; अत: हमारी बात सही ना निकले तो हमें उसे छोड़ देना चाहिए।

★★★

१७५०. ''ज्ञानीपुरुष'' कहते हैं कि हमारी बात सही ठहराने के लिए हमें फुर्सत नहीं; और तुम्हारी बात सही ठहराने के लिए भी हमें फुर्सत नहीं।

१७५१. सामनेवाला कितना भी बोले तो उसका लघुतम-निष्कर्ष निकाल लें । पूरा जगत् 'व्यवस्थित' है ! अतः किसी को ये न कहो कि 'तुमने ये ग़लत किया ।' ऐसा तो कहना ही नहीं और सोचना भी नहीं है।

★★★

१७५२. ''ज्ञानी'' तो उनका नाम कि वे जो बोलें उसे साबित कर दें ! वे ऐसा न कहें कि ''मेरी इतनी बात सही है-ये तुम्हें माननी ही पड़ेगी।''

★★★

१७५३. ये जगत् सामान्य भाव से है, इस पर किसी की मालिकी नहीं। यहाँ तो जिसे जो अनुकूल हो, वो करे ! तुम उसकी निंदा नहीं कर सकते, 'ये ग़लत है', ऐसा नहीं कह सकते, 'ये ग़लत है' ऐसा सोच भी नहीं सकते। ये सब कुदरती संचालन है !

★★★

१७५४. ये तो बहुत बड़ा जंजाल है, हर एक परमाणु जंजाल है ! इसमें से छूट ही न पाये ऐसा है। इसलिए भगवान ने कहा है कि-''ज्ञानीपुरुष'' मिल जाए तो उनके पास पड़े रहना !

★★★

१७५५. पिछले जनम में जिसके साथ हिसाब बँधा हुआ हो, वो ही साथ रह सकता है।

१७५६. लौकिक में 'अलौकिकता' के दर्शन होवे तो काम बन जाये।

१७५७. इस जगत् में हर कोई अपनी 'ड्यूटी' बजाता ही है। लेकिन जो 'ड्यूटी' निभाए भी और ऊपर से भलाबुरा कहकर सुनाए, वह पशुगति में जाय। जो अपना फ़र्ज़ समझकर ड्यूटी निभाए वो फिर से मनुष्यभव पाये और जो नम्रतापूर्वक अपनी ड्यूटी बजाए वो देवगति में जाये।

१७५८. जहाँ लेन-देन है वहाँ आत्मा नहीं होवे। लेन-देन है, वहाँ शेअरबाजार है।

१७५९. 'पूरी दुनिया में सबसे नालायक मैं हूँ', ये जब से समझ में आये, तभी मानों कि हम लायक हुए।

★★★

१७६०. 'कोई जीव अन्य किसी जीव को किंचित् मात्र दख़ल नहीं दे सकता!' ये सिद्धांत जो समझ जाये वह खुद स्वतंत्र हो जाय!!

★★★

१७६१. जो 'अपना' धर्म नहीं, वो 'करने' जाएँ तो गड़बड़ हो जाये।

★★★

१७६२. चूँकि पूरी रात तुम किसी को परेशान नहीं करते, तो कोई तुम्हें रात में परेशान नहीं करता न? रात में कोई दरवाज़ा खट-खटाता नहीं न? दिन में दख़ल देते हो इसलिए दिन में परेशान होते हो! एक भी मुश्किल छूए तक नहीं, ऐसा कुदरत का नियंत्रण है, बशर्ते तुम दख़ल न दो तो!! तुम्हें मुश्किलें आती हैं तुम्हारी ही दख़ल के कारण!!

१७६३. यदि हमारा कोई बिगाड़नेवाला है, तो दूसरी ओर कोई मदद करनेवाला भी है-ये बात निश्चित है । जैसे बिगाड़नेवाला नहीं दिखाई देता, वैसे मदद करनेवाला भी नहीं दिखता । बिगाड़नेवाला दो-पाँच साल से ज़्यादा न टिके, वैसे ही मदद करनेवाला भी अधिक न टिके।

१७६४. दूसरों को 'हेडेक' देने पर खुद को ही सरदर्द होवे।

१७६५. तुम यदि सरल रहो, तो सामनेवाले को सरल रहे बिना चारा ही नहीं। कोई तुम्हें गाली दे तो क्या वो तुम्हारे जोखिम पर देता है ? क्या वो भगवान के जोखिम पर देता है ? नहीं, वह तो खुद के जोखिम पर ही तुम्हें गाली देता है। लेकिन तुम बदले में गाली दो तो ये तुम्हारा जोखिम हो जाए।

१७६६. झूठ बोलने से क्या नुक़सान ? विश्वास उठ जाए हमारे पर से ! और जब विश्वास उठ गया तो फिर मनुष्य की कोई क़ीमत नहीं !!

१७६७. यदि जेल में कोई क़ैदी उसके कमरे में चूना पोत दे, तो ऐसा थोड़ी न कहा जाय कि उसे जेल पसंद है ? वो ऐसा क्यों करता है ? क्योंकि उसके पास कोई चारा ही नहीं। ठीक इसी प्रकार, ये संसार में कोई चारा ही नहीं, इसीलिए लोग घरबार-मोटर-बंगला आदि बसाते हैं !

१७६८. कोई ये कहते हुए जेबकतरे की तरफ़दारी करे कि, 'इसमें क्या ग़लत है ? इसे खाने को नहीं मिलता, तभी तो जेब काटता है न ?' देखो, ये खुद जेबकतरा नहीं, किन्तु ऐसे तरफ़दारी करने से वह दूसरे भव में स्वयं जेबकतरा बन जाय ! इस बेचारे की ग़लती हुई अंधेरे में, और दंड मिला उजाले में !

१७६९. किसी भी बात का अभिप्राय नहीं रखना चाहिए। अभिप्राय अर्थात् तुमने उसकी अनुमोदना की । ग़लत को ग़लत 'जानो' और सही को सही 'जानो', ग़लत पर किंचित् मात्र द्वेष नहीं और सही पर किंचित् मात्र राग नहीं । वस्तुतः 'सही-ग़लत' कुछ होता ही नहीं । 'सही-ग़लत' ये द्वंद्व है, भ्रांत दृष्टि है, सामाजिक स्वभाव है ! भगवान की दृष्टि में ऐसा कुछ नहीं । भगवान की दृष्टि में तो टेबल पर भोजन करना, और पाख़ाना जाना, दोनों समान हैं।

१७७०. ''ज्ञानीपुरुष'' की कोई जेब काट ले, तो ''उन्हें'' क्या दिखाई दे ? 'चलो, जमा हुई इतनी राशि ।' घर में जीतने पैसे खर्च हुये वो गये गटर में । अब ये 'मेरा-तेरा' के संकुचित भाववालों को कैसे दिखाई दे ? विशाल भाव से 'जैसा है वैसा' दिखाई दे ! यही है 'ज्ञान' ।

१७७१. इस संसार में किसी भी बात का खंड़न करना ये भगवान का खंड़न करने के बराबर है। चोरी का भी खंड़न करना ये भगवान का खंड़न करने के बराबर है। यह 'चोरी' तो एक तरह का जुलाब ही है, वो हमें स्वच्छ करता है।

१७७२. मनुष्य होकर प्राप्त संसार में दख़ल न देवे तो संसार सरल और सीधा चलता रहे, परंतु मनुष्य तो प्राप्त संसार में दख़ल देता ही रहता है। जागे तब से ही दख़ल करे। प्राप्त संयोगो में ज़रा भी दख़ल न हो तो भगवान की सत्ता रहे, परंतु उसकी बजाय दख़ल देकर मनुष्य खुद की सत्ता खड़ी करता है।

★★★

१७७३. कोई भी वस्तु को छेड़ने से नुक़सान होता है। जो साहजिक है उसमें यदि खराबी हो तो सुधारने के लिए दख़लअंदाजी की ज़रूरत नहीं, बल्कि रास्ता निकालने की ज़रूरत है, उपाय करने की ज़रूरत है।

★★★

१७७४. जब से शादी हुई तब से ही पति पत्नी को सुधारने में लगा रहता है, परंतु मृत्यु तक दोनों ही नहीं सुधरते! उसकी बजाय कुछ और सुधारा होता तो ठीक हो जाता। अतः पत्नी को सुधारने के फ़िराक़ में ही ना रहें। बल्कि, वो हमें सुधारे तो अच्छा, हम उसे ना सुधारें।

★★★

१७७५. दादाजी कहते हैं हम तो कहीं भी दख़ल नहीं देते। जो दख़लंदाजी ना करे, उसे कोई कभी नुक़सान नहीं पहुँचायें। सब दख़लवालों के बीच भी हमें कोई हर्ज नहीं बल्कि हमारी उपस्थिति से ही सारी झंझट खत्म हो जाय। 'जिसका' 'आत्मा' में ही मुक़ाम है, 'उसे' क्या गिला-शिकवा ?! मुक़ाम ही 'आत्मा' में है, तो 'उसे' व्यवहार बाधा ना करे।

१७७६. 'व्यवहार में दख़लंदाजी करना', ये अशुद्ध व्यवहार!

१७७७. संसार में हाथ डाला तब से क्लेश ही क्लेश, और आत्मा में हाथ डाला तब से आनंद ही आनंद !

१७७८. 'वीतरागों' की खोज क्या है ? 'किंचित् मात्र हिंसा', ये हारने की निशानी है। मन से भी यदि सामनेवाले का बुरा सोचा तो, ये हारने की निशानी है। हरेक के अंदर भगवान बैठे हैं, ये गुप्त तत्त्व कैसे समझ में आये ?! 'वीतरागों' ने 'आत्मतत्त्व' को 'गुह्यतम तत्त्व' कहा है।

१७७९. किसी की 'खिल्ली उड़ाना' ये तो बहुत ग़लत है। क्योंकि ये तो 'भगवान की मसख़री हुई' । भले ही गधा हो, परंतु 'आफ्टर ऑल' (अंततः) वो क्या है ? भगवान ही है।

१७८०. किस 'स्टेज' को पाना है ? हमारे घर में कभी भी क्लेश न होवे ऐसी बुद्धि उत्पन्न होनी चाहिए। और सब तो चलेगा, किन्तु अंतरक्लेश नहीं होना चाहिए।

★★★

१७८१. हरेक को 'पज़ल' तो होते ही हैं ! ये 'पज़ल' कैसे 'सोल्व' किये जायें, इस 'सायन्स' की जानकारी लोगों को मिले, तो बहुत बढ़िया।

★★★

१७८२. 'दी वर्ल्ड ईझ दी पज़ल इटसेल्फ' ! ये 'पज़ल' जो 'सॉल्व' करे, उसे परमात्मपद की 'डिग्री' प्राप्त होवे।

१७८३. कप-प्लेट नौकर के हाथ से टूट जाय तो मालिक को अंदर 'पज़ल' खड़ा हो जाय। ये कप-प्लेट 'कौन' तोड़ता है ? ये जगत् कौन चलाता है ? ये पता नहीं और ये तो बीच में 'गेस्ट' चिंता करता है !

१७८४. 'मोटर-कार' के पहिये बंद और इंजन चालू रहे, ऐसी कोई 'न्युट्रल-गीयर' की व्यवस्था होती है न 'मोटर' में ? वैसे ही यह संसार चालू रहे, और 'कॉज़िज' बंद हो जाये, ऐसा कुछ कर लेना चाहिए !

१७८५. संसार यानी शाता-अशाता वेदने का कारख़ाना !

१७८६. जिन्हें मृत्यु है वे सभी संसारी !

१७८७. संसार यानी थक जाना और विश्राम करना !

१७८८. संसार यानी इन्द्रियसुख का बाज़ार !

१७८९. संसार यानी पोलम्-पोल व्यवहार और मोक्ष अर्थात् नियमबद्ध व्यवस्था !

१७९०. जब तक स्वार्थ है तब तक मेल-मिलाप नहीं हो सकता। मेल-मिलाप तो परमार्थ से हो पाये।

१७९१. जगत् तो मेल-मिलापवाला है ही नहीं ! जब ''ज्ञानीपुरुष'' मोक्ष का दान दें तब ही मेल-मिलाप रह पाये। 'ज्ञान' के बिना मेल-मिलाप नहीं रह सके।

१७९२. आंतरशत्रुओं का जिन्होंने नाश किया है ऐसे अरिहंत को नमस्कार करता हूँ। जो आंतरशत्रु हैं, उन्हें पहचानो। 'क्रोध-मान-माया-लोभ' ये आंतरशत्रु हैं।

१७९३. 'सब में शुद्धात्मा देखें' यही विश्वमैत्रीभाव !

१७९४. जो वीतराग हुए हैं, वे मालिकीभाव नहीं रखते।

१७९५. मालिकीपन किया और इसका अहंकार किया इसलिए मनुष्य को भुगतने की स्थिति आयी। यहाँ कोई किसी का मालिक नहीं। किसकी चीज़ और किसका माल ?! ये तो ऐसा है कि मानो समुद्र में से जिसने जितनी मछलियाँ पकड़ी उतनी उसके बाप की, फिर उस पर मालिकी भाव खड़ा किया, और इसकी जोखिम अपने सर ले ली।

१७९६. मालिकीपन हो वहाँ उपाधि होवे।

१७९७. जिसका तुम स्वामित्व करोगे वो सब तुम्हारे आड़े आयेगा। अंततः, मरते समय जिस किसी पर स्वामित्व किया है, वो सब दुःखदायी बनेगा !

१७९८. जो अपने आप को ना छले, उसे दुःख न आये। दुःख तो खुदको छलने से ही आते हैं।

१७९९. हम लोगों से छल नहीं करते, बल्कि अपनी आत्मा को ही छलते हैं।

★★★

१८००. जगत् क्रोधी की अपेक्षा क्रोध नहीं करनेवाले से ज़्यादा डरे। ऐसा क्यों ? क्रोध बंद हो जाने पर प्रताप उत्पन्न हो जाये। ये क़ुदरत का नियम है !! नहीं तो, क्रोध न करनेवाले का रक्षण कौन करेगा ?! 'क्रोध' ये तो अज्ञानता में रक्षा करे।

१८०१. क्रोध में परमाणु की उग्रता होवे और लोभ में लक्ष्मी संबंधी परमाणु का आकर्षण रहे।

१८०२. तुम अभी किसी पर गुस्सा हुए तो ये 'डिस्चार्ज' कषाय हुआ, लेकिन इसमें यदि 'तुम्हारे' 'भाव' का समर्थन है तो फिर तुमने ये 'चार्ज' का बीज बो दिया।

★★★

१८०३. क्रोध करना यानी अपनी वर्तमान संपत्ति को आग लगाना।

★★★

१८०४. जब तक निर्बलता न जाये तब तक परमात्मा न मिले। 'क्रोध-मान-माया-लोभ' ये निर्बलताएँ हैं।

★★★

१८०५. अध्यात्म को जाना ऐसा तब कहेंगे जब दिन-ब-दिन क्रोध-मान-माया-लोभ घटते ही जायें, बढ़े नहीं।

१८०६. एक बार कषायरहित ''ज्ञानीपुरुष'' के दर्शन हो जायें तब से समझो मोक्ष की शुरुआत हो गयी। कषायरहित किसे कहेंगे ? कषाय था नहीं, है नहीं और होगा नहीं, ऐसी जिनकी दशा हो उन्हें ! अर्थात् 'उन्हें' परपरिणति ही न होवे। उनके 'दर्शन' करें तो कल्याण हो जाय !

★★★

१८०७. कषाय करना अर्थात् ठोकरें खाना। आर्तध्यान--रौद्रध्यान होना यानी ठोकरें खाना।

★★★

१८०८. लोग कहते हैं कि 'मुझे ठोकर लगी', तब ठोकर कहती है कि 'मैं तो जहाँ थी वहीं हूँ। ये कमनसीब और अंधे मुझे आ टकराते हैं।'

★★★

१८०९. संसार के लोग मेहमान के आते ही परेशान हो जाते हैं। पत्नी से कहेंगे कि 'तुम मुँह फुलाना, ताकि वह चला जाए।' तुम मुँह फुलाओ या गाली भी दो फिर भी वह जानेवाला नहीं ! ये होनी कैसे टले ?!! लेकिन ये जो मुँह फुला रहे हो, ये तो आनेवाले जनम के लिए कर्म जमा कर रहे हो !

★★★

१८१०. हमारे कारण किसी के मन में चुभन नहीं होनी चाहिए। हमें तो सबको खुश करके ही यहाँ से निकलना है।

★★★

१८११. जिसे भीतर प्रसन्नता हो, उसे बाहर भी प्रसन्नता रहे। मन वो दर्पण है जो भीतर का बाहर दिखाये।

१८१२. हमें तो गिरे हुए को उठाना है। 'क्यों गिर गये ?' ये पूछना नहीं है।

१८१३. पात्रता कहाँ होवे ? संसार में जिसे कभी भी क्लेश न होता हो, वो 'पात्र' कहलाये।

१८१४. ये लोग किचकिच करके अपनी सिद्धियाँ गँवा बैठते हैं, अतः 'जैसा है बस वैसा' जानो। इन सब रिश्तों को 'लौकिक' जानो, उन्हें अलौकिक रिश्ते-नाते मत मानो। कुछ ऐसा खोज लो कि इस 'पज़ल' के बीच ही शांति से रह पाएँ, ये खोज अपने अंदर ही करनी है!

१८१५. किसी मनुष्य को टोकना ठीक नहीं। बात सही हो, परंतु आग्रह न हो, किचकिच न हो, तो सामनेवाले के हृदय को छू जाये। बात सही भी हो लेकिन यदि किचकिच करें या आग्रह रखें, तो वह सामनेवाले को स्पर्श ना करे।

१८१६. सामनेवाले को बुरा ना लगे तो टोक सकते हैं; उसे बुरा लगे तो मत टोकना।

१८१७. जगत् तो बग़ैर टोके रहता ही नहीं, हालाँकि टोकाटाकी नहीं करनी चाहिए! बिना टोके ही जगत् सुंदर ढंग से चले ऐसा है। कुछ भी दख़लअंदाजी करने जैसा ये जगत् नहीं। जगत् तो मात्र 'जानने' जैसा ही है।

★★★

१८१८. सत्य-असत्य तो कोई बाप भी पूछता नहीं। मनुष्य को सोचना तो चाहिए न, कि मेरी बात सही है, फिर भी सामनेवाला उसे स्वीकार क्यों नहीं करता ? कारण ये है कि सत्य बात कहने के पीछे आग्रह है, किचकिच है!

१८१९. 'क्रिमिनल' रुआब नहीं होना चाहिए, 'सिविल' रुआब चलेगा।

१८२०. भगवान कहते हैं, 'द्वेष उपकारी है, प्रेम-राग कभी नहीं छूटता'। सारा जगत् प्रेम-परिषह में फँसा हुआ है! अतः दूर से ही 'राम-राम' कहकर आगे निकल जाना।

★★★

१८२१. किसी को दुत्कार के मोक्ष नहीं जा सकते, अतः सावधान।

★★★

१८२२. हम नाम कमाने के लिए नहीं आये, बल्कि हम तो किसीके काम आ सकें इसीलिए आये हैं।

★★★

१८२३. 'हम क्या हैं, और हमारा क्या है', ये हमें ही समझना है-ये किसी और को बताने के लिए नहीं।

★★★

१८२४. क्रोध-मान-माया-लोभ से स्वार्थ खड़े रहते हैं, अतः मनुष्य को पता नहीं चलता कि किसका मरण होता है और किसका जन्म होता है! ये तो 'बिलीफ' ही 'राँग' बैठ गई है!! परंतु आगे बढ़ते बढ़ते यदि अत्याधिक कालयापन के बाद ''ज्ञानीपुरुष'' मिल जाएँ तब भान होवे कि 'जन्म-मरण' ये तो अवस्था है।

★★★

१८२५. समकित किसे कहेंगे ? सर्वसत्ताधीश को पहचानकर सभी की व्यवहारसत्ता मान्य करनी पड़ती है। जगत् के लोग मिली हुई सत्ता का दुरुपयोग करते हैं, इसीलिए मनुष्यत्व गँवा देते हैं। ''ज्ञानी'' तो जिसकी जो सत्ता है उसे मान्य करते हैं।

★★★

१८२६. सत्ता का प्रयोग करने से खुद को 'डिप्रेशन' आये! सत्ता तो सुख देने के लिए है। सत्ता तो गुनहगार को भी सुख देने के लिए है।

१८२७. अंतिम बेला में कई लोग कहेंगे, 'हे भगवान ! मेरी आयु ज़रा दो घंटे बढ़ा देना ताकि ज्ञानी आ जाए और उनके दर्शन हो पाए–ऐसा शोर मचायेंगे ! अरे, अब चिल्लाने से क्या ? अब आजिज़ी क्यूँ करते हो ? जब हाथ में सत्ता थी तब तो कुछ किया नहीं। अब सत्ता नहीं, तब माँगने चले !

★★★

१८२८. परसत्ता को अपनी सत्ता माने, ये ही है भ्रांति ! इतना भी यदि समझ में आ जाय तो हल निकले। जब लोग ये समझने लगेंगे कि ये किसी और की सत्ता है, तब भ्रांति कुछ दूर हो पाएगी।

★★★

१८२९. अहंकार का स्वभाव है, सत्ता का दुरुपयोग करना।

★★★

१८३०. ''ज्ञानीपुरुष'' किसी को कभी भी ऐसा नहीं कहते कि 'तुम मेरी मानो' ! क्योंकि ये उसकी खुदकी सत्ता में है ही नहीं।

★★★

१८३१. वर्ल्ड में ऐसे किसीने जन्म नहीं लिया जिसके पास पाख़ाना करने की 'अपनी' स्वतंत्र शक्ति हो ! यह तो जब क़ब्ज़ होगा तभी पता चलेगा !!

★★★

१८३२. एक 'मिनिट' के लिए भी जिसकी सत्ता यदि न चले, मानो कि उसके पास क़ायम की सत्ता है ही नहीं।

★★★

१८३३. एक क्षण के लिए भी जिसे स्वसत्ता का भान हो जाये, तो वह परमात्मा हो सकता है।

१८३४. 'वीतरागता' ये भव पार तरने के लिए ही है।

★★★

१८३५. 'स्वरूप'स्थिति होने का लक्षण क्या ? वीतरागता।

१८३६. ये 'लोकसंज्ञा' से सुख नहीं, बल्कि ''ज्ञानी'' की संज्ञा से सुख है। लोगों का माना हुआ सुख, ये सुख नहीं है।

१८३७. अविनाशी चीज़ में सुख मानना, यही है समकित !

१८३८. 'समकित' ये 'ज्ञान' नहीं, अपितु समझ है।

१८३९. सम्यक्दर्शन किसे कहा जाए ? जो 'इटरनल' को दिखाये। मिथ्यादर्शन किसे कहा जाए ? जो 'टेम्परी' को दिखाये।

★★★

१८४०. 'वस्तु' को 'जैसी है वैसी' यथार्थ रूप में ही देखना–इसीका नाम समकित और अन्य रूप में देखना, ये है मिथ्यात्व !

★★★

१८४१. समकिती को कहीं भी कोई आपत्ति नहीं होती। वह तो हर जगह ज्ञाता–दृष्टा ही बना रहे, उसे कभी बाधा ही ना रहे। जब तक आपत्ति है, नाराज़ी है तब तक समकित कहा ही नहीं जाये।

१८४२. 'सभ्यता', ये समकित की निशानी है और 'एटिकेट' ये मिथ्यात्व की निशानी है।

१८४३. जहाँ ज़रा भी 'एटिकेट' है वहाँ मोक्षधर्म तो क्या धर्म भी नहीं है। धर्म तो साहजिकता में होवे।

१८४४. सभ्यता तो स्वाभाविक होनी चाहिए, बाक़ी सब तो 'एटिकेट' कहलाये। मोक्षमार्ग में तो सादगी होनी चाहिए, वहाँ 'एटिकेट' के भूत नहीं होने चाहिए।

१८४५. सच्चा धर्म कहाँ है? जहाँ स्त्री-पुरुष-बच्चे-युवा-बूढ़े-अनपढ़-पढ़ेलिखे सभी आकर्षित होवे वहाँ।

१८४६. जहाँ किसी भी प्रकार की 'फीस' नहीं, जहाँ 'बोदरेशन' नहीं, जहाँ 'डाँट' नहीं, वहाँ भगवान रहते हैं।

★★★

१८४७. हमारी आलोचना करने का लोगों को अधिकार है। हमें किसी की भी आलोचना करने का अधिकार नहीं।

★★★

१८४८. किसी की ज़रा सी भी आलोचना करना ये 'केवलज्ञान' के लिए बाधक है! अरे, आत्मज्ञान के लिए भी बाधक है और समकित के लिए भी!!

१८४९. सामनेवाले की आलोचना करो ये तो उसकी आराधना की आलोचना हुई, ये भयंकर गुनाह है। यदि तुम सामनेवाले का समर्थन न करो तो कोई बात नहीं, परंतु आलोचना तो करो ही मत। जहाँ किसी की आलोचना है वहाँ 'वीतराग का विज्ञान' है ही नहीं। वहाँ धर्म है ही नहीं, अभेदता है ही नहीं।

१८५०. यदि कोई हमें सावधान करता है तो उसे दीपस्तंभ मानना चाहिए। अगर कोई दीपस्तंभ का भी क़सूर देखे, तो फिर उसकी 'स्टीमर' सही सलामत कब पहुँचेगी ?!

१८५१. जहाँ कोई 'पॉलिसी' नहीं, ये ही 'ग्रेटेस्ट पॉलिसी' है।

१८५२. जिस तरह पाख़ाना जाये बिना नहीं चले, उसी प्रकार शादी किए बिना भी नहीं चले; हालाँकि तुम्हारा मन यदि कुँआरा रहता हो तो कुँआरे रहने में कोई हर्ज नहीं ! लेकिन यदि मन शादीशुदा होवे, तो फिर शादी किये बिना न चले।

१८५३. नाखून बढ़ाये तो समझो कि सारे आचार टूटे ! एक आचार टूटा मतलब सारे आचार टूटे ही समझो।

१८५४. पूरन और गलन के सिवा और है ही क्या ?!

१८५५. मन्नत किसकी रख सकते हैं ? मूर्ति की मन्नत रख सकते हैं, क्योंकि मूर्ति का कोई मालिक नहीं होता। जीवित की भी मनौती रख सकते हैं, परंतु उसकी नहीं जो देह का मालिक हो, क्योंकि कभी न कभी वो ठोकर मारेगा।

१८५६. किसी सती को 'वेश्या' कहें ये तो कितना बड़ा जोखिम ?! अनंत जनम बिगड़ जाय! वेश्या को 'सती' कहोगे तो कोई जोखिम नहीं।

१८५७. 'वीतराग' के पानी से कैसे भी गंदे दाग़ धुल जाय।

१८५८. रेलगाड़ी छूटने में दो मिनट भी देरी हो जाए तो लोग 'कब चलेगी ? कब चलेगी ?' ऐसा क्लेश-संताप करने लगते हैं! इस जगत् में किसी भी बात पर क्लेश-संताप करने जैसा नहीं।

★★★

१८५९. किसी की 'राह देखना' ये तो भयंकर कुगति का कारण है। 'इलेक्ट्रिसिटी' चली गई और उसकी राह देखते रहें, ये तो आर्तध्यान हुआ। आधा घंटा राह देखने से तो बीस साल की मेहनत व्यर्थ हो जाये! वहाँ हमें 'एडजेस्टमेंट' कर ही लेना चाहिए।

★★★

१८६०. 'सरप्लस टाईम' का कहाँ उपयोग करते हो, उस पर तुम्हारी ज़िम्मेदारी बनती है। 'सरप्लस टाईम' का अपनी आत्मा के हित में उपयोग करें तो मानो सारी सिंचाई अपने ही खेत में जा रही है और यदि अन्यत्र उपयोग हो तो समझो सारा पानी बेकार जाता है। अतः जिसका 'सरप्लस टाईम' आत्मा के लिए बीता, उसका पूरा 'टाईम' आत्मा के लिए ही बिताया समझो।

१८६१. काँटों की शैय्या पर सोयें, उसीका नाम है कंटाला (बोरियत) !

★★★

१८६२. 'बोरियत' ये ही चिंता !

१८६३. बोरियत हो तब खोजबीन करने का 'टाईम' आये, ये ही सच्चा पुरुषार्थ करने का वक़्त है ! मगर लोग तो बोरियत को धकेलते-टालते रहते हैं।

१८६४. भगवान कहते हैं कि, 'जिसे संसार ज़रा भी बोरियतयुक्त नहीं लगता वह मोक्ष जाने के लायक ही नहीं।' कमाए तो भी बोरियत और न कमाए तो भी बोरियत ! सभी जगह जिसे बोरियत होवे, तभी वह 'मोक्ष जाने लायक' कहा जाए।

१८६५. हर दर्द अपनी आयु लेकर ही आता है।

१८६६. जगत् में प्रलय जैसा कुछ नहीं है। वस्तुओं का लय नहीं होता, अपितु उनकी अवस्था का लय होता है।

★★★

१८६७. जानकर जो बैठा है वह जाग सके, परंतु जो मानकर बैठा है वो नहीं जाग सकता।

१८६८. 'रिलेटिव' से मनोरंजन होवे ; 'रियल' से आत्मरंजन होवे।

१८६९. तुम्हें अपनी मर्ज़ी से कुछ माँगने के लिए कहा जाए तो क्या माँगोगे ? अनिवार्य क्रियाकलापों में कोई स्थिरता नहीं है ; एक के बाद दूसरा कुछ चाहिए ही । मात्र एक 'स्वरूप' में ही बिना कोई बोझ के रह सकते हैं।

★★★

१८७०. ''ज्ञानी'' को माला फेरनी नहीं होती ! वे तो 'स्वरूप' की माला जपते हैं।

★★★

१८७१. अहंकार क्या नहीं करता ?! अहंकार से ही तो यह सब खड़ा हुआ है और अहंकार का विलय होने पर मुक्ति होवे।

★★★

१८७२. ये राजा क्या कहता है ? कि 'मैंने लाखों लोगों को मार डाला !' राजा तो केवल अहंकार ही करता है, गर्वरस लेता है। सच में तो जो युद्ध में लड़ रहे थे उन्होंने मारा है ! राजा बेवजह जोखिम लेता है ना ? ऐसा करने से तो जो मारनेवाला है वो 'छूट' जाये। नियम क्या है ? जो जिसका अहंकार करे उसके सिर पर वो ज़िम्मेदारी चली जाये।

★★★

१८७३. यदि कोई उल्टा बोले, तो तुम अपनी वाणी मत बिगाड़ो।

★★★

१८७४. इस दुनिया में कड़वा कहनेवाला कोई मिले ही नहीं। ये मिठास के कारण ही तो सारे रोग जमे पड़े हैं, वे कड़वे वचनों से ही जायें ! मिठास से तो रोग बढ़ेंगे। कटु वचन सुनने की नौबत न आए ऐसा हमारा जीवन होना चाहिए, फिर भी यदि कटु वचन सुनना पड़े तो सुन लेना चाहिए, वे तो हमेशा हितकारी ही होते हैं।

★★★

१८७५. जब मौन हो जाओगे, तभी कह सकते हैं कि तुमने जगत् को समझ लिया।

१८७६. मौन के समान कड़ाई दुनिया में और कोई नहीं। कड़ाईयुक्त बोल तो व्यर्थ चले जायें।

१८७७. जितना मौन रहोगे, बुद्धि की दख़ल उतनी ही बंद रहेगी।

१८७८. बोलने मे कोई हर्ज नहीं परंतु 'मेरी बात सही है', ऐसे अपनी बात का रक्षण नहीं करना चाहिए।

१८७९. जैसी वाणी बोलोगे वैसी ही वाणी तुम्हें सुननी पड़ेगी। अतः ऐसी शुद्ध वाणी बोलो कि तुम्हारे पास शुद्ध वाणी ही लौटकर आए।

★★★

१८८०. इस जगत् में बोला हुआ कोई भी 'शब्द' व्यर्थ नहीं जाता।

१८८१. किसी के द्वारा कहे गए शब्दों को वापस लेने के लिए लोग आग्रह करते हैं, पर वे समझ नहीं पाते कि वाणी तो 'रिकॉर्ड' है, अतः कोई उसे वापस कैसे ले सके?!

★★★

१८८२. जगत् का कोई भी शब्द हमें व्याकुल ना कर सके ऐसा 'टेस्टेड' हो जाना चाहिए।

१८८३. स्याद्वाद वाणी क्या कहती है ? तुम ऐसा बोलो कि पाँच लोग उसका लाभ पायें और किसी को भी उद्वेग न हो।

१८८४. वचनबल कैसे प्राप्त हो ? जिसने एक भी शब्द मसख़री हेतु न बोला हो, एक भी शब्द ग़लत ढंग से या स्वार्थवश-कुछ छिनने के लिए उपयोग न किया हो, वाणी का दुरुपयोग न किया हो, खुद का मान बढ़े इस आशय से वाणी का प्रयोग न किया हो, तभी तो उसका वचनबल सिद्ध होवे !

१८८५. अपनी 'सेफ साईड' के लिए झूठ बोलोगे, तो वचनबल कैसे रहेगा?!

१८८६. मनुष्य का स्वभाव कैसा है ? किसी ने ज़रासा भी उल्टा किया तो उसके पीछे ही लग जाये !

१८८७. ये 'लाइफ' तो सारी 'फ्रैक्चर' हो गयी है ! किस हेतु जी रहे हैं इसका लोगों को भान ही नहीं। मनुष्यजीवन का सार क्या ? जिस गति में जाना हो, वो गति मिले, अगर मोक्ष पाना हो तो मोक्ष मिले।

★★★

१८८८. अकेला मनुष्य अवतार ही ऐसा है जिसमें चेतन का अनुभव कर सकें। अन्य किसी अवतार, यहाँ तक कि देवलोक में भी ये अनुभव नहीं कर सकते।

१८८९. मनुष्य तो परमात्मा की 'सेकन्ड हेन्ड क्वॉलिटी' है। मनुष्य तो परमात्मा का नज़दीकी है !

१८९०. बागी मिले और लूट ले, उसके बाद जो रोना नहीं रोये बल्कि ये सोचे कि 'आगे प्रगति कैसे करें'–उसे सारी सहाय मिल जाये ! लेकिन जो 'मेरा क्या होगा ?' ये सोचकर रोता रहे, तो फिर उसका कुछ नहीं होगा। भुगतता कौन है ? लूटनेवाला या लुट जानेवाला ? जो भुगते उसीकी भूल!

★★★

१८९१. 'मेरा क्या होगा ?' ऐसा यदि कहा तो समझो कि सब बिगड़ा। क्योंकि इसका मतलब तो ये हुआ कि तुम आत्मा को नज़रंदाज़ ही करते हो !! अनंत शक्तिमान आत्मा जब अंदर ही बैठा है, तो उसीसे शक्ति माँगो न !

★★★

१८९२. यह 'अक्रम विज्ञान' व्यवहार की किंचित्मात्र भी उपेक्षा नहीं करता ! अपनी 'रियालिटी' में संपूर्ण रहते हुए भी व्यवहार की उपेक्षा नहीं करता !! जो 'व्यवहार की उपेक्षा न करे' वो ही 'सैद्धांतिक वस्तु' कहलाये।

★★★

१८९३. 'अंबालाल मूलजीभाई' व्यवहारसत्ता के अधीन हैं और 'हम' निश्चयसत्ता में ही हैं। व्यवहार को किंचित्मात्र भी ठेस नहीं पहुँचनी चाहिए।

★★★

१८९४. एक समय ⌛ के लिए भी जो स्वसत्ता में आया वो परमात्मा हुआ।

(⌛ 'समय' यानी टाइम का न्यूनतम भाग)

१८९५. आपके यहाँ नौकरी करनेवाले को कभी ठेस ना पहुँचायें, तंग न करें, सबका सम्मान करें। ना जाने किसीसे क्या लाभ हो जाए !

१८९६. ‘फ्लैट’ जितना बड़ा लोगे, उतनी ज़्यादा मेहनत करनी पड़ेगी। छः लाख का ‘फ्लैट’ हो तो छः घानी तेल निकालो, तीन लाख का है तो तीन घानी तेल निकालना पड़े ! संसार में इसी कारण ही तो कड़ी मेहनत करनी पड़ती है ना !

★★★

१८९७. सारे जगत् की मेहनत संसार की घानी चलाने में ही व्यर्थ चली जाती है। घानी घुमानेवाले बैल को तेली खली दे और घर में बीवी इसे ढोकले का टुकड़ा दे ! लोग सारा दिन बैल की भाँति संसार की घानी से जुते ही रहते हैं।

★★★

१८९८. यह जगत् दो तरह से है : पोलमपोल है, और नियमबद्ध भी है। पंचेन्द्रिय और बुद्धिजन्य ज्ञान से ये सब पोलमपोल लगे और ‘ज्ञान’ से नियमबद्ध लगे।

★★★

१८९९. दुनिया का नाश भी अहंकार करता है, और वृद्धि भी अहंकार करता है।

★★★

१९००. ‘कड़वाहट और मिठास’ दोनों अहंकार के फल हैं। ‘अच्छा करने का अहंकार किया’ वो मिठास देवे, और ‘बुरा करने का अहंकार किया’ वो कड़वाहट देवे।

★★★

१९०१. कई लोगों ने बहुत सारे दु:ख झेले होते हैं, परंतु औरों की मौजूदगी में यदि कोई कहे कि ‘आपने तो बहुत कष्ट सहे थे ना ?’ तब वह कहेगा कि- ‘नहीं नहीं, मैंने तो ज़रा भी दु:ख नहीं झेला है।’ ऐसा कहने से उसे सुख बरते ! इसलिए ‘इगोइज़म’ किस बात का करना है ? दु:ख में ‘सुख’ का ‘इगोइज़म’ करो कि मेरे जैसा सुखी कोई नहीं। लेकिन ये लोग तो सुख में ‘दु:ख’ का ‘इगोइज़म’ करते हैं !

१९०२. ‘चिंता’ तो सबसे बड़ा अभिमान है, अतः क़ुदरत उसे बहुत बड़ा दंड देवे। भगवान को गाली देनेवाले के मुकाबले चिंता करनेवाले को ज़्यादा दंड मिले। जो काम कोई और करता है, उसकी चिंता तुम क्यों करते हो ? क्या इस क़ुदरत से भी तुम बड़े हो गए ?!

★★★

१९०३. सामनेवाले में भी ‘आत्मा’ है। ‘सिंह’, ‘हिरण’ ये तो ‘अहंकार’ हैं और अंदर ‘आत्मा’ है। अतः किसका ‘अहंकार’ कैसा है, ये देखकर बात करने से काम बनेगा। सिंह को ललकार नहीं सकते, और कुत्ते को ललकारोगे तो वो भाग जाये !

★★★

१९०४. इस जगत् में किसी को कुछ भी कहने जैसा नहीं ! जो बोलते हैं वो तो ‘अहंकार’ है। ये जगत् सारा नियंत्रण में ही है।

★★★

१९०५. ये ‘बोल’ एक ऐसी वस्तु है कि जिसे यदि सँभाला जाये तो समझो इसमें सभी महाव्रत समा गये।

★★★

१९०६. एक-एक शब्द बोलने में जोखिम है। अतः यदि बोलना न आये तो मौन रहना बेहतर। धर्म के बारे में बोलो तो धर्म का जोखिम और व्यवहार के बारे में बोलो तो व्यवहार का जोखिम होवे। व्यवहार का जोखिम तो उड़ भी जाये, परंतु धर्म का जोखिम तो बहुत ही भारी होता है। धर्म के विषय में बोलने से तो बहुत भारी अंतराय पड़ जायें !

★★★

१९०७. ‘बोल’ तो ‘एक्सपेन्स’(खर्च) है। वाणी बेवजह खर्च नहीं हो जानी चाहिए। ‘बोल’ ये तो लक्ष्मी है, जिसे गिन-गिन कर देना चाहिए। लक्ष्मी कोई बिना गिने देता है क्या ?

१९०८. ‘डोन्ट केल्क्युलेट द वर्ल्ड।’ ये दुनिया तो पोलमपोल है, अतः ‘केलक्यूलेशन’ करने मत बैठ जाना, बस चलते ही रहना!

१९०९. यदि कठोर भाव ही न हों, तो सारे जगत् का वैभव मिल सकता है।

१९१०. संसार यानी ‘ रॉंग बिलीफों’ का ‘पज़ल’ !

१९११. सारा जगत् ‘रॉंग बिलीफ’ में है। ‘बिलीफ’ रॉंग है फिर भी लोग उसे अपना मानते हैं न? बिल्कुल सच ही मानते हैं न?

१९१२. संसार उपाधिस्वरूप नहीं, ‘रॉंग बिलीफ’ उपाधिस्वरूप है! पराये को ‘मेरा’ समझो तो फिर क्या हो? उपाधि!

★★★

१९१३. उपाधि कितनी रखें? जो न आती हो उसे बुलाना नहीं है, और जो उपाधि खिसक जाती हो उसे पकड़े रखना नहीं है।

★★★

१९१४. ‘संसार’, ये भ्रांति से खड़ी हुई वस्तु है, अतः भ्रांति का ज्ञान होने पर वो चला जाये।

★★★

१९१५. इस काल में कहीं भी याचना करने जैसा नहीं है! ‘व्यवस्थित’ का नियम ऐसा है कि जिसने याचना न करने का नियम लिया हो, उसपर याचना करने का वक़्त कभी नहीं आता।

१९१६. दादाश्री कहते हैं कि बरसों से मुझे किसी के आगे हाथ नहीं फैलाना पड़ा ! ये सारा जगत् तुम्हारा ही तो है। तुम्हें अगर देखना आये, जगत् दर्शन करना आये, समझना आये, तो जगत् तुम्हारा ही है ! तुम ही मालिक हो !!

★★★

१९१७. विश्वास किसे कहें ? इस अंतर में जो पूरी 'पार्लियामेंट' है, उसमें कोई विरोध न करे और सब एकमत हो जाय।

★★★

१९१८. अंदर जो आत्मा बैठी है वो सब कुछ देने तैयार है ! परंतु मनुष्य को एक घड़ी भी श्रद्धा नहीं बैठी कि मुझे कोई तकलीफ़ नहीं आयेगी। यदि श्रद्धा बैठे तो, कोई कठिनाई न आये। ये तो ऐसी बात हुई कि-पुजारी कहे कि 'भगवान सो गये', तो मानों फिर सो ही गए ! और सारी हिम्मत चली जाय !! लेकिन अंदर तो भगवान निरंतर जागृत बैठे हैं ! अतः जो भी शक्तियाँ चाहिए, वो माँगने से मिल सकती हैं।

★★★

१९१९. सारा जगत् 'निगेटिव' में भटक-भटक कर मर गया। यह 'अक्रम' तो बढ़िया 'पोज़िटिव' मार्ग है !

★★★

१९२०. जिसे खुद पर भरोसा है, उसे सब कुछ मिल जाये ऐसा यह जगत् है, परंतु विश्वास ही नहीं बैठता न ! विश्वास टूटा कि सब खत्म। विश्वास में तो अनंत शक्ति है, भले ही अज्ञानयुक्त-विश्वास क्यूँ न हो !

१९२१. व्यवहार मार्गवालों से ''ज्ञानी'' कहते हैं, ''संपूर्ण नीति का पालन करो, अगर ऐसा न कर सको तो नियमयुक्त-नीति का पालन करो, यदि ऐसा भी न कर सको और अनीति करना ही पड़े तो वो भी नियम में रहकर करो। नियम ही तुम्हें आगे ले जाएगा!''

१९२२. व्यवहार का संपूर्ण सार है नीति। नीति हो और धन की कमी हो तो भी तुम्हें शांति मिलेगी। लेकिन नीति नहीं हो और धन बहुत हो, फिर भी अशांति ही रहेगी।

१९२३. नैतिकता बग़ैर धर्म है ही नहीं। धर्म की नींव ही नैतिकता है।

१९२४. इस दुनिया में इन तीनों के उपकार ज़िंदगीभर नहीं भूल सकते: 'फादर', 'मदर' और 'गुरु'; जो हमें मार्ग पर लाये हैं!

१९२५. मोक्ष में जाना हो तो बिन-माँगी सलाह नहीं देना है, जब कोई सलाह माँगने आये तभी देना। सलाह दी यानी उसके मंत्री हुए!

★★★

१९२६. कोई पूछे तो ही जवाब दें। तब तक ना बोलें। जगत् में कुछ नहीं कहना है। 'कहना' ये तो सबसे बड़ा रोग है। कुछ कहे बग़ैर भी दाढ़ी उगती ही है न?!

१९२७. किसी के पूछने पर ही सलाह दी जाय, वरना हमारी क़ीमत पता चल जाय!

१९२८. उतनी ही सफ़ाई का आग्रह रखें कि कुछ मैला होने पर चिंता न हो। सफ़ाई ऐसी रखो और इतनी मात्रा में रखो कि तुम्हें बंधन रुप न होवे।

१९२९. 'क़ायमी' 'रूम' में रहें तो 'क़ायम' उल्लास रहे, और 'टेम्परेरी' 'रूम' में रहें तो 'टेम्परेरी' उल्लास रहे।

★★★

१९३०. जगत् अकारण नहीं है। अकारण होने पर मोक्ष होवे ! जहाँ सबके 'क्लेम' पूरे हो जाय वहाँ मोक्ष है। कारण के बग़ैर कार्य ना होवे।

★★★

१९३१. कुछ लोग ऐसा आदेश करते हैं कि 'ऐसा करो, वैसा करो, श्रद्धा रखो, सत्य बोलो, धीरज रखो।' लेकिन ये सब तो परिणाम हैं। परिणाम तो कैसे बदला जाय ?!

★★★

१९३२. तुम कार्य की बात ना करना, कार्य का सेवन ना करना-वो तो परिणाम है ! बल्कि 'कॉज़िज' का-कारण का सेवन करो। कारण का सेवन किये बग़ैर कुछ न बने।

★★★

१९३३. तुम कोई एक 'स्टेप' पर हो, यह स्थिति तुम्हारे खुद के लिए है। अन्य पर वो स्थिति लागू नहीं की जा सकती, क्योंकि वह अलग 'स्टेप' पर है ! अतः किसी व्यक्ति पर दबाव नहीं डाल सकते, उस पर 'ऑब्जेक्शन' लेना उचित नहीं।

★★★

१९३४. 'वीतरागों' का मार्ग 'ऑब्जेक्शन' लेने का नहीं बल्कि 'नो ऑब्जेक्शन' देने का है ! जहाँ 'ऑब्जेक्शन' की संभावना हो वहाँ वे उदासीन रहे !!

१९३५. आपत्ति उठाना, नाराज़गी, अज्ञान-मान्यताएँ; इन तीन कारणों से जगत् में लोगों की भ्रांति खड़ी रही है। इन तीनों को मिटाने के लिए ही सारे जगत् के शास्त्रों की रचना हुई है !

१९३६. इस दुनिया में 'मुझे आपत्ति है', कहना ये ही भूल है। किसी भी बात में आपत्ति नहीं उठानी चाहिए।

१९३७. इस जगत् में हम आपत्ति उठाया करें कि 'सास ऐसे परेशान करती है, ससुर भी ऐसे तंग करते हैं', इसका कोई अंत नहीं आए ! इसके बजाय ऐसा 'बोर्ड' लगायें कि 'मुझे कोई आपत्ति ही नहीं है'। सामनेवाले के उकसाने पर भी हमारी ओर से कोई आपत्ति ना हो, इतना तो कर सकते हैं ना ?

★★★

१९३८. बाहर की जो वस्तु है वो नैमित्तिक है, 'रिलेटिव' है, विनाशी है। नैमित्तिक यानी उसमें किसी का कोई बस न चले। कोई स्ववश कुछ नहीं कर रहा अपितु परसत्ता के अधीन है ! फिर आपत्ति उठाने की ज़रूरत ही क्या है ?! कभी न कभी तो हमें आपत्ति-मुक्त होना ही पड़ेगा।

★★★

१९३९. 'रिलेटिव' में तुम आपत्ति उठाओ ये बुद्धिवाद है। ''ज्ञानी'' को बुद्धिवाद नहीं होवे। ''ज्ञानी'' तो 'रिलेटिव' में अबुध और 'रियल' में ''ज्ञानी''।

१९४०. लोग ही ये सारी आपत्तियाँ उठाते रहते हैं। भगवान को कभी कोई आपत्ति नहीं होवे। जिसे छूटना है उसे कोई आपत्ति नहीं होवे, परंतु जिसे बँधना है उसे तो आपत्ति ही आपत्ति होती है। लोगों को तो आपत्ति उठाने की लत पड़ जाती है!

१९४१. निरंतर निमित्त-नैमित्तिक भाव रहे तो ही निर्दोष दृष्टि रह सके।

१९४२. जिसे जगत् संपूर्ण निर्दोष दिखा, वह मानो सर्वेसर्वा हो गया!

१९४३. इस जगत् में हमें कर्ता नहीं बनना, अपितु निमित्त बनना है।

१९४४. कुसंगति मिले तबसे समझो दु:ख, दु:ख और दु:ख ! अत: कुसंग से दूर भागो। जब से अंदर दु:ख महसूस होने लगे, तबसे जानो कि ये कुसंग है। अत: वहाँ से भाग जाओ। जिसे देखते ही अंदर रुचिकर ना लगे, वहाँ से दूर भागो।

★★★

१९४५. ज़िंदगी में सामनेवाले के कषाय को जो एक बार भी 'ज्ञान'पूर्वक जीत ले तो वह 'जगत्‌जीत' कहलाये। सामनेवाला चाहे जितने भी कषाय करे, परंतु जो अंदर से 'ज्ञान'पूर्ण रहके कषाय को जीते और बिलकुल स्थिर रहे तो, वह 'जगत्‌जीत' कहलाए।

१९४६. किसी के घर गये हों, और उसकी स्त्री स्वादिष्ट व्यंजन खिलाये, तो हमें उसका उपकार मानना चाहिए, परंतु ऐसी भावना नहीं होनी चाहिए कि ये स्त्री मेरे साथ आये तो अच्छा! इन खान-पान की चीज़ों के साथ मनुष्य ऐसे भाव करता है, इसलिए ऐसे लगाव चिपकते रहते हैं। अत: भगवान ने कहा है कि मौज कर पर मौजी मत बनना; शौक़ कर पर शौक़ीन न बनना!

★★★

१९४७. मतभेद रखते हुए संयुक्त कुटुंब में साथ रहने से बेहतर है कि मन मिलाप के साथ अलग रहा जाए।

★★★

१९४८. प्रत्येक व्यक्ति को एक-दो विषयों में विशेष ध्यान (लक्ष) तो होवे ही, साथ-साथ और सब लक्ष्य तो रहते ही हैं! यदि सभी विषयों में सम-लक्ष्य रहे, तो वह ''ज्ञानी'' ही हो जाय।

★★★

१९४९. किसी की व्यक्तिगत बात करना-ये निंदा हुई। सामान्य भाव से ही बात को समझना होता है। 'निंदा करना' ये तो अधोगति जाने की निशानी है!

★★★

१९५०. किसी की निंदा करना यानी तुम्हारे खाते में 'डेबिट' हुआ और सामनेवाले के खाते में 'क्रेडिट' हुआ। ऐसा धँधा कौन करे ?!

★★★

१९५१. पाशविकता यानी बग़ैर-हक़ का ले लेना, बग़ैर-हक़ का खा जाना, बग़ैर-हक़ का इकठ्ठा करने का विचार करना। हाँ, अपने हक़ का आ मिले, इसमें तो कोई हर्ज नहीं।

★★★

१९५२. निमित्त की निंदा नहीं करनी है, बल्कि निमित्त से दूर रहना है।

१९५३. जहाँ तिरस्कार और निंदा हो, वहाँ लक्ष्मी नहीं रहती।

१९५४. 'वीतराग' क्या कहते हैं ? यदि तुम्हें मार खानी हो तो दूसरों को मारना, और यदि तुम्हें निंदित होना है तो निंदा करना।

१९५५. दान यानी अन्य किसी भी जीव को सुख देना। चाहे वो मनुष्य हो या अन्य प्राणी, उन्हें सुख देना यही दान। सबको सुख देने पर उसके 'रिएक्शन' स्वरुप हमें भी सुख ही मिले। यदि किसी को सुख दें तो फलस्वरूप तुम्हें घर बैठे ही तुरंत सुख आ मिले।

१९५६. 'वीतराग' को दान लेने का या देने का मोह नहीं होवे, वे तो 'शुद्ध उपयोगी' होते हैं!

१९५७. 'वीतराग' क्या कहते हैं ? जगत् तो चलता ही रहेगा, तुम उसमें कोई दख़ल नहीं देना। यदि तुम्हें मोक्ष पाना है तो वीतरागता रखना!

★★★

१९५८. हमें जो पसंद हो उसके सारे गुण हमारे अंदर उत्पन्न हो जाते हैं; यदि जेबकतरा पसंद हो तो उसके भी गुण उत्पन्न हो जायें।

१९५९. पुण्य से नेता हुए इसमें क्या ख़ास ? गुण से नेता होना चाहिए।

१९६०. 'पुण्य' यानी जमा-राशि और 'पाप' यानी उधार-राशि। जमा-राशि को तो जहाँ चाहो वहाँ खर्च कर सकते हो।

१९६१. पुण्य के आधार पर तुम्हारा पुरुषार्थ मुनाफ़ा लाये और पुण्य समाप्त हो जाने पर वो ही पुरुषार्थ घाटा लाये।

१९६२. हमारी उम्मीद के मुताबिक फल आये, वो पुण्ययुक्त प्रारब्ध है, और न आये तो वो पापयुक्त प्रारब्ध है।

१९६३. स्वार्थयुक्त कार्य से पापकर्म बँधे और निःस्वार्थ कार्य से पुण्यकर्म बँधे, परंतु दोनों हैं तो कर्म ही न ? 'पुण्यकर्म का फल' यानी सोने की बेड़ी और 'पापकर्म का फल' यानी लोहे की बेड़ी, हुई तो दोनों बेड़ियाँ ही न ?!

१९६४. 'आत्मा के लिए जीये' ये पुण्य है और 'संसार के लिए जीये' ये निरा पाप।

१९६५. जब तक 'मैं कौन हूँ' ये न जानें, तब तक पुण्य 'उपादेय' रूप ही होवे और पाप 'हेय' रूप होवे।

★★★

१९६६. जब तक जगत् संबंधी दीवानगी खत्म न हो, तब तक मोक्ष नहीं होता ! जितनी गहरी दीवानगी उतना ही अवरोध, मानो जैसे भूत लग गया हो !!

१९६७. दुनिया में सभी चीज़ें हाज़िर हैं परंतु तुम्हारा 'इमोशनल'पन उन्हें आने नहीं देता । 'इमोशनल' यानी कि अस्थिरता। भोजन के लिए जाय और सोचे कि 'मुझे खाना मिलेगा या नहीं ?' ये ही अस्थिरता ! स्थिरता रखो न, तो सबकुछ आ मिलेगा।

१९६८. 'इमोशनल' होंगे तो भी जगत् रुकनेवाला नहीं और 'इमोशनल' नहीं होंगे तो भी ये जगत् रुकनेवाला नहीं है। ये तो ख़ामख़ाह 'इमोशनल'पन का ही भार सिर पर आ जाता है, बाक़ी जगत् तो चलता ही रहता है ! वो कभी भी रुकनेवाला नहीं !!

१९६९. मनुष्य 'मोशन' में हो तब वह 'वेग' में होवे और 'इमोशनल' हो तब वह 'उद्वेग' में होवे।

१९७०. जो ज्ञान 'इमोशनल' कराये वो सांसारिक जागृति है। सच्ची जागृति 'इमोशनल' न कराये।

१९७१. 'इमोशनल' यानी 'फॉरीन' की बाबत में 'होम' का दख़ल देना ! 'फॉरीन' तो 'होम' को दख़ल दे ऐसा है ही नहीं, लेकिन तुम 'स्वयं' यदि 'फॉरीन' में दाखिल हो जाओ तो ही दख़ल हो जाये।

१९७२. जब गुनहगार को 'बेगुनाह' ठहराया जाये, तब ही गुनहगार 'बेगुनाह' हो पाये।

१९७३. दादाश्री कहते हैं कि यदि कोई हमसे कहे कि 'ये आदमी तो ऐसा है', तो मैं तो कहनेवाले को ही पकड़ूँगा कि, 'तुम मुझे ये कहने के लिए ही क्यूँ आये ? तुम कहने को आये हो इसलिए तुम ही गुनहगार हो ।' बिना पूछे अगर कोई कहने को आये तो उसको अनसुना कर देना चाहिए।

★★★

१९७४. किसी की भी फ़रियाद करोगे तो तुम फ़रियादी हो जाओगे और सामनेवाला आरोपी हो जाएगा। फ़रियाद तो किसी की भी करनी ही नहीं चाहिए। जो फ़रियाद लेकर आये, उसीका ही गुनाह है-ये पहले से ही समझ लेना है, बाद में आरोपी को देखना!

१९७५. 'आत्म'स्थ होने के बाद कोई फ़रियाद नहीं रहती।

१९७६. इस जगत् में दो ही वस्तु समझनी हैं : एक, अपना 'निजस्वरूप', और दूसरा, हमारी पहले की भूल-चूक। उन भूलों को भी निरस्त तो करना होगा न ?

★★★

१९७७. इस दुनिया में यदि दर्पण न होता तो अपना मुख 'एक्ज़ेक्ट' देखना ये सबसे बड़ा ताज्जुब माना जाता!

★★★

१९७८. दूसरों को दुःखदायी न हो इस हद तक क्रोध-मान-माया-लोभ होवे तो हर्ज नहीं। वे दूसरों को दुःखदायी न हो और केवल खुद को ही दुःख देते रहें-इस 'लिमिट' तक वे हों, वहाँ तक समझो मोक्षमार्ग है।

★★★

१९७९. इस संसार में मनुष्य सबका क़ैदी है। मन का क़ैदी, बुद्धि का क़ैदी, चित्त का क़ैदी, क्रोध-मान-माया-लोभ सभी का क़ैदी-अब वो छूटे भी तो कैसे ?!

१९८०. सारे जगत् को राज़ी किया जा सकता है। जगत् ग़लत नहीं, लेकिन अपनी भूख आड़े आती है। जब अपनी भूख मिट गई तो समझो 'बाउन्ड्रीलेस' हो गये !

१९८१. 'मनुष्यत्व' ये तो महान् सिद्धि है। हर चीज़ मिल जाये लेकिन ये लोभ उसे परेशान करता है।

१९८२. क्रोध-मान-माया-लोभ हो, तो होने देना, कुचारित्र्य के विचार आये तो कोई बात नहीं, घबराना मत, परंतु उसे 'इस तरह' प्रतिक्रमण करके निरस्त कर देना, ऐसा करने से उच्च धर्मध्यान होगा !

★★★

१९८३. खाना, 'ब्रश' करना, बाल कटवाना.. क्या ये सब अतिक्रमण हैं ? नहीं, ऐसा नहीं है। 'क्रोध-मान-माया-लोभ' ये ही अतिक्रमण हैं ! प्रतिक्रमण किया तो फिर वे सब चले जायें।

★★★

१९८४. ये क़ुदरत की गहन पहेली है, इसमें से कोई छूट पाया नहीं और जो छूट गये, वो बताने के लिए रहे नहीं ! दादाश्री कहते हैं कि मैं 'केवलज्ञान' में नापास हुआ इसीलिए आप सबको बताने के लिए रहा हूँ, अतः सँभलकर तुम अपना काम निकाल लो। यह तुम्हारा ही तो है ! हम तो बस सबका काम निकलवाने के लिए ही बैठे हैं !!

१९८५. जो लोग पुनर्जन्म में मानते नहीं वहाँ 'प्रारब्ध' शब्द होना ही नहीं चाहिए। 'क्रिश्चियन', 'इस्लाम' इन धर्मों की भाषा तो पूर्ण है, लेकिन 'बिलीफ' अधूरी है! 'तक़दीर', 'तदबीर', 'लकी', 'अनलकी', ये सब कहाँ से लाये ? ये तो पूर्वजन्म संबंधित ही तो बात हुई ना!

१९८६. द्वंद्व चले जायें तभी जानें कि 'मूल आत्मा' पा लिया! द्वंद्वातीत दशा होनी चाहिए।

१९८७. ये सब द्वंद्व है। "ज्ञानी" द्वंद्व से परे होवे। 'द्वंद्व' ये ही संसार।

१९८८. सारा जगत् घाटे को टालता है! इसमें घाटे ने क्या बिगाड़ा ? यदि भगवान से पूछें कि- 'साहब, आपको मुनाफ़ा या घाटा नहीं है ?' तब भगवान कहते हैं, "तुम तो भ्रांतिज्ञान से देखते हो, 'रिलेटिव' देखते हो इसलिए मुनाफ़ा घाटा दिखे; मैं तो यथार्थ ज्ञान से देखता हूँ।"

१९८९. 'मुनाफ़ा' ये देह का 'विटामिन' है और 'घाटा' ये आत्मा का 'विटामिन' है! फिर नुक़सान है ही कहाँ ?!

★★★

१९९०. इस जगत् में न तो कुछ अच्छा है, न ही कुछ बुरा। इधर फूल की दुकान हो और उधर मांसाहार की दुकान हो तो हम थू-थू क्यों करें ?! अंततः अच्छा-बुरा दोनों ही छोड़ना है।

१९९१. हमारी बात सही हो और सामनेवाले की बात ग़लत हो, लेकिन यदि टकराव हुआ तो हम ग़लत ही हैं।

१९९२. दुविधा जाये तो द्वंद्व जाय। द्वंद्व गया अतः द्वंद्वातीत हुए। द्वंद्वातीत हुए अतः संपूर्ण हुए, ये ही मार्ग है।

१९९३. जो व्यवहार को सच मानकर जीये, उन्हें 'प्रेशर' और 'हार्टएटेक' आदि हो गया और जो व्यवहार को झूठा मानकर जीये वे तगड़े हो गये। दोनों पक्षवाले भटक गए ! जब कि "ज्ञानी" व्यवहार में रहकर भी वीतराग हैं।

१९९४. ऊपरी कब तक चाहिए ? जब तक मनुष्य की भूल होवे तब तक। भूल न होवे तो फिर ऊपरी भी ना रहे।

१९९५. जिसे 'अन्डरहेन्ड' रखना पसंद न हो, परिणामस्वरूप उसका कोई बॉस भी नहीं होगा !

१९९६. जिसकी एक भी भूल नहीं रही उसका कोई ऊपरी नहीं है, उसकी फिर कोई ख़ामी भी न निकाल सके। वह तो जैसा चाहे वैसा हो पाये ! कोई ख़ामी ही न निकल पाये ऐसे आप हो जायें, ऐसा ये 'ज्ञानीपुरुष का मार्ग' है !!

१९९७. जिसे 'अन्डरहेन्ड' रखने का शौक़ है उसे 'बॉस' मिल ही जाय।

१९९८. हम यदि 'अन्डरहेन्ड' को 'प्रोटेक्शन' दें तो बॉस हमें प्रोटेक्शन देगा। अगर हम 'अन्डरहेन्ड' को डाँटते रहेंगे तो बॉस भी हमें डाँटते रहेंगे।

१९९९. कोई जीव अन्य किसी जीव को 'हीच'(अड़चन) नहीं कर सकता। यदि कोई किसीको 'हीच' कर सकता हो, तो फिर ये 'वर्ल्ड' का सिद्धांत ही ग़लत साबित हुआ! इस जगत् में कोई किसी का ऊपरी नहीं है।

★★★

२०००. चोर की कृपा से चोर हो जायें और ''ज्ञानी'' की कृपा से 'ज्ञानी' हो जायें।

★★★

२००१. तुम औरों को सताना बंद कर दोगे, तो फिर तुम्हें भी कोई तंग नहीं करेगा। ये सारे परिणाम तुम्हारे सताने के कारण ही हैं। तुम तो सारे ब्रह्मांड के राजा हो! कोई तुम्हारा ऊपरी है ही नहीं। तुम स्वयं ही परमात्मा हो!

★★★

२००२. मनुष्य ने माता-पिता-गुरु सबकी आज्ञा को शिरोधार्य किया है परंतु 'भगवान' की आज्ञा को शिरोधार्य नहीं किया। मनुष्य तो सेठ की आज्ञा का भी पालन करता है और पत्नी की आज्ञा का भी तो पालन करता ही है ना! यदि भगवान की आज्ञा शिरोधार्य की होती, तो काम ही बन जाता।

★★★

२००३. यदि बोझ अपने सिर पर ले लोगे, तो फिर भगवान खिसक जायेंगे!

★★★

२००४. स्वयं भगवान है; अब इस भगवान की सत्ता कब तक रहे? जब तक सत्य बोलें, अहिंसा का पालन करें, चोरी ना करें, ब्रह्मचर्य का पालन करें, अपरिग्रही रहें-तब तक भगवान की सत्ता रहेगी ही!

★★★

२००५. खुदा होने के लिए खुद को पहचानने की आवश्यकता है। जो खुद को जाने वही खुदा!

२००६. तुम यदि सत्य पर डटे रहो, तो जगत् में तुम्हारी निष्ठा को कोई हिला नहीं सकता।

२००७. खुद की निष्ठा एवं सत्यता जितनी होवे, उतना ही संसार फलदायी होवे।

२००८. 'सिन्सियारिटी' एवं 'मॉरालिटी', ये भगवान के पास जाने का 'मेन रोड़' है, बाक़ी सभी 'बाय वे' हैं।

२००९. 'सिन्सियारिटी' व 'मॉरालिटी' – ये इस जगत् का 'बेझमेन्ट' है।

२०१०. 'सिन्सियारिटी' और 'मॉरालिटी' इन दो शब्दों को संपूर्ण सीख लिये तो समझो सब कुछ 'कम्पलीट' हो गया।

★★★

२०११. धर्म अपनेआप से एवं और सब लोगों के प्रति 'सिन्सियर' रहने के लिए कहता है, अन्यथा कोई धर्म को पा नहीं सके।

★★★

२०१२. 'मोरल' यानी अपने हक़ की और जो सहज रूप से आ मिले ऐसी सभी वस्तुओं को भोगने की छूट! 'मॉरालिटी' का ये चरम अर्थ है।

२०१३. जो मनुष्य परायों से 'सिन्सियर' नहीं रहता, वह अपने आपसे भी 'सिन्सियर' नहीं रहता।

२०१४. 'सिन्सियर' रहने से संसार में मनुष्य को किसी प्रकार का भय न रहे और मोक्ष भी मिल जाय।

★★★

२०१५. कोई केवल 'मॉरल' रहे या केवल 'सिन्सियर' रहे, तो भी उसे मोक्ष मिल ही जाय।

★★★

२०१६. पहले 'सिन्सियर' रहना है, फिर 'मॉरालिटी' आ ही जाये।

★★★

२०१७. जिस जिस वस्तु के प्रति तुम 'सिन्सियर' रहे उनको तुमने जीत लिया। इस जगत् को जीतना है, तभी वो मोक्ष जाने देगा!

★★★

२०१८. कृपा यानी 'एवरीटाइम सिन्सियर'। नैमित्तिक कृपापात्र हुए बिना 'निश्चय' प्राप्त न होवे! क्रमिकमार्ग में भी नैमित्तिक कृपा तो होती ही है। ''ज्ञानी'' तो 'स्पेश्यल' कृपा बरसाते हैं। परम विनय से ''ज्ञानी'' की कृपा प्राप्त होवे! इसमें केवल 'कम्पलीट सिन्सियारिटी' ही चाहिए।

★★★

२०१९. जितनी तुम्हारी 'सिन्सियारिटी' उतनी ''ज्ञानी'' की कृपा! ये ही कृपा का प्रमाण है।

★★★

२०२०. यदि तुम एक व्यक्ति के प्रति भी 'इन्सिन्सियर' रहे, तो वो तुम्हें मोक्ष में जाते समय पकड़ेगा।

२०२१. हर एक के साथ 'एड्जेस्टमेन्ट' होवे, ये ही सबसे बड़ा धर्म !

२०२२. 'एड्जेस्ट एवरीव्हेर' नहीं हो पाये, तो हाथ आया हुआ मोक्ष भी चला जाये।

२०२३. इस काल में तो भिन्न-भिन्न प्रकृतियाँ है, फिर 'एड्जेस्ट' हुए बिना कैसे चलेगा ?!

२०२४. कोई व्यवहार में रहा, ऐसा तभी कहा जाये कि जब वह 'एड्जेस्ट एवरीव्हेर' हुआ हो।

२०२५. 'कन्स्ट्रक्टिव पॉलिसी' में 'एड्जेस्ट एवरीव्हेर' होवे और 'डिस्टक्ट्रिव पॉलिसी' में 'डिस्एड्जेस्टमेन्ट' की 'पॉलिसी' होवे।

२०२६. मन के बिगड़ने से संसार खड़ा रहा है, न कि देह के बिगड़ने से।

★★★

२०२७. यहाँ पाँच-पचास साल रहना है तो लोग अच्छे घर ढूँढ़ते हैं, लेकिन जहाँ क़ायम रहना है, उसका तो कोई ठिकाना ही नहीं, उसकी कोई तलाश भी नहीं करता। ये दुनिया का कोई ठिकाना ही नहीं ! मनुष्य को 'ये भी करना चाहिए और वो भी करना चाहिए'। यहाँ का करने के लिए ''ज्ञानी'' मना नहीं करते। दोनों ही करो, तुम्हारे पास दो हाथ नहीं हैं क्या ?

२०२८. हिंसक भाव, इसका नाम ही संसार। संसार चलता ही रहे किन्तु 'हमारे' अंदर हिंसक भाव नहीं होवे, तो हम जिम्मेदारियों से मुक्त हो जायें।

२०२९. जहाँ कुछ भी ‘करना’ है, वहाँ संसार है।

२०३०. सामनेवाले की भूल निकालने से, सामनेवाले का लाभ लेने की वृत्ति से ये संसार बाधक बने।

२०३१. संसार यानी सब चिंताओं का टोकरा!

२०३२. संसार तो निरंतर सुलगता ही रहता है, इसके बुझने की आशा करना व्यर्थ है! इस स्थिति में हम भी ये कहें की ‘तुम्हें सुलगना ही है तो सुलगते रहो’!

२०३३. शादी में, घर में, हर जगह ‘सुपरफ्लुअस’ रहना है! लेकिन लोग वहाँ गहराई में जाते हैं, इसीका नाम संसार।

★★★

२०३४. इस संसार के रिश्ते-नाते सच्चे नहीं, बल्कि ‘बिज़नेस एरेन्जमेन्ट’ है।

★★★

२०३५. लोग पहले ‘सिल्वर ज्युबिली’ मनाए, फिर ‘गोल्डन ज्युबिली’ मनाए, बाद में ‘डायमन्ड ज्युबिली’ मनाए, फिर भी आख़िरकार जाए तो श्मशान में ही!

★★★

२०३६. इन सेठ लोगों ने तो नौ-नौ मंजिला महल बनवाये, लेकिन यहाँ से जाते वक़्त ये महल उनकी मसख़री करेंगे- ‘सेठजी, आप तो चल दिये और हम तो यहीं के यहीं रह गये!’ ये बंगले ही मात्र महल नहीं हैं! ये बीवी-बच्चे सब ‘महल’ ही तो हुए ना!

२०३७. जिससे अनुराग हो वह बेटा बनकर आये और जिससे बैर हो वह भी बेटा बनकर आये, पर मनुष्य को बेवजह भ्रांति होती है कि 'ये मेरे हैं, मेरे हैं!'

★★★

२०३८. सारा जगत् 'बिलीफ' के आधार पर ही टिका हुआ है, 'ज्ञान' के आधार पर नहीं। मनुष्य मात्र 'बिलीफ' के आधार पर ही है।

★★★

२०३९. सच्ची श्रद्धा तो जागृतिपूर्वक होनी चाहिए। ये तो 'मैं चीमनभाई,' मानके ही चले, ये ही अजागृति है।

★★★

२०४०. बुद्धिशालियों को श्रद्धा का तल न मिले। तैरना भी है और समुद्र की गहराई भी नापनी है, ये दोनों एकसाथ संभव नहीं।

★★★

२०४१. आत्मा कब स्वीकार करे ? यदि 'माइन्ड ओपन' हो तो ! ये श्रद्धा कोई करने की वस्तु नहीं, बल्कि श्रद्धा तो आनी चाहिए। ''ज्ञानी'' तुम्हें फटकार लगाये, उलाहना दें तो भी तुम्हें श्रद्धा आनी चाहिए।

★★★

२०४२. जिसके प्रति अनन्य श्रद्धा होवे, 'वो' रूप खुद हो जाये; परंतु 'अनन्य श्रद्धा होना' ये बहुत मुश्किल चीज़ है।

★★★

२०४३. तुम 'जिसे जानते हो उसमें श्रद्धा रखना' ये है श्रद्धा और 'जिसे नहीं जानते उसमें श्रद्धा रखना,' वो है अज्ञानश्रद्धा।

२०४४. संसार में सभी चीज़ों का आयुष्यकाल होता हैं और 'हम' हैं बग़ैर–आयुष्य के, अब इन दोनों का मेल कैसे बैठे ?! आयुष्यवाले की सोहबत करेंगे तो हमें भी आयुष्ययुक्त होना पड़ेगा ! इसीसे तो हुई है ये सारी फ़ज़ीहत !!

★★★

२०४५. कल्पित अवस्था में कोई कब तक रह सके ? कोई व्यक्ति किसी के ससुर के कल्पित रूप में कब तक रह सके ? जब ससुराल जाये, तो वहाँ दामाद होना पड़े, जब ननिहाल में जाये तो भाँजा होना पड़े। सत्संग में 'भाँजा' कहेंगे क्या ?!

★★★

२०४६. इस जगत् में रिश्ते–नाते हैं ही नहीं। ये तो खुद का खड़ा किया हुआ जाल है। इन गाय या भैंस को रिश्ते–नाते होते हैं क्या ? उन्हें न तो सास है, और न ही ससुर.......!

★★★

२०४७. लोग 'ग़लत' काम करके ये अनमोल मनुष्यपन बेच रहे हैं।

★★★

२०४८. इस संसार में कोई मालिक नहीं, कुछ नहीं, यहाँ मेहमान होकर आये हैं और वापस लौट जाना ही है ! ममतावाले और बग़ैर–ममता वाले सभी चले जानेवाले हैं। अतः इसमें एक मिनट भी बरबाद मत करना। हाँ, पाँच–दस हज़ार साल जीनेवाले हो तो ठीक है !

★★★

२०४९. जहाँ दुनिया निवृत्त है वहाँ ''ज्ञानी'' प्रवृत्त है, जहाँ दुनिया की प्रवृत्ति है वहाँ ''ज्ञानी'' की निवृत्ति है। 'दुनिया की प्रवृत्ति' ये तो प्रकृति चलाती है।

२०५०. ‘मैं शुद्धात्मा हूँ’, तो प्रवृत्ति में भी निवृत्ति है, और ‘मैं वीरचंद हूँ’, तो घर में सोये हो, खर्राटों से नाक बजती हो फिर भी प्रवृत्ति में हो।

२०५१. ‘प्रवृत्ति में निवृत्ति’ ये ही सच्ची निवृत्ति है।

२०५२. इस संसार में खुद की मादकता के कारण अपना सर्वस्व भान चला गया है। संसार में सभी मादकताएँ ही हैं, आहार मादकतायुक्त है, इंद्रियाँ मादकतायुक्त हैं। अतः जिनका मद उतर चुका हो, जिन्होंने मादकता का नाश किया हो, वहाँ जाओ। वहाँ उनके सान्निध्य में पता चलेगा कि ‘ओहोहो ! मादकता तो उतर जाये ऐसी है !!’ तब ‘हमारा’ स्व-भान प्रगट होवे ! तुम परमात्मा ही हो !!

२०५३. वीतराग क्या कहते हैं ? अगर तुम्हें संसार में पड़े रहना हो तो लोगों के कहे अनुसार चलना और मोक्ष जाना हो तो ‘मेरे’ कहे अनुसार ही चलना।

★★★

२०५४. शक्तियाँ दो प्रकार की : एक अपनी स्वक्षेत्र की; दूसरी परक्षेत्र की। स्वक्षेत्र में ब्रह्मांड को हिलाने की शक्ति है; जबकि परक्षेत्र में तो पापड़ तोड़ने की भी शक्ति नहीं, उसे तो ‘व्यवस्थित-शक्ति’ ही चलाती है !

२०५५. भगवान ने जगत् के लोगों से कहा था कि जिसके पास जो शक्ति है, उसका स्मरण करने से वह शक्ति तुम्हारे अंदर उत्पन्न होगी। तुम्हें भगवत् शक्ति माँगना न आता हो और कूदना चाहो तो बंदर को स्मरण करके, उससे माँगोगे तो कूदना आ जायेगा, भौंकना हो तो कुत्ते से शक्ति माँगनी पड़े। ''ज्ञानी'' के पास अनंत शक्तियाँ होती है, उन्हें स्मरण करो तो वे शक्तियाँ तुम्हें प्राप्त हो जाये।

२०५६. सहनशक्ति 'इज दि मदर ऑफ इगोइज़्म।'

२०५७. लोग जीवशक्ति को उजागर करते हैं, परंतु शिवशक्ति को उजागर नहीं किया।

२०५८. अंतर्दाह तो निरंतर धधकता ही रहता है, अशातावेदनीय में और शातावेदनीय में भी; परंतु मनुष्य मूर्च्छितभाव में होने के कारण उसे पता नहीं चलता, वो बेभान जैसा रहता है!

२०५९. अंतर्दाह क्यों होवे ? अंतर्दाह पाप-पुण्य के अधीन नहीं। दोनों वेदनीय में अंतर्दाह तो होवे ही। अंतर्दाह 'राँग बिलीफ' के अधीन है।

२०६०. 'राँग बिलीफ' जाय तभी अंतर्दाह जाय। 'अंतर्दाह' ये भ्रांति का फल है।

२०६१. जैसे ही 'स्वरूप' स्थिति हुई, अंतर्दाह बंद हो जाये।

२०६२. जब तक मालिक हो तब तक संसार खड़ा रहेगा। मालिकीपन कब जाए ? 'राँग बिलीफ' उड़ जाए तब।

२०६३. जितना पुद्गल के स्वामित्व का अभाव उतना ही स्व-स्वामित्व का अनुभव।

२०६४. वाणी का मालिकीपन जब छूट जाये तब होता है 'हमारा' 'एन्ड' !

२०६५. 'कॉमन सेन्स' यानी क्या ? 'एवरीव्हेर एप्लिकेबल, थियरेटिकली एज़-वेल-एज़ प्रेक्टिकली' !

२०६६. 'सेन्सिटिव' व्यक्ति को 'कॉमन सेन्स' नहीं होवे।

२०६७. 'कॉमन सेन्स' कैसे प्रगट हो ? टकराने से। टकराव में स्वयं किसी से न टकराये, सामनेवाला भले ही टकराने आए लेकिन खुद ना टकराये, ऐसे जो रहे उसमें 'कॉमन सेन्स' उत्पन्न होती है ! अन्यथा जो कुछ 'कॉमन सेन्स' हो, वो भी चला जाए।

★★★

२०६८. आत्मा की शक्ति ये ऐसी है कि हर वक़्त कैसे बरतना है, वो सब उपाय दिखाती रहे, वो भी बिना भूले। आत्मा प्रगट होने के बाद ऐसा होता है।

२०६९. घर्षण के कारण तो सारी आत्मशक्ति ख़लास हो जाये। अनंत शक्तियाँ घर्षण के कारण ख़लास होती हैं। जरा भी टकराये तो ख़लास! हम जागृतिपूर्वक संयम रखते हुए सामनवाले से ना टकराएँ, तभी काम बने।

२०७०. टकराव तो होना ही नहीं चाहिए। टकराव के कारण ही तो ये शक्ति का ह्रास हो गया। भले ही ये देह जाना है तो जाये, पर टकराव में कभी न आना। देह किसीके कहने से ना जाये, ना ही किसीके श्राप से उड़ जाये! वो तो 'व्यवस्थित' के अधीन है।

२०७१. घर्षण का मूल बीज बैर है।

★★★

२०७२. घर्षण से तो सारी शक्ति ख़लास हो जाये! आत्मा की अनंत शक्ति घर्षण के कारण नज़र नहीं आती। कुछ उल्टा भाव होवे, भँवे तन जायें, ये ही घर्षण। दीवार से टकरायें तो क्या हो? सिर टूट जाये! केवल घर्षण न होता तो मनुष्य मोक्ष चला जाता। मनुष्य बस ये ही सीख ले कि 'मुझे किसीसे घर्षण में नहीं आना', तो वह सीधा मोक्ष में चला जाये; बीच में गुरु की या किसी और की भी ज़रूरत नहीं।

२०७३. घर्षण के पश्चात् प्रतिक्रमण करने से घर्षण निरस्त हो जाये, फिर यदि नया संघर्ष खड़ा करें तो आयी हुई शक्ति चली जाये!

२०७४. मनुष्य से दोष होना तो स्वाभाविक है! उससे विमुक्त होने का रास्ता क्या? सिर्फ़ ''ज्ञानीपुरुष'' ही ये दिखाये, और वो है 'प्रतिक्रमण'!

२०७५. जगत् किस आधार पर खड़ा रहा है ? अतिक्रमण-दोष के कारण। क्रमण से कोई हर्ज नहीं, लेकिन अतिक्रमण हो जाय, तो उसका प्रतिक्रमण करना पड़े।

२०७६. जगत् के लोग माफ़ी माँग लेते हैं, इससे कोई 'प्रतिक्रमण' नहीं हो जाता। ये तो रास्ते में 'सॉरी, थेन्क यू' कहने जैसा हुआ ! इसका कोई महत्त्व नहीं, बल्कि महत्त्व तो 'आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान' का है।

२०७७. पिछली भूलों को धोने के लिए 'रिलेटिव' में पछतावा और 'रियल' में आनंद, ये दोनों होने चाहिए।

२०७८. प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करने की ही भावसत्ता है।

२०७९. यदि मनुष्य को प्रतिक्रमण तुरंत ही-(नगद भुगतान की तरह) हो जावे, तो समझो वह भगवान पद में आ जाय।

२०८०. जगत् किस आधार पर टिका है ? अप्रतिक्रमण-दोष के।

२०८१. जो स्मृति में लाना न चाहें फिर भी वो आये, तो समझना है कि प्रतिक्रमण-दोष बाक़ी है।

२०८२. 'तुम किसी को फटकार लगाओ', ये तो प्रकृति है, उसमें कोई हर्ज नहीं; लेकिन यदि उसका प्रतिक्रमण किया तो वो 'पोज़िटिव' गुनाह हुआ और प्रतिक्रमण नहीं किया तो वह 'नेगेटिव' गुनाह हुआ!

२०८३. जब घर के लोग निर्दोष दिखे और खुद का ही दोष दिखे तभी सच्चा प्रतिक्रमण होवे।

२०८४. हम जो शब्द बोलते हैं वो कई बार न चाहते हुए भी बोल देते हैं, प्रकृति नाचती है और ऐसा तूफ़ान खड़ा हो जाता है! फिर बहुत सारे प्रतिक्रमण करें तब जाकर वो प्रकृति बंद हो पाये।

२०८५. 'अतिक्रमण' होना ये स्वाभाविक है! 'प्रतिक्रमण करना' ये अपना 'पुरुषार्थ' है।

२०८६. संस्कार कब बदले? दिन-रात पश्चाताप करें तब, या तो 'स्वरूपज्ञान' हो तब।

२०८७. कोई भी क्रिया करने के पश्चात् जो मनुष्य पछतावा करे, वह कभी न कभी तो शुद्ध होगा ही, ये निश्चित है।

★★★

२०८८. तुम बहुत प्रतिक्रमण करना! जो कोई तुम्हारे आसपास हो, जिस-जिसको तुमने लगातार परेशान किया हो उनके संबंध में हर रोज़ एक-एक घंटा प्रतिक्रमण करना।

२०८९. प्रतिक्रमण करने से क्या होवे ? हमने पहले जो दख़ल की थी, उसका जो 'रिएक्शन' आये, उस पर हमें फिर से दख़ल देने का मन नहीं होवे।

२०९०. जिसके आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान सच्चे हों, उसे आत्मा प्राप्त हुए बग़ैर न रहे।

२०९१. हमारा 'सायन्स' कहता है कि तुम चोरी करो इसमें हमें कोई एतराज नहीं, परंतु इसका सच्चा प्रतिक्रमण करना, और ये भी जान लो कि जो तुम कर रहे हो इसका फल ये आयेगा।

२०९२. सारा जगत् अनिवार्य रूप से ये सब करता है, उसमें किसी को डाँटें कि 'ऐसा क्यों करता है ?' - ये तो नासमझी हुई। उसे डाँटोगे तो फिर वह और ज़्यादा करेगा ! इसके बजाय उसे प्यार से समझाओ। प्रेम से तो सारे रोग चले जायें। ये 'शुद्ध प्रेम' ''ज्ञानीपुरुष'' के पास या तो उनके 'फॉलोअर्स' के पास ही मिले।

★★★

२०९३. यह 'विज्ञान' प्रेमस्वरूप है। प्रेम में और कुछ नहीं होता, क्रोध-मान-माया-लोभ कुछ भी नहीं होता। यदि ये हों तब तक प्रेम है ही नहीं।

★★★

२०९४. भगवान के समक्ष दो वस्तुओं की ज़रूरत है : शुद्ध प्रेम और सच्चा न्याय। अन्य सभी जगह सापेक्ष न्याय होता है ! जहाँ शुद्ध प्रेम और सच्चा न्याय हो, वहाँ भगवान की कृपा अवश्य बरसे।

२०९५. शुद्ध प्रेम यानी जो बढ़े भी नहीं और घटे भी नहीं। जो गाली देने पर घटे नहीं और फूल चढ़ाने पर बढ़े नहीं, इसीका नाम है शुद्ध प्रेम! शुद्ध प्रेम ये तो मानों परमात्म प्रेम ही है। ये ही सच्चा धर्म है।

★★★

२०९६. प्रेमस्वरूप ये चरम स्वरूप है! ये लौकिक दीवानों सा प्रेम वहाँ नहीं चलता। भगवान का तो शुद्ध प्रेम होवे। जो बढ़े-घटे वो तो आसक्ति कहलाए। शुद्ध प्रेम न तो बढ़े, न घटे।

★★★

२०९७. जितना द्वेष चला जाय उतना शुद्ध प्रेम उत्पन्न होवे। द्वेष पूर्णतः निकल जाने पर संपूर्ण शुद्ध प्रेम उत्पन्न होवे। यही इसकी रीति है।

★★★

२०९८. दादाश्री कहते हैं कि मैं किसीसे लड़ना नहीं चाहता। मेरे पास तो एक ही शस्त्र है प्रेम का। मैं प्रेम से जगत् को जीतना चाहता हूँ। जगत् जिसे प्रेम समझता है, वो तो लौकिक प्रेम है। प्रेम तो उसे कहा जाए कि तुम मुझे गाली दो तो मैं 'डिप्रेस' न होऊँ और पुष्प-हार चढ़ाओ तो 'एलिवेट' न होऊँ। सच्चे प्रेम में तो कभी फ़र्क़ आता ही नहीं। इस देह के भाव में फ़र्क़ पड़े, परंतु शुद्ध प्रेम में नहीं।

★★★

२०९९. 'सही-ग़लत' ये तो बुद्धि के अधीन है! उससे दूर हो जाओ, अनासक्तयोग रखो। 'आत्मा' का स्वभाव कैसा है? अनासक्त। 'तुम' भी 'स्वभाव' से अनासक्त हो जाओ!

२१००. 'सनातन स्नेह' ये ही मोक्ष!

★★★

२१०१. 'स्त्री के प्रति आकर्षण होता है', वो आसक्ति है, लेकिन 'आसक्ति में आत्मा का जुड़ जाना' ये राग है।

★★★

२१०२. परमाणु के आकर्षण एवं ऋणानुबंध के कारण मिलाप होवे, वो है आसक्ति इसी आसक्ति के कारण (क्लेश के) धक्के लगें और तत्पश्चात् फिर से आसक्ति उत्पन्न होवे । जब अनासक्त हों तभी इस चक्र से छूटने का हल मिल पाये।

२१०३. जहाँ आसक्ति होवे वहाँ आक्षेप हुए बिना रहेंगे ही नहीं; आसक्ति का ये स्वभाव ही है।

२१०४. जहाँ प्रेम न दिखे वहाँ मोक्ष का मार्ग है ही नहीं। जहाँ 'फीस' हो, वहाँ प्रेम न होवे।

★★★

२१०५. जहाँ किंचित् मात्र भी संसारी प्रेम न हो, वो है परमार्थ प्रेम!

★★★

२१०६. सामनेवाले का धक्का हमें लग जाये तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु ध्यान रखना है कि हमारा धक्का सामनेवाले को न लगे; तभी सामनेवाले का प्रेम संपादन हो पाये।

★★★

२१०७. जब तुम प्रेमस्वरूप होओगे तभी लोग तुम्हारी बात सुनेंगे। हम प्रेमस्वरूप कब हो सकें ? जब हम क़ायदे-वायदे न देखें तभी, जगत् में किसी के भी दोष ना देखेंगे तभी।

★★★

२१०८.ममता ना हो तभी प्रेमस्वरूप हुआ जा सके।

२१०९.जगत् आसक्ति को प्रेम समझकर उलझन में पड़ जाता है। पत्नी को पति से काम और पति को पत्नी से काम ! ये सब कुछ काम से ही तो खड़ा हुआ है !! जब काम न बने तो अंदर से सब चीखें, चिल्लायें, हो-हल्ला करें। इस संसार में एक 'मिनट' के लिए भी कोई अपना नहीं, सिवाय एक ''ज्ञानीपुरुष'' के। अतः भगवान ने कहा -'जीवमात्र अनाथ हैं।'

★★★

२११०. ये संसार तो स्वार्थ का सगा है। सभी 'रिलेटिव रिश्ते' हैं। एक ''ज्ञानीपुरुष'' का ही 'रियल नाता' होता है, वे तुम्हारे प्रति अत्यंत करुणावान होते हैं। वे स्वयं आत्मस्वरूप हो चुके हैं, अतः वे तुम्हें छुटकारा दिला सकें !

★★★

२१११. 'करुणा' ये सामान्य भाव है जो सर्वत्र बरते ही : इस प्रकार कि-'ये जगत् सांसारिक दुःखों में फँसा हुआ है, ये दुःख किस प्रकार दूर किए जायें ?!'

★★★

२११२. ''ज्ञानीपुरुष'' का शुद्ध प्रेम होवे, जो कभी ना बढ़े-ना घटे, अविरत बहता ही रहे, उसीका नाम है परमात्मा ! वे तो प्रकट परमात्मा हैं और ''ज्ञानी'' का ज्ञानस्वरूप ये सूक्ष्म परमात्मा है !!

★★★

२११३. ''ज्ञानी''यों के ज्ञानस्वरूप को पहचानना है। जगत् को प्रेमस्वरूप होकर पहचानना है।

★★★

२११४. लौकिक प्रेम का तो फल ही बैर है।

★★★

२११५. जब तक परमाणु मिलते-जुलते होवें तब तक अभेदता बनी रहे, और बाद में बैर हो जाए। जहाँ आसक्ति हो वहाँ बैर होवे ही !

२११६. बैर न बढ़े और वीतराग रहें, इसीका नाम है 'फाइलों का समभाव से निपटारा'। 'बैर ना बढ़े', ये तो संसार के लोगों को भी आये, परंतु महत्त्वपूर्ण तो ये है कि बैर भी ना बढ़े और साथ-साथ वीतराग भी रहा जाये।

★★★

२११७. जिसका सब प्रकार का भिखारीपन चला जाये, उसके हाथ में जगत् के तमाम सूत्र दिये जाते हैं ! परंतु भीख चली जाये तब ना ? कितने प्रकार की भीख होती है ? मान की भीख, लक्ष्मी की भीख, कीर्ति की भीख, विषयों की भीख, शिष्यों की भीख, मंदिर बाँधने की भीख ! सब भीख, भीख और केवल भीख ही है, फिर वहाँ हमारी दरिद्रता कैसे मिट पाये ?!

★★★

२११८. जिसका सब प्रकार का भिखारीपन चला जाये, उसे "ज्ञानी" का पद मिले।

२११९. भिखारीपन पूरी तरह से चले जाने पर ही ये जगत् 'जैसा है वैसा' दिखे।

★★★

२१२०. 'कोई भी इच्छा' ये भिखारीपन ही है। जो 'निरिच्छक होवे' वो "ज्ञानी" कहलाये।

★★★

२१२१. जो यश के भूखे न हों उन पर देवलोक राज़ी होवे। सारा जगत् हम पर राज़ी हो सकता है, परंतु हमारी भूख के कारण राज़ी नहीं है।

★★★

२१२२. जिसे ये प्राकृत फूल चाहिए, प्रकृति फलयुक्त चाहिए, उसे माताजी की भक्ति अवश्य करनी चाहिए। यदि मोक्ष चाहिए तो आत्मा की भक्ति करना और दोनों चाहिए तो दोनों की भक्ति करना।

२१२३. बग़ैर 'ज्ञान' की भक्ति संसार में भौतिकसुख देवे और 'ज्ञान' सहित भक्ति, ये 'ज्ञान' कहलाये, वो मोक्षफल देवे।

२१२४. माताजी किसमें प्रकट हों ? जो सहज स्वभावी हो जाये उसमें । मन-वचन-काया सहजसमाधि-स्वरूप हो जाय तब कहा जाये कि 'माताजी आयी', 'आद्यशक्ति उत्पन्न हुई'।

२१२५. बग़ैर-भक्ति का 'ज्ञान' कभी होवे ही नहीं, वो तो 'शुष्कज्ञान' कहलाये, उसे सच्चा 'ज्ञान' नहीं कहा जाये।

२१२६. लोग भक्ति को लौकिक समझ में लेते हैं, वे भजन को 'भक्ति' कहते हैं। भक्ति बग़ैर-ज्ञान के नहीं हो सकती। भक्ति 'वो' रूप बनाये, जिसकी भक्ति करो 'वो' रूप!

२१२७. 'समर्पणभाव' ये ही भक्ति है। 'ज्ञान'पूर्वक किया हुआ समर्पण, ये बहुत ऊँची भक्ति है! अज्ञानपूर्वक समर्पण किया हो, तो भी वो 'भक्ति' कहलाये।

★★★

२१२८. समर्पण किसे करें ? जो अंतिम मुक़ाम तक हमारी ज़िम्मेदारी ले, उसे समर्पण करें। जो तथारूप होवे उसे समर्पण करें। जो हमें विराट पुरुष दिखे उसे समर्पण करें। अन्यथा समर्पण करने का कोई अर्थ नहीं।

२१२९. दादाश्री कहते हैं कि 'यहाँ' तो जैसे तुम भक्त हो वैसे ही 'मैं' भी भक्त हूँ। ये जो दिखते हैं वे 'दादा भगवान' नहीं हैं। ये तो 'ए. एम. पटेल' हैं जो भादरण के पाटीदार हैं। उनके भीतर 'दादा भगवान' बैठें हैं। 'मैं' खुद ही 'दादा भगवान' का जय जयकार करता हूँ न ! अतः 'मैं' भी भक्त हूँ और तुम भी भक्त हो।

★★★

२१३०. 'दादा भगवान' ये भगवान हैं, चौदह लोकों के नाथ हैं, अभी उनसे जो माँगो वह दे दें ! ये देह तो मंदिर हो गया है, ये 'पब्लिक ट्रस्ट' है। ये जो बोल रहा है वो कौन बोलता है ? 'ओरिजिनल टेपरिकॉर्ड' बोलता है। भगवान कभी बोलते-वोलते नहीं।

★★★

२१३१. तुम स्वयं भी भगवान हो किन्तु 'तुम्हें' इसका 'भान' नहीं। अपने मन में ये बैठ जाए कि 'मैं भगवान हूँ, परंतु मुझे वो पद दिख नहीं रहा', यदि ऐसा नक्की हो जाए फिर कोई हर्ज नहीं। इसे शंका है कि-'मैं भगवान हूँ या नहीं ? हूँ या नहीं ? हूँ या नहीं ?...' अरे किस बात की शंका ? तुम भगवान ही हो ! 'तुम्हें' खुद का 'भान' चला गया है।

★★★

२१३२. इस जगत् का न्याय कैसा है ? जिसे लक्ष्मी संबंधी विचार ना होवे, विषय संबंधी विचार ना होवे, जो देह से निरंतर अलग ही रहता हो, उसे जगत् 'भगवान' कहे बिना नहीं रहता।

★★★

२१३३. तुम स्वयं भगवान हो ही, लेकिन भगवान के गुण उत्पन्न नहीं हुए।

२१३४. जो भगवान की ओर मुख करे, उनकी ओर मुड़े उसे आनंद और प्रकाश मिले। भगवान और कुछ नहीं करते !

२१३५. कल्पित से मन का आनंद होवे और यथार्थ से आत्मा का आनंद होवे।

२१३६. आनंद और शांति का कोई लेना-देना नहीं। शांति पुद्‌गल के अधीन है जबकि आनंद तो आत्मा का स्वभाव है।

२१३७. आनंद भीतर से आना चाहिए। बाहर से-आँखों से देखकर जो आये ऐसा आनंद नहीं चाहिए। सनातन आनंद चाहिए।

२१३८. संसार के सारे रोग आत्मा के स्वाभाविक आनंद से चले जायें। शोक से रोग उत्पन्न होवे।

२१३९. आत्मा का स्वभाव ही आनंदयुक्त है, अतः उसे अशाता तो पसंद ही नहीं होवे न! जीवमात्र को अशाता अनुकूल न लगे, अतः वह उस स्थान से हट जाए। हमें तो केवल अंतिम बात को ही पकड़ना है, अनुकूल और प्रतिकूल दोनों को एक-सा कर दीजिए।

२१४०. 'मूल आत्मा' तो सबको निर्दोष ही देखे, उसे 'अच्छा-बुरा' ऐसा कुछ होता नहीं। निर्दोष देखे तभी आनंद प्रकट होवे।

★★★

२१४१. ये जो भौतिक है, वो कभी आत्मा नहीं हो सकता, और आत्मा कभी भौतिक होनेवाली नहीं। दोनों निराली वस्तु ही हैं।

२१४२. पुद्गल का स्वभाव ही पूरण-गलन का है। यदि 'मुलायम' को पसंद किया तो वो फिर 'खुरदरा' होकर लौटेगा। अतः हमें तो 'खुरदरे' के साथ ही 'फ्रेन्डशीप' कर लेनी है, जो नापसंद है उसे ही पसंद कर लें। आत्मा के तो अनंत पहलू हैं। जिस पहलू की ओर मोड़ दिया उस पहलू सा हो जाये!

★★★

२१४३. कड़वा फल 'मीठा' है और जो मीठा है वो 'कड़वा' है; ये जब समझ में आयेगा तभी मोक्ष होगा।

★★★

२१४४. मीठे संबंधवाले तो भुलावे में डाल दें।

★★★

२१४५. जगत् के 'चाँटे' खाना, उसमें आत्मा का स्वाद है! किसी को मारने में कोई स्वाद नहीं, मारने से तो ये सब खड़ा हुआ है!!

★★★

२१४६. जब मनुष्य निष्कलंक हो जाये तब समझो कि खुद परमात्मा हो गया। निष्कलंक हुआ तभी से स्वतंत्र हो गया।

★★★

२१४७. 'दी इसेन्स ऑफ दी वर्ल्ड इज सच्चिदानंद।'

★★★

२१४८. जहाँ सच्चिदानंद नहीं, वहाँ सदैव रात्रि है!

★★★

२१४९. ये 'सच्चिदानंद' शब्द बोलने से बहुत 'इफेक्ट' होवे ! बिना समझे बोलें तो भी 'इफेक्ट' होवे और समझकर बोलें तो फिर बहुत लाभ होवे । इन शब्दों को बोलने से स्पंदन उत्पन्न होते हैं और सब मंथन होने लगता है। ये सब 'साइंटिफिक' है।

२१५०. 'लाभ को देखें' ये है 'वीतराग-विज्ञान' और 'घाटे को देखें' ये है संसार में भटकने का ज्ञान !

२१५१. ''ज्ञानी'' की संज्ञा को ध्रुवकाँटा मान के जियें तो वो चरम लक्ष्य तक पहुँचा दे किन्तु यदि 'लोकसंज्ञा' ये तुम्हारा ध्रुवकाँटा हो तो इससे संसार में भटकते रहना पड़े।

२१५२. दादाश्री कहते हैं कि हमें किसी के साथ मतभेद नहीं, क्योंकि ''ज्ञानी'' की भाषा अलग और अज्ञानी की भाषा अलग । ''ज्ञानी'' की 'रियल भाषा' और अज्ञानी की 'रिलेटिव भाषा' होती है।

★★★

२१५३. 'ज्ञानी' की भाषा में कोई मरता ही नहीं और अज्ञानी की भाषा में लोग मरते हैं। अतः अज्ञानी विलाप करे और ''ज्ञानी'' द्रष्टाभाव से 'देखा' करें।

★★★

२१५४. जो जानने योग्य था वो जाना नहीं, और जो न जानने योग्य था उसे जान लिया-इसने ही तो हमें रुलाया है ! इसी से बोझ बढ़ता है !!

२१५५. जहाँ ज्ञान नहीं, वहाँ संसार है, और जहाँ ज्ञान है, वहाँ संसार नहीं।

२१५६. वस्तु दुःख न देवे अपितु अज्ञानता ही दुःख देवे।

२१५७. सभी 'व्यू-पॉइन्ट' से देखना, इसका नाम 'ज्ञान'!

२१५८. जो 'ज्ञान' अनात्मा से एकरूप होने ही न दे, वो ही है 'ज्ञान', वो ही है आत्मा!

२१५९. 'ज्ञान' स्वयं ही मुक्ति है! वो मोक्ष की स्थिति में बनाए रखे और बंधन ना होने दे!!

२१६०. 'विशेष ज्ञान' से गड़बड़ हो जाये; 'सामान्य ज्ञान' से वीतरागता होवे।

२१६१. 'ज्ञान' यानी कि गुरु की अनुभववाणी!

★★★

२१६२. जो हर 'टाइम' हाज़िर रहे और हर 'टाइम' सचेत करे वो ही सच्चा 'ज्ञान'; वो ही आत्मा है! आत्मा 'ज्ञान' से अलग नहीं।

★★★

२१६३. लौकिक ज्ञान ये ही भ्रांति!

२१६४. लौकिक ज्ञान बुद्धि से समझ में आये। अलौकिक ज्ञान बुद्धि से समझ में न आये, वो तो 'ज्ञान' से ही समझ में आये।

२१६५. लौकिक यानी इन्द्रियगम्य। अलौकिक यानी अतीन्द्रियगम्य।

२१६६. लोक से जिनका ताल्लुक नहीं वे 'अलौकिक' बातें।

२१६७. लोग जो कहते हैं, वो बात ग़लत नहीं, अपितु लौकिक है। लोक है वहाँ लौकिक होगा ही, लेकिन अलौकिक बातें इन लौकिक बातों से नितांत अलग ही हैं। आज तक जो जाना वो सब अलौकिक ज्ञान की दृष्टि में ग़लत है, अतः उसे शून्य मानकर रद्द कर दो!

२१६८. जहाँ कोई ऊपरी नहीं, 'अन्डरहेन्ड' नहीं, ऐसा 'वीतरागों'वाला मोक्ष 'मुझे' चाहिए।

★★★

२१६९. ये संसार कैसा है ? तेरी सब्ज़ी बनाकर खा जाए, कच्चे आम हों तो मुरब्बा बनाकर खा जाए, पके आम हो तो रस चूस ले। ये लोग तो बड़े चालाक हैं! इससे तो अच्छा है कि यहाँ सत्संग में पड़े रहो वो भला!!

★★★

२१७०. संसार यानी अकुलाहट और व्याकुलता!! लोगों को ये कैसे भाता है ये ही बड़ा ताज्जुब है!

२१७१. संसार का स्वभाव ही ऐसा है ना ? लोग सोचते हैं कि बुढ़ापे में सुख-चैन मिलेगा, लेकिन बुढ़ापे में तो कमर-दर्द परेशान करे और चैन से बैठने भी न दे। इसलिए तो लोग मोक्ष ढूँढ़ते हैं ताकि 'अपने स्थान' में चले जायें फिर कोई झंझट ही नहीं न!

★★★

२१७२. अनंत जन्म भटकते रहने के पश्चात् मुश्किल से ये मनुष्य जनम मिले! इसमें भी कमर-दर्द परेशान करे, और ऐसे भी अंतराय आ जाये कि सामने थाली रखी हो फिर भी खा न सके। ऐसा है ये सब, अतः कोई भी कदम सोच-समझकर उठायें!

२१७३. जब तक संसार है तब तक देह मिलेगी ही और देह है तब तक जंजाल रहेगा ही।

२१७४. सत्तर साल से दाँत घिसते रहे फिर भी वे साफ़ नहीं हो पाए; अब बताओ इन सबका कोई अंत है क्या ?!

★★★

२१७५. संसार का स्वरूप कैसा है ? जगत् के जीवमात्र में भगवान बसे हैं, अतः किसी भी जीव को ज़रा सा भी त्रास दोगे, दुःख पहुँचाओगे तो अधर्म होगा। अधर्म का फल तुम्हारी इच्छा के विपरीत आता है और धर्म का फल तुम्हारी इच्छा के अनुरूप आता है।

★★★

२१७६. किसी को 'ऑब्लाइज' करोगे तो तुम्हारी इच्छानुसार होगा और किसी को नुक़सान पहुँचाओगे तो तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध होगा।

२१७७. जगत् दर्पण समान है, जैसा रूप है वैसा ही दिखाये, ख़ामी है तो ख़ामी दिखाये।

२१७८. राह चलते कोई भटक जाय तो रास्ते के जानकार से पूछने पर सही रास्ता मिले। इसी तरह ये लोग मोक्ष जाते हुए रास्ता भटक गए हैं, अगर इन्हें मोक्ष का 'गाइड' मिले तभी हल निकले। "ज्ञानी" ये मोक्ष के पथदर्शक हैं!

२१७९. जगत् के धर्म 'अबँध' को 'बँध' मानतें हैं और जिससे 'बँध' होता है उसका तो उन्हें कोई भान ही नहीं।

२१८०. 'स्वयं कौन है' ये जानें तभी से 'अबँध दशा' उत्पन्न होवे।

२१८१. सारे जगत् ने सत्कार्यों की उपासना को 'धर्म' माना है। 'सत्कार्य' ये 'लौकिक धर्म' कहलाये।

२१८२. लोग तो सत्कार्य भी नहीं जानते। सत्कार्य भी उदयकर्म करवाता है, प्रकृति जबरन करवाती है, उसमें तेरा क्या? 'सत्कार्य करना' ये भी तो अनिवार्य रूप से होवे।

★★★

२१८३. अध्यात्म में दाख़िल हुए-ये कब कहा जाए? जब 'मैं इससे कुछ अलग हूँ' ये आभास होवे, तब से अध्यात्म शुरू होता है और जब देहाध्यास चला जाए तब अध्यात्म पूरा हुआ समझो!

२१८४. 'रिलेटिव धर्म' की आवश्यकता तो है ही । जब तक 'रियल' प्राप्त न होवे तब तक 'डेवलप' होने हेतु संसार की कूट-कुटाई से गुज़रते हुए, बुद्धि विकसित होती जाये। बुद्धि बढ़ने के साथ-साथ संताप भी बढ़ता चले और जब संताप असह्य हो जाये तब मनुष्य मोक्ष ढूँढ़े !

२१८५. चिंता, 'वरीज़', दुःख ये आध्यात्मिक 'डेवलपमेंट' करने में 'हेल्पिंग' हैं।

२१८६. वड़ोदरा से मुम्बई आना हो तो दक्षिण दिशा के सारे चिन्ह भायें और दिल्ली जाना हो तो उत्तर दिशा के सारे चिन्ह भायें। मनुष्य को क्या पसंद है इससे उसने कौन सा रास्ता पकड़ा है ये पता चल जाये। अनेक रास्ते हैं, एक नहीं। जितने दिमाग उतने रास्ते ! ये सारे बुद्धिमत के रास्ते हैं। जहाँ बुद्धिमत का संचालन है, वहाँ भटकाव है। केवल 'वीतराग' का मत ही 'सेफ साइड' है।

२१८७. जहाँ अध्यात्म हो, वहाँ आराधना करो तो अध्यात्म प्राप्त हो सके। जहाँ यथार्थ अध्यात्म हो वहाँ विषय नहीं होवे, चोरी, हिंसा, झूठ, परिग्रह कुछ भी न होवे; जहाँ ये सब नहीं होता, वहाँ तुम बैठो तो आगे बढ़ सकते हो।

★★★

२१८८. 'अध्यात्म' ये ऐसा मार्ग है कि जहाँ भौतिक सुखों की आशा को कम करते हुए जाना है, तब अंत में अपना स्वयं-सुख उत्पन्न होवे ! अपना सच्चा सुख, सनातन सुख उत्पन्न होवे !!

२१८९. ‘ज्ञानी’ की कृपा मोक्ष में ले जाये और ‘भगवान की कृपा’ संसार के भौतिक सुख देवे। भगवान मोक्ष में नहीं ले जाते क्योंकि भगवान तो बिना ‘ज्ञानी’ के पहचाने नहीं जाएंगे ना ?! वे तो गुप्त भेष में रहते हैं !

★★★

२१९०. जगत् के सभी धर्मों की सारी पुस्तकों को इकठ्ठा करें, इन्हें धारण करें तब जाकर धर्म धारण होवे ! वो धारण किया हुआ धर्म सौ प्रतिशत मजबूत हो जाने पर मर्म निकलने की शुरूआत होवे ! वो मर्म जब सौ प्रतिशत मजबूत हो तब ज्ञानार्क निकलना शुरू होवे !!! वो ज्ञानार्क ‘‘ज्ञानीपुरुष’’ ‘यहाँ’ ‘डायरेक्ट’ पिला देते हैं !

★★★

२१९१. जगत् का जो विज्ञान है वो क्रमिक है, ‘स्टेप-बाय-स्टेप’ आगे बढना है, सीढ़ियाँ चढ़ना है; और ये तो है ‘अक्रम विज्ञान’ ! दस लाख साल के बाद ये वस्तु उत्पन्न हुई है !! इसमें तो ‘लिफ्ट’ में ही जाना है, सीढ़ियाँ चढ़ने की तो मेहनत ही नहीं। बाद में निरंतर समाधि में ही रह पायें ! आधि, व्याधि और उपाधि के बीच निरंतर समाधि !!

२१९२. पक्का साधक उसे कहेंगे कि जो धर्म प्राप्त होने के बाद उसके पालन में ज़रा भी कोर-कसर न रखे।

★★★

२१९३. धर्म तो बिल्कुल तलवार की धार जैसा है, वहाँ पोलमपोल न चले।

२१९४. विरोधाभासी वर्तन करना ये ही अधर्म, और अविरोधाभासी वर्तन करना ये है धर्म।

२१९५. धर्म यानी ध्येय प्राप्त करने की साधना।

२१९६. आत्मधर्म किसके लिए है ? जो किसीसे भी प्रभावित न हो ! किसीसे डर क्यों लगना चाहिए ? जिसे किसीसे डर लगे, वो 'प्रभावित' हुआ कहा जाये।

२१९७. किसी भी प्रकार की भावुकता (emotion) 'रिएक्शनरी' होती है। वैसे विशुद्ध भावुकता तो नहीं हो सकती। 'भावुकता' ये पौद्गलिक वस्तु है। भावुक नहीं होना है, बल्कि शुद्ध प्रेम ही रखना है। तुम और मैं एक ही हैं, ऐसे ही रहना है। शुद्ध प्रेम ऐसी वस्तु है कि किसी के साथ किंचित् मात्र भी 'इफेक्टिव' न होवे। भावुकता जड़ है, अत: 'इफेक्टिव' होती है। 'शुद्ध प्रेम' चेतन है, 'इनइफेक्टिव' है।

२१९८. इस जगत् में आत्मा के अलावा जो कुछ भी प्रिय लगे तो समझो वो विषय हो गया। जब से उसे प्रिय माना तब से ही आवरण छा जाये, अत: उसका कोई अप्रिय दोष कभी भी दिखाई न पड़े !

२१९९. कर्तापन की 'राँग बिलीफ' टूटे तो समझो तुम आश्रित ही नहीं, बल्कि सर्वस्व हो गये।

२२००. निराश्रित में से आश्रित होओगे तभी परमात्मा हो पाओगे।

२२०१. अंदरूनी ताप, बाहरी ताप, त्रिविध ताप इन से सारा जगत् पीड़ित हो रहा है ! अंदरूनी ताप बंद हो जावे तो मानों सब हो गया। अंदरूनी ताप कर्म का बंधन करावे जबकि बाहरी ताप कर्म से छुड़ाये, निर्जरा करवाये।

२२०२. 'आरोपित भाव' ये कर्म और 'भुगतना' ये है कर्मफल ! आरोपित भाव को ही 'अहंकार' कहते हैं।

२२०३. इस संसार में 'आरोपितभाव' ये ही सबसे बड़ा गुनाह है।

२२०४. शायद ही समझ में आये, और मानों समझ आ भी गया तो वो समझ टिके नहीं, ऐसा ये अगम और अगोचर पंथ है मोक्ष का !

★★★

२२०५. अपने 'स्वरूप' की अज्ञानता ये ही संसार का कारण है। शास्त्रों-संबंधी अज्ञानता जाने से, मोक्ष-फल न मिले। अपने 'स्वरूप का भान' हो जाये तो समझो सब काम पूरा हो गया !!

★★★

२२०६. ये सारे शास्त्र ब्रह्म को जानने के लिए लिखे गए हैं, लेकिन ब्रह्मप्राप्ति तो नहीं हुई, और अनंत जन्मों से जीव निरंतर भटकता ही रहा है। जब तक स्व-स्वरूप का अज्ञान न मिटे तब तक हल ना मिल पाये। लोगों ने तो कई सारी कल्पनाओं का चित्रण किया है जिनका कोई अंत ही नहीं !

२२०७. पढ़ने से विकल्प न जाय, जानने से ही विकल्प जाय।

२२०८. शास्त्र तो मात्र जानने हेतु लिखे गए हैं। जो जानने के लिए है, वो करने के लिए नहीं होता। लेकिन लोग कहते हैं कि 'मुझ से नहीं हो रहा, मुझसे नहीं हो रहा' ! 'ज़हर खाने से मर जायें', इस ज्ञान को तुम बस जान लो फिर और कुछ करना नहीं है। जो ज्ञान क्रियान्वित हो वो ही सच्चा ज्ञान। जो ज्ञान वर्तन में न आये वो किस काम का ?!

२२०९. शास्त्रीय ज्ञान अचेतन होवे, हालाँकि वो चेतन की ओर ले जाय। "ज्ञानी" का 'ज्ञान' चेतन होवे। "ज्ञानी" का 'ज्ञान' मिल जाय, फिर वो 'ज्ञान' ही काम करता रहे।

२२१०. शब्द से आत्मा को जानें तब से लाभ होने की शुरुआत हो। शास्त्र में शब्द-आत्मा होवे। 'दरअसल-आत्मा' के दर्शन तो "ज्ञानी" में होवे।

२२११. पुस्तक में चित्रित 'मोमबत्ती' से उजियारा होता है क्या ? काग़ज़ पर जो अंकित है उससे काम नहीं बनता। आत्मा तो "ज्ञानीपुरुष" से ही जानने योग्य है। यदि तुम्हें आत्मा जानना हो तो "ज्ञानीपुरुष" के पास जाओ।

★★★

२२१२. आत्मा तो अनुभवजन्य होनी चाहिए, शास्त्रज्ञान से जानी हुई नहीं चलेगी। शास्त्रज्ञान से निराकरण नहीं होता, अनुभवज्ञान से ही निराकरण होवे।

२२१३. 'फेक्ट' वस्तु के तो एक वाक्य में ही अनंत शास्त्रों का सार समाया हुआ होता है!

२२१४. पंडित यानी जो शास्त्र का सूक्ष्मतम अर्थ निकाले, और शास्त्रज्ञानी यानी जो शास्त्रों का सार निकाले!

२२१५. शास्त्र लिखे जाने का प्रयोजन क्या है? वो तो 'थर्मोमिटर' है। 'शास्त्र में जो लिखा है वो सच है और पाठक जो मानता है, वो ग़लत है' – बस इतना जानने के लिए ही शास्त्र हैं!

२२१६. शास्त्र कभी एक व्यक्ति को ध्यान में रखकर नहीं लिखे जाते, वे तो सर्वानुलक्षी होते हैं। इन में ज़्यादातर देवगति पाने के लिए और मनुष्यगति पाने हेतु लिखा होता है; मोक्षप्राप्ति के लिए तो शास्त्र में थोड़ा सा ही, अति संक्षेप में लिखा होता है।

२२१७. ये 'मेडिकल' की मोटी मोटी किताबें आम लोगों के किस काम की ?! इन्हें कोई चवन्नी में भी न ले। जबकि इनका सही मूल्य तो 'डॉक्टर' ही करे! ज्ञान की किताबों का भी ऐसा ही है।

★★★

२२१८. शास्त्र में मोक्ष नहीं, आत्मा में मोक्ष है।

★★★

२२१९. शास्त्र में सब मूर्त ज्ञान है और अमूर्त ज्ञान तो अमूर्त भाषा में होवे। जो इंद्रियों से दिखे वो सभी मूर्त ज्ञान है।

२२२०. चारों वेद पढ़ लो, धारण कर लो, फिर वेद स्वयं क्या कहते हैं ?! 'दीस इज नोट देट. दीस इज नोट देट' (नेति, नेति)। जिस आत्मा को तुम खोज रहे हो वो इसमें नहीं। अत: 'गो टू ज्ञानी' (''ज्ञानी'' के पास जाओ)।

★★★

२२२१. 'आत्मा का लक्ष (आत्मावबोध) बैठना' ये तो चारों वेदों से भी परे है।

★★★

२२२२. वेद 'ज्ञानस्वरूप' हैं और भगवान 'विज्ञानस्वरूप' हैं।

★★★

२२२३. शास्त्र क्या हैं ? शब्दरूप हैं। ये शब्द हैं जिनके अर्थ खुलते-खुलते शब्दार्थ होवे ! बाद में अर्थ आगे बढ़े, वो अर्थ खुलते हुए परमार्थ तक पहुँचे, वहाँ तक दृष्टि पहुँच जाये !! परंतु शास्त्र से दृष्टि नहीं बदल पाती। दृष्टि बदलने के लिए तो ''ज्ञानीपुरुष'' ही चाहिए। 'ये' दृष्टि के कारण ही तो संसार खड़ा हो गया है। ''ज्ञानी'' दृष्टिभेद करा देवें।

★★★

२२२४. 'समकित', ये कोई वस्तु नहीं, ये तो दृष्टि है। मिथ्यात्व दृष्टि उल्टा दिखाये जबकि समकित-दृष्टि उल्टे को सीधा कर देवे।

★★★

२२२५. इंद्रियदृष्टि राग-द्वेष कराये; समकित-दृष्टि शुद्धात्मा ही देखे।

★★★

२२२६. जो हमेशा अस्थिर स्वभाव का है, उसे लोग स्थिर करने का प्रयत्न करते हैं। दृष्टा जो हमेशा स्थिर ही है, उसकी ओर दृष्टि पड़े, तो सब कुछ स्थिर हो जाय। हमारा 'ज्ञान' ज्ञेयों में मंडराता है, वो ही 'ज्ञान' यदि ज्ञाता में पड़ जाये तो वो 'अपना खुद का' हो जावे।

२२२७. मोक्ष सहज है, सरल है, सुगम है, किन्तु उसकी प्राप्ति दुर्लभ है, क्योंकि मोक्षस्वरूप पुरुष मिलने चाहिए।

२२२८. हर एक वस्तु को उसके अपने स्वभाव में आने के लिए मेहनत नहीं करनी पड़ती, बल्कि उसे विशेष भाव में लाने के लिए मेहनत लगती है। पानी को गर्म करना हो, तो कितनी सारी मेहनत करनी पड़े ? और उसे ठंडा करना हो तो ? कुछ भी न करना पड़े, क्योंकि ये तो उसका स्वभाव ही है ! ठीक उसी प्रकार, आत्मा तो स्वभावतः मोक्षस्वरूप ही है, अतः ''ज्ञानीपुरुष'' कृपा करें और रास्ता निकालें। ''ज्ञानी'' की आज्ञा में रहने से मोक्ष होवे ! ज़रा भी मेहनत न करनी पड़े। मेहनत से तो ये संसार खड़ा होवे। जप किये थे, तप किये थे, उसी का तो ये सब फल मिला है।

२२२९. मेहनत का फल संसार और समझ का फल है मोक्ष !

२२३०. अत्यधिक कठिन है अधर्म, उससे कम कठिन है धर्म, और जिसमें कोई मेहनत ही नहीं, वो है मोक्ष !

★★★

२२३१. खुदा से एक होने में मेहनत नहीं लगती, अपितु खुदा से जुदा होने में मेहनत लगती है।

★★★

२२३२. ''ज्ञानीपुरुष'' मिल जाय तो मोक्ष कठिन नहीं ! उनसे मिले बग़ैर मोक्ष मिल जाएगा–ये मान लेना बड़ी भूल है।

★★★

२२३३. 'वीतरागों' का मोक्ष किसे कहते हैं ? देहधारी रूप में होते हुए भी कोई दु:ख स्पर्श न करे ! अत: सांसारिक सुख भी स्पर्श ना करे, और स्वाभाविक सुख उत्पन्न होता रहे !!

२२३४. अज्ञान से मुक्ति हुई इसीका नाम है मोक्ष !

२२३५. मनुष्य ने अनंत जन्मों से मोक्ष का नियाणा (संकल्प) किया है, लेकिन पक्का संकल्प नहीं किया। यदि मोक्ष के लिए ही पक्का नियाणा किया होता तो उसका सारा पुण्य उसी में ही लग जाता।

२२३६. ये सारा जगत् दु:ख में ही फँसा हुआ है ! किस बात से दु:ख है ? अज्ञानता से। अज्ञानता के कारण राग-द्वेष होते रहते हैं और उसी से ये सारे दु:ख हैं ! 'ज्ञान' से ही दु:ख का अभाव बरते, अन्य कोई उपाय है ही नहीं।

★★★

२२३७. 'दु:ख का अभाव' ये पहला मोक्ष। 'देह वग़ैरह का अभाव होवे' ये दूसरा मोक्ष।

★★★

२२३८. इस जगत्-प्रवाह में किसी को संगमरमर का रास्ता मिला हो, या किसी को काँटों से भरा रास्ता मिला हो, या तो किसी को डामर रोड मिल गया हो; लेकिन हर एक को रास्ता तो पार करना ही पड़ेगा न ?!

२२३९. सारा संसारमार्ग ये मोक्षमार्ग ही है। जीव उत्तरोत्तर, क्रमशः वर्धमान होते ही रहते हैं। वे केवल मनुष्य गति में आने पर ही उलझन में पड़ जाते हैं, क्योंकि 'मनुष्यगति' में ही कर्मबँध होते हैं, यहीं वे तरह तरह के कर्म बाँधते हैं!

★★★

२२४०. संसार यानी जो निरंतर परिवर्तन होता ही रहे। अब इसमें, 'ऐसा हो जाएगा तो? वैसा हो जायेगा तो?' ऐसे विकल्प करने की ज़रूरत ही क्या है? जो आज भाव दिखाता हो, वो ही हम पर कल अभाव भी दिखाये, उसके प्रति मोह क्यों? मोह तो अपने 'स्वरूप' पर, जो कि त्रिकाली वस्तु है, उस पर ही करने योग्य है; भाव तो 'स्वरूप का भान' कराने वाले ''ज्ञानीपुरुष'' पर करने योग्य है! ''ज्ञानीपुरुष'' के रुख़ में कभी भी बदलाव नहीं आता।

★★★

२२४१. आत्मा संसार-अवस्था में संकोच-विकास का भाजन है, और मोक्ष-अवस्था में एक सरीखा है।

★★★

२२४२. सांसारिक भावों में तन्मयता नहीं हो ये है मुक्त भाव, ये ही है मोक्ष। दुनिया का कोई भी भाव जब बाँध न पाये, वो है मोक्ष!

★★★

२२४३. इस जगत् में 'मुक्ति' ही एकमात्र सारभूत तत्त्व है।

२२४४. मोक्ष का अधिकारी कौन? जो मन में जैसा सोचे, वैसा ही वाणी से बोले और वैसा ही वर्तन करे; ऐसा हो जाने के बाद ही समझो कि मोक्ष का अधिकारी बनने की शुरुआत हुई।

२२४५. संसार के रसों के प्रति जिसे ऊब आने लगे, वो ही मोक्ष का अधिकारी !

२२४६. 'अक्रम' में तो ''ज्ञानी'' किसी की पात्रता देखते ही नहीं ! वैसे देखा जाए तो इस काल में कोई पात्र है ही नहीं।

२२४७. भगवान ने कहा कि मोक्ष हथेली में ही है, यदि अज्ञान चला गया तो !

२२४८. अज्ञान जानना कठिन है, 'ज्ञान' जानना सरल है। अज्ञान का तो पार ही नहीं आता !

२२४९. अज्ञान में जो पैठने न दे, उसका नाम 'ज्ञान' ! जैसे ही अज्ञान खड़ा होने की तैयारी में हो तो तुरंत 'ज्ञान' हाज़िर हो जाए और कहे कि 'दिस इज दॅट।'

२२५०. मनुष्य एक ही जगह रह पाता है। 'ज्ञान' में रहे तो अज्ञान भूल जाये।

२२५१. 'विद्या-अविद्या' ये अहंकारी ज्ञान है और 'निर्अहंकारी ज्ञान' ये ही 'ज्ञान' है।

२२५२. आत्मा और 'ज्ञान' हमेशा भीड़ में ही होते हैं, एकांत में नहीं। एकांत में तो शांति होती है, 'ज्ञान' नहीं।

२२५३. हमारा विनय ऐसा होना चाहिए कि अपराधक जीव, अनपराधक हो जाये।

२२५४. अविनय के प्रति विनय करना ये 'गाढ़ विनय' कहलाये। अविनयी दो थप्पड लगा दे, फिर भी विनय बनाये रखना, ये 'परम अवगाढ़ विनय' कहलाये।

२२५५. जब तक भगवान के स्वभाव जैसा हमारा स्वभाव ना हो जाय, तब तक हमें परम विनय रखना चाहिए।

२२५६. विनय यानी विशेष नय। इस जगत् के सभी नय संसार हेतु होवे जबकि 'विशेष नय' मोक्ष में ले जाये। एक विनय ही ऐसा है कि जो मोक्ष ले जा सके।

२२५७. 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ये भाव शुद्धभाव है और ये ही परम विनय है।

२२५८. 'परम विनय' ये प्रज्ञा का भाग है। भगवान से धातु मिलाप होने तक परम विनय बना रहना चाहिए।

★★★

२२५९. ये परम विनय का मार्ग है। परम विनय यानी क्या ? स्वयं किंचित् मात्र ख़लल न करे, बल्कि सभा में औरों को बैठने के लिए जगह कर दे।

२२६०. मन बिगड़ा हुआ न हो, वाणी बिगड़ी हुई न हो, वर्तन बिगड़ा हुआ न हो, ये ही परम विनय!

२२६१. जो परम विनयी हो, वो ही आबरूदार ! अन्यत्र आबरू है ही कहाँ ?! कलियुग में किसी की आबरू रहेगी भला ? 'परम विनय' ये ही आबरू है । लोगों का विनय देखकर, हम अविनयी हों, तो हमारी क्या आबरू हुई ?!

★★★

२२६२. ''ज्ञानी'' के प्रति अविनय करोगे तो इसका उन्हें कोई हर्ज नहीं, परंतु तुम अपने आप के लिए अंतराय पैदा कर रहे हो । तुम ''ज्ञानी'' को गाली दोगे तो भी उन्हें कोई हर्ज नहीं, परंतु तुम खुद अपना नुक़सान कर रहे हो । 'यहाँ' तो बहुत ज्यादा विनय चाहिए, परम विनय चाहिए !

★★★

२२६३. ''ज्ञानी'' के पास बेतरतीब कुछ नहीं चलता, विनय में ज़रा सी भी खामी आई तो तुम्हारा मोक्ष चला गया समझो । परम विनय यानी आंतरिक विनय होना चाहिए ! बहुत भारी विनय चाहिए ।

★★★

२२६४. 'मैं जानता हूँ' ऐसा मानने पर आवरण चढ़ जाय और जिज्ञासावृत्ति टूट जाय ।

२२६५. 'मैं कुछ जानता हूँ' ऐसा ज़रा सा भी विचार आए, तो वो अजागृति ला दे ।

२२६६. अज्ञान का ज्ञान जानने में पुद्‌गल शक्तियों का उपयोग होता है और 'ज्ञान' का 'ज्ञान' जानने के लिए प्रार्थना करनी होती है ।

२२६७. नीचे गिरानेवाला अज्ञान है, उसमें पुद्‌गल शक्तियाँ अपने आप जुड़ जाती हैं ; जबकि ऊँचा उठानेवाला ज्ञान है, वो पुद्‌गल विरोधी होने के कारण शक्तियाँ माँगनी पड़ती है, तभी ऊपर चढ़ा जा सकता है।

२२६८. सच्चे दिल की प्रार्थना संयोग मिला देवे।

२२६९. सत्यार्थ की झंखना (तीव्र इच्छा), इसी का नाम प्रार्थना!

२२७०. जिसका अभिनिवेश छूट गया, मानों वो परमात्मा हो गया।

२२७१. जगत् हानि-वृद्धि के नियम के अधीन है।

२२७२. जो कार्य करते समय हमारे भीतर ज़रा भी शंका पैदा न हो, वो कार्य अवश्य पूर्ण होवे।

२२७३. वस्तु को नहीं निकाल देना है अपितु उसके प्रति जो रस है उसे निकाल देना है ! सभी लोग वस्तु को निकाल देने की माथापच्ची करते हैं। वस्तु न जाये, वो तो भाग्य में लिखी होती है, उसके प्रति जो रस है उसे निकाल देना है।

२२७४. जहाँ मतभेद पैदा होवे वहाँ अपने शब्द वापिस ले लेना, यही समझदार की निशानी।

२२७५. 'व्यूपॉइन्ट' ही मतभेद खड़े करवाता है।

२२७६. मनुष्य कैसा हो ? प्रभावशाली हो ! उसे देखते ही हमारे मन में अच्छे विचार आये और हम संसार भूल जायें !!

२२७७. 'जिससे प्रभाव उत्पन्न हो', ऐसे किसी को देखें तो हमारे भाव एवं विचारों में बदलाव आये।

२२७८. हाज़िर के सौदे ही काम आयेंगे, बाक़ी सब तो इतिहास !

२२७९. इस 'अक्रम विज्ञान' की प्रत्यक्षता कर लेने जैसी है ! परोक्षता तो कब से सुनते ही आ रहे हो, अब प्रत्यक्षता कर लो तो आत्मा प्रत्यक्षरूप में अनुभव में आ सके।

२२८०. दिल लगे बग़ैर कभी भी मोक्षमार्ग संभव नहीं होता। मोक्षमार्ग में दिल लग जाना चाहिए। दिल नहीं लगता इसी के कारण तो जीव का स्वभाव कषायी है, वरना उसे कषाय या विषय की कोई ज़रूरत ही नहीं।

★★★

२२८१. नज़र चिपकी तो संसार पैदा हो गया समझो। ये जगत् खुली आँखों से देखने जैसा है ही नहीं ! इसमें भी यह कलियुग तो भयंकर रूप से असर करे। इन आँखों से तो बहुत संसार पैदा हो जाय।

२२८२. 'विषय' तो खुली परवशता है।

★★★

२२८३. विषय की याचना करने मात्र से जिसे मर जाने जैसा लगे, वो ही इस जगत् को जीत पाये।

२२८४. 'विषय' ये तो भ्रांति की भी भ्रांति है!

२२८५. सबसे बड़ा आत्मघात है, ये विषय-विकार!

२२८६. स्त्री का दोष नहीं, विषय का दोष नहीं, दोष तो है तुम्हारी वृत्तियों में। वृत्तियाँ ही दख़ल पैदा करें और दु:खी करें।

२२८७. विषय 'डिस्चार्ज' स्वरूप है, इसमें वृत्तियों के कारण जोखिम खड़ा होवे, दख़ल पैदा होवे। वृत्तियों की विषय में ज़रूरत ही नहीं है। साहजिक यानी दख़ल पैदा न करे।

★★★

२२८८. मोक्ष में जाना हो तो निर्विषयी होना ही पड़े।

★★★

२२८९. अपने 'स्वरूप' के सिवा जो कुछ भी स्मृति में रहे, वे सारे विषय ही हैं।

२२९०. जिस का 'एन्ड' (अंत) आये, वे सभी विषय हैं। जिसका कभी 'एन्ड' (अंत) न आये, वो है आत्मा।

२२९१. जो बग़ैर-हक़ के विषय भोगता है, उसे विषय संसार में भटकाते हैं ! नाजायज़ विषय भोगनेवाले को मोक्ष नहीं है, अपने हक़ के विषय भोगनेवाले को मोक्ष है।

२२९२. शील उसे कहते हैं जिसमें किंचित् मात्र भी अनुचित भाव उत्पन्न नहीं हो।

२२९३. शील किसे कहेंगे ? जो क्रोध का जवाब क्रोध से नहीं देते, मान का जवाब मान से नहीं देते, रागी के प्रति राग से जवाब नहीं देते, उसे 'शील' कहा जाये।

२२९४. शील कब उत्पन्न होवे ? कभी भी किसी भी जीवमात्र को मन से, अहंकार से, अंतःकरण से ज़रासा भी दुःख न पहुँचे-ऐसा भाव जिसे रहे, उसे शील उत्पन्न होवे।

२२९५. जब तक कोई किसी बाबत में अंध हो, तब तक उस बाबत में उसकी दृष्टि नहीं खिल पाती ! उससे दूर रहने के पश्चात् ही वो छूट पाये, और तभी उसकी दृष्टि खिलने लगे।

२२९६. जिस दृष्टि की जितनी प्रशंसा की हो उतनी ही उसकी निंदा की जाय, तो वो दृष्टि निरस्त हो जाये।

२२९७. भगवान के दर्शन करें तो भाव से करें। मेहनत करके दर्शन करने गए लेकिन पूर्ण भावपूर्वक दर्शन ना करो तो सब व्यर्थ है। अतः इस प्रकार दर्शन करना–'हे भगवान! मेरे अंदर जो बैठे हो, वो ही आप हो। आप वीतराग हो, आपको नमस्कार करता हूँ'।' इस प्रकार यदि दर्शन किए जायें तो भगवान को 'फोन' उठाना ही पड़ेगा, अगर वे 'फोन' न उठाये तो ये उनकी ज़िम्मेदारी। सच्चा 'फोन' आये तो भगवान तुरंत ही 'फोन' उठायें!

★★★

२२९८. कृष्ण भगवान के 'फोटो' का दर्शन करें तो ये 'रिलेटिव' को पहुँचे। ''ज्ञानीपुरुष'' को चरण वंदन करें, तो ये अपनी आत्मा को ही डायरेक्ट पहुँचे, क्योंकि 'वीतराग' स्वीकार नहीं करते। जहाँ 'रिलेटिव' और 'रियल' दोनों के ही दर्शन होवे, वहीं पर ही मोक्ष मिले।

★★★

२२९९. नियम से ही हर वस्तु के दो भाग होते हैं: 'रिलेटिव' और 'रियल'! 'फोटो' के दर्शन करने पर 'रिलेटिव' की डाक कृष्ण भगवान को पहुँचे, और 'रियल' में तो हमारी खुद की आत्मा की ही भक्ति होवे।

२३००. श्रद्धा है वहाँ माँगना नहीं होता। तनिक भी लालच रखना, ये है अंधश्रद्धा!

२३०१. जहाँ स्याद्वाद हो वहाँ न वाद होवे, न विवाद, और ना ही प्रतिवाद होवे।

२३०२. जहाँ पक्षपात है, वहाँ हिंसा है और हिंसक वाणी है। जहाँ निष्पक्षपाती वाणी है, वहाँ अहिंसक वाणी है।

★★★

२३०३. 'वीतराग' और 'वीतराग' की वाणी के अलावा बंधन छुड़ानेवाला कोई मार्ग है ही नहीं।

२३०४. 'मैं कैसा बोला?' ये हुआ वाणी का परिग्रह।

२३०५. अगर ये 'शब्द' ही नहीं होते, तो मोक्ष तो सहज ही है। इस काल में वाणी से ही बंधन है, अतः किसी के बारे में एक अक्षर भी नहीं बोलना है।

२३०६. किसी को 'ग़लत' कहना ये तो अपनी आत्मा पर धूल झोंकने के बराबर है।

२३०७. ये सारा वातावरण परमाणुओं से भरा हुआ है! इसलिए तो ''ज्ञानी'' कहते हैं, कि किसी की भी निंदा मत करो, बेजवाबदारीपूर्ण एक भी शब्द मत बोलो; यदि बोलना ही है, तो फिर अच्छा बोलो।

२३०८. वचनबल किसके पास होवे? जिसे जगत्-संबंधी कोई स्पृहा न हो, चाहे फिर उसने आत्मा प्राप्त ना भी की हो!

★★★

२३०९. शीलवान हुए बिना वचनबल उत्पन्न ना होवे।

★★★

२३१०. संसारहेतु लिया हुआ मौन ये 'अमौन' है। आत्महेतु जो बोला जाये, वो ही 'संपूर्ण मौन' है।

२३११. जो 'सेन्सेटिव' हैं, उन्हें मौन रखने की ज़रूरत है। और हाँ, मौन रखने की अपेक्षा तो ये लक्ष्य में रखना बेहतर होगा कि हमारी वाणी दूसरों पर क्या असर करती है?

२३१२. आत्मा-परमात्मा के लिए बोलने में कोई सांसारिक रंग ही नहीं, अतः भगवान ने उसे 'मौन' कहा है!

२३१३. 'वाणी' ये पुद्‌गल की अवस्था है, उसका गुणधर्म नहीं।

२३१४. स्याद्‌वाद-वाणी की भूमिका कब उत्पन्न होवे? जब हम अहंकारशून्य हो जायें, सारा जगत् निर्दोष दिखाई दे, किसी भी जीव का किंचित्‌मात्र दोष न दिखाई दे और जब किसी के धर्मप्रमाण को हम से किंचित्‌मात्र भी ठेस ना पहुँचे, तभी।

२३१५. सांसारिक मीठी वाणी 'स्लीप' कराये और स्याद्‌वादयुक्त मधुरवाणी 'उर्ध्वगामी' बनाये।

२३१६. स्याद्‌वाद-वर्तन किसे कहेंगे? जो वर्तन मनोहर लगे, मन को हर लेवे ऐसा हो।

२३१७. व्यवहारशुद्धि के बग़ैर स्याद्‌वाद-वाणी ना निकले।

२३१८. जहाँ स्याद्‌वाद-वाणी है वहाँ आत्मज्ञान है। जहाँ एकान्तिक वाणी है वहाँ आत्मज्ञान नहीं।

२३१९. स्याद्वाद किसे कहेंगे ? जिस बात से शरीर में कहीं से भी विरोध ना होवे। मन विरोध न करे, बुद्धि-चित्त-अहंकार कोई भी विरोध ना करे !!

२३२०. भगवान का मार्ग समाधान का है, ज़ोर-ज़बरदस्ती से लागू करवाने का नहीं।

२३२१. स्याद्वाद यानी केवल एक में ही रमे रहना, वो भी अलग अलग भावों के साथ।

२३२२. सभी दृष्टिबिंदुओं को जो अपने में समा ले, उसी का नाम वीतरागधर्म !

२३२३. 'वीतरागों' का 'सायन्स' सबसे अंतिम 'सायन्स' है ! उससे आगे कुछ भी जानना बाक़ी नहीं रहता।

★★★

२३२४. 'वीतराग-विज्ञान' इतना विशाल है कि यदि उसके एक बाल जितना अंश भी इस जगत् को मिल जाता, तो सारा जगत् आश्चर्य-चकित हो जाता !

★★★

२३२५. ये 'वीतराग-विज्ञान' किसी की समझ में आए ऐसा नहीं है ! दादाश्री कहते हैं कि 'मुझ' में यह प्रकट हुआ इसमें मेरा कोई पुरुषार्थ नहीं, ये तो 'बट-नेचरल' आविर्भाव हुआ है !

★★★

२३२६. 'एकांत-दृष्टि' से मोक्ष नहीं होता। 'एकांत-दृष्टि' से धर्म हो सकता है परंतु धर्मसार प्राप्त नहीं होता।

२३२७. एकाग्रता तो तभी संभव होवे जब अंदर से हमारे कर्म का उदय सहायभूत हो, अगर उदय सहाय न करे तो एकाग्रता नहीं हो पाये। पुण्य का उदय हो तब एकाग्रता हो पाती है, पाप का उदय होने पर नहीं हो पाती।

★★★

२३२८. एकाग्रता कैसी होनी चाहिए ? उठते-बैठते, खाते-पीते, तकरार करते हुए भी एकाग्रता न टूटे ऐसी! पूरे शरीर में कहीं से भी मतभेद ना उठे!

★★★

२३२९. प्रभु-साम्राज्य, शुद्धात्मा का साम्राज्य होवे, वहाँ कुछ भी उथल-पुथल नहीं होवे। इस स्थिति में तो पेट का पानी तक ना हिले, बुख़ार आए, देह रहे या चला भी जाय तथापि भीतर कुछ ना हिले!! कोई दख़ल ही नहीं। अपना क्या जायेगा? जायेगा भी तो, 'पड़ोसी' का ही!

★★★

२३३०. ये वाक्य तुम्हारी दुकान पर लगा देना: १. प्राप्त को भोगो, अप्राप्त की चिंता न करो। २. जो भुगते उसी की भूल। ३. 'डिसऑनेस्टी इज द बेस्ट फूलिशनेस।'

★★★

२३३१. धंधे में भगवान दख़ल नहीं देते। उसमें तो तुम्हारा कौशल एवं नैतिकता ये दो ही काम आयेंगे। अनैतिक तरीकों से साल-दो साल ज़्यादा कमाई मिले भी, लेकिन बाद में तो नुक़सान ही उठाना होगा। ग़लती हो जाने पर अंततः पश्चात्ताप करोगे तो भी छूट पाओगे!

★★★

२३३२. दादाश्री कहते हैं, ''यदि हमें कोई पूछे कि 'इस वर्ष आपको घाटा हुआ क्या?' तो हम कहेंगे कि 'नहीं रे भाई, हमें घाटा नहीं हुआ, लेकिन धंधे को घाटा हुआ है।' मुनाफ़ा होने पर कहेंगे कि 'धंधे को मुनाफा हुआ है।' 'हमें' तो कोई घाटा-मुनाफ़ा होता ही नहीं !''

२३३३. हर कोई मुनाफ़े की ही आशा करता है, कोई भी व्यक्ति घाटे की उम्मीद ही नहीं रखता। अरे, एक साल तो घाटे की आशा कर के चल ना भाई! फिर घाटा हो तो समझ लेना कि आशा पूरी हुई! ज्ञानी तो घाटे की आशा करते हैं, आम लोगों जैसा नहीं करते।

२३३४. धंधा करने के लिए तो बहुत चौड़ा सीना चाहिए। कलेजा बैठ जाय तो धंधा भी बैठ जाए।

२३३५. जब संयोग अच्छे न हों तब ये लोग कमाने निकलते हैं! ऐसे हालातों में तो भक्ति करनी चाहिए।

२३३६. घर में सबकी सेहत अच्छी है तो समझना कि मुनाफ़ा ही है। उस दिन अगर बही में घाटा दिखे तो भी मुनाफ़ा ही है! दुकान की तबियत बिगड़े या न बिगड़े, लेकिन घर के लोगों की तबियत नहीं बिगड़नी चाहिए।

★★★

२३३७. धंधे में बग़ैर-हक़ का कुछ लेना नहीं चाहिए और जब बग़ैर-हक़ का लिया जायेगा तब बरकत नहीं रहेगी।

★★★

२३३८. पैसा 'व्यवस्थित' के अधीन है, चाहे कोई धर्म में रहे या अधर्म में, पैसा तो आता ही रहेगा!

२३३९. 'पैसे अच्छे रास्ते पर खर्च करना', ये हमारे बस की बात नहीं। हाँ, भाव कर सकते हैं, परंतु दे नहीं सकते। और इस भाव का फल तो अगले भव में मिलेगा।

२३४०. जब संपत्ति में शांति नहीं, तो फिर विपत्ति में शांति कैसे होगी ?! सुख विपत्ति-संपत्ति में नहीं, बल्कि निष्पत्ति में सुख है।

२३४१. 'निस्पृह होना' ये गुनाह है और 'सस्पृह होना' ये भी गुनाह है! अतः 'सस्पृह-निस्पृह' रहने के लिए कहा गया है।

२३४२. 'ग्राहक आये तो अच्छा' बस, इतना ही भाव रखें, लेकिन फिर उत्पात(ऊधम) नहीं करना। 'रेग्युलारिटी रखें एवं भाव ना बिगाड़ें,' ये 'रिलेटिव पुरुषार्थ' है। ग्राहक न भी आये तो अकुलाना नहीं और कोई दिन यदि ग्राहकों के झुंड भी आ जायें तो सबको संतोष देना है।

२३४३. ''ज्ञानीपुरुष'' न तो निस्पृह होवे और ना ही सस्पृह। 'वे' तो सस्पृह-निस्पृह होवे, तुम्हारी भौतिक बाबत में निस्पृह और तुम्हारी आत्मा की बाबत में वे सस्पृह होते हैं।

२३४४. जो निस्पृह हो गया हो उसमें प्रेम उत्पन्न नहीं हुआ होता, और जहाँ प्रेम न होवे वहाँ कुछ काम नहीं बनता।

२३४५. विनाशी सुखों को भोगने की इच्छा को 'स्पृहा' कहा जाता है।

२३४६. 'वीतरागों' का 'सायन्स' समझने योग्य है!! ये जगत् तुम्हारा है, तुम्हारे ही जगत् में तुम्हें ही अड़चन होती है ये तो अजूबा ही हुआ न!

२३४७. इस संसार में 'असुविधा' ये अज्ञानता के कारण है। "ज्ञानी" को तो कभी भी–कहीं भी असुविधा नहीं दिखती।

२३४८. तुम्हें तरह तरह की अड़चनें आती रहेंगी लेकिन ऐन वक्त पर उसका उपाय भी आ मिलेगा। इसके लिए जगत् में हर तरह के लोग होते ही हैं।

२३४९. जो सुविधाएँ कलियुग को लायी हैं वे ही सुविधाएँ कलियुग को निकालेंगी भी।

२३५०. जो संसार को भुला दें ऐसी जगह पर बैठे रहना है और जो संसार में उलझा दे, वहाँ से हट जाना है – ऐसा विवेक जिसकी समझ में आ जाये, उसका काम बन जाये।

२३५१. जैसे जैसे खुद की भूल दिखती जाये, वैसे वैसे जगत् विस्मृत होता चले और समाधि रहे।

२३५२. खुद की भूल के कारण ही जगत् याद आया करता है। जो स्मृति में उभरता रहे, समझो कि उस से संबंधित ही भूलें हैं। संपूर्ण "ज्ञानी" को तो जगत् विस्मृत ही रहे।

★★★

२३५३. जिसके कारण जगत् विस्मृत रहे, दिमाग पर बोझ न रहे, शांति बनी रहे, 'रियल' और 'रिलेटिव' अलग रहे, वो है हमारी स्वतंत्रता!

★★★

२३५४. "ज्ञानीपुरुष" का वातावरण ही मोक्ष का अनुभव कराये, जगत् विस्मृत रहे।

२३५५. जगत् विस्मृत हुआ तब से जानो मोक्ष का अनुभव होने लगा !

२३५६. जगत् को जो विस्मृत करा सके, वो ही कर्मों का 'चार्ज' होना बंद करा सके।

२३५७. जो संसार भूला दें, वो हैं ''ज्ञानी'' !

२३५८. वीतराग हुआ किसे कहेंगे ? आत्मा और आत्मा के साधनों के सिवा जिसे और कुछ याद ही न रहे।

२३५९. वीतराग का प्रमाण क्या ? संसार की कोई चीज़ जिसे याद न हो, ये ! वीतरागता के सिवा जगत् न भुलाया जाय !!

★★★

२३६०. अपने 'स्वरूप' के अलावा अन्य जो कुछ भी याद रहे, वो राग है।

★★★

२३६१. ''ज्ञानी''यों का समभाव तो जगत् ने कभी देखा ही नहीं। ''ज्ञानी'' को तो राग में भी वीतरागता होवे, जबकि जगत् तो वीतरागता में भी वीतरागता को तलाश करे ! वस्तुतः तो राग में वीतरागता होनी चाहिए।

★★★

२३६२. जिसे परम उपकारकर्ता के प्रति किंचित्मात्र राग नहीं और परम उपसर्गकर्ता के प्रति किंचित्मात्र द्वेष नहीं, ऐसा वीतरागचारित्र जानने योग्य है।

२३६३. भगवान स्वयं वीतराग हैं, और तुम्हारे अंदर भी जब जगत् के प्रति एवं देह के प्रति वीतरागता आ जाये तो समझो काम बन गया ! ख़ैर, जगत् को छोड़ो, यदि इस देह के प्रति भी वीतराग हो जाओ – तो भी काम बन जायेगा !!

२३६४. समकित से 'वीतराग–विज्ञान' की शुरुआत होती है।

२३६५. आत्मा स्वयं 'विज्ञान–स्वरूप' है, अतः वो सर्वत्र 'विज्ञान' ही देखती है। शादी करने में हर्ज नहीं, लेकिन 'मेरा–तेरा' करना ये अज्ञान है। सर्वत्र 'मैं' हूँ कहना ये 'विज्ञान' है और 'अहंकार करना' ये 'अज्ञान' है।

★★★

२३६६. 'ज्ञान' को जानने से सही क्या और ग़लत क्या, ये पता चले, ज्ञान सद्–असद् का विवेक कराये, और विज्ञान को जानने से मुक्ति होवे। 'ज्ञान' को जानने से हित–अहित का भान होवे।

★★★

२३६७. जिस ज्ञान से बँध टूट जाये वो 'ज्ञान' कहलाये और जिससे नया बँध न होवे वो 'विज्ञान' कहलाये।

★★★

२३६८. धर्म का 'विज्ञान' और धर्म का ज्ञान दोनों अलग हैं। 'विज्ञान' से तो मुक्ति मिले।

२३६९. जगत् बाधक नहीं बनता अपितु तुम्हारी अपनी अज्ञानता ही तुम्हारे आड़े आती है। अज्ञान कब जाये ? ''ज्ञानी पुरुष'' जो 'ज्ञान' प्रदान करे, उसी से। ''ज्ञानीपुरुष'' का 'ज्ञान' कैसा होना चाहिए ? 'विज्ञान' होना चाहिए। 'विज्ञान' चेतन होवे जबकि ज्ञान अचेतन होवे। इस जगत् में जो चलता है वो ज्ञान अचेतन है। अचेतन यानी कि जो क्रियाकारी नहीं होवे जबकि ये तो 'विज्ञान' है। 'विज्ञान' निरंतर कार्य करता ही रहे, तुम्हें कुछ करना नहीं होता।

२३७०. ये 'अक्रम विज्ञान' तो 'साइन्टिफिक' है! 'विज्ञान' है!! 'एक्ज़ेक्ट' है!!! और बाक़ी सब तो 'डिस्चार्ज' हो रहा है।

२३७१. ये खंडन-मंडन नहीं है, ये 'अक्रम' तो डायवर्जन रोड़ है। क्रमिक मार्ग के सारे 'ब्रीज' टूट गये हैं, इसलिए ये 'डायवर्जन' रोड शुरू हुआ है। जब 'ब्रीज' बन जायेंगे तब ये 'डायवर्जन' रोड़ हट जायेगा!

२३७२. क्रम-मार्ग में क्या होवे ? तीन सौ साठ 'डिग्री' की 'बिलीफ्स' हैं, उनमें से एक 'बिलीफ' छुड़ाकर दूसरी 'बिलीफ' दी जाती है। एक-एक 'बिलीफ' को बदलने में हज़ार-हज़ार जनम लग जायें !

२३७३. 'अक्रम मार्ग' किसे कहा जाये ? जिसमें व्यवहार व निश्चय दोनों ही होवे।

२३७४. क्रमिक यानी ‘करने का’। ‘अक्रम विज्ञान’ में तो केवल ‘समझना’ ही है। बग़ैर-समझ से जो खड़ा हुआ, वो समझ आने पर ढह जायेगा। ‘मुझे ये हुआ’, ऐसा मानने के बजाय, केवल जानना ही है कि ‘ऐसा हुआ’ !

★★★

२३७५. जब तक मन-वचन-काया की एकात्मवृत्ति बनी रहे तब तक व्यवहार को ‘आचरण योग्य’ कहा गया है। इस काल में एकात्मवृत्ति नहीं रह पाती, अतः व्यवहार को ‘अक्रम’ में मात्र ‘निकाली’ (निपटान-योग्य) कर दिया है, फिर भी ‘अक्रम’ में व्यवहार, संपूर्ण आदर्श होता है।

★★★

२३७६. जिसने ‘अक्रम’ को पा लिया, उसका तो काम बन गया! न तो आलू छुड़ाया और न तो प्याज छुड़ाया। छोड़ना तो अज्ञान को है।

★★★

२३७७. समुद्र जैसा ये अज्ञान-संसार है, इसीमें लोग पैदा होते रहते हैं और मरते रहते हैं! इसमें जो अपने निश्चय स्वरूप को समझ ले, उसका काम बन जाये !!

★★★

२३७८. आत्मा ना संसारी है ना ही असंसारी। ‘संसारी-असंसारी’ ये सब तो देह को लागू होवे।

★★★

२३७९. संसारी किसे कहेंगे ? जिन्हें राग-द्वेष और कषाय हों वे सब संसारी। जिन्हें क्रोध-मान-माया-लोभ के संयम-परिणाम न होवे, वे सब संसारी। कोई भले ही रानियों के साथ रहता हो किन्तु उसमें संयम हो तो वह संयमी है और जिसे त्यागी होते हुए भी संयम न हो, तो वह संसारी है।

२३८०. हमारे अहंकार को तोड़ने के साधन, इसी का नाम है संसार !

२३८१. 'संसार' ये तो उबलते हुए सीसे का अदहन है। उसमें भगवान हाथ नहीं डालते। ''ज्ञानी'' भी हाथ नहीं डालते। वे तो भगवानस्वरूप हुए, फिर उसमें क्यों हाथ डालें ?!

२३८२. संसार में जब कोई एकबार वीतराग हो गया तो, फिर संसार उसे कभी चिपके नहीं, ऐसा नियम है!

२३८३. देखिये न, ये जड़ और चेतन दोनों इकठ्ठा होने पर कैसा संसार खड़ा हो गया ! फिर शादी करे, दामाद बने, समधि बने, समधन बने, चाचाससुर बने, मामाससुर बने !! कितनी सारी तरह-तरह की दख़लें खड़ी कर दी हैं ?!

★★★

२३८४. ये संसार तो दुःख का समुद्र है, उसमें लोगों ने सुख कैसे ढूँढ़ लिया ये समझ में ही नहीं आता ! जैसे कोई शराबी गटर में हाथ डालकर कहे, कि 'मुझे बहुत ठंडक मिल रही है', 'बहुत ठंडक मिल रही है', इस प्रकार ये लोग सुख मानते हैं !

★★★

२३८५. यहाँ सुख है ही कहाँ ?! ये तो बस भ्रामक मान्यताएँ हैं ! अतः ''ज्ञानी'' खुलकर कहते हैं कि ''तुम जो सुख ढूँढ़ते हो वो 'इसमें' मिलेगा नहीं। सुख तो आत्मा में है। हमने उस सुख को चखा है, अनुभव किया है; अतः सबको हम कहते हैं कि इस तरफ आओ-उस तरफ सुख नहीं है !!''

२३८६. हमारा स्वरूप तो परमात्म-स्वरूप है ! ऐसे कैसे गाफ़िल रह सकते हैं ?! इस जगत् में एक क्षण के लिए भी गाफ़िल नहीं रहना है।

२३८७. इस संसार में कोई भी अपना नहीं होनेवाला, सिर्फ़ हमारी आत्मा ही अपनी है। ये सब कुछ 'रिलेटिव' है, फिर क्या रहा ?!

★★★

२३८८. यदि हिसाब लगाएँ तो पता चले कि किसी के साथ किसी की साझेदारी नहीं होती। तुम्हारे बच्चे को यदि शौच जाना हो और तुम कहो कि "तेरी जगह मैं जाकर आता हूँ," तो क्या चलेगा ? नहीं चलेगा। सब ऐसा ही है, तो फिर साझेदारी काहे की ? रिलेटिव रूप से तो सर्वत्र अलग-अलग ही है और 'रियल' रूप से सर्वत्र एक ही है।

★★★

२३८९. एक ही बार अगर टेढ़ा पति या टेढ़ी पत्नी मिल जाय, तो न जाने कितने सारे जनम बिगाड़ दे !

★★★

२३९०. इस संसार में कई तरह की चुभन काटती रहती है ! सभी चुभन एकसाथ नहीं काटे, बल्कि बारी-बारी से काटे। पहली चुभन के खत्म होते ही दूसरी आ चुभे ! और फिर तीसरी आ के काटने लगे !! ऐसे ही निरंतर चुभन काटती ही रहे !!!

★★★

२३९१. देह का 'कैन्सर' तो फिर भी अच्छा, लेकिन ये मानसिक 'कैन्सर' अगर हो जाये, तो वो अनंत जन्मों को बरबाद कर दे !

२३९२. ये सारा संसार किस आधार पर खड़ा है ? क्लेश के आधार पर।

२३९३. शरीर की एक अवस्था पर पहुँचने पर दिवालिया-युग शुरू हो जाये। इन सब का दिवाला ही निकलनेवाला है, अतः अपना खुद का काम निकाल लो। जब तक ये 'दुकान' है तब तक सौदे कर लो।

★★★

२३९४. तुम स्वयं ही भगवान हो ! पर देखो ना, ये दशा तो देखो !! खुद ही भगवान और देखो, स्त्री के रूप में कितनी उपाधियाँ झेलनी पड़े ?! सब चिढ़ायें कि 'देखो, ये फलाँ की बहू, फलाँ की बहू !' ये हमें अच्छा लगेगा क्या ? 'अरे, फलाँ की औरत चली' ऐसा भी बोलेंगे !! ऐसे उपहास करे, अवहेलना करे तो ये क्या अच्छा लगेगा ? कितना अपमानजनक लगे ! है ना ?! देखो ना कैसी ये फज़ीहत !

२३९५. ऐसे तो ये सारा जगत् अनिवार्य है। 'शादी करना' ये भी अनिवार्य है, शादी किये बग़ैर भी ना चले।

२३९६. अपने मत के लिए लोग मर मिटेंगे, पर आत्मा के लिए मर मिटे ऐसे नहीं।

२३९७. बैराग यानी खुद ने जो मार खायी हो, वो उसे याद आया करे।

२३९८. जितनी याददाश्त उतना ही बैराग। लोगों को याददाश्त ही नहीं, फिर बैराग कहाँ से आये ?! मोह के कारण लोग खायी हुई मार को भूल जाते हैं।

२३९९. 'बैराग' ये तो सारासार की विचारणा है। पृथक्करण करने पर तुरंत ही उसके फलस्वरूप विरक्ति उत्पन्न होवे !

२४००. सद्-असद् का विवेक होवे, तो ही बैराग टिक सके, अन्यथा बैराग कभी न टिके। सद्-असद् का विवेक तो 'ज्ञान' से आये।

२४०१. बैराग में तो अनुभवज्ञान चाहिए! वहाँ शब्दाडम्बर काम न आये।

२४०२. बैराग तभी काम लगे यदि 'ज्ञान' प्राप्ति हो ऐसा साधन मिले, अन्यथा बैराग तो निष्क्रियता लाये।

२४०३. 'ज्ञान' हो और फिर बैराग चरम स्थिति पर पहुँचे तब वीतरागता उत्पन्न होवे ! वीतरागता यानी जहाँ पर जगत् को राग-द्वेष होवे, वहाँ उसे राग-द्वेष नहीं होवे।

★★★

२४०४. सच्चा बैरागी और सच्चे 'ज्ञानी' के बीच थोड़ा ही अंतर है, बहुत ज़्यादा अंतर नहीं। अज्ञानी और ''ज्ञानी'' के बीच तो बहुत अंतर है।

★★★

२४०५. 'राग' भी भरा हुआ माल है और 'बैराग' भी तो भरा हुआ माल है। 'वीतरागता' ही प्रमुख वस्तु है। जितनी वीतरागता आयी, मानों उतने अंश में तुम भगवान हुए, उतनी भगवत्शक्ति प्रकट हुई !

२४०६. ये संसार तो केवल जाल है, फिर जायें भी तो कहाँ ? अरे, दलदल में फँस गये हों, तो भी बाहर नहीं निकल पाते; बाहर आने का प्रयास करने पर भी दलदल में और गहरे धँसते जायें ! तो फिर इन कल्पनाओं में जो फँस जाये, वो कैसे छूट पाये ?!

★★★

२४०७. रोटी-सब्ज़ी मिले इसलिए शादी करनी है ! पति सोचे कि मैं तो कमाकर लाऊँ, लेकिन खाना कौन पकाये ? पत्नी सोचे कि मैं खाना तो पकाऊँ, लेकिन कमायेगा कौन ? फिर दोनों ने शादी कर ली और सहकारी मंडली खोल दी। यदि खाना-पीना मिल जाये तो, फिर काहे के लिए ये पति और पत्नी बनने की झंझट ?

★★★

२४०८. संसार ग़लत नहीं, संसार ये तो व्यवहार है, परंतु तुम अपने 'खुद' को जानो। 'निश्चय' में 'खुद' को जाने बग़ैर 'व्यवहार' किस प्रकार साथ में हो सकता है ? 'देहधारी' ये 'व्यवहार' है, परंतु 'हम कौन हैं ?' - इसकी पड़ताल तो करनी बाक़ी रही न ? ये अंधेरा कब तक ? अनंत अवतार से ये भटकन चालू है, कोई एक-दो जन्म से नहीं, बल्कि अनंत अवतार से...

★★★

२४०९. जब तक 'स्टेशन' ना आये तब तक उतरें भी तो कहाँ ? ये तो 'स्टेशन' आया है, इसलिए तो "ज्ञानी" तुम्हें उतरने का रास्ता बताते हैं, वरना यदि 'स्टेशन' ही न आया होता, तो ऐसे ही बैठे रहना पड़े न ? भटकते ही रहते हैं न ?!

★★★

२४१०. "ज्ञानी" भी संसार के फर्ज़ निभाते हैं, पर किस प्रकार ? अहम् और ममत्व के बग़ैर ! 'ड्रामेटिक' !!

★★★

२४११. संसारभाव यानी अहम् ममत्वभाव। असंसारभाव यानी नाटकीय संसारभाव।

२४१२. भगवान को पाने का मार्ग है 'नॉर्मेलिटी'! 'नॉर्मेलिटी' से ही मोक्ष है! 'नॉर्मेलिटी' ये 'वर्ल्ड' की रीढ़ है।

२४१३. संसार में सुखी होने का एक ही रास्ता है– 'नॉर्मेलिटी' का। खाने में, पीने में, उठने में, बैठने में, घूमने–फिरने में, कामकाज करने में, हर एक वस्तु में 'नॉर्मल' रहें, तो दु:ख नहीं।

२४१४. संसार का सुख 'नॉर्मेलिटी' में है। 'न कमी हो, न बहुतायत', इस का नाम है सुख।

२४१५. 'नॉर्मेलिटी' क्या है ? जिसमें 'पसंद' का दायरा न रहे और 'ना–पसंद' का दायरा भी न रहे।

२४१६. जो 'एबोव नॉर्मल' हुआ वो फिर 'एबोव नॉर्मल' होता ही जाये। जो 'बीलो नॉर्मल' हुआ वो 'बीलो नॉर्मल' होता ही जाये। 'बीलो नॉर्मल' को 'नॉर्मल' में लाना ये 'धर्म' है, और 'एबोव नॉर्मल' को 'नॉर्मल' में लाना ये भी 'धर्म' है।

★★★

२४१७. 'व्हाट इज द इसेंस ऑफ दी वर्ल्ड ? नॉर्मेलिटी। एबोव नॉर्मल इज दी पॉइज़न। बीलो नॉर्मल इज दी पॉइज़न। कम टू नॉर्मेलिटी।' ' नॉर्मेलिटी' लाना है पुद्‌गल में, जबकि आत्मा तो आत्मा ही है।

२४१८. 'नॉर्मेलिटी' आत्मा तक पहुँचाये।

२४१९. 'नॉर्मेलिटी' ये ही जगत् का परम तत्त्व है।

२४२०. कुसंग पैठने पर दिल बिगड़े और दिल के बिगड़ने पर भगवान भीतर से खिसक जायें। दिल पर ही पूरा आधार है ना ? दिल गया तो मानों, सब ख़लास !

★★★

२४२१. जगत् में सबसे बड़ा फ़ायदा क्या ? ऐसे उत्तम पुरुषों का संग, जिन्हें कुछ लोकपूज्यता उत्पन्न हुई हो।

★★★

२४२२. जिसकी संगत सुधरी, उसका मानों सब कुछ सुधर गया। जिसकी संगत बिगड़ी, उसका सब कुछ बिगड़ गया।

★★★

२४२३. गरीबी का सत्संग अच्छा, अमीरी का कुसंग किस काम का ?!

★★★

२४२४. 'धर्म से जो दूर करवाये', वो कुसंग।

★★★

२४२५. जहाँ कुसंग का घेरा हो, वहाँ से दुःख न जाये और जहाँ सत्संग का घेरा हो वहाँ से सुख न जाये।

२४२६. सत्संग यानी 'अपने गाँव'-'अपने घर' जाने का रास्ता। 'सत्संग' ये अपनी खुद की बात है, और सब पराया!

२४२७. कुसंगी लोगों के लिए सत्संगी जैसा कोई ताप नहीं।

२४२८. आत्मा (प्रतिष्ठित आत्मा) का स्वभाव कैसा है? वो जैसा देखे वैसा करे! उसे सिखाना न पड़े!! अतः सच्चे पुरुषों का, उत्तम पुरुषों का संग होना चाहिये। बुरे लोगों का संग होवे तो राक्षसी विचार आयें।

२४२९. ''ज्ञानी'' का सत्संग 'अपूर्व सत्संग' कहलाये। पूर्व में कभी सुना ही न हो, ऐसा!

२४३०. ''ज्ञानी'' का सत्संग कैसा होवे? 'ये करो, वो करो, अच्छा करो, फलाँ करो, प्रतिक्रमण करो, सामायिक करो, जप करो, तप करो' ऐसी धमाल 'यहाँ' नहीं होवे! 'यहाँ' कुछ करना नहीं होवे। 'यहाँ' तो केवल जानना और समझना होवे! समझने से ही समकित होवे और जानने से 'ज्ञान' होवे, और जिसने जान लिया और समझ लिया इसी से सम्यक् चारित्र होवे।

२४३१. सत्संग यानी 'ये जगत् क्या है और क्या नहीं' इसकी समझ प्राप्त करना।

२४३२. एक ''ज्ञानी'' का सत्संग ही भयरहित दशा करवा सके! अन्य कोई भयरहित नहीं करवा सकता।

२४३३. जब तक मनुष्य निर्भय न हो जाये तब तक वो आसरा ढूँढ़े। 'आसरा' ही तो संगति है।

२४३४. 'अज्ञानता' ये ही भय है।

२४३५. मृत्यु का समय आये, लेकिन भय ना रहे तो समझ लेना कि मोक्ष का 'विज़ा' मिल गया!

२४३६. "ज्ञानी" को भय क्यों नहीं है ? क्योंकि उनका सब बिल्कुल 'करेक्ट' है! जो 'करेक्ट' हो उसे भय किस बात का ?! हाँ, भीतर कुछ गोलमाल हो तो भय लगे।

२४३७. जो मनोव्यापार निर्भय बनाये, वो ही व्यापार करना काम का।

२४३८. 'लोगों को कैसा लगेगा ?' ऐसे भय को तो स्थान ही नहीं देना है। इसके बजाय तो अपनी 'रूम' स्वच्छ रखना अच्छा ! जगत् जिसकी निंदा करे, ऐसा विचार आते ही उसे धोकर स्वच्छ कर दो।

★★★

२४३९. इस जगत् में कोई किसी को कुछ भी नहीं कर सके, ऐसा यह जगत् नियमबद्ध है, अतः डरो मत, और जो डर आनेवाला है, वो तो तुम्हारे किसी भी उपाय से छूटनेवाला नहीं!

२४४०. जिस दुःख से हम घबरायें नहीं, वो कभी सामने आये ही नहीं, न तो डाकू आये, न ही भगवान आये! जिसने भय छोड़ दिया, उसे कुछ होगा ही नहीं।

२४४१. जिसका भी तिरस्कार करो उससे भय लगे। साँप से, बाघ से तिरस्कार है इसी वजह से उनसे भय लगता है।

२४४२. भूतकाल का डर चला गया, भविष्य तो 'व्यवस्थित' के हाथ में है, अतः वर्तमान में बरतो।

२४४३. वर्तमान में कौन बरत सके? 'यस'(हाँ) कहनेवाला ही।

२४४४. भगवान भूतकाल और भविष्यकाल की बही नहीं रखते। एक 'सेकंड' के बाद की बही को समुद्र में डाल देना। जो 'वर्तमान में रहे' वो भगवान!

२४४५. नाटक में जो दृश्य सामने आया उसे देखोगे या फिर जो दृश्य चला गया उसे याद करके देखोगे? यदि बीते हुए दृश्य को याद करके देखने जाओगे तो वर्तमान को खो बैठोगे।

★★★

२४४६. 'जो वर्तमान में बरते' वो है ज्ञाता-दृष्टा! जो वर्तमान में बरते उसका तो यहीं पर ही मोक्ष!! वर्तमान में क़ायम रहना उसी का नाम ही अमरपद!!!

★★★

२४४७. 'वर्तमान' बहुत सूक्ष्म वस्तु है। इस तरफ भूतकाल और उस तरफ भविष्यकाल, इन दोनों के बीच सूक्ष्म भाग में वर्तमान होवे। उसे अज्ञानी कभी पकड़ नहीं पाता, मात्र ''ज्ञानी'' ही उसे पकड़ सके!

२४४८. जगत् तो उसके स्वभाव में है, सतयुग-कलियुग तो लोगों के भाव के कारण हैं!

२४४९. भगवान ने क्या कहा ? द्वापर युग में और सतयुग में भलाई करना, लेकिन कलियुग में बिल्कुल बुरा न करना-ये ही भलाई करने के समान है।

२४५०. कलियुग के मनुष्यों को भगवान भी आश्रय देने को तैयार नहीं, क्योंकि वे भगवान का एक भी अक्षर मानने को तैयार नहीं है। 'वाइफ' की मानेंगे, साहब की मानेंगे, लेकिन भगवान का एक अक्षर तक मानने को तैयार नहीं!

२४५१. भीतर का सभी कोलाहल मानसिक है, शरीर का नहीं, अतः मन को कह दें कि, 'अभी चिल्लाओ मत, समय आने पर मिलेगा।'

२४५२. चोर यदि दिन दहाड़े जौहरी के यहाँ जाये तो क्या हो ? मार ही खाये न! और रात को जाये तो वो जौहरी को मारे !! इस प्रकार काल के अनुसार सब बदलता रहता है। काल के अनुसार सत्ता बदलती है। हर एक का काल अलग-अलग होवे।

★★★

२४५३. हमारे पुण्यकर्म का उदय हो, तो सामनेवाला अच्छा बोले और पापकर्म का उदय हो तो वो गाली दे, इसमें दोष किसका ? अतः हमें कहना चाहिए कि, 'उदयकर्म तो मेरा ही है और सामनेवाला बस निमित्त है!' ऐसा करने से हमारा दोष झड़ जाये, और नया बँधे नहीं।

२४५४. 'तुम्हारी धारणा के मुताबिक ही होवे' ये है पुण्य का फल और 'तुम्हारी धारणा के विपरीत होवे' वो सब पाप का फल! किसी की खुद की धारणा इस जगत् में चल ही नहीं सकती।

२४५५. पुण्यानुबंधी पुण्याई "ज्ञानीपुरुष" से भेंट करा दे।

२४५६. पुण्य और पाप जहाँ 'हेय' (छोड़ने-योग्य) हो जाय, वहीं पर है समकित!

२४५७. 'मैं पुण्य करता हूँ', 'मैं पाप करता हूँ' - ये दोनों ही 'इगोइज़म' हैं।

२४५८. 'वीतराग भगवान' ने कहा है कि, पाप-पुण्य दोनों के प्रति जिसे द्वेष या प्रेम न हो, वो है वीतराग!

★★★

२४५९. भगवान क्या कहते हैं ? अगर तुम्हें मोक्ष चाहिए तो "ज्ञानीपुरुष" के पास जाओ और संसार में सुख चाहिए तो माता-पिता एवं गुरु की सेवा करना। माता-पिता की सेवा से तो ग़ज़ब का सुख प्राप्त हो सकता है!

★★★

२४६०. हर एक काम का हेतु होवे। यदि सेवा-भाव का हेतु होवे तो 'बाय प्रोडक्ट' के रूप में लक्ष्मी मिलेगी ही। हम जिस विद्या को जानते हैं, उसका सेवा-भाव में उपयोग करें, ये ही हमारा हेतु होना चाहिए।

२४६१. ''ज्ञानी'' तो अपना एक ही प्रकार का 'प्रोडक्शन' रखते हैं -''सारे जगत् को परम शांति मिले और कुछ लोग मोक्ष पायें।'' इसका उन्हें 'बायप्रोडक्शन' 'फ्री ऑफ कोस्ट' नहीं मिलता क्या? मिलता ही रहता है न!

★★★

२४६२. जगत् का काम करो, तो तुम्हारा काम होता ही रहे। जगत् के लिए काम करोगे तो तुम्हारा काम अपने आप होता ही रहेगा और तब तुम्हें अजीब सा लगेगा।

★★★

२४६३. 'रिलेटिव धर्म' जो है, वो संसारमार्ग है, समाजसेवा का मार्ग है। मोक्ष का मार्ग ये समाजसेवा से परे है, बस स्व-रमणता!

★★★

२४६४. 'सेवाभाव' का फल भौतिक सुख और 'कु-सेवाभाव' का फल भौतिक दु:ख। हालाँकि 'सेवाभाव' से खुदका 'मैं' न मिले, किन्तु जब तक 'मैं' की तलाश पूरी न हो तब तक 'ऑब्लाईझिंग नेचर' (परोपकारी स्वभाव) रखना है।

★★★

२४६५. समाजसेवा से क्या लाभ हो? समाजसेवा बहुत सारा ' MY' तोड़ देवे। यदि ' MY' (मेरा) संपूर्णत: ख़लास हो जाय, तो स्वयं परमात्मा ही है!! फिर तो उसे सुख ही बरते न!

★★★

२४६६. कोई आदमी 'सेवा करे' ये प्रकृतिस्वभाव है और कोई 'कु-सेवा करता हो' वो भी उसका प्रकृतिस्वभाव है! उसमें किसी का 'अपना' पुरुषार्थ नहीं, लेकिन वो मन से ऐसा मानता है कि 'मैं करता हूँ'- ये भ्रांति है।

★★★

२४६७. हमें अपना 'सेव्य' पद गुप्त रखते हुए 'सेवक' भाव से काम करना है।

२४६८. ''ज्ञानीपुरुष'' ये तो सारे 'वर्ल्ड' के 'सेवक व सेव्य' कहलायें। ''सारे जगत् की सेवा भी 'मैं ही करता हूँ' और सारे जगत् की सेवा भी 'मैं ही लेता हूँ' !'' ये बात अगर तुम्हारी समझ में आ जाए, तो तुम्हारा काम बन जाये।

२४६९. ''ज्ञानी'' तो इस हद तक ज़िम्मेदारी लेते हैं कि यदि कोई उनसे मिलने आये तो उसे 'दर्शन' का लाभ मिलना ही चाहिए। दादाश्री कहते हैं कि यदि कोई हमारी सेवा करे, तो उसकी ज़िम्मेदारी हमारे सिर आ जाये और हमें उसे मोक्ष ले जाना ही पड़े।

२४७०. (१) 'मैने किया,' बोलना ये निमित्त है, निमित्तभाव है, और (२) कराता है वो तो उदयकर्म ही कराता है! ''ज्ञानी'' के इन दो वाक्यों की जागृति रखकर, यदि कोई पूरी ज़िंदगी बीता दे, तो वह मोक्ष के बहुत करीब पहुँच गया समझो। जो इतनी ही जागृति रखे, और इन वाक्यों को 'यथावत' समझ में रखकर संपूर्ण 'अलर्ट' हो जाय, वह तो मानों आत्मा ही हो जाय! शुद्धात्मा होने का यही तो सच्चा साधन है!!

२४७१. कर्ताभाव छूटे तो ही शुद्धात्मा का अवबोध हृदयंगम हो।

२४७२. जब तक 'मैं कर्ता हूँ,' ऐसा भान है तब तक सब क्रियाकांड है। 'मैं कर्ता हूँ' ये भान चला जाय तो मोक्ष! 'मैं कर्ता हूँ' ये भान है तब तक धर्म, और कर्तापद छूटे तो है 'विज्ञान'।

★★★

२४७३. शुभाशुभ से परे सामनेवाले छोर पर शुद्ध स्थिति है, वहाँ कर्ताभाव नहीं। 'मैं कर्ता नहीं हूँ' ये भान हो जाय तो मुक्ति होवे।

२४७४. 'करता हूँ मैं' और 'जानता भी हूँ मैं' ये दोनों साथ-साथ बोलना ये भयंकर अज्ञानता है। ये तो खुद ज्ञेय होते हुए भी दूसरे को ज्ञेय जानना हुआ! ज्ञाता होकर ही ज्ञेय को जानना है।

२४७५. जहाँ ज्ञातापन है, वहाँ कर्तापन नहीं होवे। जहाँ कर्तापन है, वहाँ ज्ञातापन नहीं होवे।

२४७६. जहाँ किंचित्मात्र कर्ताभाव है, वो बँधनभाव है। जिसमें जो गुणधर्म नहीं, उसका आरोपण क्यों लागू किया जाय?

२४७७. 'आत्मा अकर्ता है' ऐसा भान जब होवे, तब 'समकित हुआ' कहलाये।

२४७८. कर्ताभाव हो तभी योजना रूपक में आये, अन्यथा तो योजना बंद हो जाये।

२४७९. जब तक 'मैं करता हूँ, वह करता है, वे करते हैं', ऐसा मानें, तब तक कोई तरणतारण नहीं हो पाता।

★★★

२४८०. इस जगत् में कर्तापुरुषों के लिए मेहनत है और अकर्तापुरुषों के लिए वैभव है।

२४८१. सांसारिक सुखों के लिए, भौतिक सुखों के लिए ये सब करना होता है। अन्यथा मोक्ष प्राप्ति या भगवद् प्राप्ति के लिए कुछ भी 'करना' नहीं होता ! लेकिन आज के लोगों ने क्या सिखाया ? करो, करो और करते रहो।

★★★

२४८२. 'करने' जाओगे वहाँ बँधन होगा ! जहाँ-जहाँ 'करोगे' वहाँ है 'बँधन', और 'समझ' से होवे 'मुक्ति' !!

★★★

२४८३. जहाँ कुछ भी 'करना' होवे वहाँ पुण्य बँधे या तो पाप बँधे।

★★★

२४८४. करता है कोई और, पर मनुष्य कहता है कि 'मैं करता हूँ', यही तो आरोपण हुआ, उसी से नया भव मिल जाता है। 'कौन करता है' ये समझ में आ जाये तो नया भव बंद हो जाये ! 'आरोपण' ही अगले जन्म का बीज है।

★★★

२४८५. जब तक 'मैं कर्ता हूँ' ये भान है तब तक समझो आत्मा का एक अंश भी नहीं पाया। 'मैं ही ये करता हूँ,' - ऐसे भान से आत्मा प्राप्त न होवे।

★★★

२४८६. कुछ भी 'किया' उसका नाम भ्रांति, और 'जाना' उसका नाम है 'ज्ञान'।

★★★

२४८७. बग़ैर "ज्ञानी" के 'ज्ञान' कहाँ से लाओगे ? ये सब तो अज्ञान का ही ज्ञान किया ! अब 'ज्ञान' का 'ज्ञान' करो !

२४८८. अज्ञान के जाने पर ही इस संसार का ‘रूटकॉज़’ (मूल कारण) जायेगा। अज्ञान के जाने का पता कैसे चले? ‘स्वरूप का भान’ हो जाये तब।

२४८९. ‘जीव’ को ‘ज्ञान’ क्यों प्राप्त नहीं होता? अज्ञान बहुत प्रिय है इसलिए।

२४९०. ‘अज्ञान’ ये भी ज्ञान है, ‘अज्ञान’ कोई और वस्तु नहीं, अंधकार नहीं, लेकिन वो परवस्तु को दिखानेवाला प्रकाश है! बाहर की वस्तु दिखानेवाला प्रकाश है अज्ञान; और ज्ञान स्वयं को प्रकाशित करे और अन्य को भी प्रकाशित करे।

२४९१. अज्ञान तो ‘मैं खुद कौन हूँ,’ ये जानने नहीं दे, ये अनुभव नहीं करने दे और ‘ज्ञान’ तो ‘स्वयं’ ‘खुद को’ जानने दे।

★★★

२४९२. संसार बाधक नहीं बनता, अपितु अज्ञान बाधक बनता है। खुद के ‘स्वरूप’ का अज्ञान ही बाधक बनता है।

★★★

२४९३. ‘मैं नलीन हूँ’ ये भान रहते ही तुरंत ‘ये संसार सब मेरा है’, ऐसा लगा करे। ‘मैं नलीन हूँ’ ये तो ‘ड्रामेटिक’ होना चाहिए, ताकि वो हमारे भीतर आड़े न आए।

★★★

२४९४. अज्ञान का परिणाम अहंकार है।

२४९५. जहाँ अहंकार शून्यता पर है, वहाँ निराकुलता प्राप्त होवे, अन्यथा तब तक तो एक क्षण के लिए भी निराकुलता प्राप्त नहीं होती।

२४९६. यदि तुम्हें अहंकार नहीं, तो तुम मोक्ष में हो, और मोक्ष में नहीं, तो तुम अहंकार में हो।

२४९७. जहाँ 'हम' है, वहाँ सभी प्रकार का संसार खड़ा है। ये 'हम' ही शादी करता है, 'हम' ही पालता है और वो ही फिर विधुर भी होता है ! वो ही त्यागी होता है और वो ही संसारी भी होता है !! यह सब कुछ 'हम' ही तो है, ये 'हम' गया तो समझो सब कल्याण हो गया।

२४९८. हर किसी में पागल अहंकार होता है, वो पागल अहंकार सीधे को उल्टा दिखाये। पागल अहंकार घरवालों के बारे में भी उल्टा दिखाये ! 'वीतरागी विज्ञान' क्या कहता है ? घरवालों की प्रकृति को जीतो, बाहर की दुनिया को नहीं जीतना है।

२४९९. 'नहीं करना', ये भी अहंकार है और 'करना है' ये भी अहंकार है।

२५००. यदि तुम ईश्वर को कर्ता मानते हो, तो फिर अपने आप को कर्ता क्यों मानते हो ?!

२५०१. खुद को कर्ता मानने से कर्म लग जाय। खुद को यदि कर्ता न मानें, तो कर्म का विलय हो जाय।

२५०२. 'ज्ञानदशा' में आत्मा 'अकर्ता' है; 'अज्ञानदशा' में आत्मा 'कर्ता' है।

२५०३. मनुष्य अकेला ही ऐसा है जो 'मैं कर्ता हूँ' ये भान रखता है ; जहाँ कर्ता हुआ वहाँ आश्रितता टूट जाये। और भगवान उसे कहे, 'भाई, तुम कर लेते हो तो अब मैं अलग और तुम अलग!' फिर भगवान को और तुम्हें क्या लेना-देना ?!

२५०४. इस दुनिया में किससे काम नहीं बने ? जो खुद को कर्ता माने उससे।

२५०५. संयोग आ मिले तब तुम कहते हो, 'मैंने किया'; लेकिन संयोग न बनें फिर क्या कहोगे ?!

२५०६. 'कर्तापद' का भान नहीं गया, इसलिए 'भोक्तापद' का भान है; अतः कषाय खड़े रहे हैं। 'कर्तापद' का भान चला जाय तो 'भोक्तापद' का भान न रहे और कषाय चले जायें।

२५०७. जिसे 'कर्तापन' बाक़ी न बचा हो, उसे 'भोक्तापन' भी बाक़ी नहीं रहा समझो। बँधन ये 'भोक्ता' से नहीं, अपितु 'कर्ता' से होवे ।

★★★

२५०८. 'सेल्फ' का 'रियलाइज़ेशन' (आत्मज्ञान) किये बग़ैर अन्य जो कुछ भी किया जाय, उसमें सिर्फ़ घाटा, घाटा और घाटा ही है।

★★★

२५०९. जगत् के लोग कहते हैं, 'कैवल्यज्ञान ये करने की चीज़ है'। नहीं, ये तो जानने की चीज़ है। करने की चीज़ तो कुदरत चला रही है। 'करना' ये ही भ्रांति है। देखो, ये शक्ति कितने शानदार तरीके से तुम्हारा ख़याल रखती है। इस शक्ति को पहचानो तो सही ! भगवान ये सब नहीं करते। ये तो 'व्यवस्थित शक्ति' का काम है!

२५१०. कुदरत जो कुछ करती है, वो तुम्हारे हित में ही करती है, तुम्हारे दोषों को कूटती रहती है। कर्ता होना तो 'स्वच्छंदता' कहलाये ! कर्तापद चले जाने के बाद फिर कौन करता है ? कुदरत ही।

२५११. 'कुदरत' ये हमारा ही 'फोटो' है। कुदरत टेढ़ी नहीं, तुम टेढ़े हो।

२५१२. कुदरत ने ऐसी व्यवस्था की है कि तुम्हारा भला ही हो, लेकिन तुम आशंकित हो जाओ तो फिर काम बिगड़े।

२५१३. कुदरत उसी का नाम कि जो बिल्कुल विरोधाभासी न होवे। 'H_2' और 'O' दोनों इकठ्ठा होवे और अन्य कुछ संयोग आ मिले, तो फिर वो पानी ही बने, तेल नहीं बनता।

२५१४. कुदरत परीक्षा लेती है, इसमें आपत्ति ना उठायें-नुक़्स न निकालें, तभी 'पास' हो सकते हैं।

२५१५. ये मनुष्य अहंकार करे और कुदरत उसे चाबुक लगाकर उतार देवे। कुदरत कहती है कि 'करती तो मैं हूँ, फिर तू क्यों अहंकार करता है ?'

★★★

२५१६. किसीका 'ब्रेन' चलता हो या न भी चलता हो, लेकिन कुदरत उसकी सभी आवश्यकताएँ पूरी करती है। चाय पत्ती उगे श्रीलंका में लेकिन सबेरे-सबेरे यहाँ मुंबई में चाय पीने को मिल जाये, ऐसा है ये सब !

२५१७. ये कुदरत का चलन कैसा है ? किसी जीव की किंचित्मात्र भी मनमानी नहीं चलने देवे ! हालाँकि, जो किसी को मन, वाणी, या वर्तन से किंचित्मात्र भी दु:ख न पहुँचाए, उसे कुदरत इच्छा के मुताबिक करने की सारी सत्ता देवे।

★★★

२५१८. ये 'वर्ल्ड' हमारी मालिकी का ही है, लेकिन सत्ता प्राप्त नहीं होती ! ये तो कोई जैसे जैसे शुद्ध होता चले उस प्रमाण में उसे सत्ता प्राप्त होवे।

★★★

२५१९. कुदरत कोई जीवंत वस्तु नहीं। उसकी उदारता किस कारण है ? हम खुद भगवान हैं, इसलिए भगवान के प्रति उसका पक्षपात है, लेकिन हमें कुदरत की कदर नहीं।

★★★

२५२०. कुदरत हमारे अधीन है, हालाँकि हमें उसके अधीन रहना चाहिए। कुदरत के क़ायदों का पालन करना चाहिए।

★★★

२५२१. इस दुनिया में तीन प्रकार के क़ायदों का भंग चल रहा है : (१) सामाजिक क़ायदों का भंग, (२) कुदरत के क़ायदों का भंग, (३) प्रभु के क़ायदों का भंग।

★★★

२५२२. सामाजिक क़ायदे तोड़ोगे – समाज के, राज्य के और 'पब्लिक' के, तो अपकीर्ति मिलेगी, दिमाग 'डिस्टर्ब' हो जाएगा। कुदरत का गुनाह करने से : खान-पान में 'नॉर्मल' नहीं रहने से, व्यक्ति बीमार हो जाये। इसमें भूल होवे तो कुदरत फल देवे ! और प्रभु के क़ायदों का भंग यानी सर्वात्म कानून का भंग हुआ, इसी कारण मोक्ष रुका हुआ है।

★★★

२५२३. सर्वात्म क़ायदा यानी सर्वत्र ‘केवल मैं ही हूँ’, फिर मैं किससे परायापन रखूँ ?!

२५२४. ‘ट्राफिक’ के ‘लॉ’ का सम्मान करें तो गाड़ी कहीं न टकराये, इसी प्रकार जगत् के सभी ‘लॉ’ का पालन करने पर कहीं भी दुर्घटना न होवे।

२५२५. लोग स्थूल लॉ को समझते हैं अत: उसका पालन करते हैं। यदि सूक्ष्म ‘लॉ’ को समझें, तो सूक्ष्म जगह पे न टकराएँ, सूक्ष्मतर ‘लॉ’ का पालन करें, तो सूक्ष्मतर जगह पे न टकराएँ, और सूक्ष्मतम ‘लॉ’ का पालन करें, तो सूक्ष्मतम जगह पर भी न टकराएँ।

२५२६. सब कुछ ‘नॉर्मेलिटी’ पर निर्भर है ! ‘नॉर्मेलिटी’ होवे तो कहीं कोई अड़चन न आये ।

२५२७. लॉ में रहने पर नियम में रहते हैं। लॉ में हमेशा नियम का स्वीकार होवे, और नियम हमेशा ‘व्यवस्थित’ की ओर ले जाये।

★★★

२५२८. इन पंछियों को सब कुछ ‘व्यवस्थित’ ही है न ? जितनी आवश्यकता हो उतना ही खाना मिल जाए, अत: शरीर बिगड़े ही नहीं न ? हम लोगों को ज़रूरत से अधिक मिलता है, इस कारण दु:ख है।

★★★

२५२९. ‘प्राकृतिक क्रिया’ ये ‘व्यवस्थित’ है और ‘प्राकृत फल’ भी व्यवस्थित है, फिर दख़ल क्यों ?!

२५३०. दादाश्री कहते हैं कि 'व्यवस्थित का 'ज्ञान' तो मैं जन्म से ही लेकर आया हूँ! ये अनंत जन्मों की मेरी खोज है!!'

२५३१. कर्ता खुद है ही नहीं, 'व्यवस्थित' कर्ता है। ये ज्ञान दादा भगवान ने उजागर किया है, जिसे 'लिफ्ट्'मार्ग कहते हैं!

२५३२. शुद्धात्मा के अलावा मन-वचन-काया-बुद्धि सब कुछ 'व्यवस्थित' के अधीन है। सब कुछ 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' है। 'ये मेरा है, मैं हूँ' ऐसा विभाजन होने से ये सारी मुश्किलें-आरोपित भाव हुए, अतः अपना 'स्वरूप' चूक गये।

२५३३. एक की 'गाली देने की' और दूसरे की 'गाली सुनने की' ये दोनों ही अवस्थाएँ हैं। इस जगत् में कोई कर्ता नहीं है, ऐसा ही हमें दिखना चाहिए। सब कुछ 'व्यवस्थित' है और 'व्यवस्थित' सब व्यवस्थित ही रखे!

२५३४. कोई हमें कार में लिफ्ट दे तो ये व्यवहार से कहा जाय, 'रियली स्पीकिंग' (वास्तव में) 'व्यवस्थित' ही बिठाती है।

२५३५. जगत्-व्यवहार को 'व्यवस्थित' कहने पर सभी आशा-तृष्णा चली जायेगी।

२५३६. पहाड़ पर चढ़ने का समय आयेगा, तब पैरों में शक्ति भी आ जायेगी, ऐसा 'व्यवस्थित' है!

२५३७. किसीसे कुछ भी टूट जाये तो ये 'ज्ञान' समझना है कि उसे 'व्यवस्थित' ने तोड़ा है, उस व्यक्ति ने नहीं तोड़ा, ये तो सब निमित्त हैं!

२५३८. यदि 'व्यवस्थित' पूरा समझ में आये तो किसी बात की 'जिद' न रहे, और सामनेवाले से कहें कि 'तुम्हें जैसा अनुकूल हो वैसा करो।' हमें अनुकूल हो जाना है। 'व्यवस्थित' के दायरे के बाहर कुछ नहीं होवे।

२५३९. इस बिल्ली का 'टिफिन' आता है न, 'टाइम' पे ?! और ये लोग तो कहते हैं कि 'मेरा धंधा डूब गया, अब मेरा क्या होगा ?' बिल्ली को दूध-रोटी 'टाइम' पर मिल जाती है, लेकिन ये लोग तो कहेंगे कि-'वक़्त पर हमें दूध नहीं मिला तो क्या करेंगे ?' बुद्धि का उपयोग किया, तो समझो सब बिगड़ा!

२५४०. यदि ये अहंकार न होता, तो दुनिया ऐसी पागल नहीं होती। अहंकार को लेकर ही ये सारे दुःख हैं। काम किये जाने में कोई हर्ज नहीं, लेकिन ये अहंकार तो ख़ामख़ाह तूफान पैदा करवाता है।

२५४१. ये 'व्यवस्थित' क्या कहती है ? कि तुम्हें कुछ भी न करना पड़े, इस प्रकार सब सामान तैयार है; तुम बस 'देखते' रहो! ये मन-वचन-काया सब 'व्यवस्थित' के अधीन है।

२५४२. ये ‘अक्रम विज्ञान’ ‘यथा–तथ’ उजागर किया गया है। ये ‘व्यवस्थित’ ‘एक्ज़ेक्ट’ ‘व्यवस्थित’ ही है। दादा भगवान ने इस जगत् को देखा कि क्या–क्या पहले से तैयार है और क्या करना शेष है! जो आटा पहले से ही तैयार है उसे बार–बार पीसने से क्या लाभ ?!

२५४३. क्रमिक मार्ग में ‘व्यवस्थित’ नहीं दिया जा सकता क्योंकि उसमें अंत तक कर्तापद रहता है।

२५४४. जब तक कर्ता है तब तक मोक्ष नहीं होवे। ‘कर्ता’ ये ही भ्रांति!

२५४५. ‘जो कटुता भुगते’ वो ही कर्ता! ‘कर्तापन’ ये ही विकल्प!!

२५४६. समझकर शमन हो जाना है। जो ‘करने’ गया वो कदापि मोक्ष में नहीं जा सकता। ‘करने’ गया वो तो कर्ता हुआ और जो ‘समझ गया’ वो शमन हो गया!

★★★

२५४७. जहाँ ‘करूँ’ ये भाव है वहाँ परमात्मा नहीं और जहाँ परमात्मा है वहाँ ‘करूँ’ का भाव नहीं।

★★★

२५४८. ‘कोई ये करता है’, ऐसा कहना ये गुनाह है, ‘कोई ये नहीं करता’, ऐसा कहना भी गुनाह है और ‘मैं करता हूँ’ ऐसा बोलना ये भी तो गुनाह है। उदयकर्म ही करवाते हैं लेकिन लोग कहते हैं, ‘उसने ऐसा किया।’

२५४९. तुम इसके कर्ता हो ही नहीं, यह तो मान्यता की भूल है। जो काम तुम्हारा नहीं, उसे कहते हो कि 'मैंने किया' और तुम्हारा अपना काम तो तुम जानते ही नहीं, फिर तुम्हारे कितने काम होंगे ? एक भी काम नहीं हुआ ! तुम बग़ैर-जागृति के आये थे, यहाँ जन्म लिया वो भी बग़ैर-जागृति के, और गये तो भी बग़ैर-जागृति से !! कुछ भी किये बिना कितनी सारी पाप की गठरियाँ बाँधकर ले गये ?!

२५५०. जहाँ करना, करवाना या अनुमोदन करना, ऐसे कोई भाव ही न हों, वहाँ कोई जोखिम नहीं।

२५५१. इस जगत् का कोई कर्ता स्वतंत्र भाव से नहीं, बल्कि नैमित्तिक कर्ता है। कोई 'होल एण्ड सोल' कर्ता पैदा ही नहीं हुआ। भगवान भी इसका कर्ता नहीं। यदि भगवान कर्ता होवे, तो उन्हें भोक्ता होना पड़े।

२५५२. 'तुम' व्यवहार से कर्ता हो और निश्चय से अकर्ता हो; ऐसा भगवान महावीर कहते हैं।

२५५३. मूल कर्ता पुद्‌गल है और आत्मा नैमित्तिक कर्ता है।

२५५४. आत्मा व्यवहार से 'कर्ता' है, निश्चय से 'अकर्ता' है ! अतः पुद्‌गल व्यवहार से 'अकर्ता' है और निश्चय से 'कर्ता' है !!

२५५५. आत्मा की अनंत शक्ति है, उसी प्रकार पुद्‌गल की शक्ति भी अनंत है। पुद्‌गल की शक्ति से तो ये जगत् दिखता है। सब पुद्‌गल ही दिखाई देता है। आत्मा तो कहीं भी दिखाई ही नहीं देती।

२५५६. 'पज़ल' करनेवाला पुद्‌गल। 'पज़ल' किसने जाना ? आत्मा ने।

२५५७. दादाश्री कहते हैं कि 'पुद्‌गल आत्मा को चिपका है, आत्मा पुद्‌गल को नहीं !'

२५५८. गेहूँ से कितनी सारी चीज़ें बनती हैं ? ठीक वैसे ही एक अनात्म वस्तु में से कितनी सारी वस्तुएँ बन जाती हैं !

२५५९. मन, मन का धर्म निभाये, बुद्धि, बुद्धि का धर्म निभाये, अहंकार, अहंकार का धर्म निभाये, ये सारे पुद्‌गलभाव हैं, आत्मभाव नहीं। इन सब पुद्‌गलभावों को 'हम' 'देखें और जानें', ये ही आत्मभाव। पुद्‌गलभाव तो अपार हैं। ये लोग पुद्‌गलभाव में ही फँस गये हैं।

★★★

२५६०. पुद्‌गल ही खाना, पुद्‌गल ही पीना और पुद्‌गल में ही रमण करना है। जगत् में सभी को ये तीन चीज़ें ही होवे, जिनके अनेक नाम दिये गये हैं ! 'खान-पान' ये बाबत तो 'लिमिटेड' है, परंतु रमण 'अनलिमिटेड' है। सारा जगत् पुद्‌गल में ही रमण करता है !

२५६१. आप स्वयं परमात्मा हो, पर खुद का भान नहीं, अत: 'मैं स्त्री हूँ'', कहते हो। स्त्री ये तो 'पेकिंग' है, गधा ये 'पेकिंग' है, कुत्ता ये 'पेकिंग' है, सब 'पेकिंग' ही है। ये तो 'पेकिंग' को अपना 'स्वरूप' मान लिया!

★★★

२५६२. जब तक 'पेकिंग'-दृष्टि है, तब तक संसार है, लेकिन यदि 'मटिरियल'- दृष्टि हो जाय तो मोक्ष होवे।

★★★

२५६३. चाहे कोई कितना भी सयाना हो, पर है तो वो पुद्गल गुण ही न ? और पुद्गल गुण के अनुरागी हुए यानी पुद्गल के ही रागी हुए ना!

★★★

२५६४. तुम्हारे अभी जो गुण दिखते हैं वे तुम्हारे गुण नहीं, बल्कि आरोपित हैं, 'कल्चर्ड' हैं। तुम्हारे 'स्वयं' के गुण तो कुछ और प्रकार के हैं! वे तुमने देखे नहीं, जाने ही नहीं !! एक भी गुण तुमने जाना नहीं !!!

★★★

२५६५. 'आरोपित भाव' ये विकल्पभाव और 'स्वभावभाव' ये दरअसल भाव, परमात्मभाव!

★★★

२५६६. 'स्वभावदशा' आये, इसीका नाम ही मुक्ति!

★★★

२५६७. हरेक वस्तु स्वभाव से भिन्न होवे और स्वभाव से भिन्न वस्तुएँ एकाकार नहीं हो सकती।

★★★

२५६८. ये हमारा 'अक्रम विज्ञान' क्या कहता है ? हरेक का स्वभाव पहचानना है, और वो स्वभाव तो अनेक वस्तुओं के 'मिक्स्चर' से हुआ है। उस स्वभाव को पहचान लेना है, तो फिर कोई बाधा न आये !

★★★

२५६९. आत्मा का 'स्वभावभाव' ही मोक्ष है और 'विशेषभाव' ये संसार है। 'संसार' ये विरुद्धभाव नहीं।

★★★

२५७०. ग़लत व्यवहार से सही आचरण की ओर ले जाना ये बुरा नहीं, लेकिन अपने खुद के 'स्वभाव' में आना वो ही सच्चा धर्म है। 'स्वभाव' में आ जाने पर बाहर की कोई वस्तु तुम्हें न छूये।

★★★

२५७१. 'ये मेरा स्वभाव नहीं', ये भान जिसे हो जाये, तो समझो उसे निरंतर आत्मा-अनात्मा का भान है।

★★★

२५७२. सब अपने-अपने स्वभाव में हैं। किसी को किसी से बैर नहीं। ये बरसात, बरसात के स्वभाव में है। कुछ लोगो को ये सुहाये और कुछ लोगो को न भी सुहाये, लेकिन ये अपना स्वभाव छोड़ती नहीं। कोई भी अपने स्वभाव से मुक्त नहीं हो पाता।

★★★

२५७३. तुम अपने आम के पेड़ को चाहे कितनी भी खाद डालो, तो क्या वो सेब देगा ? नहीं। क्योंकि स्वभाव नहीं बदलता !

★★★

२५७४. जिसका जो स्वभाव है, वहाँ कोई उपाय ही क्या ?

२५७५. उपाय करने की आवश्यकता नहीं, बस 'देखते रहना' है ! क्रोध कितना बढ़ा, कितना कम हुआ, ये 'देखते रहना' है !! जब 'उपेय' प्राप्त हो गया, फिर उपाय करने बाक़ी न रहे। उपाय करने से तो आत्मा का ज्ञातापन चला जाये, अतः सही लाभ तो चला ही जाये। 'इतना टेन्शन आया, इतना बढ़ा, अब चला गया', इन ज्ञेयों को बस देखते रहना है, ज्ञाता रहना है। उपाय करने से तो ये सब ठहर जाये !

२५७६. विषम परिस्थिति में समता रहे उसी का नाम 'ज्ञान' !

२५७७. उपाधि में भी समता रहे तब समझ लेना कि मोक्ष के बाजे बजने लगे !

२५७८. संसारी लोग नियम में रहें तब 'यमधारी' कहलायें। जब मनुष्य कोई भी नियम ले तब से वो 'यम में आ गया' कहा जाये ! त्यागियों को 'नियमी' और ''ज्ञानियों'' को 'संयमी' कहा जाये।

★★★

२५७९. संसार में रहकर ही संयम परिणाम संभव हैं। बिना संसार के संयम न आये। संयम के आने पर संसार भी 'सेफ साइड' हो जाये !

२५८०. संयम कब से कहा जाये ? संयम की शुरुआत कबसे ? आर्तध्यान-रौद्रध्यान बंद होवे तब से। असंयमी किसे कहा जाए ? जो परायी वस्तुओं के वश में बरते। आर्तध्यान-रौद्रध्यान बंद न होवे, तब तक 'यम-नियम' कहा जाए, संयम नहीं।

★★★

२५८१. संयमित देह, संयमित मन और संयमित वाणी - ये जिसके हो जायें, समझो वो स्वयं परमात्मा हो गया।

★★★

२५८२. संयमित मन, संयमित देह, और संयमित वाणी इन तीनों को हमें 'अपनी' गुफा से बाहर नहीं निकलने देना है। 'हमें' 'अपनी' गुफा में ही पैठ जाना है, चाय-पानी के लिए बाहर आना, फिर गुफा में वापस चले जाना है।

★★★

२५८३. संयम का प्रभाव न हो तो 'वीतराग' का धर्म ना चले। हमारी दाल में कोई मिट्टी डाल दे, फिर भी संयम न जाय, उसका नाम वीतराग धर्म। भीतर समाधान रहे, भले ही बाहर मुँह बिगड़ भी जाए-उसका कोई हर्ज नहीं। उसे 'पुद्गल की कसर' कही जायेगी। जब ये पुद्गल की कसर भी न रहे, उसकी तो फिर बात ही निराली!

★★★

२५८४. दादाश्री कहते हैं कि हमारा व्यवहार कब से अच्छा समझा जाये ? कि जब से 'हम' संयमित हुए हैं। संयम ना हो, तो फिर व्यवहार को 'व्यवहार' ही नहीं मान सकते न ?! जिसमें ज़रा भी असंयम हो उसे संपूर्ण 'व्यवहार' नहीं कहा जा सकता।

२५८५. 'क्या हो रहा है' ये 'देखते रहने' में चूक जाना, इसे 'असंयम' कहा जाये। 'क्या हो रहा है', ये देखा ही करे, ये है चरम संयम। ये ही 'ज्ञानियों का संयम' कहलाये।

२५८६. संयमपरिणाम अर्थात् आत्मपरिणाम और पुद्‌गल-परिणाम दोनों यथार्थ रूप से अलग-अलग रहें।

२५८७. 'व्यवस्थित' के 'ज्ञान' का आधार और अपने 'स्वरूप' की जागृति, इन दोनों के सहारे संपूर्ण संयम का पालन संभव है।

२५८८. संयम अहंकारपूर्वक नहीं हो सकता। अहंकार से त्याग हो सकता है। त्याग में कर्तृत्व की जरुरत है, त्याग का कर्ता होना चाहिये।

★★★

२५८९. क्रोध-मान-माया-लोभ के संयम को ही 'संयम' कह सकते हैं। संयम के भी दो प्रकार : पहले संयम में क्रोध-मान-माया-लोभ हों तो सही, परंतु वे 'कन्ट्रोलेबल' हों, सामनेवाले को किंचित्‌मात्र भी नुक़सान न पहुँचायें। दूसरा संयम ''ज्ञानी'' के जैसा, जिसमें क्रोध-मान-माया-लोभ बिल्कुल नहीं हों। वे न तो सामनेवाले को नुक़सान करें और ना ही खुद को नुक़सान पहुँचायें!

२५९०. संयमपरिणाम से ही मोक्ष है।

२५९१. संयमपरिणाम यानी क्या ? पुद्गल में आत्मा सम्मिलित न होवे, और वो अलग ही अलग बरते। आत्मा को सम्मिलित होने दें तो हिंसक भाव हो जाय !

२५९२. खुद के 'निजस्वरूप' का भान हुआ उसका प्रमाण क्या ? संयम परिणाम बरते ये ही।

२५९३. संयमधारी की प्रशंसा तो भगवान ने भी की है। संयमधारी को मृत्यु का भय नहीं होता। संयमधारी तो दर्शन योग्य है।

२५९४. जिस 'ज्ञान' पर शंका न हो, वो है निःशंक ज्ञान ! 'निःशंकज्ञान' ये परमात्मज्ञान है।

२५९५. जहाँ शंका वहाँ दुःख ! 'मैं ईन्दुबहन हूँ' ये हुई ज्ञान पर शंका, अतः दुःख खड़ा हुआ और 'शुद्धात्मा हूँ' ऐसा ज्ञान हुआ तो निःशंक हो जावे, अतः दुःख चला जाये।

२५९६. शब्द से 'आत्मा' बोलने से नहीं चले। बल्कि आत्मा की प्रतीति बैठनी चाहिए ! प्रतीति यानी आत्मा संबंधी निःशंकता, खुद स्वयं को ही निस्संदेह बोध हो जाय !

★★★

२५९७. एक क्षण के लिए भी शंका न हो, वो है आत्मा !

★★★

२५९८. जहाँ शंका, वहाँ संसार खड़ा हो जाये।

२५९९. शंका रखकर जो चले, उसे मार पड़ेगी ही।

२६००. जब तक आत्मा संबधी शंका न जाय, तब तक संसार संबंधी कोई भी शंका न जाय।

२६०१. नि:शंक आत्मा से निर्भयता होवे। नि:शंकता, बाद में असंगता!

२६०२. इतने बड़े जगत् को नि:शंक होकर जानो। किसी भी जगह शंका होनी ही नहीं चाहिए। ''ज्ञानी'' यानी क्या ? जिन्होंने नि:शंकरूप से सारे जगत् को जाना है ! उनके पीछे-पीछे चल कर तुम भी ऐसे जानो तभी तुम्हें हल मिलेगा, अन्यथा ये 'पज़ल' 'सॉल्व' हो पाए ऐसा नहीं। ये तो बहुत विकट 'पज़ल' है!

२६०३. प्रकट-पुरुष का महत्त्व ही इसलिए है कि उन्हें देखते ही भीतर शक्तियाँ प्रकट होवे, दर्शन मात्र से ही शक्तियाँ उत्पन्न होवे। प्रकट को देखते ही 'वही' तदनुरूप हो जायें!

★★★

२६०४. ''ज्ञानीपुरुष'' में तो 'खुद को' 'स्वयं' के दर्शन करने हैं।

★★★

२६०५. ''ज्ञानीपुरुष'' को एक क्षण के लिए भी संसार-परिणति नहीं होवे और न ही संसारभाव होवे; उनको तो निजपरिणति और 'स्वभावभाव' होवे।

२६०६. ''ज्ञानी'' और अज्ञानी में इतना ही फ़र्क़ : ''ज्ञानी'' को निरंतर स्वपरिणति होती है और अज्ञानी एक क्षण भी स्वपरिणति में नहीं रह पाता। अन्य कोई फ़रक नहीं होता! ''ज्ञानियों'' को कोई सींग नहीं होते! उन्हें कपड़ा-लत्ता सब हों, सिर्फ़ परिणाम में ही फ़र्क़ रहता है!

★★★

२६०७. जिसकी परपरिणति बंद हो जाये और स्वपरिणति में रहने की स्थिति बने, स्वपरिणाम में मुक़ाम हो जाये, तभी वो 'भगवान' होवे।

★★★

२६०८. सारा जगत् परपरिणति में है, स्वपरिणति तो देखी ही नहीं। 'स्वपरिणाम' ये ही परमात्मपद!

★★★

२६०९. जो परपरिणाम हैं, जो 'डिस्चार्ज' रूप हैं, उसमें वीतरागता रखनी है! और कोई उपाय ही नहीं।

★★★

२६१०. 'देह', ये पुद्गल-परिणाम है और 'भीतर' स्वपरिणाम हैं! सारा जगत् ये पुद्गल-परिणाम है।

★★★

२६११. ''ज्ञानीपुरुष'' के बग़ैर देहाध्यास न छूटे। ''ज्ञानीपुरुष'' वीतराग हैं, वे निरंतर स्वपरिणति में ही रहते हैं। ''ज्ञानीपुरुष'' देह में नहीं रहते, मन में नहीं रहते, बुद्धि में नहीं रहते, अहंकार में नहीं रहते; अतः ''ज्ञानीपुरुष'' अकेले ही हमारा देहाध्यास छुड़वा सकते हैं।

★★★

२६१२. जो 'तुम' स्वयं नहीं, उसे 'स्वयं' मानते हो, ये ही देहाध्यास! देह को स्वयं न मानो और मन को स्वयं मान लिया तो मनोध्यास रहे!!

२६१३. 'मैं आत्मा हूँ,' ऐसा बरते तभी देहाध्यास छूटे ! 'ये स्त्री-पुत्र आदि मेरे नहीं है'-ऐसा कहने से कोई देहाध्यास नहीं छूटता।

२६१४. जान लिया तो तब कहेंगे जब देहाध्यास जाये। देहाध्यास तो गया नहीं, और 'मैं जानता हूँ' ये कैफ़ रहे फिर क्या दशा हो ?!

२६१५. देह को कोई परेशान करे और 'स्वयं' उसे स्वीकारे तो वो है देहाध्यास ! 'मुझे ऐसा क्यों किया ?' कहा, तो ये है देहाध्यास !!

★★★

२६१६. देह सहज होवे यानी स्वाभाविक दशा ! उसमें विभाविक दशा नहीं हो, उसमें 'मैं ये हूँ', ऐसा भान नहीं होवे।

★★★

२६१७. देहाध्यास जाने के बाद देह की सहजता उतने अंशों में बढ़ती रहे और जितने अंश से सहज हुए, उतने अंश में समाधि उत्पन्न होवे।

★★★

२६१८. देहाध्यास गया हो फिर भी व्यवहार में लोग पूछे कि 'आपको खाते हुए देखा था !' तो हमें 'हाँ' कहना पड़े, परंतु ये बात हमारी 'बिलीफ' में नहीं होती।

★★★

२६१९. देहभाव पूरा ख़लास करना पड़े, मनोभाव भी पूरा ख़लास करना पड़े, वाणीभाव भी पूरा ख़लास करना पड़े, पूरा का पूरा देहाध्यास ख़लास करना पड़े।

२६२०. आत्मा को आत्मबुद्धि से जानना, इसे ‘देहाध्यास छूटा’ कहा जाये।

२६२१. देहाध्यास में रहते हुए देहाध्यास को छोड़ना ये कैसे संभव है ?! इसके लिए तो जो तरण-तारण हुए हों, ऐसे “ज्ञानी” के पास जाना होगा। देहाध्यास से देहाध्यास नहीं जाता ।

२६२२. ‘देहाध्यास’ और ‘आत्मध्यान’ इन दोनों में उत्तर-दक्षिण जितना फ़र्क़ है। जितनी मात्रा में आत्मध्यान उत्पन्न होवे, उतनी मात्रा में देहाध्यास छूटता जाये।

२६२३. जहाँ ध्यान हो वहाँ ‘इगोइज़म’ नहीं होता, और जहाँ ‘इगोइज़म’ हो, वहाँ ध्यान नहीं होता।

२६२४. अहंकारयुक्त वस्तु ‘एकाग्रता’ कही जाये और अहंकार से जो निर्लेप रहे वो ‘ध्यान’ कहा जाये।

★★★

२६२५. ध्याता-ध्येय का तार जुड़ा, उसी का नाम है ध्यान। ये तार टूटा तो समझो ध्यान टूटा। जो जीवित हैं ऐसे “ज्ञानीपुरुष” के ध्यान को निदिध्यासन’ कहा जाता है और मूर्ति का ध्यान ये है ‘एकाग्रता’।

★★★

२६२६. मन के परिणाम में आत्मा तन्मयाकार हो जाये तो ध्यान उत्पन्न होवे।

२६२७. जहाँ अहंकार हो वहाँ ध्यान नहीं होता ! अहंकार का स्वभाव ही ऐसा है कि उसके रहते ध्यान नहीं होता। अतः ध्यान उत्पन्न हो, ये परिणाम है, क्रिया नहीं ! अहंकार कोई भी क्रिया करे, उसमें से जो परिणाम उत्पन्न हो, ये ध्यान है।

२६२८. 'ध्यान' ये परिणाम है, परिणाम किया नहीं जाता। परिणाम तो उत्पन्न होता है, स्वाभाविक रूप से आता है।

२६२९. 'ध्याता-ध्येय का संधान करना', ये पुरुषार्थ है और 'ध्यान' ये परिणाम है।

२६३०. पुरुषार्थ ऐसी वस्तु है कि पुरुष होने के बाद ही पुरुषार्थ होवे। ये तो प्रकृति जबरन नचाती है, उसमें फिर तुम कहते हो कि 'मैं ये करता हूँ !' ये 'भ्रांति का पुरुषार्थ' कहलाये, वो सच्चा पुरुषार्थ नहीं। पुरुष और प्रकृति ये दोनों अलग हो जाने के पश्चात् ही सच्चा पुरुषार्थ होता है।

★★★

२६३१. सच्चा पुरुषार्थ कब उत्पन्न हो ? ''ज्ञानीपुरुष'', जब पुरुष बनाये, उसके बाद ही पुरुषार्थ हो सके ! तब तक तो सब प्रकृति के आधार से चलता रहता है। ये तो प्रकृति जैसे नचाये, वैसे नाचते हैं, ये भ्रांत पुरुषार्थ है। फिर भी हमें इसे 'एक्सेप्ट' तो करना पड़ेगा।

★★★

२६३२. जितनी चीज़ों का संयोग हो, वो है प्रारब्ध और उसके सम्बंध में जो भावाभाव उत्पन्न हो, वो है पुरुषार्थ !

२६३३. पुरुषार्थ के दो प्रकार : पहला, प्रारब्ध से उत्पन्न होनेवाला पुरुषार्थ, 'रिलेटिव पुरुषार्थ' ! प्रारब्ध में से जो बीज गिरे हों और उनमें से जो उत्पन्न हो, वो है 'रिलेटिव पुरुषार्थ' ! दूसरा, जो पुरुष होने के बाद होवे, वो है 'रियल पुरुषार्थ' । प्रारब्ध को मनुष्य जिस भाव से भुगते वो भाव, वो है भ्रांत पुरुषार्थ।

२६३४. 'पुरुषार्थ' ये योजनारूप है और 'प्रारब्ध' ये रूपक है।

२६३५. जो अनिवार्य है उसमें 'इगोइज़म' न करना, इसका नाम पुरुषार्थ !

२६३६. तुम संसार में कुछ भोगो और उसमें तुम्हें रस आता हो तो वो बंधनरूप हो जाय, और उसे भोगते समय ज़रा भी रस न आए, तब बंधन नहीं होता; वो ही सच्चा पुरुषार्थ।

२६३७. सच्चा पुरुषार्थ तो तभी हो सके जब कोई खुद के प्रति निष्पक्ष हो जाये।

२६३८. पुरुषार्थ किसे कहा जाय ? जिसमें स्वतंत्रता हो, जो स्वाधीन हो, पराधीन न हो ! जो कार्य अन्य संयोग इकट्ठा होने पर ही हो सके - उसे नहीं !! 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शिअल एविडन्स' के आधार पर जो होवे वो प्रारब्ध है।

★★★

२६३९. जहाँ तक किसी का भी आलंबन लेना पड़े, वहाँ तक वो प्रारब्ध है।

२६४०. मुन्ना चले इसमें मुन्ने का क्या पुरुषार्थ ? ये तो प्रकृति उसे चलाती है।

२६४१. वक़्त पुरुषार्थी नहीं बल्कि पुरुष पुरुषार्थी है।

★★★

२६४२. प्रारब्ध और पुरुषार्थ के बीच की लक्ष्मणरेखा को जो 'एक्ज़ेक्ट' जाने वो है ''ज्ञानी'' ।

★★★

२६४३. आत्मा का अन्य कोई पुरुषार्थ नहीं, ज्ञाता-दृष्टा रहना ही उसका पुरुषार्थ है जिसका परिणाम है परमानंद।

★★★

२६४४. भगवान के यहाँ अन्य कोई गुनाह नहीं देखा जाता। वहाँ तो 'तुम' 'जहाँ हो और जैसे हो', वैसे न बरतो, ये गुनाह है। 'तुम' 'खुद' ज्ञाता-दृष्टा हो, उसी पद में 'तुम' रहो, बस!

★★★

२६४५. जब तक अज्ञान है तब तक आत्मा ज्ञेय है, 'ज्ञान' होने के बाद वो ज्ञाता है।

★★★

२६४६. ज्ञेय, ज्ञान को जाने, उसका नाम शास्त्रज्ञान और ज्ञाता, ज्ञान को जाने, इसका नाम अनुभवज्ञान!

★★★

२६४७. जिसे तुम ज्ञाता मान बैठे हो, उसे ही जब ज्ञेयरूप समझोगे तभी तुम ज्ञाता बन पाओगे।

★★★

२६४८. सत्संग भी आख़िरकार क्या कहता है ? करना नहीं है, बल्कि जो परिणाम होवे उसे बस देखते रहना है।

★★★

२६४९. किसी बात का मूल ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं। मूल खोजने जाओगे तो मार पड़ेगी। जो होता है उसे बस 'देखना' और 'जानना' है!

★★★

२६५०. जहाँ उपाय न हो, वहाँ बस 'देखना' और 'जानना' है ! यदि आत्मज्ञान न भी हो तो इन्द्रियज्ञान से देखना है, हालाँकि 'इन्द्रियज्ञान से देखते रहना' और 'आत्मज्ञान से देखते रहना', इन दोनों में 'डिफरन्स' है। इन्द्रियज्ञान से देखने में 'इगोइज़म' निहित है।

★★★

२६५१. सभी क्रियाओं के यदि ज्ञाता-दृष्टा रहो तो सभी क्रियाएँ गलनस्वरूप हैं ; बुरी या अच्छी आदतें सब कुछ गलनस्वरूप है।

★★★

२६५२. जगत् किस आधार पर खड़ा रहा है ? अज्ञान के आधार पर ! क्रियाएँ अच्छी हैं या बुरी ? कोई भी क्रिया न तो अच्छी है, ना ही बुरी ; यदि अज्ञान हट जाए तो सब कुछ ढ़ह जाएगा। तुम अच्छी आदतों को सँजोते रहोगे और बुरी आदतों को निकालते रहोगे, तो उससे आधार जानेवाला नहीं। जब तक आधार है तब तक संसार है ! कितनी चीज़ों को हटाते रहोगे ? इससे अच्छा है कि तुम 'खुद' ही खिसक जाओ। इस 'अक्रममार्ग' में वस्तु को ही निराधार किया जाता है।

२६५३. 'ज्ञायकता' ये स्वरमणता है।

२६५४. जिसमें बिल्कुल ही अहम् न होवे, वो है ''ज्ञानीपुरुष'' !

२६५५. आत्मा का स्वभाव ऐसा है कि जैसी अपनी 'बिलीफ' बदले वैसी वो हो जाय ! आत्मा तो वैसी की वैसी ही रहती है, लेकिन अहंकार के कारण केवल आत्मा के परिणाम बदल जायें।

२६५६. 'पौद्गलिक रमणता' से 'पुनर्जन्म' होवे और 'आत्मा की रमणता' से 'मोक्ष' होवे-एकाध अवतार में।

२६५७. प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण क्या ? स्वरमणता। सारा जगत् पररमणता में है।

२६५८. एक क्षण के लिए भी आत्मा के साथ रमण करें तो परमात्मा हो जावें।

२६५९. आत्मा का स्वाद आनेपर ही आत्मरमणता उत्पन्न होवे ! तब तक कभी भी आत्मरमणता उत्पन्न न होवे।

★★★

२६६०. 'मैं आत्मा हूँ और ये मेरे गुणधर्म हैं', ऐसा चिंतवन होना यानी कि 'स्वरूप' और 'स्वभाव' में रहना-यही है स्व-रमणता।

★★★

२६६१. जब तक आत्मा का 'स्वभाव' उत्पन्न न होवे, चखें नहीं, तब तक प्रकृति ही बनती रहे। 'स्वभाव' चखने के बाद स्व में ही रमणता रहे !

२६६२. आत्मा की रमणता कब तक? अपनी पूर्ण दशा हो जाये फिर रमणता करना ही न रहे! 'खुद' ही 'स्वयं' हो गया!! अतः रमणता की दशा पूरी ही हो गई।

२६६३. परपरिणति यानी पराये परिणाम जो 'व्यवस्थित' करती है, उसे अपना मानना, इसी का नाम परपरिणति। परद्रव्य के परिणाम को स्वद्रव्य के परिणाम मानना, ये है परपरिणति!

२६६४. 'मैं करता हूँ', ये 'परपरिणति' कहलाये! किसी भी 'परपरिणाम' को अपना मानना, वो है परपरिणति!! ये 'अक्रमज्ञान' मिलने के बाद परपरिणति होती ही नहीं।

२६६५. क्षायक समकित यानी क्या? परपरिणति ही नहीं हो, निरंतर स्वपरिणति ही रहे–ये ही है क्षायक समकित!

२६६६. जो 'ज्ञान' वर्तन में ले जाये वो ही सच्चा 'ज्ञान'! अन्य सब ज्ञान शुष्कज्ञान कहलाये। ये 'अक्रमविज्ञान' तो ऐसा है कि जो वर्तन में ले जाये।

२६६७. जो 'ज्ञान' वर्तन में न आये वो 'ज्ञान' ही नहीं, बल्कि अज्ञान है। 'ज्ञान' हमेशा वर्तन में आये ही।

२६६८. 'वर्तन' ये तो भूतकालीन अज्ञान है और 'समझ' ये तो कितने सारे जन्मों का शेष सामान है।

२६६९. 'संसार' तो संसरणमार्ग है, बहुत ही लंबा रास्ता है ! अतः पूर्व जनम में तुम चलते रहे हो और इस जनम में भी चल रहे हो। पिछले जनम में उस मार्ग पर जैसा ज्ञान तुमने देखा हो, वैसे ज्ञान पर तुम्हें श्रद्धा बैठती है, और वो श्रद्धा दूसरे जनम में रुपक में आती है। दूसरे जनम में अन्य प्रकार का ज्ञान मिलता है और रूपक पिछले अवतार के ज्ञान का आता है। इस वजह से द्विधा उत्पन्न होती है कि मन के अनुसार रूपक क्यों नहीं आता ? जितना ज्ञान भरा उतनी द्विधा उत्पन्न होवे।

★★★

२६७०. अभी लगता है कि 'मुझसे हो नहीं पाता', तब आज का ज्ञान कहता है कि, 'ये करना चाहिए', और पिछला ज्ञान कहता है, 'ये करने की कोई आवश्यकता नहीं'। 'नहीं हो पाता', 'नहीं हो पाता' ऐसा कहने से क्या हो ? इससे बोलनेवाले के भाव बदलते हैं ! 'करना चाहिए, करना चाहिए' ऐसी आज के ज्ञान पर श्रद्धा बैठी, अतः आनेवाले भव में वैसा रूपक में आएगा।

२६७१. जिसे जैसा ज्ञान मिले वो वैसा चलता रहे; सीधा ज्ञान मिले तो सीधा चले।

२६७२. जगत् का अधिष्ठान ही ज्ञान है। ज्ञान के आधार से ही जीव चल रहे हैं ! ये ज्ञान है या अज्ञान ? 'अज्ञान' ये भी तो ज्ञान ही है, इसे तो ''ज्ञानी'' ने अलग किया है। 'जीव' को जो ज्ञान है उसी के आधार से ही वो चलता है। अतः इस जगत् को चलानेवाला तो ज्ञान ही है !

२६७३. यदि हमें यहाँ से 'जूहु' जाना हो, और दो रास्ते आ जायें, उनमें से कौन-सा रास्ता सही ? कोई जो रास्ता दिखाए, उस ज्ञान के आधार पर तुम चलोगे ! ये क्रिया ज्ञान ही चलाता है।

२६७४. ज्ञान ही चलाता है। सभी क्रियाएँ ज्ञान ही कराता है। ''ज्ञानियों'' के कहने के आधार पर चलने का फल है विरति और जगत् के ज्ञान का फल है अविरति!

२६७५. बच्चे माँ-बाप को जन्तु मारते हुए देखें, इसलिए वे भी मारें। जैसा ज्ञान वे देखें, वैसा करेंगे, फिर इस दोष की मार पड़े।

२६७६. 'ज्ञान' ये ही परमात्मा है! ज्ञान कभी भी अज्ञान नहीं हो जाता , लेकिन 'उपयोग' बदलता है और इसे ही 'अज्ञान' कहा है।

★★★

२६७७. दादाश्री कहते हैं कि हमने 'ज्ञान' में 'जैसा है उसी रूप' में हक़ीक़त को देखा है, और वो ही बताते हैं। कोई सुरमा तुम्हें नहीं बाँधता। अज्ञान बाँधे, और 'ज्ञान' छुड़ाये। अज्ञान बँधानेवाले तो जगह-जगह पर हैं, जबकि छुड़ानेवाला 'ज्ञान' तो ''ज्ञानीपुरुष'' मिलने पर ही प्राप्त हो सके।

★★★

२६७८. तुम्हें जो लौकिक ज्ञान मिला है उस लौकिक ज्ञान के आधार से न्याय मत करना। ''ज्ञानी''ने ये जो 'व्यवस्थित' कहा है न, उसी 'ज्ञान' के आधार से न्याय करना! लौकिक ज्ञान का आधार तो तुम्हें परेशान कर देगा। लौकिक ज्ञान छूटे तो संसार छूटे। 'व्यवस्थित' के 'ज्ञान' से लौकिक ज्ञान छूटे।

★★★

२६७९. 'व्यवस्थित' की रचना कब हो ? तुम्हें कोई तंग करे और उसमें तुम तन्मयाकार हो जाओ, उसमें 'अवस्थित' हुए, ये ही 'व्यवस्थित' की रचना हुई।

२६८०. 'व्यवस्थित' के नियम जानने योग्य हैं। 'एरोप्लेन' का आविष्कार हुआ, ये कोई नियम के बाहर नहीं। इस काल में आयुष्य तो वही का वही रहा, किन्तु लोगों के कर्मों के बड़े भंडार के कारण, उसके त्वरित निकाल के लिए तेजगति साधन पैदा हुए हैं ! इस 'व्यवस्थित' के नियम से कोई भी निमित्त खड़ा हो जाये।

२६८१. 'व्यवस्थित' कैसा है ? वो समष्टिशक्ति है और 'ये' जीव व्यष्टि-स्वरूप है। व्यष्टि के सारे भ्रांति के भाव समष्टि में जायें और 'कॉम्प्यूटर' तरीके से समष्टि द्वारा फल मिले।

२६८२. 'व्यवस्थित' का अर्थ समझना चाहिए। प्रयत्न करना है, बाद में फिर जो भी हो, जो भी परिणाम आये, वो है 'व्यवस्थित' !

★★★

२६८३. 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शिअल एविडन्स' में सारे नियम समाहित हैं। नियति भी 'व्यवस्थित' में समाहित है।

★★★

२६८४. 'व्यवस्थित' को ध्यान में रखना है ! उसका ग़लत अवलम्बन नहीं लेना है। सारे प्रयास करने पर कार्य होवे, फिर भी यदि कुछ उल्टा हो जाये, तब कहना कि 'व्यवस्थित है'।

★★★

२६८५. अग्रिम रूप से 'व्यवस्थित' बोलने का अधिकार किसे है ? उसे ही, जो ये प्रकृति के गुणों में ज़रा भी हस्तक्षेप न करे।

२६८६. 'व्यवस्थित के बाहर कुछ नहीं होनेवाला'–ऐसा अर्थ 'व्यवस्थित' का नहीं निकालना है। जब 'व्यवस्थित' कहें, तब हमारा प्रयत्न होना चाहिए, हमारी इच्छा प्रयत्न करने की होनी चाहिए, फिर 'व्यवस्थित' जो भी प्रयत्न कराये वो ठीक! सहज प्रयत्न होना चाहिए।

२६८७. भूतकाल के लिए 'व्यवस्थित' कह सकते हैं। वर्तमान एवं भविष्य काल के लिए 'व्यवस्थित' नहीं कह सकते।

२६८८. 'व्यवस्थित' बुद्धि से समझ में आये ऐसी नहीं है, उसे 'दर्शन' से ही समझा जा सकता है।

२६८९. हमारा भाव, और क्रिया जो कि रूपक है, वो 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शिअल एविडन्स' है। भाव तो 'पार्लियामेन्ट' का एक 'मेम्बर' है।

★★★

२६९०. 'व्यवस्थित' जगत् को चलाती है, वो जगत् की 'क्रिएटर' नहीं। जगत् तो स्वभाव से बना हुआ है।

★★★

२६९१. 'ये मैं कर रहा हूँ या कोई और कर रहा है', ये बात अत्यन्त निकटवर्ती है, अतः 'खुद' को पता ही न चले।

२६९२. सब कुछ 'निश्चित है' ऐसा निराधार नहीं बोलना है; 'अनिश्चित है' ऐसा भी निराधार नहीं बोलना है। ये जोखिम है, गुनाह होगा ! निश्चित-अनिश्चित के बीच ये रहता है। सारी सावधानियाँ बरतने पर भी यदि जेब कट जाय फिर समझें कि 'व्यवस्थित' है - तभी वो यथार्थ है।

★★★

२६९३. 'व्यवस्थित शक्ति' किसने बनायी ? किसी ने नहीं। परीक्षा का 'रिज़ल्ट' कौन देता है ? हमने ही जो लिखा था, उसीका ही ये 'रिज़ल्ट' आता है।

★★★

२६९४. हमारे हाथ से क्या होता है ? केवल योजना का ही गठन हो जाता है। वो भी अकेले हमारे से नहीं, बल्कि नैमित्तिक रूप से ! कार्य के समय हम निमित्त नहीं होते। कार्य तो कुदरती रूप से होता रहता है।

★★★

२६९५. 'नेचर' भी ये चलाती नहीं। मात्र 'नेचरल एडजेस्टमेंट' है !

★★★

२६९६. 'डिस्चार्ज' के समय कर्ता अलग है और 'चार्ज' के समय कर्ता अलग है ! ये बात जगत् को कैसे समझ में आये ?! वीतरागों की ये बात बहुत सूक्ष्म है।

★★★

२६९७. 'व्यवस्थित' की प्रेरणा से पुद्‌गल कर्ता बने। वैसे ऊपरी तौर पर पुद्‌गल कर्ता लगे, परंतु वो 'व्यवस्थित' के 'एविडन्स' से है, और इसमें भी आत्मा की उपस्थिति हो, तभी ये संभव हो सके।

★★★

२६९८. हक़ीक़त में पुद्‌गल कर्ता है, ऐसा कब कहा जा सके ? 'स्वरूपज्ञान' होने के बाद ही, अन्यथा वो उल्टी राह चलेगा। 'स्वरूपज्ञान' के बाद ''ज्ञानी'' की आज्ञा में रहो, तत्पश्चात् ही सब पुद्‌गल कर्ता है और तुम्हारी जोखिम नहीं–ऐसा कह सकते हो। उसके सिवाय अगर कोई कहे तो सब उल्टी राह चलें!

★★★

२६९९. यदि कोई हक़ीक़त में कर्ता होता तो कोई छूट ही नहीं पाता। कर्ता किसे कहेंगे ? कि जो स्वतंत्र 'पावर'वाला हो।

★★★

२७००. ये इन्द्रधनुष, उसके सभी सप्तरंग दिखते हैं, इसे किसने बनाया ? कोई बनानेवाला ही नहीं। ये तो 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शिअल एविडन्स' से सब इकट्ठे होते हैं, ये तो स्वाभाविक वस्तु है। एक करोड़ वर्ष पहले भी वो सात रंग का ही था, अभी भी सात रंग का ही है, इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

★★★

२७०१. ये तो 'सायन्स' है! भगवान का 'साइन्टिफिक प्रयोग' है। कर्म भी नहीं और कर्ता भी नहीं। कुछ भी नहीं, मात्र 'सायन्स' है!

★★★

२७०२. ये जगत् चल रहा है! जैसे 'इन्जन' चल रहा हो, और 'ड्राइवर' कहे कि 'मैं चला रहा हूँ', तो ऐसा कैसे कहा जाय ? 'वीतरागों' ने 'इस' भूल को मिटाने के लिए कहा है।

★★★

२७०३. कर्तापद की भ्रांति खुद से नहीं टूटती, उसे मात्र ''ज्ञानीपुरुष'' के द्वारा ही तोड़ा जा सके।

★★★

२७०४. 'भ्रांतिज्ञान' ये विकल्पी ज्ञान है जबकि सच्चा 'ज्ञान' निर्विकल्प ज्ञान है। अतः सच्चे 'ज्ञान' को ही समझने की आवश्यकता है।

२७०५. संपूर्ण विकल्पी हो वो आध्यात्मिक 'डेवलपमेंट' है।

२७०६. यह सब कल्पना ही है, और कल्पना में 'ये सही और ये ग़लत' ऐसा नहीं होता।

२७०७. संकल्प-विकल्प हो तब तक आत्मा प्राप्त हुई ऐसा नहीं कह सकते। संकल्प-विकल्प का कर्ता हुआ, अतः निर्विकल्प नहीं होवे।

२७०८. चाहे श्वेत वस्त्र पहनें या भगवे, फिर भी विकल्प न जाये। संसारी को ग्रहण के विकल्प रहें और त्यागियों को त्याग के विकल्प! अब कहिए, निरे विकल्प, विकल्प और विकल्प ही हों; ऐसे में निर्विकल्प किस प्रकार हो पायें ?!

★★★

२७०९. बग़ैर त्याग के तो कुछ भी नहीं होता है। त्याग किसका ? भ्रांति का सर्वस्व त्याग! अहंकार का सर्वस्व त्याग!! ममता का सर्वस्व त्याग!!!

★★★

२७१०. त्याग तो सहज होना चाहिए, सब अपने आप ही छूट जाय।

२७११. जिसके अहंकार एवं ममता पूर्णतः चले जाय, वो 'संपूर्ण त्यागी' कहलाये।

२७१२. व्रत किसे कहेंगे ? 'दादा' को तो पाँचों महाव्रत बरतते हैं ! वे संसार में रहते हैं फिर भी महाव्रत बरतते हैं; यह है क्या ? उन्हें पुद्‌गल परिणति उत्पन्न ही नहीं होती ! जहाँ महाव्रत हो वहाँ पुद्‌गल परिणति नहीं होवे। जहाँ अणुव्रत हो, वहाँ अमुक अंश में पुद्‌गल परिणति होवे और अमुक अंश कम हो चुके हों !

★★★

२७१३. आत्मा तो महाव्रतधारी ही है, लेकिन ये महाव्रत बाहर भी बरतने चाहिए तभी आत्मा की पूर्णता कही जाएगी। संसारीभाव उत्पन्न ही न होवे, इसका नाम महाव्रत ! ये बहुत ऊँची बात है।

★★★

२७१४. मन-वचन-काया से किसी को दुःख न पहुँचे, इसमें सभी महाव्रत समाहित हो गये समझो।

★★★

२७१५. उपवास यानी कि 'स्वरूप' में वास, स्वक्षेत्र में वास।

★★★

२७१६. जब हम देह को उपवास करायें तब हमें स्वयं के 'उपयोग' में रहना चाहिए। उपवास तो उपयोग में रहने हेतु करना है, ना कि सिर्फ़ भूखे रहने के लिए।

★★★

२७१७. जिस जिसका त्याग करोगे उसका फल भुगतना पड़ेगा। 'त्याग करना' ये क्या हमारे बस की बात है ? 'ग्रहण करना' ये भी क्या हमारी सत्ता में है ? ये तो पुण्य-पाप के अधीन सत्ता है।

★★★

२७१८. 'स्वरूपज्ञान' एवं भान के बिना जो कुछ भी किया जाये वो 'जीव' को संसार में भटकानेवाला है।

२७१९. सत्य की खोज में सारा जगत् भटक रहा है। जो परमात्मा खुद में प्रकाशित हो चुके हैं, वो सत् हैं, उन्हें ही खोजना है।

२७२०. सबसे पहले 'स्वयं' का स्वभाव कैसा है इसे जानना, उसकी प्रतीति करना, उसीका नाम है 'समकित'। इन सभी स्वभाव में मेरा खुद का कोई स्वभाव है क्या ? तब ''ज्ञानी'' कहेंगे, 'नहीं'। तुम जीभ को उल्टी करो या टेढ़ी करो, कुंडलिनी जाग्रत करो या शास्त्रों को पढ़ो लेकिन इन सब में आत्मा नहीं है। ये सब पुद्गल हैं ; आत्मा में अन्य कोई वस्तु नहीं होवे।

२७२१. ये सब तो साधन हैं और वे सारे स्थूल हैं। सूक्ष्म में जाना होगा ! साधनों को ही साध्य मान लें तो फिर क्या हो ?!

२७२२. जो तत्त्व को जानता नहीं, वह तत्त्व की बात कैसे कर सकता है ?! जगत् तो अतत्त्व को जानता है।

२७२३. एक तरफ 'टेम्परी' है और दूसरी तरफ 'परमेनन्ट' है। 'तुम्हें' जो भाये वहाँ मुकाम करो। 'टेम्परी' में मूर्त चाहिएगा और 'परमेनन्ट' में अमूर्त चाहिएगा।

★★★

२७२४. 'टेम्परी' से चिपकोगे तो 'टेम्परी' हो जाओगे, अतः 'परमेनन्ट' से ही चिपकना, ''ज्ञानीपुरुष'' को ही चिपकना ! ''ज्ञानीपुरुष'' देहधारी परमात्मा हैं।

२७२५. 'रिलेटिव' को 'रियल' मानना, इसका नाम भ्रांति ! 'रिलेटिव' को जो 'रिलेटिव' कहे वो ''ज्ञानी'' !!

★★★

२७२६. 'रियल' यानी संसर्गरहित और 'रिलेटिव' यानी संसर्गयुक्त। इस संसर्गजन्य 'रिलेटिव' का किसी को पता नहीं चलता। ये तो ''ज्ञानीपुरुष'' उस संसर्ग को तोड़ दें, फिर 'रियल' अपने परिणाम की भजना करे !

★★★

२७२७. 'मूल वस्तु' किसे कहेंगे ? कि जिसे कुछ नहीं होता। मूल वस्तु तो सनातन, अविनाशी होवे ! अविनाशी सनातन वस्तुओं का संसर्ग होने पर विशेष परिणाम उत्पन्न होवे !! जब उन वस्तुओं के संसर्ग को ''ज्ञानीपुरुष'' तोड़ दें, तब वस्तु अपने वस्तुस्वरूप में आ जाये।

★★★

२७२८. 'रियल' का आराधन करना है और 'रिलेटिव' को तो जानना ही है ! 'रियल' में रमणता करनी है।

★★★

२७२९. सारा व्यवहार 'रिलेटिव' है, पराधीन है। सब 'रिलेटिव' खोखला है, वास्तविक नहीं। जो ठोस हो वही 'वास्तविक' कहलाये।

★★★

२७३०. 'रियल व्यू पॉइन्ट' और 'रिलेटिव व्यू पॉइन्ट' इन भावों में निरंतर रहना, ये है केवलज्ञान, और वो भाव संपूर्ण होने पर संपूर्ण केवलज्ञान हो जाये।

२७३१. 'रिलेटिव' में जो आत्मा है वो 'रियालिटी' में परमात्मा है। जहाँ तक विनाशी चीज़ों का व्यापार है, वहाँ तक ये संसारी आत्मा है और जब वो संसार में न हो, तब परमात्मा है।

२७३२. लोकभाषा में कहा जाता है कि 'ये अच्छा और ये बुरा', लेकिन भगवान की भाषा में तो एक ही शब्द है, 'वस्तु' ! पुद्गल, पुद्गलस्वभाव में है और आत्मा, आत्मा के स्वभाव में है !!

२७३३. 'रियल करेक्ट' ये वास्तविक है और 'रिलेटिव करेक्ट' ये अमुक कालावधि तक है।

२७३४. 'विनाशी' को 'विनाशी' कहनेवाला 'अविनाशी' होना चाहिए।

२७३५. 'सत्' अविनाशी है और जगत् में जो धर्म प्रवर्तमान हैं वे सारे 'रिलेटिव' हैं, विनाशी हैं। 'सत्य-विज्ञान' क्रियाकारी होवे, जबकि बाहर के ज्ञान के लिए माथापच्ची करनी पड़ती है।

★★★

२७३६. जिस वक़्त खुद जिस अवस्था में होता है, उसे ही वो 'नित्य-सत्य' मान लेता है, और फिर उलझन में रहता है।

★★★

२७३७. 'रियल' यानी तत्त्व। 'रिलेटिव' यानी अवस्था। तत्त्वदृष्टि से अवस्था की क़ीमत ही न रहे। तत्त्वदृष्टि हो जाय तो 'वस्तु' ही दिखाई दे। अवस्थादृष्टि से कैफ़ चढ़े।

२७३८. कोई भी आत्मा स्त्रीरूप या पुरुषरूप होती ही नहीं ! ये तो अवस्था है और सारी अवस्थाएँ 'टेम्पररी' हैं। 'ऑल दिज रिलेटिव्ज आर टेम्पररी एड्जेस्टमेंट्स, रियल इज परमेनन्ट।'

२७३९. जगत् की किसी भी अवस्था में ना तो मस्ती रखना है और ना ही 'डिप्रेस' होना है।

२७४०. जन्म-मरण आत्मा के नहीं हैं। आत्मा 'परमेनन्ट' वस्तु है ! ये जन्म-मरण तो 'इगोइज़म' के हैं।

२७४१. जगत् के लोग अवस्था को ही अपना 'स्वरूप' मानते हैं। अवस्था हमेशा 'बिगिन' हो और उसका 'एन्ड' होवे।

२७४२. आचार-विचार और उच्चार इन तीनों की अवस्थाएँ हर क्षण बदलती ही रहती हैं।

२७४३. 'रियल करेक्ट' ये वस्तु है और 'रिलेटिव करेक्ट' ये वस्तु की अवस्थाएँ हैं। अवस्थाएँ 'टेम्पररी एड्जेस्टमेंट' हैं जबकि वस्तु 'परमेनन्ट' है।

★★★

२७४४. अवस्थाएँ सारी कुदरती, और स्वस्थता हमारी !

★★★

२७४५. इस दुनिया में दो प्रकार की मान्यताएँ: अशुद्ध मान्यता, जो है भ्रांति की मान्यता; और शुद्ध मान्यता – वो है 'रियल' !

२७४६. 'मैं करता हूँ' ये भी भ्रांति है और 'मेरा है' वो भी भ्रांति ही है, लेकिन 'मैं हूँ' ये सच है।

२७४७. मन-बुद्धि-चित्त ये सब अपने-अपने धर्म निभाते हैं, पर उसमें हमारा ही हस्तक्षेप होवे। हमारा यानी आत्मा का नहीं, इन दोनों के बीच 'मैं' का ही पच्चर है। 'इगोइज़म' कैसे खड़ा हुआ ? 'रॉंग बिलीफ' खड़ी होने के कारण।

२७४८. ''ज्ञानी'' तुम्हारे अहंकार को 'फ्रेक्चर' नहीं करते अपितु 'रॉंग बिलीफ' को 'फ्रेक्चर' कर देते हैं।

२७४९. एक आत्मा ही जानने योग्य है ! इस जगत् में और कुछ भी जानने योग्य नहीं। अन्य सब जो जाना वो सब 'रिलेटिव' है और विनाशी है। यदि भौतिक सुखों की चाह हो, तो विनाशी धर्म को जानना पड़े।

★★★

२७५०. 'रिलेटिव' की चाहे कितनी ही 'स्लाइस' करें, फिर भी क्या उनमें रियल की एक भी 'स्लाइस' मिलेगी ?

★★★

२७५१. तुम्हें कुछ भी नहीं छोड़ना है। 'मोक्षमार्ग' ये ग्रहण-त्याग का मार्ग ही नहीं ! ग्रहण-त्याग तो शुभाशुभ-मार्ग में होवे, जबकि ये तो मोक्षमार्ग है, परमात्मपद का मार्ग है, यहाँ तो मात्र समझना ही है।

२७५२. ''ज्ञानी'' मिले तो सिर्फ़ बात ही 'समझनी' है। त्यागी मिले तो 'करने की' बात होती है, वे जो करने के लिए कहें, वो हमें करना है। जो 'करना' है वो सब संसार है।

२७५३. 'ग्रहण करना' भी हमारे हाथ में नहीं और 'छोड़ना' भी हमारे हाथ में नहीं; दोनों पर हैं और पराधीन हैं।

२७५४. त्याग का फल मोक्ष नहीं, बल्कि 'ज्ञान' का फल मोक्ष है।

२७५५. ''ज्ञानी'' और त्यागी में इतना ही फ़र्क़ है : ''ज्ञानी'' संयमी होवे और त्यागी नियमी होवे। ''ज्ञानी'' के सिवा और कहीं संयम नहीं होता।

२७५६. त्याग और संयम ये दोनों अलग वस्तु हैं। स्त्री-पुरुष-बच्चे-लक्ष्मी-घरबार इन सबका त्याग करना, ये 'त्याग' कहलाये। संयम किसे कहेंगे ? क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष ये संयमित हों, तब वो 'संयम' कहलाए।

★★★

२७५७. त्याग में अहंकार होवे, जबकि संयम में अहंकार नहीं होता।

★★★

२७५८. मोक्षमार्ग में तो, ''ज्ञानीपुरुष'' से संयम लें और उस संयम से मोक्ष प्राप्त होवे। बिना संयम के मोक्ष नहीं होता।

२७५९. संयम यानी क्या ? बाहर के उपसर्ग और अंदर के परिषह इन दोनों का असर न होने दे और यदि असर हो भी, तो उसे बस जाने परंतु वेदन न करे और कदाचित् वेदन हो भी, तो भी उसे जाने, उसीका नाम संयम !

★★★

२७६०. अहंकार सहित वस्तुओं को छोड़ें, उसे त्याग कहा जाए और निर्‌अहंकारपूर्वक वस्तुएँ छूट जाय, वो 'संयम' कहलाये।

★★★

२७६१. मोक्ष के चार अंग हैं : ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप ! भगवान ने इनमें बाह्य तप को मोक्ष हेतु तप नहीं कहा, अपितु आंतरतप को ही मोक्ष हेतु तप कहा है।

★★★

२७६२. जब तक 'ज्ञान' न हो तब तक त्याग का फल आये। 'ज्ञान' होने के पश्चात् वो त्याग नहीं कहलाये, बल्कि व्रत हो जाये। व्रत यानी जो अपने आप बरते।

★★★

२७६३. 'तप-त्याग करने' के लिए जो कहा जाता है, वो तो परसत्ता में है ! फिर वो कैसे हो सके ?! 'तप-त्याग' ये सभी परपरिणाम हैं, स्वपरिणाम नहीं और फिर वो स्वाधीन भी तो नहीं है।

★★★

२७६४. सच्चा आंतरतप किसे कहेंगे ? भीतर हृदय बहुत तप्त हो जाय, तब स्वयं शांतभाव से उसका ज्ञाता-दृष्टा रहे - ये है आंतरतप।

★★★

२७६५. 'ये परपरिणाम हैं, मेरे परिणाम नहीं', इस प्रकार स्वपरिणाम में दृढ़ रहना, उसीका नाम है तप !

२७६६. 'ज्ञाता-ज्ञेय' के बीच जागृत रहना ये ही है तप ! जो 'ज्ञाता' है वो 'ज्ञेय' न हो जाए, वो ही है अदृश्यमान तप !!

२७६७. भगवान अपना तप स्वयं ही देखते थे !

२७६८. जिसके आर्तध्यान व रौद्रध्यान बंद हो गए हों, वह एकावतारी हो जाये।

२७६९. 'ये जो त्याग है', वो उदय का परिणाम है जबकि 'संयम', ये समझ का परिणाम है।

२७७०. पहले बुद्धि की 'लाइट' से तुम ग्रहण करो तत्पश्चात् समझ खड़ी हो, जिसके बाद संयम उत्पन्न हो जाये।

२७७१. ''ज्ञानीपुरुष'' के पास बैठने से विपरीत बुद्धि सम्यक् हो जाये और तत्पश्चात् समझ सम्यक् होवे।

२७७२. 'संयम परिणाम' ये आत्मिक क्रिया नहीं, अपितु अंतरिम (interim) है। स्वतंत्ररूप से आत्मा दिखे तब ही आत्मिक क्रिया होवे।

२७७३. संयम परिणामी वो कहलाये, जिसे विषय का विचार ही न आये।

२७७४. 'त्याग और ग्रहण' ये सब वस्तु स्थूल में हैं, और 'चिढ़ होना या प्रेम होना' ये सूक्ष्म हैं। इन दोनों का सम्मिलन नहीं हो सकता ! फिर तुम ऐसा काम क्यों करते हो ? दोनों का कुछ लेना देना ही नहीं।

२७७५. अज्ञान उसे कहते हैं जो 'अपना' घोर अहित करे। 'ज्ञान' किसे कहेंगे ?' जो 'अपना' अहित दूर करके संपूर्ण हित करे ताकि मोक्ष को ही पा ले।

२७७६. प्रमाद के दो प्रकार : सांसारिक बाबतों में प्रमाद रहे, वो 'आलस्य' कहलाये। धर्म के बाबत में उपयोग-जागृति न रहे उसे 'प्रमाद' कहते हैं। जिसे 'निरंतर उपयोग रहे' वो अप्रमत्त है।

२७७७. आरोपित भाव में स्थिरता करे, वो है मद। आरोपित भाव में रंजन करे, वो है प्रमाद।

२७७८. 'प्रत्यक्ष दर्शन' से अप्रमत्त हो जाये, और 'परोक्ष दर्शन' से प्रमाद हो जाये।

२७७९. 'वस्तु', वस्तु का स्वभाव चूके इसे 'प्रमत्तभाव' कहा जाये ! 'वस्तु' अपने मूल गुणधर्म में रहे, ये है अप्रमत्तभाव !!

★★★

२७८०. ''ज्ञानी'' के मतानुसार कोई भी गुनहगार नहीं। कोई गुनहगार दिखे तो वो हमारी कमी है। कोई गुनहगार दिखे वो ही तुम्हारा प्रकृतिभाव है। अप्रमत्तभाव से तो जगत् निर्दोष ही दिखाई देगा और हमें रामराज्य जैसा लगेगा ! हमेशा के लिए अप्रमत्त होना है।

२७८१. जो सब कुछ निभा ले, उसीका नाम 'त्यागी'।

२७८२. जिस त्याग से कषाय बढ़ें, वो त्याग ही नहीं।

२७८३. त्यागना क्या है ? आर्तध्यान और रौद्रध्यान। यदि इन दोनों का त्याग नहीं किया, तो समझो कुछ भी नहीं त्यागा !

२७८४. धर्मानुसार 'जान लिया', ये कब कहा जाये ? रौद्रध्यान तो हो ही नहीं बल्कि रौद्रध्यान का ज़रा भी परिणाम खड़ा ना होवे, और ऐसा कोई संयोग भी न हो।

२७८५. आर्तध्यान और रौद्रध्यान बंद न होवे तब तक समझो कुछ जाना ही नहीं ! तब तक ऐसा कहना है कि "मैं कुछ भी नहीं जानता, 'ज्ञानीपुरुष' जाने।"

★★★

२७८६. जिस 'गाँव' जाना हो उसी 'गाँव' का आराधन करना होगा, अन्यथा किसी और ही 'स्टेशन' पर उतर जाओगे।

★★★

२७८७. बात दो प्रकार से होनी चाहिए, व्यवहार की व्यवहार के अनुसार और निश्चय की निश्चय के अनुसार, अन्यथा वो एकांतिक हो जायेगी; क्योंकि ये तो स्याद्वाद है !

★★★

२७८८. 'रियल पुरुषार्थ', ये शुक्लध्यान है और 'रिलेटिव पुरुषार्थ', ये धर्मध्यान है।

२७८९. 'रिलेटिव' यानी क्या ? 'सुपरफ्लुअस'।

२७९०. ये 'ज्ञान' क्या है ? न तो व्यवहार है और ना ही निश्चय ! ये तो 'अक्रम विज्ञान' है !! 'अक्रम विज्ञान' यानी क्या ? शुद्ध निश्चय व शुद्ध व्यवहार !

२७९१. अकषायी व्यवहार ये शुद्ध व्यवहार है और अपने 'स्वरूप' का लक्ष्य ये है निश्चय, और इन्हीं से मोक्ष होवे !

२७९२. 'निश्चय' ये अपना 'स्वरूप' है, और 'व्यवहार' ये खुद के कसूर हैं।

२७९३. 'व्यवहार' सारा सामाजिक है और 'निश्चय' अभेद है।

२७९४. सच्चा 'विज्ञान' कौन सा ? जो व्यवहार को 'एक्सेप्ट' करे वो। व्यवहार को जो हटाये उसे सच्चा 'विज्ञान' नहीं कह सकते।

★★★

२७९५. 'व्यवहार' का ज्ञान माता देवे और 'निश्चय' का ''ज्ञानी'' देवें ! फिर कुछ जानने को बाक़ी ही ना रहे।

★★★

२७९६. जो 'व्यवहार' सामने आ जाये उस की कभी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। पहले 'व्यवहार', बाद में 'निश्चय'।

२७९७. हमारा व्यवहार साफ़-सुथरा होना चाहिए, तभी आत्मा शुद्ध हो पायेगी, इसमें किसी की फ़रियाद नहीं होनी चाहिए।

२७९८. तुम्हारा व्यवहार किसी ने बिगाड़ा नहीं। तुम्हारा व्यवहार खुद तुमने ही बिगाड़ा है। 'यू आर होल एण्ड सोल रिस्पोन्सिबल फॉर योर व्यवहार'।

२७९९. 'निश्चय' में कुछ भी कच्चा नहीं रहना चाहिए, और हाँ, 'व्यवहार' में भी कुछ कच्चा रहे, तो इसे भूल ही कही जायेगी। 'व्यवहार' में कच्चा रहे तो 'निश्चय' में भी कच्चा रह जाए।

२८००. भगवान इतना ही कहते हैं कि व्यवहार में किसी को भी बाधारूप नहीं होवे, ऐसा व्यवहार होना चाहिए!

२८०१. व्यवहार में 'व्यवहार' की तरह बरतें। यदि व्यवहार में प्रेम की कमी आ रही महसूस हो, तो वहाँ से खिसक जाओ।

★★★

२८०२. जेब कट जाने पर भी कोई असर न होवे, तो समझो तुमने 'निश्चय' की हद में प्रवेश किया। 'व्यवहार की' हद से निकलकर 'निश्चय' की हद में शुरुआत हुई!

★★★

२८०३. यदि 'व्यवहार समझ में आये, तो 'निश्चय' समझ में आये!

२८०४. जिसका जिस प्रकार का स्वभाव हो, उसके मुताबिक ही व्यवहार होवे।

२८०५. हमें तो दोनों ही पटरियों पर चलना है, मोक्ष की पटरी और व्यवहार की पटरी। संसार-व्यवहार में ज़रा भी खामी नहीं आनी चाहिए। व्यवहार में खामी हो, तो मोक्ष नहीं होवे।

२८०६. इस व्यवहार को तुमने अगर सँभाल लिया, तो व्यवहार ही तुम्हें पूरी 'हेल्प' करेगा।

२८०७. व्यवहार बाधारूप नहीं, लेकिन व्यवहार में एकरूप हो जाते हो, ये बाधारूप है।

२८०८. व्यवहार यानी सामनेवाले को संतोष देना।

२८०९. जब खाना छोड़ दो तब व्यवहार छोड़ देना। 'निश्चय' किसके आधार पर खड़ा है? 'व्यवहार' है, तो 'निश्चय' है। तुम 'व्यवहार' दूर करोगे, तो 'निश्चय' भी नहीं रहेगा।

★★★

२८१०. 'व्यवहार' यानी 'लौकिक', 'ड्रामेटिक'। 'निश्चय' यानी अलौकिक, 'रियल', असल, 'डिसाइडेड'।

★★★

२८११. 'निश्चय' ये स्वाधीन है और 'व्यवहार' ये पराधीन है और परिणाम तो पराधीन का भी पराधीन है। हमें सिर्फ़ 'निश्चय' ही करना है, 'व्यवहार' की झंझट में नहीं उतरना है। 'व्यवहार' तो पराधीन है।

२८१२. 'व्यवहार' ये निकास की बाबत है और 'निश्चय' ये ग्रहणीय बाबत है।

★★★

२८१३. भगवान ने कहा है कि–'व्यवहार' सारा निकासी है, अतः उसे पकड़े रखना नहीं है। उसका शीघ्रता से निपटारा कर देना है।

२८१४. जब तक ''ज्ञानीपुरुष'' न मिले तब तक व्यवहार 'करने योग्य' होवे, और ''ज्ञानीपुरुष'' मिलने के बाद व्यवहार 'निकासी' हो जाये।

२८१५. जो व्यक्ति निश्चय चूक जाए, उसका व्यवहार 'व्यवहार' ही नहीं।

२८१६. 'व्यवहार' ये पराश्रित है, संयोगों का मिलन है–जो कि हमारे अधीन नहीं।

२८१७. जिन कषाय को निर्मूल करने के लिए ये व्यवहार करना है, उसी व्यवहार से ही ये कषाय खड़े हो जाते हैं।

★★★

२८१८. कषाय के वक़्त जिसे कषाय हो जाते हों, वो कब सब उलटपुलट कर देगा, ये कह नहीं सकते। कषाय के समय जो जागृत रहे वो तैर जाये!

★★★

२८१९. कषाय दंड नहीं दे पायें, उसीका नाम 'ज्ञान'! 'कषाय दंडित करें' वो अज्ञान!!

★★★

२८२०. जो कषायभाव से रहित हों, उन्हें 'भगवान' कहते हैं।

२८२१. आत्मा एवं अनात्मा के बीच कषायरूपी कड़ी (लिंक) है।

२८२२. 'कषाय' आनेवाले भव का कारण बनते हैं, जबकि 'विषय' बीते हुए भव का परिणाम है।

२८२३. विषय तो विषय ही है ! विषय में अज्ञानता होवे तब कषाय खड़े हो जायें, लेकिन 'ज्ञान' होवे, तो कषाय पैदा नहीं होवे।

२८२४. कषाय कहाँ से जन्मे ? विषय में से। विषय का दोष नहीं, अज्ञानता का दोष है। 'रूटकॉज़' अज्ञानता है।

★★★

२८२५. 'ज्ञान के ऊपर आवरण', ये है अज्ञान और 'दर्शन के ऊपर आवरण', ये है अदर्शन ! अज्ञान और अदर्शन का परिणाम क्या है ? कषाय ! और ज्ञान-दर्शन का फल क्या ? समाधि।

★★★

२८२६. 'सनातन ज्ञान', ये स्वयं ही आत्मा है ! 'आत्मा', ये 'ज्ञान' है और वो ही परमात्मा है। अन्य किसी परमात्मा को ढूँढ़ने की ज़रूरत नहीं है। तुम्हारे भीतर ही वो परमात्मा बैठे हुए हैं। आत्मा भी बैठी ही है और देहधारी भी बैठा है ! मूर्ति भी बैठी है और अमूर्त भी बैठा हुआ है !!

२८२७. लोगोंने जो माना है, बुद्धि में जो समा सके ऐसी ये आत्मा नहीं, ये तो अमाप है। यहाँ 'नाप' नहीं, तोल नहीं, कुछ भी चल नहीं सकता ! आत्मा तो 'ज्ञान'गम्य ही है। ये तो ''ज्ञानी'' के 'ज्ञान' से ही आत्मा जानी जा सके।

★★★

२८२८. 'मैं कौन हूँ', इसके संबंध में आशंका हो जाये और लगे कि, सच में 'मैं ये नहीं हो सकता'; अब तक जाने हुए ज्ञान पर आशंका हुई, तब से समझो वो ज्ञान खत्म होने में है। जिस ज्ञान में शंका होवे, वो ज्ञान तो उड़ जाये। सच्चे 'ज्ञान' पर कभी शंका उत्पन्न न होवे।

★★★

२८२९. कोई भी वस्तु 'ज्ञान' में आ जाये, फिर वो वस्तु कभी अज्ञान में न लौटे, विरोध उत्पन्न न हो। हर एक सिद्धांत को 'हेल्प' करते हुए, कोई भी सिद्धांत को बग़ैर खंडन किये हुए ये सिद्धांत आगे बढ़ता जाये और कोई विरोधाभास उत्पन्न न होवे !

२८३०. आत्मज्ञान कब कहा जाए ? जब परिणमित होवे तब ! 'मैं हीरा हूँ' ऐसा बोलने मात्र से कोई हीरा नहीं पा लेता। इसी प्रकार आत्मज्ञान होने के लिए आत्मा को गुणधर्म सहित जानना चाहिए और वे गुण जब परिणमित हों तभी आत्मज्ञान होवे !

२८३१. किसी की कोई चीज़ यदि गिर गई हो, तो ''ज्ञानीपुरुष'' को उस व्यक्ति के भीतर के परिणाम 'एट-ए-टाइम' दिखें, इसी का नाम-केवलज्ञान के अंश !

२८३२. 'उपयोग, उपयोग में रहा' ये है केवलज्ञान।

२८३३. केवलज्ञान यानी 'ज्ञान' के सिवा और किसी में नहीं, अन्य किसी में मान्यता नहीं, बस 'ज्ञान' ही, प्रकाश !!

★★★

२८३४. समझ जब वर्तन में आये तब वो ही समझ, ज्ञान के रूप में परिणत होवे ! समझ हमेशा अनुभव कराती रहे। ''ज्ञानी'' ने जो समझ दी, उसका अनुभव होता रहे, और फिर वो समझ एक दिन 'ज्ञान' में परिणत हो जाये।

★★★

२८३५. 'स्वयं' के दायरे में मात्र 'देखना-जानना' ही है, और कुछ भी नहीं। परमात्मपन है ! 'देखने-जानने' के दायरे से बाहर निकले तो समझो कि मुश्किलें ही हैं !!

★★★

२८३६. व्यवहार को 'देखना-जानना', इसी का नाम ही आत्मा ! उसमें जो राग-द्वेष करे, वो आत्मा नहीं।

★★★

२८३७. 'देखना-जानना', ये है शुद्धात्मा ! 'राग-द्वेष करे' वो प्रतिष्ठित आत्मा।

★★★

२८३८. 'शादी करके बहू लाये' ये भी 'जानो', और 'बहू भाग गयी' इसे भी बस 'जानो'। 'जाननेवाले' को राग-द्वेष नहीं होवे।

★★★

२८३९. जो 'निश्चय-चारित्र' में आ गये वे तो भगवान हो गये ! केवलज्ञान के बिना 'निश्चय-चारित्र' पूर्ण दशा में नहीं होता।

२८४०. परमात्मा का भान होवे तो समकित है। परमात्मा का अनुभव होवे, तो 'खुद' परमात्मा ही है।

२८४१. एक आत्मा में कितना 'ज्ञान' है ? इस जगत् के सभी जीवों का 'ज्ञान' मिलाके इकट्ठा करें, उतना 'ज्ञान' एक ही आत्मा में निहित है।

२८४२. हम खुद 'अपनी' सत्ता से विमुख रहें, ये कैसी बात ?! 'स्वयं' सर्व सत्ताधीश, बड़े राज्य का मालिक, खुद ही क़ैदी हो बैठा !

२८४३. कुसंग का अध्यास हो गया है, इसी कारण संसार-रोग 'क्रोनिक' हो गया है ! और सत्संग का अध्यास हो जाए तो ?!

२८४४. ''ज्ञानीपुरुष'' के सत्संग में तुम्हारी बुद्धि के सारे दरवाजे बंद हो जाय, धीरे-धीरे सारे खुलासे होते जाएँ, ''ज्ञानीपुरुष'' स्वयं जैसे हैं, वैसा ही हमें कर दें ! ''ज्ञानी'' खुद परमात्मा-स्वरूप हुए हैं, उनके संग में हमारा भी वो ही स्वरूप प्रकट हो जाय।

★★★

२८४५. करोड़ों जनम बीत जाने पर भी मुक्ति नहीं मिल पाती, ये तो ''ज्ञानीपुरुष'' प्रत्यक्ष मिलें तभी काम होवे ! संपूर्ण ''ज्ञानी'' यानी जिन्हें 'वर्ल्ड' में कुछ भी जानना बाक़ी न रहा हो, वे स्वयं परमात्मा से निरंतर बातें करते रहते हों !! ऐसे ''ज्ञानीपुरुष'' जो चाहें, सो करें।

२८४६. शास्त्रों में वर्णित आत्मा नहीं चलेगी, यथार्थ आत्मा की जरुरत होगी ! वो अगम्य है, शास्त्रों में समा नहीं सकती, अवर्णनीय है, अवक्तव्य है। शब्द जहाँ पहुँच नहीं सकते, जहाँ दृष्टि पहुँच नहीं सकती, वहाँ आत्मा है !! वो आत्मा हमेशा निर्लेपभाव से रही है, असंगभाव से रही है।

★★★

२८४७. तुम खुद ही 'जज', तुम खुद ही वकील, और तुम खुद ही आरोपी ! बताओ अब 'जजमेन्ट' कैसा आये ?!

★★★

२८४८. 'सर्वात्मा ये शुद्धात्मा है' ऐसी समझ आयी तब से समझो हमारी परमात्मपद पाने की श्रेणी शुरू हुई !

★★★

२८४९. 'ये ज्ञान तो फलाँ-फलाँ जैसा ही है' ऐसा बोलना ये तो 'ज्ञान' की विराधना हुई कहलाये। 'ज्ञान' तो 'ज्ञान' है और अज्ञान भले कितना ही चमकदार क्यों न हो, फिर भी वो अज्ञान ही है। अज्ञान को 'ज्ञान' कहने से तो 'ज्ञान' की विराधना होती है ।

★★★

२८५०. अज्ञान में रहने से संसार 'चार्ज' होवे। ज्ञान में रहने से संसार 'डिस्चार्ज' होती है।

★★★

२८५१. खानेवाला देह है। खानेवाला जानता नहीं और जाननेवाला खाता नहीं। 'क्रिया करे' ये परतत्त्व और 'जाननेवाला' स्वतत्त्व है। जो 'लूटता है' और जो 'लुटा जाता' है, वे दोनों ही अनात्मा हैं।

★★★

२८५२. गुरु संसार से पार लगाये। ''ज्ञानी'' मोक्ष देवे। ''ज्ञानी'' स्वयं देह के साथ आत्मस्वरूप हुए हैं।

२८५३. किसी को स्पर्श न करे, किसी को बाधारूप न बने, इसी का नाम आत्मा। अज्ञान को भी वो बाधक न बने ! अज्ञान उसके आड़े आए, लेकिन वो अज्ञान के आड़े न आये !! देखो, परमात्मा की ये बात दीये जैसी है न !

२८५४. 'आत्मा' ये ज्ञान नहीं, बल्कि 'विज्ञान-स्वरूप' है। ये जगत् 'विज्ञान' से ही पहचान पाओगे। ज्ञान से जगत् को नहीं जान पाते। ''ज्ञानीपुरुष'' इस 'विज्ञान' को देखकर ही कहते हैं कि-'ये सब स्वाभाविक रूप से है' ! ऐसा यूँ ही नहीं कहते !!

२८५५. 'मैं रसिकभाई हूँ,' ये मिथ्यादर्शन है ! वो चला जाये और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ये अवबोध हृदयंगम हो जाये, वो है सम्यक् दर्शन।

★★★

२८५६. क्रोध-मान-माया-लोभ न होवे उसे 'चारित्र' कहा जाता है ।

★★★

२८५७. जो आँखों से दिखाई दे, उस चारित्र को भगवान 'चारित्र' कहते ही नहीं। 'ज्ञान-दर्शन-चारित्र' ये सब आँखों से दिखाई न दें, ऐसी वस्तुएँ हैं। ये वस्तु इन्द्रियप्रत्यक्ष नहीं ! अतः वो चारित्र तो अनोखा ही होता है।

२८५८. सबके जो चारित्र दिखाई देते हैं वे तो पूर्व जनम के परिणाम हैं, लेकिन अस्तित्व तो अभी किसी अन्य जगह होवे। अस्तित्व सौ पर हो और चारित्र अठ्ठानवें पर होवे ! अस्तित्व इस भव का है और चारित्र गतभव का होवे !!

२८५९. बाह्य तप और त्याग का फल है संसार, इनसे भौतिक सुख प्राप्त हों और उसे धीरे धीरे मोक्षमार्ग की भी प्राप्ति होवे, परंतु आत्मज्ञान के बग़ैर मोक्ष न मिले।

२८६०. ये 'मशीनरी' कैसे चलती है ? क्या आत्मा उसे चलाती है ? नहीं, आत्मा तो केवल प्रकाश ही देती है ! उसीसे ये 'मशीनरी' 'चार्ज' हो जाये और चले।

२८६१. स्थिरता से चारित्र प्रकट होता है और जागृति से दर्शन उन्नत होता है।

२८६२. जितनी जागृति बढ़ती जाय, समझो उतने ही आत्मा के नज़दीक पहुँचे ! जितने नजदीक पहुँचे, उतना अधिक उजियारा, उतना ज्यादा प्रकाश।

२८६३. जब कभी भी हमें दुःख लगे, तो समझना कि पूर्ण जागृति नहीं होने के कारण ये है।

२८६४. संसार के हिताहित का भान होने पर अर्थात् संसार के हर प्रकार के हित व अहित का भान हो जाये, तभी संपूर्ण सांसारिक जागृति हुई समझो। संसार की संपूर्ण जागृति होने के पश्चात् ही आत्मा के हिताहित की जागृति उत्पन्न होवे ।

२८६५. सांसारिक जागृतिवाले को तो संसार में कहीं भी मतभेद नहीं होता ।

२८६६. जो जागृति चैन से बैठने न दे, चैन से खाने न दे, चैन से कुछ भी न करने दे, वो जागृति 'फूलिशनेस' (मूर्खता) है। जिस जागृति से अस्थिर माहौल में भी शांति से बैठ पाएँ, वो ही सही जागृति।

★★★

२८६७. संपूर्ण जागृत दृष्टि से ये जगत् 'व्यवस्थित' है जबकि अजागृत दृष्टि से 'अव्यवस्थित' दिखे।

२८६८. हिताहित का भान किसे कहेंगे ? जिससे मनुष्य एक भी उलझन को अपने साथ न ले जाए।

२८६९. जो ज्ञान 'इमोशनल' कराये वो सांसारिक जागृति है। सच्ची जागृति 'इमोशनल' न कराये।

२८७०. जागृति कहाँ से उत्पन्न हुई ? कड़वाहट में से।

२८७१. जहाँ सारा जगत् सोता है, वहाँ ''ज्ञानी'' जागते हैं और जहाँ ''ज्ञानी'' सोते हैं वहाँ सारा जगत् जागता है।

★★★

२८७२. यदि सारी ज़िंदगी हरेक कार्य को 'फिल्म' की भाँति देखते रहें, तो कोई भी कार्य हमें स्पर्श ना करे।

२८७३. कुछ भी क़ाबू में आनेवाला नहीं। क़ाबू में लेना भी नहीं है, केवल जानते रहना है! 'हम' तो बस ज्ञाता-दृष्टा, परमानंदी!!

२८७४. 'जानते रहना' ये हमारा स्वभाव है; 'बिगड़ते रहना' ये पुद्गल का स्वभाव है।

२८७५. क्रियामात्र पुद्गल की है, वो तो प्रकृति की है, और वो 'हमारी' सत्ता में नहीं।

२८७६. प्रति क्षण जगत् बदलता रहता है। आत्मा स्थिर है और अस्थिर को देखना है, स्थिर में क्या देखोगे ?। अस्थिर को ही देखने में मज़ा है! एक के बाद एक देखते ही रहना है।

२८७७. भगवान ने क्रमिक ज्ञान बताया है, वैसे ही ये 'अक्रम विज्ञान' है – हालाँकि 'ज्ञान' तो वही है। क्रमिक 'ज्ञान' इस काल की वजह से नहीं चल पाता, अतः इस काल में 'अक्रम विज्ञान' कुदरती रूप से प्रकाश में आया है।

२८७८. पुद्गल को ही जो जाने और समझे, इसी का नाम ज्ञाता!

२८७९. जाननेवाला एक ही है, जानने की वस्तुएँ अनंत हैं।

२८८०. 'मैं करता हूँ,' और 'मैं जानता हूँ' इसके 'मिक्स्चर' का नाम ज्ञेय और 'मैं जानता हूँ' और 'करता नहीं' इसका नाम ज्ञायकभाव!

२८८१. जहाँ कर्तापद चला जाये, वो 'विज्ञान' कहलाये।

२८८२. शुद्धात्मा का ज्ञायकस्वभाव है ! इस स्वभाव का फल क्या ? परमानंद।

२८८३. ज्ञेय और ज्ञाता एकाकार ना होवे, इसी का नाम 'ज्ञान' !

२८८४. 'सब कुछ ठीक है', इस ज्ञान को जाना, ये है 'वीतरागों' का चरम 'ज्ञान' !

२८८५. अज्ञान का प्रभाव यहाँ-वहाँ प्रतिबद्ध हो जाये जबकि 'ज्ञान' का स्वभाव है अप्रतिबद्धता।

२८८६. जो प्रश्नों का उठना बंद करे, उसीका नाम 'विज्ञान' !

★★★

२८८७. ज्ञेय को ज्ञाता मानते रहें, तब तक रहे ये संसार !

★★★

२८८८. किसी भी परिस्थिति में माया उलझन पैदा न कर सके – उसीका नाम है 'वीतरागी विज्ञान' !

★★★

२८८९. 'वीतरागों' का मत निरंतर परमानंद की प्राप्ति करानेवाला है ! उनका मत लोगों के पास है, परंतु सर्वांश नहीं। सर्वांश तो ''ज्ञानी'' के पास होता है !

२८९०. 'वीतरागों का ज्ञान' तो निर्भय ज्ञान है! यदि ''ज्ञानीपुरुष'' मिल जायें तो वो 'ज्ञान' मिले।

२८९१. बाह्य विज्ञान 'अबॉव नॉर्मल' हो जाय तो वो 'पॉइज़न' है, इसमें नॉर्मालिटी रखनी है, जबकि आंतरविज्ञान को आख़िरी छोर तक पहुँचाना है। जिस विज्ञान से लोगों के सुख बढ़ें, दु:ख कम होवें – वो ही सच्चा विज्ञान!

२८९२. ऊपर से 'एटमबॉम्ब' गिरे, फिर भी कोई असर न होवे! 'एटमबॉम्ब' गिरा तो ए. एम. पटेल पर ही गिरेगा, 'मुझ' पर वो थोड़े ही गिरनेवाला ?! ऐसा हमारा ये 'विज्ञान' है, 'अक्रम विज्ञान' है!!

२८९३. विज्ञान दो प्रकार के: एक, बाह्य विज्ञान यानी भौतिक विज्ञान। दूसरा, आंतरिक विज्ञान यानी आत्मा संबंधी 'विज्ञान'! आत्मा, अनात्मा, ये सब हक़ीक़त में क्या है? पुद्गल क्या है? सब कुछ 'विज्ञान' से जाने, अनुभव से जाने; शास्त्रों के शब्दों से नहीं, स्वयं देखा-जाना-बात किया हुआ, उसीका नाम है अनुभवज्ञान। यह तो 'आंतरिक विज्ञान' कहलाये! बाह्य विज्ञान विनाश कराये जबकि आंतरविज्ञान मोक्ष ले जाये।

२८९४. 'दृश्य' और 'दृष्टा' दोनों हमेशा अलग ही होते हैं। 'दृश्य' कभी 'दृष्टा' से ना चिपक जाये। होलीका-दहन देखनेमात्र से हमारी आँखे नहीं जलती! अत: देखने से जगत् बाधा रूप नहीं होता, बल्कि देखने से तो आनंद होता है।

२८९५. 'देखना और जानना' ये दोनों चेतन के गुण हैं और 'करना' ये पुद्गल के गुण हैं। जो करे वो जाने नहीं और जो जाने वो करे नहीं। 'कर्ताभाव' और 'दृष्टाभाव' दोनों अलग हैं।

२८९६. जो स्वयं ज्ञाता-दृष्टा पद में निरंतर रहता हो - वो ही "ज्ञानी"!

★★★

२८९७. ज्ञेयों में जब तन्मयाकार हो, तब वो 'ब्रह्मांड के अंदर' कहा जाये और ज्ञेयों को ज्ञेयरूप देखे, तब 'ब्रह्मांड के बाहर' कहलाये।

★★★

२८९८. एक वस्तु के तीनों काल का ज्ञान, तीनों काल में उसकी क्या स्थिति होगी ये ज्ञान, इसे 'त्रिकालज्ञान' कहा गया है। 'माचीस', ये पहले माटी से पेड़, पेड़ से कटकर तीली और उसके बाद जो कुछ होवे और पुनः माटी हो जाने तक के सारे पर्याय को जानना, उसे 'त्रिकालज्ञान' कहा गया है।

★★★

२८९९. त्रिकालज्ञान सिर्फ़ 'सर्वज्ञ' को ही होवे।

★★★

२९००. बीस साल के बाद का ज्ञान यदि आज दिखाई दे तो फिर वो वर्तमानकाल ही हो गया, फिर वो भविष्यकाल रहा ही नहीं न! 'भविष्य का दिखना' ये ज्ञान नहीं, अपितु सूझ है।

★★★

२९०१. जब दृष्टि दृष्टा की ओर मुड़े, और 'ज्ञान' ज्ञाता की ओर मुड़ जाये, तब साक्षात्कार होवे।

२९०२. कड़वा या मीठा पीना नहीं है, अपितु मात्र दृष्टि को ही मोड़ना है, दृष्टि दृष्टा की ओर मुड़े, तो समझो काम हो गया!

२९०३. हर बाबत में 'नॉर्मालिटी', उसे ही ''ज्ञानी'' 'एक्ज़ेक्टनेस' कहते हैं।

२९०४. 'एक्ज़ेक्टनेस' यानी संपूर्ण जागृति!

२९०५. भौतिक को जानना ये 'एलर्टनेस' कहलाये और इस संसार में 'रियल' क्या और 'रिलेटिव' क्या, इन सबको जानना – ये है 'एक्ज़ेक्टनेस'!

२९०६. 'एक्ज़ेक्टनेस' में आना है! इसमें 'रियल' भी सही है तथा 'रिलेटिव' भी सही है। 'रिलेटिव' ज्ञेयस्वरूप है और 'रियल' ज्ञातास्वरूप है। 'ज्ञेय-ज्ञाता' संबंध हुआ – ये ही 'एक्ज़ेक्टनेस'। 'एक्ज़ेक्टनेस' में तो जीते जी ही मोक्ष का अनुभव होवे ।

★★★

२९०७. 'कोई हार पहनाये' या 'गाली दे'–'एक्ज़ेक्टनेस' में तो दोनों ही ज्ञेय हैं, अतः उसे कोई फ़र्क़ ना पड़े।

★★★

२९०८. कोई गाली देवे ये तो हमारे ही कर्मों का उदय है, सामनेवाला तो निमित्त मात्र है।

२९०९. हर एक कर्म अपनी निर्जरा का निमित्त लेकर आता है, किस-किस के निमित्त से निर्जरा होगी, ये निश्चित ही होता है।

२९१०. कर्म किससे बँधे ? शुभ-अशुभ भाव से। और शुद्ध भाव से मुक्ति, मोक्ष।

२९११. कर्ता-भोक्ता में कर्म बँधे, लेकिन ज्ञाता-दृष्टा में कर्म न बँधे।

२९१२. जब तक अहंकार है वहाँ तक कर्म है। अहंकार विलय हो जाए, फिर कर्म बँधना रुक जाये।

२९१३. हर कोई यश और अपयश लेकर आया है।

२९१४. 'दादा' को इतना सारा यश क्यों मिलता है ? वे कहते हैं कि मैं कुछ भी न करूँ फिर भी लोग आकर मुझे कहेंगे -'दादा, आपकी वजह से ही मेरा ये सारा काम हुआ !' मेरे ना कहने पर भी वे मुझे यश देवें। ये यशनाम कर्म क्या है ? ये तो भावना का फल है। भावना क्या थी ? यही कि इस जगत् में किसी का कुछ न कुछ काम करें, किसी को उपयोगी हों, 'ऑब्लाइज' (उपकार) करें। यदि पैसे न हो तो खुद जाकर उसका कोई काम कर दें। बस ये ही हमारी भावना थी !

२९१५. जगत् कल्याण की भावना में से ही 'यशनाम कर्म' उत्पन्न होता है और जगत् को परेशान करने से तो 'अपयशनाम कर्म' बँधता है।

२९१६. सत्ता का सदुपयोग, इसीका नाम करूणा और सत्ता का दुरुपयोग ये 'राक्षसी वृत्ति' कहलाये ।

२९१७. किसी भी ज्ञान का सदुपयोग होवे तो वह ज्ञान ही 'विज्ञान' हो जाये और यदि दुरुपयोग हो तो ये ज्ञान, अज्ञान होकर रह जाये।

२९१८. जब परवशता बिल्कुल ना रहे और सारे ब्रह्मांड का मालिकीपन महसूस हो, तब संपूर्ण सत्ताधीश हो जायें, भगवान हो जायें !

२९१९. स्वसत्ता में एक 'समय' भी आ गये तो समझो 'समयसार' हो गया !

२९२०. स्वसत्ता किसमें है ? यदि कोई भूल होती है, उस समय जो जागृति रहती है और सचेत करती है – वो स्वसत्ता है। परसत्ता में कहीं भी दाख़िल ना हो, वहाँ स्वसत्ता होती है।

★★★

२९२१. परसत्ता को अपनी सत्ता मानना, इसीका नाम ही भ्रांति ! ये अन्य की सत्ता है, ऐसा जब समझने लगोगे तबसे भ्रांति कुछ हटेगी।

★★★

२९२२. किंचित्मात्र खुदपना रखने की ज़रूरत नहीं है। 'खुद' तो है ही न ! ये 'अस्तित्व लगता है', ये ही भ्रांति है।

२९२३. दादाश्री कहते हैं, ''मैंने 'स्वयं में' रहे 'मेरेपन' को छोड़ दिया, इसलिए 'ये' 'पब्लिक ट्रस्ट' हो गया ! हमारे द्वारा तुम्हें जो मिलता है, उसे तुम्हें अपना ही समझना है। 'ज्ञान' तो तुम्हारे अंदर भरा पड़ा है। हमारे निमित्त से वो उजागर होता है !''

२९२४. खुदके लिए जो अपनी शक्तियाँ उपयोग न करे, उसमें अनंत शक्तियाँ होती हैं !

२९२५. जिन्हें अहंकार व ममता नहीं होवे, वे तो कुदरत जैसे रखे वैसे रहें, उसमें उनका खुदपना नहीं होवे।

★★★

२९२६. अगर तुम बेकसूर हो तो इस जगत् में कोई तुम्हारा कुछ बिगाड़नेवाला नहीं ! 'एक्सीडन्ट' में सौ लोग मारे जायेंगे लेकिन यदि तुम बेकसूर हो तो बच जाओगे, ऐसा 'एक्ज़ेक्ट' है ये 'व्यवस्थित'।

★★★

२९२७. 'व्यवस्थित' का नियम ऐसा है कि जो मनुष्य विचार न करे, उसका 'एक्ज़ेक्ट' चले और जो सोचा करे उसका ज़रा इधर-उधर हो जाये। भीतर परमात्मा बैठे हैं, अतः सब कुछ मिलता ही रहेगा !

★★★

२९२८. जो स्थूल है वो 'व्यवस्थित' के अधीन है और 'एक्ज़ेक्ट' है; और जो सूक्ष्म है उसे मनुष्य खुद ही गढ़ता है।

२९२९. ये 'व्यवस्थित शक्ति काम करती है, मैं नहीं कर रहा था, मेरी ही भ्रांति थी', ये बात अहंकार को खुद को भी अक्सर समझ में आती है। शौच के लिए गये हुए लोगों को भी वैसे ही वापस लौटते हुए तुमने भी देखा होगा न !!

★★★

२९३०. खुद यदि 'अकर्ता' होवे तो 'व्यवस्थित' कर्ता है, ये बात समझ में आती है, तभी जगत् यथातथ समझ में आता है। जब तक 'व्यवस्थित' समझ में नहीं आता, तब तक संकल्प-विकल्प नहीं जाता, भय नहीं जाता, क्रोध-मान-माया-लोभ ये भी नहीं जाते।

२९३१. कोई अशुभ का कर्ता, शुभ का कर्ता बन सके, किन्तु कर्ताभाव नहीं छूट पाये।

२९३२. यदि 'व्यवस्थित' 'एक्ज़ेक्ट' पूरा समझ में आ जाय, तो तुम स्वयं पूर्ण परमात्मा ही हो जाओ ! जैसे जैसे 'व्यवस्थित' समझ में आये वैसे वैसे मनुष्य का परमात्मपन उजागर होने लगे !!

★★★

२९३३. कुदरत करती रहे और तुम 'जानते रहो' ये ही मोक्षमार्ग है।

★★★

२९३४. कुदरत ने हाथ काटा तो काटनेवाली कुदरत और जो कटा वो 'हम' नहीं !! ये सब 'तुम जानते रहो', ये 'ज्ञान'; जहाँ तक ये लगे कि 'हम भुगत रहे हैं' वहाँ तक समझो पूर्ण आत्मज्ञान नहीं !

२९३५. निरुपाय पद के आगे 'व्यवस्थित' खड़ा है।

२९३६. 'व्यवस्थित' का अर्थ ही ये है कि प्रकृति के कार्य में व बाहर के 'एविडन्स' में हस्तक्षेप नहीं किया जाए। हाथ ऊपर उठे, पैर इधर-उधर हों और भीतर से कहे कि 'चलो अब', तो चलने लगे। इनमें कुछ हस्तक्षेप नहीं करना, बस, ज्ञाता-द्रष्टा बने रहना।

२९३७. शुद्धात्मा के अलावा जो बचे, वो भाग है प्रकृति ! प्रकृति और बाह्य संयोग सारे इकट्ठे मिलकर जो कार्य करें, वो है 'व्यवस्थित' !!

२९३८. भगवान के निमित्त से प्रकृति खड़ी होती है, और प्रकृति से 'सायन्स' खड़ा होता है। प्रकृति पूरण-गलन स्वभाव की है, जबकि आत्मा पूरण-गलन स्वभाव की नहीं।

२९३९. प्रकृति अर्थात् जो आत्मा के अज्ञानभाव से खड़ी होती है! 'मैं रतुभाई हूँ', ये आरोपितभाव, ये ही प्रकृति !!

★★★

२९४०. हम पुरुष हैं ! शुद्धात्मा के रूप में स्ववश हैं, और प्रकृति-रूप में परवश हैं !! प्रकृति व 'रेग्यूलेटर ऑफ दि वर्ल्ड' के कारण ये सब चल रहा है।

२९४१. प्रकृति-स्वभाव का एक भी गुण जो 'स्वयं का' न माने, 'स्वयं के' सारे गुण जाने, वो है ''ज्ञानी'' ! प्रकृति-स्वभाव का एक गुण भी 'स्वयं का' मान ले, तो संसार में फँस जाय।

२९४२. ये आत्मा है और वो प्राकृत है, ये भेद समझना है। प्राकृत को अपना मानने से अंदर 'सफोकेशन' होवे। अत: ''ज्ञानी'' ये समझाये, कि 'ये प्राकृत तुम्हारा नहीं है', फिर वो उसे छोड़ दे!

२९४३. प्रकृति-स्वभाव भले ही उल्टा करे, मगर तुम अंदर सीधा करना।

२९४४. प्रकृति-स्वभाव नहीं भी सुधरे तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु तुम अपने 'अंदर' तो सुधार लो न! फिर 'रिस्पॉन्सिबिलिटी' नहीं रहती। बस, ''ज्ञानी'' इतना ही 'सायन्स' समझाना चाहते हैं।

२९४५. प्रकृति-स्वभाव के साथ अगर तादात्म्य हो जाय, तो हमें तुरंत कहना है कि-'ये ऐसा नहीं होना चाहिए'। तो फिर 'हम' ज़िम्मेदारी से मुक्त हुए।

★★★

२९४६. इस पुद्गल को शुद्ध करने की 'हमें' कोई ज़रूरत नहीं। पुद्गल तो अपने आप शुद्ध होता ही रहता है। यदि 'हम' 'अपनी' जो शुद्ध दशा है, उसमें अशुद्धि न मान लें, तो फिर पुद्गल तो शुद्ध होनेवाला ही है।

★★★

२९४७. पुद्गल के साथ अगर कोई दख़ल-अंदाजी न हो, तो वो तो शुद्ध होता ही रहता है। हस्तक्षेप करने से तो गड़बड़ हो जाती है! दख़ल-अंदाजी करनेवाला कौन ? अज्ञान मान्यताएँ, एतराज करना और नाराज़गी।

२९४८. एतराज करना और नाराज़गी, ये संसार में उलझाए रखनेवाली चीज़ें हैं, चाहे फिर वो एतराज किसी भी बात का क्यों ना हो। सत्य से एतराज करें तो भी नाराजगी का सामना करना पड़े, और असत्य से एतराज करें तो भी नाराज़गी का सामना करना पड़े, क्योंकि सत्य-असत्य जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। दोनों ही विनाशी हैं। केवल एक 'सत्' ही अविनाशी है।

२९४९. संयोगों के अनुसार प्रकृति बँधे और प्रकृति के अनुसार संसार चले। इसमें किसका दोष देखें ?!

२९५०. प्रकृति यानी 'स्वयं के' 'स्वभाव' की अजागृति और भ्रांति !

२९५१. प्रकृति तो सहज है लेकिन बुद्धि दख़ल देती है ! प्रकृति को पंखे की हवा न सुहाये तो इसमें पंखे का क्या दोष ? प्रकृति का क्या दोष ? 'दोष दिखना' ये तो बुद्धि के अधीन है, आत्मा के अधीन नहीं।

★★★

२९५२. सहजभाव से व्यक्त होती प्रकृति सहज है। किसी अन्य को नुक़सान करे या किसी जीव को दु:ख पहुँचाये, उतनी ही प्रकृति मोक्ष के लिए बाधक है। अन्यथा चाहे कैसी भी प्रकृति हो; देर से उठना, जल्दी उठना, अमुक कार्य हो सके, अमुक न भी हो सके, ये सब प्रकृति मोक्ष के लिए बाधक नहीं।

★★★

२९५३. शुद्धात्मा तो शुद्धात्मा ही है, वीतराग है, लेकिन प्रकृति राग-द्वेष युक्त है, उसे वीतराग होना है। प्रकृति वीतराग होने के लिए शुद्धात्मा का 'ज्ञान' होना चाहिए।

२९५४. खुद शुद्धात्मा होवे तो स्पंदन होने बंद हो जायें, स्पंदन बंद हों तो धीरे धीरे प्रकृति सहजता में आती जाए! दोनों सहजता में आ जायें – इसका नाम वीतराग!

★★★

२९५५. प्रकृति से बाहर निकलना बहुत मुश्किल है। प्रकृति के बाहर कोई भी निकल नहीं पाता। जो प्रकृति के बाहर निकले उसकी वाणी अनोखी होती है! वो स्वतंत्र हुआ हो और उसकी निर्भीकता दिखे, वो दुनिया के मालिक की भाँति घूमे!! बाक़ी सब तो भगत। भगत और भगवान दोनों अलग। इस प्रकृति के पार जो गया, वो खुद ही भगवान हो गया!

★★★

२९५६. करता है कोई अन्य, लेकिन हम कहें कि 'मैं करता हूँ', ये है अहंकार! 'कौन करता है' ये जाने, तो वो है भगवान!!

★★★

२९५७. भगवान तो अक्रिय हैं, वीतराग हैं। भगवान को 'सक्रिय' कहना, ये भूल है।

★★★

२९५८. 'वीतरागों' की तो केवल बात ही 'समझनी' है, और कुछ 'करना' ही नहीं है। कुछ 'करना' पड़े वहाँ मोक्ष नहीं, और जहाँ मोक्ष है वहाँ कुछ 'करना' ही नहीं है! मात्र इतना ही समझ लो।

★★★

२९५९. जहाँ कोई भी क्रिया है वहाँ कर्मबँध है! चाहे फिर वो पुण्य का हो या पाप का, लेकिन कर्मबँध तो है ही; और 'जानना' ये मुक्ति है। 'विज्ञान' जानने से मुक्ति होती है।

★★★

२९६०. क्रिया भले ही एक समान हो, लेकिन 'कौन करता है?' कोई ये आरोपित भाव से करे, तो संसार खड़ा हो जाए और स्वाभाविक भाव से करे, तो फिर कुछ लेना-देना नहीं।

२९६१. जगत् के लोग क्रिया करते हैं, लेकिन उसके परिणाम का अवबोध नहीं होने के कारण सोये रहते हैं। हरेक क्रिया के परिणाम का लक्ष (अवबोध) रहे उसीका नाम जागृति! जो जितना जागा उतने कार्य घट जायें।

★★★

२९६२. मोक्ष में जाने हेतु किसी क्रिया की ज़रूरत नहीं है, परंतु उदय में आयी हुई क्रियाएँ आत्मस्वभाव में रहकर की जाए!

★★★

२९६३. तुम आत्मा हो और तुम्हें केवल 'देखना-जानना' ही है, इसके बजाय तुम 'करने' में भी लग गये!

★★★

२९६४. 'ज्ञान' में तो क्या कहा गया है? तुम 'एक्ज़ेक्ट' समझो और जानो। पहले समझो, फिर जानो, अतः क्रिया अपने आप हो जाएगी। आचरण में लाने को नहीं कहा है।

★★★

२९६५. हमारा 'ज्ञान' क्या कहता है? कि 'तमाकू पीना' आत्महितकारी नहीं है, इस ज्ञान को जानने की ज़रूरत है। इस ज्ञान पर से श्रद्धा कभी भी विचलित नहीं होनी चाहिए! क्रियाएँ, बाद में जो भी होवे, ये ध्यान में नहीं लिया जाता, ज्ञान ही जानने की ज़रूरत है।

★★★

२९६६. 'ज्ञान' में कुछ 'करना' नहीं होता, बुद्धि में तो 'करना' होता है।

२९६७. किसी भी सांसारिक क्रिया में बुद्धि का ही उपयोग होता है, जबकि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ये ज्ञान-उपयोग है।

२९६८. बुद्धि के उपयोग से जो पूरी तरह 'इफेक्टिव' हो गया हो, वह 'ज्ञान' द्वारा 'इनइफेक्टिव' हो जाता है।

२९६९. जब बुद्धि का बिल्कुल उपयोग नहीं होगा, अहंकार निर्मूल होगा, तब संपूर्ण केवलज्ञान दिखता रहेगा। "ज्ञानी" को बुद्धि का उपयोग नहीं होता, वे 'अबुध' होते हैं।

२९७०. अबुध हुए बिना केवलज्ञान उत्पन्न होता ही नहीं!

२९७१. 'इमोशनल'पन (भावुकता) चला जाए, इसका नाम 'अबुध'। 'इमोशनल' करा दे ऐसे माहौल में भी जो 'इमोशनल' न हो, उसीका नाम अबुध।

२९७२. 'मैं अबुध हूँ', ऐसा भान होवे, ये सबसे बड़ा 'ज्ञान' कहलाये।

२९७३. 'बुद्धि पर वैराग्य' ये तो भारी शब्द हैं! बुद्धि के प्रति अरुचि हुआ करे उसके बाद बुद्धि पर वैराग्य उपजे। बुद्धि पर वैराग्य आये उसके पश्चात् ही अबुध हुआ जाता है।

★★★

२९७४. यदि संसारमार्ग में 'डेवलप' होना है, तो बुद्धिमार्ग में जाओ, और मोक्षमार्ग पर जाना हो, तो अबुधमार्ग में जाओ।

२९७५. जो विपरीत बुद्धि थी वो "ज्ञानी" के सत्संग में बैठने से सम्यक् बुद्धि हो जाती है ! वो सम्यक् बुद्धि मोक्ष तक ले जाये, और आख़िरी छोर तक 'हेल्प' करे !!

२९७६. जब भेदबुद्धि जाएगी तब परमात्मा सामने से आ मिलेंगे।

२९७७. 'मैं-तू' के भेद के कारण मनुष्य कर्म बाँधते हैं।

२९७८. 'मैं अलग और आत्मा अलग', इस प्रकार कभी भी मेल नहीं बैठेगा। 'मैं ही आत्मा हूँ' जब ऐसा भान होवे, तभी मेल बैठे।

२९७९. जगत् जब बुद्धि का प्रचार छोड़कर 'हार्ट' पर आयेगा और 'हार्टिली' होगा, तब पुनः सब कुछ सरल हो जाएगा।

★★★

२९८०. "ज्ञानी" की बात समझना बहुत कठिन है, इस 'वस्तु' को लोग पहचान नहीं सकते। बुद्धिमान तो बुद्धि से नापते रहते हैं। लेकिन बुद्धि से नापी-तोली जा सके, ऐसी 'ये' वस्तु नहीं।

२९८१. इन 'वीतरागों' के 'सायन्स' में बुद्धि का उपयोग मत करना, वरना मार झेलनी पड़ेगी। सांसारिक तराजू से उसे तौल नहीं सकते। 'वीतरागों' के मार्ग में तो 'दर्शन' का उपयोग करना होता है। उन्होंने जो देखा वो ही सही मानो, और तुम्हें तो जब कभी दिखाई देगा तब ठीक! अगर अभी न दिखे तो भी उनकी बात को यूँ ही एक तरफ सँभाल के रख देना, परंतु बुद्धि का उपयोग मत करना।

२९८२. इसी काल में ये बात निकली कि बुद्धि हितकारी नहीं। सभी काल में 'बुद्धि हितकारी है' ऐसा कहते थे, क्योंकि और सब काल में सम्यक्बुद्धि ही रहती थी। अकेला यही काल ऐसा आया है कि जहाँ बुद्धि विपरीत हो गई! अतः 'दादा अबुध हैं' ऐसा वे कहते हैं।

२९८३. मन के इन सब रोगों के कारण ही संसार खड़ा रहा है! मन में रोग हो, उसके बाद तन में रोग आये, फिर वाणी में आये। मोक्ष में जाते समय सभी रोगों से मुक्त होना होगा। हमारा 'अक्रम विज्ञान' मन के रोगों को मिटा दे ऐसा है।

२९८४. निरोगी मन यानी क्या? मन को कहीं भी कोई तकलीफ़ ही न लगे। कोई फीका खाना परोसे या खट्टा परोसे, परंतु मन को असर न होवे! रोगी मन अर्थात् खट्टे का रोग पैठा हो, तो खट्टा ही चाहिए।

★★★

२९८५. अज्ञानता में जो रोग हो गया हो उसे अब क्या करें? 'अक्रम विज्ञान' का नया ही आविष्कार है–जिससे कि नया रोग उत्पन्न न होवे, पुराने रोग को धीरे धीरे निकाल दे और निरोगी अवस्था प्राप्त कराये, और फिर जितनी निरोगीता प्राप्त हुई हो उसका रक्षण भी करे!

२९८६. यद्यपि भगवान महावीर 'समयविचारी' कहलाते हैं, फिर भी वे तदाकार नहीं होते थे ! विचार तो 'समय-समय' पर बदलते ही रहते हैं। लोग तो दस-दस, पंद्रह-पंद्रह 'मिनट' तक एक ही विचार में खोये रहते हैं। कई तो पूरे घंटे तक खोये रहते हैं। एक घंटे में तो नयी दुनिया रच जाये !! लेकिन मनुष्य अपने पसंदीदा विषय में तल्लीन रहता है !

★★★

२९८७. मन की इच्छा के अनुसार खीर मिल गई तो मन मर गया, परंतु खीर खाते हुए ऐसी तृष्णा खड़ी होवे कि 'ऐसी खीर फिर कभी मिले तो अच्छा', इसीसे मन फिर से जिंदा हो जाये।

★★★

२९८८. किसीसे हमारे विचारों का मेल होना ये बड़ा जोखिम है। विचारों का मेल खाना ये ज़रूरी नहीं, बल्कि समझ होनी चाहिए। विचार मोक्ष नहीं ले जाते, बल्कि समझ मोक्ष ले जाये।

★★★

२९८९. ''ज्ञानी'' यदि सोच-सोचकर जवाब देते हों, तो कोई सुने ही नहीं। ये कोई सोचकर दिए हुए जवाब नहीं, ये तो 'बिना-मिलावट जवाब' कहलाए, 'ज्ञान-जवाब' कहलाए । 'विचार' तो पुद्‌गल है, ''ज्ञानी'' में वो तदाकार रूप से नहीं होता।''ज्ञानी'' तो 'केवलज्ञान' में देखकर ही जवाब देते हैं।

★★★

२९९०. ये जगत् भयभीत होने जैसा है ही नहीं। 'हम' तो 'शुद्धात्मा' हैं, और 'व्यवस्थित शक्ति' काम करती रहेगी। मन तो ''ज्ञानी'' को भी कहे कि-'आगे गाड़ी टकरा गई तो ?' तब हम उसे कहेंगे कि-'तुमने जो कहा वो हमने नोट किया, अब दूसरी बात करो'। अतः वो फिर दूसरी बात करे ! मन ऐसा नहीं है कि वो बीती बात को पकड़े रखे। हमें तन्मयाकार नहीं होना है। तन्मयाकार होने के कारण ही तो जगत् खड़ा हुआ है। 'मन', ये तो 'डिस्चार्ज' भाव हैं, अगर हम उस 'डिस्चार्ज' भाव में तन्मयाकार हो जाएँ तो 'चार्जभाव' उत्पन्न होवे।

२९९१. ‘ब्रह्मांड के अंदर और ब्रह्मांड के बाहर से देखना’ इसका मतलब क्या ? मन में विचार आया और उसमें तन्मयाकार हुए तो तुम ब्रह्मांड में हो । मन में विचार आया और तन्मयाकार नहीं हुए तो ‘ब्रह्मांड के बाहर’ हो, ये कहा जाये।

★★★

२९९२. चित्त ये ‘मिकेनिकल चेतन’ है। मन ये ‘मिकेनिकल चेतन’ नहीं, अपितु वो ‘डिस्चार्ज’ हो रहा होता है।

★★★

२९९३. जगत्कल्याण में मन पीरो देवें, तो वो ठिकाने पर रहे। चित्त को ठिकाने पर रखने के लिए ‘‘ज्ञानीपुरुष’’ की कृपा प्राप्त करनी पड़े।

★★★

२९९४. सारे शरीर में सबसे बड़ी वस्तु चित्त है, मन से कोई परेशानी नहीं है ! ‘‘ज्ञानी’’ का चित्त उनके वश में रहता है , भले ही मन उछलकूद करता रहे।

★★★

२९९५. चित्त मोड़ने से मुड़ जाये ऐसा नहीं है, इसीलिए योगी चित्त को चक्रों पर स्थिर करते रहते हैं। ये मन की साधना नहीं, अपितु चित्त की साधना है।

★★★

२९९६. मन तो ‘कम्पलीट फिज़िकल’ है, जिसमें ज़रा भी चेतन नहीं ! मन के साथ आत्मा तन्मयाकार होवे तो ही असर हो जाये।

२९९७. मन में बुरे विचार आयें तभी सही मायने में ऊँची दशा होवे, क्योंकि जब बुरे विचार आयें तभी 'स्वयं' उससे अलग रह पाता है, अन्यथा अलग रह पाना सरल नहीं। लेकिन ऐसा 'स्कोप' मिले तब तो लोग उब जाते हैं कि ऐसे विचार क्यों आते हैं ? ''ज्ञानी'' को यदि बुरे विचार आयें तो वे उसकी 'वेल्यू' ही नहीं करते। ''ज्ञानी'' तो केवल चित्त पर ही ध्यान देते हैं कि अभी भी वो बुरी जगह पर क्यों जाता है !

२९९८. मन में जब अच्छे विचार आते हैं, तब अज्ञानता के कारण लोग तन्मयाकार हो जाते हैं, जब कि बुरे विचार आयें तब अलग रहें, अतः मन 'हमसे' अलग है – ये समझ में आये।

२९९९. चित्त का काम ही भटकते रहना है। चित्त की सवारी करना आ जाये तो काम हो गया समझो, और यदि उसे मोड़ना आये तो वो मुड़ के लौट भी सकता है ! फिर उसे डाकोर के मंदिर ले जाकर दर्शन करवायें तो वो ये भी कर ले ! चित्त एकाग्र हो गया, तो समझो सब काम हो गया। ''ज्ञानी'' का चित्त तो निरंतर एकाग्र ही रहे, ज़रा भी इधर-उधर नहीं होता।

३०००. चित्त की एकाग्रता तो मन की उछलकूद के दौरान भी रह सकती है। कईं लोगों को मन की स्थिरता होती है, लेकिन चित्त की एकाग्रता नहीं होती ! 'अक्रम विज्ञान' में तो कोई अनोखी चित्त की एकाग्रता हो जाये ! चित्त की एकाग्रता सही मायने में कब होवे ? जब मनुष्य को बुरे विचार आये तब। क्योंकि तब वो 'स्वयं' सारे जगत् से अलग हो जाये, कारण खराब विचार वो खुद सहन नहीं कर पाता !

३००१. संसार के बाहर चित्त रहे, असंसारी दशा में चित्त रहे, इसीलिए ये सारे धर्म हैं ! अतः मूर्ति में चित्त रखते हैं, चक्रों पर चित्त रखते हैं, लेकिन एक ही स्थान पर उसका रहना मुश्किल है। लोग मूर्ति में चित्त रखते हैं, किन्तु भगवान में चित्त नहीं रह पाता, हालाँकि उतने समय तक संसार में चित्त नहीं रहने से संसार फीका पड़े। लेकिन अक्रम विज्ञान में तो चित्त भगवान में ही रहता है !

★★★

३००२. जब तक आत्मा का भान नहीं हुआ, तब तक 'वीतराग मूर्ति' की आराधना करो। मूर्ति तुम्हें समकित तक ले जाएगी, क्योंकि उसके पीछे शासन देव-देवियाँ हैं।

★★★

३००३. व्यवहार के देव 'मूर्तस्वरूप' में हैं, और निश्चय के देव 'अमूर्तस्वरूप' में हैं।

★★★

३००४. मूर्ति क्यों रखी गयी है ? उसके पीछे कौन सी भावना है ? 'साहब, आप तो सनातन सुखवाले हैं और मैं तो टेम्परारी सुखवाला हूँ। मुझे भी सनातन सुख की इच्छा है।' भगवान सनातन सुखवाले हैं, इसीलिए तो देखिये न, वे प्रतिमा में हैं फिर भी वे हम से तो ज़्यादा रूपवान दिखते हैं ! ऐसे कि बस, देखते ही रहें।

★★★

३००५. हम भगवान की मूर्ति के दर्शन करते हैं, तब मूर्ति क्या करती है ? 'भाई, ये माल मेरा नहीं, ये माल तो तुम्हारी ही शुद्धात्मा का है', अतः मूर्ति हमारी शुद्धात्मा को ये वापस लौटा देती है ! इसे 'परोक्षभक्ति' कहते हैं।

३००६. परोक्ष भक्ति यानी क्या ? मनुष्य जिनकी भक्ति करता है, हक़ीक़त में उनकी भक्ति नहीं करता, अपितु अपनी ही आत्मा की भक्ति करता है। यदि ये मूर्तियाँ और मंदिर नहीं होते, तो हिंदुस्तान के लोगों को भगवान याद आते ही नहीं!

★★★

३००७. खुदाई चमत्कार तो ऐसा कर दे कि सामनेवाला हमें गाली देना चाहता हो, घर से ये तय करके निकला हो, फिर भी वह बोल नहीं पाये!

३००८. जो चमत्कार करना न चाहे, वहीं बहुत चमत्कार होते हैं।

३००९. कई लोगों को ध्यान लगने पर सूर्य-तेज के समान उजाला ही उजाला दिखे, ये क्या है ? ये चित्तचमत्कार है। चित्त की एकाग्रता होने पर यह सब होवे!

★★★

३०१०. अशुद्ध चित्त कब तक ? जब तक उसे लालच है कि 'इसमें सुख है, उसमें सुख है!' जब वो अपने घर का सुख देखे, फिर वो बाहर ना निकले!!

★★★

३०११. चित्त की अशुद्धि के कारण यह जगत् खड़ा हुआ है। चित्तशुद्धि हो जाये, तो समझो काम बन गया! अपनी दृष्टि संसार-अभिमुख है, जिसे 'सापेक्ष दृष्टि' कहते हैं, इसीके कारण चित्त की अशुद्धि है। निरपेक्ष दृष्टि होने पर चित्तशुद्धि हो जाये।

★★★

३०१२. बुद्धि है तब तक संसार है और बुद्धि चली जाये तो संसार ख़लास हो जाये। बुद्धि है तब तक चंचलता है और चंचलता गई तो हो गये भगवान!

३०१३. बुद्धि के कारण अहंकार खड़ा है, अहंकार को लेकर संसार खड़ा है। जब अहंकार व बुद्धि दोनों का इस्तेमाल नहीं होगा तब होगा मुक्ति का मार्ग, ज्ञान का प्रकाश! संपूर्ण प्रकाश!!

३०१४. बुद्धि का प्रकाश तो टकराव से उत्पन्न होता है! नफ़ा-नुक़सान की बुद्धि टकराव से आये। 'बुद्धि' ये टकरावों के निष्कर्षों का योग (sum) है।

३०१५. अकल किसे कहेंगे? जो बुरे से बुरे व्यक्ति के साथ भी 'एड्जेस्ट' हो जाय!

३०१६. जो उपाधि को कम करे, उसीका नाम अकल!

३०१७. सद्बुद्धि उसीका नाम कि जो कभी भी विरोधाभास ना खड़ा करे।

३०१८. सम्यक्बुद्धि उसे कहेंगे कि जो मनुष्य के इस लोक को सुधारे और परलोक को भी सुधारे; जबकि विपरीतबुद्धि तो इस लोक और परलोक दोनों को बिगाड़े! "ज्ञानी" के पास बैठने से बुद्धि सम्यक् होवे। सम्यक्बुद्धि व्यवहार का समायोजन कर देवे, जबकि विपरीतबुद्धि सब उलट-पुलट कर दे।

३०१९. बुद्धि ऐसी 'डेवलप' हो सकती है कि वो मनुष्य के सारे दुःखों को मिटा सके।

३०२०. इस समय सम्यक्बुद्धि का तो दिवाला ही निकल गया है ! कोई ज़रा कुछ कह दे, तो तुरंत असर हो जाता है । जो व्यवहार को 'एड्जेस्ट' करे, नया नुक़सान न होने दे और पुराने नुक़सान की भरपाई कर दे – वो है सम्यक्बुद्धि।

३०२१. बुद्धि के द्वार बंद हो जाये, तब समझो मोक्ष की तैयारियाँ हुई।

३०२२. भगवान क्या कहते हैं ? कि जब तक तू और मैं अलग, तब तक संसार और जब एकता हो जाये तो तू स्वयं भगवान !

३०२३. जो कुछ तुम देखते हो, पढ़ते हो, सुनते हो, वो सब कुछ कल्पित है ! भगवान बुद्धि से अगम्य हैं, जबकि जगत् बुद्धि से देखता है, फिर इसका मेल कैसे बैठे ?!

★★★

३०२४. आत्मा से जो अलग रखे – उसीका नाम बुद्धि ! जितनी बुद्धि शमन हुई, उतना आत्मा में समा गए और बुद्धि जब सर्वांश शमन हो जाये, तब सम्पूर्ण आत्मरूप हो जाएँ।

★★★

३०२५. सबने बुद्धि के घर की बात की है। बुद्धि जहाँ नहीं पहुँच पाये, वो है खुदा के घर की बात ; जबकि जहाँ बुद्धि पहुँचे – ये है संसारियों के घर की बात।

★★★

३०२६. जब तक बुद्धि है तब तक आत्मा की अनुभूति कभी भी नहीं हो पाती।

३०२७. संसार में सब बुद्धिवाद है। ज्ञानवाद हो वहीं पर ही काम बने ! भगवान का ज्ञानवाद था। 'वीतराग-विज्ञान' यानी ज्ञानवाद !

३०२८. 'बुद्धि' ये परप्रकाशक है ! अतः हमें 'स्वरूप' को देखना हो, तो भी वो देखने न दे, अपितु कुछ और ही दिखाये।

३०२९. बुद्धि को हम बंद करना चाहें, तो भी वो बंद नहीं होगी। केवल "ज्ञानी" की कृपा से ही बुद्धि बंद हो सकती है, ये भी बहुत कृपा हो तभी संभव है।

३०३०. सुख अपने 'स्वरूप' में है। वहाँ अहंकार नहीं, अहंकार का अंशमात्र भी नहीं, वहीं पर सुख है !

★★★

३०३१. सीधे को सीधा अहंकार और टेढ़े को टेढ़ा अहंकार आ जाये ! अहंकार तो एक ही प्रकार का, लेकिन उसके रंग अलग-अलग होते हैं !!

★★★

३०३२. अहंकार ऐसा होना चाहिये कि जिससे ज्ञातापन बढ़े, उसके बजाय लोगों को ऐसा अहंकार होता है कि ज्ञातापन पर आवरण आ जाये। जिस अहंकार में अंध हो जाये, ज्ञातापन खो जाये, ऐसा अहंकार बहुत नुक़सान करे।

३०३३. 'आरोपित भाव' ये अहंकार है। यदि तुझे संसारी सुख चाहिए तो उसका 'पॉज़िटिव' उपयोग कर, उसमें 'निगेटिव' को लाना ही मत। तुझे दु:ख ही चाहिए है, तो निगेटिव ही रखना और सुख-दु:ख का 'मिक्स्चर' पसंद हो, तो दोनों को इकठ्ठा रखना, और यदि तुझे मोक्ष में ही जाना हो, तो आरोपित भाव से मुक्त हो जाना, तेरे अपने स्वभावभाव में आ जाना। इन तीन वाक्यों पर सारा जगत् चल रहा है!

३०३४. हरेक का अहंकार अलग अलग होता है ; अहंकार के 'थ्रु' प्रकाश निकलता है, अत: सबकी बुद्धि भी अलग-अलग होती है।

३०३५. आत्मदर्शन होने पर भेदबुद्धि न रहे और बुद्धि से अभेदता रहे, हालाँकि व्यवहार सबके साथ अलग-अलग रहे। 'व्यवहार में जो भेद दिखे' ये तो विवेक है।

३०३६. ये जो सारा भेद खड़ा हुआ है, वो द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव अलग-अलग होने के कारण है ; इनकी भिन्नता के कारण भेदबुद्धि खड़ी होती है!

★★★

३०३७. बुद्धि को कहाँ गिरवी रखें ?! अगर 'रियलस्वरूप' होना है तो अबुध होना पड़े। बुद्धि का तो अनंतकाल से निवास है, अत: हमें तय करना है कि 'अब बुद्धि नहीं चाहिए', तभी हम अबुध हो सकेंगे।

३०३८. दादाश्री कहते हैं कि 'हम' तो अबुध हैं। अगर 'व्यवस्थित' का 'ज्ञान' न होता तो 'हम' भी बुद्धि को छोड़ते नहीं ! अतः हम तुम्हें कहते हैं कि 'व्यवस्थित है, अबुध बनकर बैठ जाओगे तो चलेगा।'

३०३९. बुद्धि हमेशा 'सेन्सिटिव' करे और 'सेन्सिटिवनेस' से संसार खड़ा है।

३०४०. बुद्धि यानी 'व्यूपॉईन्ट', जो संसार में घुमाए और मार भी खिलाये !

३०४१. किसीको भी हमारे निमित्त से ज़रा भी अड़चन न हो–ये देखे इसी का नाम बुद्धि !

३०४२. विनाशी चीज़ें देखकर जो 'इमोशनल' होवे, वो बुद्धि !

३०४३. 'अवधानशक्ति' ये धारणशक्ति है ! वो बुद्धि के अनुसार होवे, बुद्धि की जो जागृति है वो ज्ञान के अनुसार नहीं। 'ज्ञान' को और अवधान को कुछ लेना-देना नहीं। अंततः तो 'ज्ञान' की जागृति चाहिए होगी।

★★★

३०४४. 'सम्यक्बुद्धि' ये तो संस्कारित बुद्धि है ! संस्कारित बुद्धि शायद ही होवे। ''ज्ञानीपुरुष'' के पास बैठने से बुद्धि सम्यक् हो सके !

★★★

३०४५. 'आत्मा में आत्मबुद्धि' ये मोक्ष और 'देह में आत्मबुद्धि' ये संसार।

३०४६. ‘समझ’, ये क़ायमी मिल्कियत है। बुद्धि, ये ‘टेम्परारी’ मिल्कियत है।

३०४७. विचार करने से ‘ज्ञान’ समझ में आ ही नहीं सकता, दर्शन से जो समझ में आये – वो ही सच्चा ज्ञान। क्रमिक मार्ग में ‘ज्ञान’ को विचार करके समझना है, ‘अक्रम’ में ऐसा नहीं। ‘क्रमिक’ में तो ‘नॉन–स्टॉप’ विचार आते ही रहते हैं।

३०४८. ‘मन’ ये तो ‘लेबोरेटरी’ है, उसमें कुछ रखो और विचारणा करो तो वह निष्कर्ष निकाल देवे। मन तो ‘रडार’ की भाँति सारे पर्याय दिखाता है।

३०४९. ‘चित्त’ अपनी स्वतंत्र ‘फिल्म’ के कारण भटकता है, जबकि ‘मन’ ग्रंथियों के कारण है।

३०५०. चित्त के लिए ही ये सारे धर्म करने होते हैं, जिससे कि चित्त को उतना अवकाश मिले, अन्यथा चित्त अनअवकाश रूप से भटकता रहे।

३०५१. भारी भीड़ में आ जानेपर अपनी रक्षा कैसे की जाये, इसीमें मन लगा रहता है, इसी कारण तब विचार नहीं आते, और तभी तो असली मज़ा आये!

३०५२. जो चित्त को चलायमान करें, वे सारे विषय ही हैं।

★★★

३०५३. अशुद्ध चैतन्य को ‘चित्त’ कहते हैं। अशुद्ध होते हुये भी वो चैतन्य है!

३०५४. चित्त की जितनी शुद्धि होवे, उतना 'फिल्म' बनना बंद होता जाये। चित्त अशुद्ध हो तब तक 'फिल्म' बनती ही रहे और वही 'फिल्म' है संसार।

३०५५. चित्त जो देखे उसकी 'फिल्म' बन जाये। 'ये अच्छा है या खराब है,' ऐसा भाव उत्पन्न होवे, और इसमें कर्ता का आरोप करने से नयी 'फिल्म' 'चार्ज' हो जाये।

३०५६. जितने समय तक 'हम' चित्त को देखते रहें उतनी उसकी शुद्धि होती जाये। चित्त की शुद्धि होने तक इस योग को जमाए रखना है! चित्त को साथ न दें और केवल उसे 'देखते' ही रहें तो हम मुक्त हो जायें!!

★★★

३०५७. 'स्वरूपज्ञान' की प्राप्ति के बाद चित्त की नयी 'फिल्में' बनना बंद हो जाये। मन में जो भी पुराना हो वो ही 'डिस्चार्ज' होता रहे, और नया उत्पन्न नहीं होवे। अहंकार का काम करना बंद हो जाये, और जो पुराना है उतना ही 'डिस्चार्ज' होवे। बुद्धि भी जो पुरानी है, वो 'डिस्चार्ज' हुआ करे, नयी उत्पन्न न होवे।

३०५८. अंतःकरण के कौन-से हिस्से पर सबसे पहले असर होता है? पहले बुद्धि पर असर होता है। अगर बुद्धि हाज़िर नहीं है, तो असर नहीं होता।

३०५९. पहले बुद्धि को असर होता है, वहाँ से फिर मन को असर पहुँचे। ''ज्ञानी'' को तो बुद्धि नहीं होती, अतः ये कोई झंझट ही नहीं। जब बुद्धि स्वीकार करनेवाली हो, तभी ये सब झंझट है। बुद्धि के बाद वो असर मन पकड़ ले और फिर मन उछलकूद करता रहे!

३०६०. जुगालने की क्रिया मन करता है। बुद्धि यदि बीच में न पकड़ ले, तो बात मन तक पहुँचे ही नहीं।

३०६१. मन-चित्त-अहंकार और अंतःकरण का सारा 'हिसाब', ये सब पुद्‌गल है। केवल एक बुद्धि ही पुद्‌गल नहीं। बुद्धि तो आत्मा का ही प्रकाश है, हालाँकि ये प्रकाश अहंकार के 'मिडियम थ्रु' आता है, अतः उसे 'बुद्धि' कहा गया है।

३०६२. बुद्धि के परमाणु नहीं होते। वो प्रकाश है जो पूरण-गलन नहीं होवे ! जो पूरण-गलन होवे वो पुद्‌गल कहलाये। मन-चित्त-अहंकार ये सब 'फिज़िकल' हैं, जड़ हैं। बुद्धि ये 'फिज़िकल' नहीं।

३०६३. 'शुद्ध चित्त' ये पर्यायरूप में है और 'शुद्धात्मा' ये द्रव्यगुण रुप में है, हालाँकि ये सब वो ही की वो ही वस्तु हैं !

★★★

३०६४. आत्मा की द्रव्य, गुण, पर्याय को लेकर एकता ही है। इनमें से पर्याय का शुद्धिकरण हो जाये तो ये बन जाये पूर्ण शुद्धात्मा !

★★★

३०६५. चूँकि ज्ञेय बदलता रहता है, इसलिये ज्ञान भी बदलता रहता है। ज्ञान पहले नहीं बदलता। सारा जगत् 'परिवर्तनशील' है, अतः ज्ञान बदलता रहता है।

३०६६. अज्ञानी भय का अनुभव करते हैं, जिसे 'ज्ञान' मिला हो, वो भय का वेदन करे; और जो 'भय के असर को जाने' – वो है 'केवल ज्ञानसत्ता' !

३०६७. 'आत्मा' ये ज्ञानस्वरूप ही है, अन्य कोई वस्तु नहीं ! इस दीये का प्रकाश जड़ है, पर क्या वो काटने पर कट जाये ? आत्मा का प्रकाश तो अनोखा ही होता है ! भट्ठी में जलाओ तो भी वो 'ज्ञान' को छूए तक नहीं, ऐसा ये सूक्ष्म है। आत्मा की अपेक्षा ये 'अग्निज्वाला' स्थूल है। आत्मा तो इतनी सूक्ष्म है कि उसे कोई असर ही न होवे, और वो ही है परमात्मा !

३०६८. मोक्ष में परम शांति नहीं, बल्कि परमानंद होता है। 'स्वयं' परमानंद-स्वरूप ही तो है। शांति तो वहाँ होगी जहाँ अशांति होवे। शांति द्वंद्वस्वरूप है, जबकि परमात्मा तो परमानंद-स्वरूप हैं। अनादिकाल से जिसे खोज रहे थे, वो ही ये है-स्वयं का परमात्मस्वरूप व शक्तिस्वरूप !

३०६९. आत्मा के पास कुछ हो, ये ही दुःख है। जहाँ कुछ भी न हो वहाँ अपार सुख होता है ! 'स्वयं' तो स्वभाव से ही सुखस्वरूप है !!

★★★

३०७०. संपूर्णतः परिग्रहरहित हो जावे, तो स्वयं प्रकाशमान, सूर्यनारायण सा प्रकाशमान, अनंतसुख का धाम हो जाये !

३०७१. जो खाये, उसे ही शौच के लिए जाना पड़े ! जो आहारी है वो ही विहारी है और वो ही निहारी है। 'हम', शुद्धात्मा तो उसे बस जाननेवाले ! 'आहारी' आहार करे और 'निराहारी' 'शुद्ध चेतन' मात्र उसे जाने !!

★★★

३०७२. जड़ में कभी भी चेतन नहीं होवे, और चेतन में कभी भी जड़ नहीं होवे। सिर्फ़ ये शरीर अकेला ही मिश्रचेतन है ! वो चेतन के समान काम करे, लेकिन हक़ीक़त में ये चेतन नहीं !!

★★★

३०७३. भगवान का रूप ही अवर्णनीय है, उस पर कभी मैल चढ़ता ही नहीं ! 'एक्टिव' (चंचल) हिस्से में भगवान नहीं जबकि 'इनएक्टिव'(अचल) हिस्से में भगवान हैं ! उनकी हाज़िरी से ही ये सारी लीला है।

★★★

३०७४. जगत् जिसे स्थिर करने का प्रयास करता है, वो तो 'मिकेनिकल' चेतन है, ये वास्तविक 'एक्ज़ेक्ट' चेतन नहीं। तुम 'मूल स्वरूप' को खोज निकालो। 'मूल स्वरूप' तो स्थिर ही है !

★★★

३०७५. 'चंचल' के साथ शादी न करना बल्कि 'प्रज्ञादेवी' के साथ शादी करना। प्रज्ञादेवी तो बहुत अच्छी हैं ! वे तो निरंतर सचेत करती रहती हैं।

★★★

३०७६. दोनों ज़रूरी है; पहला 'ज्ञान' और दूसरा 'ज्ञानी' की कृपा ! 'ज्ञान' हो और कृपा न हो, तो काम कच्चा रह जाये। कृपा हो और 'ज्ञान' न हो तो भी कच्चा रह जाये।

३०७७. जगत् में न तो आत्मा की संख्या बढ़ती है, न घटती है; और अनात्मा के परमाणु भी न तो बढ़ते हैं, न घटते हैं। इतनी सारी लड़ाइयाँ होती हैं, दंगा-फसाद होते हैं, बहुत सारे लोग मर जाते हैं फिर भी एक परमाणु तक कम नहीं होता, न ही बढ़ता है। ये जगत् 'जैसा है वैसा' ही रहता है! इसमें कोई बदलाव संभव नहीं !!

★★★

३०७८. तत्त्वों की खूबी कैसी है, ये तो "ज्ञानीपुरुष" ने ही देखी होती है, किसीको बुद्धि से ये समझाया नहीं जा सकता। आत्मतत्त्व की खूबी ही ऐसी है कि मात्र उसकी हाज़िरी से ही सब कुछ हो जाए, जैसी दृष्टि करे वैसा हो जाये ! आत्मा की दृष्टि चहुँ-ओर होवे, इसीसे सब कुछ हाज़िर ही हो जाये। आत्मा की अनंत शक्ति है, उसकी हाज़िरी से यह सब उत्पन्न होता है और उसकी हाज़िरी से ही यह सब चलता है।

★★★

३०७९. ये 'नाथालाल' तो 'मिकेनिकल' हैं ! 'पेट्रोल', तेल, ईंधन सब भरना पड़े। ईंधन भरो तो ही चले, नहीं तो बंद हो जाय ! यंत्र उसे घुमा ही रहा है। जब तक उसे 'निजस्वरूप' का भान न हो, तब तक ये यंत्र उसे घुमाता ही रहेगा।

★★★

३०८०. जगत् तो बहुत बड़ा, विशाल और समझने लायक है। जगत् में और कुछ हुआ ही नहीं, सिर्फ़ वो ही के वो ही छह तत्त्वों का सम्मिलन-विसर्जन हो रहा है !

★★★

३०८१. जगत् में कितने सारे विकल्प ?! विकल्पों की कोई 'लिमिट' होगी क्या ? जगत् में कोई वस्तु ऐसी नहीं कि जो 'अन्‌लिमिटेड' हो ! 'लिमिट' न होवे तो फिर मोक्ष तक पहुँचना कैसे संभव हो ?!

३०८२. ब्रह्मांड मात्र छह तत्त्वों से ही भरा हुआ है। ये छह भागीदारों की 'लिमिटेड कंपनी' है। (१) धंधे के लिए जगह देनेवाला : 'अवकाश', क्षेत्र। (२) धंधे के लिए माल-सामान देनेवाला : 'पुद्गल'। (३) माल सामान लाने-ले जानेवाला : 'गतिसहायक तत्त्व'। (४) माल की व्यवस्था का काम करनेवाला : 'स्थिति सहायक तत्त्व'। (५) इन चारों तत्त्वों का निपटान करनेवाला : 'कालतत्त्व' और (६) देखभाल करनेवाला : 'शुद्धात्मा', ज्ञाता-दृष्टा।

★★★

३०८३. इन छह तत्त्वों की साझेदारी की ये 'लिमिटेड' 'कंपनी' है, सबका जोखिम मर्यादित है। छठा भागीदार 'आत्मा' ये संवेदनशील (चेतनवंत) है। वो सब पर ध्यान रखता है, परंतु वह जब कुछ बोले तो अन्य भागीदार कहते हैं, 'तुम भागीदार हो ही, लेकिन समान हिस्से के'। दूसरे भागीदार झगड़ा क्यों करते हैं? ''देखभाल करने के बजाय तुम तो पूरी दुकान लेकर बैठ गए हो, 'मेरा, मेरा' करते हो!'' इसलिए शेष पाँच भागीदार वैसे ही पड़े रहने लगे। यह रूपक विनोदी भाव में दिया है! हर एक में छह भागीदार होते हैं। इस लोक में भी छह द्रव्य हैं। हिस्सेदारों के झगड़े को लेकर चिंता है। यदि छठा भागीदार मात्र ज्ञाता-दृष्टा ही रहे, तो शेष पाँच सही तरीके से काम करेंगे, वह मात्र देखभाल ही करता रहे तो सब ठीकठाक चले।

★★★

३०८४. जागृति को अमुक जगह पर निश्चित करना इसका नाम उपयोग। शुद्ध उपयोग किसे कहते हैं? यदि शुद्ध आत्मा सबंधी ही उपयोग रक्खा जाये।

★★★

३०८५. 'उपयोग' ये चंचल भाग की वस्तु नहीं, लेकिन योग सारा ही चंचल भाग है ; हालाँकि उपयोग संपूर्ण अचल भी नहीं, परंतु वो कारणस्वरूप से अचल है, इसलिए उपयोग के विषय में चंचलता कही जा सके।

३०८६. आत्मा के सारे गुण अगुरु-लघु स्वभाव के हैं, वे बढ़ते भी नहीं और घटते भी नहीं। क्रोध-मान-माया-लोभ तो बढ़ने-घटने के स्वभाववाले हैं। आत्मा का परमानंद नामक गुण है, जो ज़रा भी ना घटे ना ही बढ़े ! ज्ञान नामक गुण, दर्शन नामक गुण.....ये बढ़े नहीं और घटे भी नहीं !!

३०८७. आत्मा संकल्प-विकल्प कर ही नहीं सकती, क्योंकि आत्मा तो निर्विकल्प है।

३०८८. दृष्टि जब दृष्टा में पड़े तब वो 'आत्मज्ञानी' कहलाये, और जब 'ज्ञान' ज्ञाता के अंदर मुड़ जाये, तब वो निर्विकल्प हो जाये।

३०८९. उदयकर्म का गर्वरस जिसे चला गया उसने 'आत्मा प्राप्त कर लिया' कहा जाए। आत्माने तद्रूप होकर जो कल्पित किया हो, वो कब उग निकलेगा ये कह नहीं सकते !

३०९०. देह में से स्पंदित हुए, वाणी में से स्पंदित हुए और मन में कल्पित एक भी परमाणु में यदि तुमने उपयोग रखा, तो मारे जाओगे और कई सारे जन्मों तक भटकना पड़ेगा !

३०९१. अहंकार ये कल्पनास्वरूप नहीं, अपितु हक़ीक़त-स्वरूप है।

३०९२. जहाँ कषाय है, वहाँ समाधि नहीं। जहाँ समाधि है, वहाँ कषाय नहीं। सारा जगत् कषाय के अधीन है, 'खुद' 'स्वयं' के अधीन नहीं। यदि स्वयं के अधीन होता, तो ऐसा नहीं करता ! कषाय क्यों खड़े हुए ? अज्ञानता के कारण ! अज्ञानता कैसे खड़ी हुई ? संयोगों के दबाव से।

३०९३. कषाय के अधीन है, इसीलिए पराधीन है। जीना भी पराधीन है और मरना भी पराधीन है, फिर भी अपने आप को ऐसे मानता है कि 'मैं स्वाधीन हूँ, स्वतंत्र हूँ' !!

३०९४. इस दुनिया में तुम्हें एक खोज करनी है कि इस दुनिया में मेरा जन्म हुआ है, यहाँ मेरी शक्ति कितनी ?! और मेरे पास कौनसी शक्ति है और कौनसी शक्ति नहीं ? इन दोनों को जानना तो चाहिए न ?

३०९५. 'यह' तो प्रेममय मार्ग है। जिसे जगत् में किसी के प्रति तिरस्कारभाव न आये, वो परमात्मा हो सके।

३०९६. सीधी अनुमोदना की हो, तो वो मोक्ष की ओर ले जाये, जबकि उलटी अनुमोदना भटका दे।

३०९७. ''ज्ञानीपुरुष'' का वचनबल तो आड़े आनेवाले सांसारिक प्रतिबंध तोड़ देवे।

३०९८. वर्तन और 'ज्ञान' के बीच कुछ लेनादेना नहीं है। 'ज्ञान' 'ज्ञान' के स्वभाव में है जबकि वर्तन पुद्गल का है ! वर्तन तो शुभ होवे या अशुभ होवे, शुद्ध नहीं होवे।

३०९९. संयोग मात्र 'अवस्तु' कहलाये ! 'वस्तु' सनातन होवे जबकि 'संयोग' क्षणिक होता है। 'संयोग होना' ये 'अवस्तु' कहलाये।

३१००. आत्मा, वृत्तियों को क्या कहती है ? हे जयंतीभाई ! यदि तुम्हें अपने हिसाब से चलना है, तो भी मैं तो हूँ ही, किन्तु यदि तुम्हें मेरे साथ एकता करनी है, तो जो चाहोगे सो मिलेगा, क़ायमी सुख मिलेगा। और यदि एकता नहीं करनी हो, तो तुम्हारा सुख बाहर ढूँढ़ो।

३१०१. चित्तवृत्तियाँ जो बाहर भटक रही थी, वे अपने घर की ओर मुड़े तबसे समझ लेना कि मुक्ति के 'बैंड-बाजे' बजने लगे। चित्तवृत्ति के बंधन से मुक्ति होना, इसीका नाम ही संसार से मुक्ति पाना। अकेली चित्तवृत्ति ही बँधी हुई है। ये चित्त फिसलन का आदी हो गया है!

३१०२. चित्तवृत्तियों को जितना भटकना हो, भले ही भटके, परंतु वे स्वतंत्र नहीं, अंततः वे भी परतंत्र ही हैं! आखिर में तो उन्हें 'यहाँ' आत्मा की ओर आने के सिवा कोई चारा ही नहीं।

३१०३. चित्त एकाग्र हो जाय तब आनंद आये।

३१०४. 'ज्ञानी' का चित्त सदैव आत्मा में ही रहे, जैसे साँप मुरली की तान में हो वैसे !! फिर व्यग्रता होगी ही नहीं ना!

★★★

३१०५. तुम्हें 'दादा' ने ये जो 'शुद्धात्मा' दी है, वो 'फर्स्ट स्टेप' है, इससे आगे तो बहुत कुछ है। बाद में शुद्धात्मा का स्वरूप उसके गुणों के साथ प्रकट होवे!

३१०६. चित्त के 'रिवोल्युशन' हर एक के अलग-अलग होते हैं ; किसी के प्रति 'मिनट' तीन हज़ार, तो किसीके प्रति मिनट पचास भी होवे। किसी के चित्त से काम लेना हो, तो सामनेवाले के साथ 'काउन्टरपुली' लगानी पड़े।

३१०७. 'संसारी चित्त' ये 'अशुद्ध चित्त' कहलाये। 'अशुद्ध चित्त' ये मिश्रचेतन है। जो 'शुद्ध चित्त होवे' वो है शुद्ध चेतन।

३१०८. जो 'अवस्थाओं को ही नित्य माने', वो है अशुद्ध चित्त! जो 'अवस्थाओं में ही प्रवर्तना करे' वो है अशुद्ध चित्त और जो 'वस्तु में रमणता करे' वो है शुद्ध चित्त!!

३१०९. सत्-चित्त यानी 'ज्ञान', असत्-चित्त यानी अज्ञान!

३११०. असत्-चित्त किसे कहेंगे ? 'पुद्गलपक्षी चित्त' ये 'असत्-चित्त' कहलाये और जब वो आत्मपक्षी-स्वपक्षी हुआ तो फिर वो सत्-चित्त-आनंद हुआ!

★★★

३१११. लोकसंज्ञा से चलें तो निरा दु:ख ही है और 'ज्ञानी' की संज्ञा से चलें तो निरा सुख ही सुख है। लोकसंज्ञा यानी लोगों ने जिसमें सुख माना, भौतिक चीज़ों में सुख माना, उनमें हमने भी सुख मान लिया और 'आत्मा में ही सुख है' ऐसा मानना - ये है 'ज्ञानी' की संज्ञा।

३११२. चित्त को सनातन वस्तु में रखना है, 'स्वरूप' में रखना है। 'जप-तप-ध्यान-योग-मंत्र' ये सनातन वस्तु नहीं हैं, ये सब तो 'टेम्परारी एड्जेस्टमेंट' हैं। कोई वस्तु सनातन नहीं, अकेला आत्मा ही सनातन है! उसमें यदि चित्त बैठ गया, फिर वो भटके नहीं, और तभी मुक्ति होवे !!!

३११३. चित्त सनातन वस्तु में मिल जाये तब वो हो जाये शुद्ध चित्त ! फिर हो गये विदेही !! फिर हो गई मुक्ति !!!

३११४. अशुद्ध चित्त के ज्ञाता-दृष्टा रहने से वो उड़ जाये ! ज्ञाता-दृष्टा रहें तो वो अपने आप ही उड़ जाये, अन्यथा प्रतिक्रमण करना पड़े !!

३११५. चित्त को हरेक काम में हाज़िर रखना, इसके समान कोई ध्यान नहीं !

३११६. चित्त तो इस शरीर का मालिक है, उसे गैरहाज़िर कैसे रख सकते है ?!

३११७. चित्त को सर्वत्र हाज़िर रखना चाहिए, 'प्रेज़ेन्ट' रखना चाहिए। खाने में, पीने में, शौच करते समय, हर जगह पर चित्त हाज़िर रहना चाहिए।

३११८. ''ज्ञानी'' का चित्त ज़रा भी इधर-उधर नहीं होता। जहाँ है, सब वहाँ पर ही रखना है। राजा भी वहीं और लश्कर भी वहीं ! ''ज्ञानी'' के पास बैठो तो तुम्हारा लश्कर भी वैसा हो जाये।

३११९. इस काल में ज़्यादातर जीव ऐसे हैं जो तिर्यंच के 'स्टेशन' से आये हैं और वो भी 'रिटर्न टिकट' लेकर!

३१२०. दादाश्री कहते हैं कि हम जब 'ज्ञान' देते हैं तब चित्त को शुद्ध कर देते हैं, पाप का नाश करते हैं और दिव्यचक्षु देते हैं; हर तरह से उसकी आत्मा को और अनात्मा को विलग कर देते हैं!

३१२१. ''ज्ञानीपुरुष'' के पास बैठते रहने से बुद्धि सम्यक् हो जाये, फिर वो बुद्धि, हमें मोक्ष जाने दे।

३१२२. जैसा जिसका 'इगोइज़म' वैसी उसकी बुद्धि! किसीका 'इगोइज़म' फीका हो तो उसकी बुद्धि तेज 'लाइट' देवे, और जिसका अहंकार सख़्त हो उसकी बुद्धि विपरीत दिशा में काम करे।

३१२३. अहंकार तो इस हद तक 'डेवलप' हो सकता है कि परमात्मा और अहंकार में एक अंश का ही फ़र्क़ रहे! क्रमिक मार्ग में अहंकार को 'डेवलप' करते करते जाते हैं।

★★★

३१२४. 'ये मनुष्य अच्छा है' कहते हैं-ये क्या है? अच्छा यानी कि उसका 'इगोइज़म' 'डेवलप्ड' है। 'इगोइज़म' को डेवलप करना ये ही क्रमिक मार्ग!

३१२५. 'इगोइज़म' पूर्ण 'डेवलप' हो जाये, इसीका नाम भगवान!

३१२६. धर्म में बस इतना ही करना है, 'इगोइज़म' को 'ऑरनामेन्टल' (शोभायमान) करना है। गहनों जैसा अहंकार कितना सुंदर लगे!

३१२७. 'अक्रममार्ग' तो 'आउट ऑफ इगोइज़म' (अहंकार से परे) है! 'यह' मार्ग ही अनोखा है!!

३१२८. 'इगोइज़म' यानी मिश्रचेतन ! उसमें वास्तविक चेतन ज़रा भी प्रयुक्त नहीं होता, केवल 'राँग बिलीफ' से चेतन प्रयुक्त होता है। जगत् में जो कुछ माना जाता है, वो सभी 'राँग बिलीफ' हैं।

३१२९. सभी वस्तुओं पर आशंका हुई, किन्तु अहंकार पर कभी भी आशंका नहीं हुई। 'मैं धीरूभाई हूँ' – इस में आशंका होवे, तो इसे अहंकार पर आशंका हुई कहा जाये।

★★★

३१३०. 'स्वरूपज्ञान' होने के पश्चात् अहंकार खिसक गया, अहंकार निज 'स्वरूप' में लीन हो गया! अब पौद्गलिक अहंकार, जिसे 'ड्रामेटिक अहंकार' कहते हैं, वो ही बचा। वो सारे कार्य करता ही रहे! पौद्गलिक अहंकार के सिवा कोई कार्य हो ही नहीं सकता। कार्य के होने में 'अहंकार' ये 'वन ऑफ दि एविडन्स' है, परंतु ऐसा ज़रूरी नहीं कि जीवित अहंकार ही चाहिए।

★★★

३१३१. 'स्वरूपज्ञान' मिलने के बाद सारे कषाय निर्जीव हो जायें। निर्जीव हमें दुःख न दें, हालाँकि 'स्वयं' के सुख को रोके, जब तक उनका अस्तित्व रहे तब तक।

★★★

३१३२. क्रोध-मान-माया-लोभ निर्जीव हों, तब वे वस्तुतः क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं कहलाते, हालाँकि जगत्-व्यवहार में ऐसा कहना पड़े।

३१३३. सारे जगत् को सजीव क्रोध-मान-माया-लोभ होते हैं! कषायों का ही साम्राज्य चलता है। आत्मा को तो कहीं दूर तहखाने में बंद करके रखा है! परंतु वेदना आत्मा तक पहुँचती है। निर्वेद को वेदना पहुँचती है!! ये भी अजीब सी बात है न! हालाँकि आत्मा इसमें कुछ नहीं भुगतती।

३१३४. आत्मा स्वयं ही सुख का कंद है! उसे दुःख होता ही नहीं, और छूता भी नहीं। सुख कौन भोगता है? अहंकार। दुःख कौन भुगतता है? अहंकार। लोभ कौन करता है? अहंकार। घाटा कौन भुगतता है? अहंकार। शादी कौन करता है? अहंकार। विधुर/विधवा कौन होता है? अहंकार। ये सब कुछ अहंकार ही भुगतता है!

३१३५. जो 'बाहर के व्यवहार' हैं, वे केवल अज्ञानमय परिणाम ही हैं। अज्ञानमय परिणाम इसीका नाम भुगतना और ज्ञानमय परिणाम में तो भुगतने का है ही नहीं। हालाँकि चक्कर तो वो ही का वो ही है। 'संसार' ये अज्ञानमय परिणाम है और 'आत्मा' ये ज्ञानमय परिणाम है।

३१३६. आवागमन किसे है? आत्मा को या देह को? आवागमन ये अहंकार को ही है! आवागमन का आधार अहंकार है, वो निराधार हो जाये तो वस्तु गिर जाये। जिसका अहंकार ख़लास हो जाये उसका आवागमन भी बंद हो जाये!

३१३७. 'मैंने किया',- कहें यानी आधार दिया और आधार दें तो वो कर्मफल देगा। 'मुझे विचार आया, मैं विचार करता हूँ,' ऐसा बोलो, इसे आधार दिया कहा जाये ! ''ज्ञानी'', किसी चीज़ के कर्ता नहीं होते।

★★★

३१३८. 'इगोलेस' (अहम् शून्य) करने की ज़रूरत नहीं, बल्कि 'हम कौन हैं' ये जानने की ही ज़रूरत है।

★★★

३१३९. 'उपाय न करना' ये भी अहंकार है और 'उपाय करने के प्रयत्न करना' ये भी अहंकार है। 'निरूपाय उपाय' हो तो उसे होने देना है, सहज उपाय होने देना है। ''ज्ञानी'' को तो सहजासहज उपाय हो जावे।

★★★

३१४०. ''ज्ञानी'' को तो 'निरूपाय-उपाय' होवे। वे उपेयभाव को प्राप्त हुए हैं, अतः उन्हें उपाय करने नहीं होते। और तुम्हें तो ''ज्ञानी'' जो बताएँ, वे उपाय करने होंगे।

★★★

३१४१. जब कोई भी उपाय करना बाक़ी न रहा हो, तब 'उपेय' प्राप्त हुआ ऐसा कहा जाये।

★★★

३१४२. 'अन्य को दुःख होता है', ये जिसे दिखता है, वो उसका 'सेन्सिटिवनेस' का गुण है। 'सेन्सिटिवनेस' ये एक प्रकार से उसका 'इगोइज़म' है। ये 'इगोइज़म' हमारे अंदर हो, तब तक सामनेवाले को दुःख होवे ही, वो 'इगोइज़म' जब हमारे अंदर नहीं होगा, तब सामनेवाले को दुःख ही नहीं होगा। ये 'इगोइज़म' क्रमशः पिघलना चाहिए।

★★★

३१४३. खुद के 'इगोइज़म' का हल निकले, तभी सामनेवाले का हल भी आ जाये, लेकिन जब तक खुद का 'इगोइज़म' है, तब तक नियम से ही सामनेवाले पर असर होता रहेगा ! ये 'इगोइज़म' पिघल ही जाना चाहिए।

★★★

३१४४. ये संसार मार्ग है ! इसमें से आत्मा गुज़र रही है, इसके कारण ये सारे असर हैं, और कुछ भी नहीं। सिर्फ़ असर है, 'इफेक्ट' है !

★★★

३१४५. दुनिया में ये सब केवल 'इफेक्ट्स' (असर) ही हैं। दुनिया में दुःख जैसी कोई वस्तु है ही नहीं, सिर्फ़ 'रॉंग बिलीफ' है ! फिर भी सामनेवाला उसे सच मानता है, और ये उसकी दृष्टि है, परंतु हम पर इसका कोई असर नहीं होना चाहिए। हमें शुद्ध हो जाना चाहिये। हम जब शुद्ध हो जाएँ, तब बाक़ी सब शुद्ध हुए बिना नहीं रहता।

★★★

३१४६. दादाश्री कहते हैं कि मैंने स्वानुभव से ये सब देखा है ! जब तक मुझे ये सब 'इफेक्ट' बरतते थे, जब तक मेरे अंदर ऐसे परिणाम होते थे, तब तक सामनेवाले को दुःख था, परंतु जब मेरे मन में से वो निकल गया, शंका चली गई, तो ये सब कुछ चला गया ! इन सीढ़ियों को देखकर, अनुभव करके मैं चढ़ा हूँ, अतः मैं मार्ग दिखा सकता हूँ। इन सबको मैं 'ज्ञान' देता हूँ, ये मेरी देखी-जानी सीढ़ियों से ही ले जा रहा हूँ।

★★★

३१४७. दादाश्री कहते हैं कि मेरा ये 'इफेक्टिव' शब्द जिसे समझ में आ जाये, उसे मोक्ष मिल जाय !

३१४८. क्रोध को दबाते रहने से क्रोध न जाये। क्रोध को तो पहचानना पड़े। 'क्ह्रोध' ये अहंकार है। अहंकार के कौन से प्रकार से क्रोध आता है, उसकी जाँच-पड़ताल करनी चाहिए। ग्लास टूटने पर क्रोध आये तो समझो 'नफ़ा-नुक़सान' सबंधी अहंकार है, अतः अहंकार को विचारपूर्वक निर्मूल करना चाहिए।

३१४९. 'इगोइज़म' ये दर्शन को रोकता है।

३१५०. बुद्धि में अहंकार मिल जाये तब कार्य हो जाये। यदि अहंकार विलग हो जाये, तो वो कार्य हो ही नहीं सके!

३१५१. ज्ञेय वस्तुएँ वीतराग हैं और ज्ञाता भी वीतराग है किन्तु बीच में जो अहंकार है, वो राग-द्वेष कराता है। अहंकार उड़ जाये, फिर ज्ञेय के साथ वीतरागी भाव रखना है। ज्ञेय को दुत्कारें तो वो भी हमे दुत्कारेगा! हालाँकि अंदर पौद्‌गलिक भाव बिगड़े, तो कहना 'प्रतिक्रमण करो'।

३१५२. 'मरनेवाले' का जो मालिक बने उसे मरना पड़े। 'मरनेवाले' का जो मालिक नहीं, उसे मरना ही न पड़े। ''ज्ञानी'' अमर पद लेकर आये हैं और तुम्हें भी वो ही पद देते हैं।

३१५३. 'ये' तो बड़ा अजूबा है! 'संसार में मोक्ष दिखे' ये अजूबा है और इस 'अक्रम मार्ग' का दस लाख वर्षों के बाद आविर्भाव हुआ है। ये अजीब मार्ग है! अकल्पनीय आश्चर्य है। सारे 'वर्ल्ड' के कल्याण का यह मार्ग है! इसके लिए दादा भगवान निमित्त हैं, हालाँकि उसे गुप्त रखा है। ''ज्ञानी'' तो चारपाई पर लेटे-लेटे ही सब कुछ करते हैं। मजदूर मेहनत करें और 'ज्ञानी' घर-बैठे करें!

★★★

३१५४. संसार में कुछ और करने जैसा ही नहीं, केवल 'मैं', जो 'मैं' के असल स्थान पर नहीं है, उसे उसके यथार्थ स्थान पर लाकर रखना है। मन तो मन के स्थान पर ही है, बुद्धि, बुद्धि के स्थान पर ही है, चित्त, चित्त के स्थान पर ही है, किन्तु अहंकार अपने स्थान पर नहीं।

★★★

३१५५. शुद्धात्मा में अहम् नहीं होता। जहाँ खुद ही है, वहाँ अहम् कैसा? आरोपित जगह पर 'मैं हूँ' कहना-ये 'अहंकार' कहलाये।

★★★

३१५६. गर्वरस न लिया जाए इसके लिए क्या करें? 'करना' तो कुछ नहीं होता, लेकिन अपना जो 'ज्ञान' है उसे जानना है कि 'गर्वरस चखनेवाले हम नहीं, और हम कौन हैं'- ये जानना चाहिए। इसका ही प्रज्ञान होना चाहिए! उसमें कुछ 'करना' नहीं होता। हमारा 'ज्ञान' ही ऐसा है कि गर्वरस चखा ही न जाय, और यदि चख भी लिया, तो तुरंत प्रतिक्रमण कर लें।

★★★

३१५७. जहाँ मान की आशा रखी हो वहीं पर ही अपमान हो जाये तब सारी आशाएँ टूट जाये और फिर भग्न हो जाये। वह 'अहंकारभग्न' कहलाये, ये लोग 'क्रेक' होते हैं! जैसे कोई प्रेमभग्न होता है, वैसे ही अहंकारभग्न भी होवे।

३१५८. आत्मा स्वयं 'परमेनन्ट' है, और अनात्म विभाग में जो 'ग़लत मान्यता' रखनेवाला है, 'रॉंग बिलीफ' रखनेवाला जो अहंकार है, वो भी 'परमेनन्ट' है। अहंकार कब तक 'परमेनन्ट' है? जब तक 'खुद' को अपने 'स्वयं' का भान न होवे, तब तक वो 'परमेनन्ट' है, ये बहुत लंबे अरसे का है! हालाँकि वास्तव में अहंकार 'परमेनन्ट' नहीं।

३१५९. 'अहंकार' ये चंचल वस्तु है, अचल नहीं। अचल वस्तु तो, जहाँ अहंकार नहीं, कुछ भी नहीं, वहीं है। दरअसल परमात्मा ही वहीं है! 'आत्मा' ये ही परमात्मा है, बस उसका भान होना चाहिए, उसका 'ज्ञान' होना चाहिए।

३१६०. कठिन से कठिन चीज़ है आत्मज्ञान! जो चंचल विभाग का वर्णन किया जाता है, वो बुद्धिगम्य बात है। कोई भी बुद्धिगम्य बात मोक्ष में ना चले। बुद्धि भी चंचल है, वो अचल होने ही नहीं देती। एक "ज्ञानीपुरुष" अकेले ही अबुध होते हैं।

३१६१. 'आत्मा', ये ही अपने 'निजस्वरूप का ज्ञान' है! ये केवलज्ञान-स्वरूप है और उसमें से प्रकाश उत्पन्न होता है, वो सारा प्रकाश स्वयंप्रकाश है।

३१६२. दोनो वस्तुएँ क़ायम के लिए अलग थीं, अलग हैं और अलग रहेगी ही। ये तो 'बिलीफ' का ही पचड़ा है न? जहाँ 'मैं' नहीं, वहाँ 'मैं' मानकर बैठ गया-ये ही 'रॉंग बिलीफ'!

३१६३. विशेष भाव में क्या हुआ ? 'मैं कुछ हूँ' और 'यह सब मैं जानता हूँ' और 'मैं करता हूँ', ये ही विशेषभाव हुआ, बस ! इसीसे ये संसार खड़ा हुआ। फिर लोगों का देख-देखकर वह भी वैसा करने लगे !

★★★

३१६४. 'क्रोध-मान-माया-लोभ' ये किसके गुणधर्म हैं ? आत्मा के या जड़ के ? ये न तो आत्मा के गुणधर्म हैं और ना ही पुद्गल के गुणधर्म। तो फिर ये आये कहाँ से ? आत्मा और पुद्गल निकट आने पर जो विशेष गुणधर्म उत्पन्न हुआ, वो ही है क्रोध-मान-माया-लोभ ! उन्हें 'व्यतिरेक गुण' कहा है। हमें समझना है कि ये क्रोध-मान-माया-लोभ न तो मेरे गुणधर्म हैं और ना ही पुद्गल के।

★★★

३१६५. ये 'क्रोध-मान-माया-लोभ' विशेष गुण कब तक रहते हैं ? जब 'स्व-रूप' की अज्ञानता टूटे कि तुरंत विशेष गुण टूट जाएँ। स्वरूप की अज्ञानता कहाँ पर टूटे ? ''ज्ञानीपुरुष'' के पास।

★★★

३१६६. इन विशेष गुणों से जो पुद्गल पहले 'चार्ज' हो गया हो, जो पथ्थर गर्म हो गये हों, उसे 'चारित्रमोह' कहते हैं। 'स्वरूप का ज्ञान' हो जाये फिर कर्ता न रहे, अतः कोई दख़ल न रहे, और फिर 'चारित्रमोह' का निष्कास हो जाये।

★★★

३१६७. 'आत्मा क्या है ?' बस इतना ही जानने का मोह बाक़ी रहा हो, उसे भगवान ने 'सम्यक्त्व मोह' कहा है। हे भगवान ! क्या ये भी मोह है ? 'हाँ, आत्मा को जाने बिना मोह कैसे जाये ?!'

★★★

३१६८. मोह के दो प्रकार : दर्शनमोह और चारित्रमोह।

३१६९. दर्शनमोह यानी 'मैं इन्दुभाई ही हूँ' – ये नक्की मानना, ये ही दर्शनमोह ! जहाँ स्वयं है, उसे जानता नहीं, और जहाँ नहीं, वहाँ आरोप करे – ये है दर्शनमोह । दर्शनमोह यानी खुली आँखवाला अंधा !

३१७०. 'चारित्रमोह' ये परिणाम है। 'स्वरूपज्ञान' की प्राप्ति के बाद चारित्रमोह रहता है। दर्शनमोह चला जाये, उसके बाद ही चारित्रमोह को 'चारित्रमोह' कहा जाये। उसके बाद ही मोह के दो हिस्से हो जायें ! नहीं तो वो 'मोह' ही कहलाये।

३१७१. दर्शनमोह अर्थात् 'चार्ज' मोह। चारित्रमोह अर्थात् 'डिस्चार्ज' मोह।

३१७२. 'स्वरूपज्ञान' के बाद क्या बाक़ी रहा ? अकेला चारित्रमोह ही। चारित्रमोह का 'समभाव से निपटारा' कर देना है ! चारित्रमोह को निकाल नहीं देना है। 'ज्ञान' के पहले जो जो भाव किए थे, उनका उदय आये वो ही चारित्रमोह !

३१७३. चारित्रमोह अर्थात् जो अमुक काल पर, अमुक क्षेत्र में, अमुक मात्रा में आकर छूट जाये !

३१७४. 'तुम पुस्तक लिखते हो' वो भी 'चारित्रमोह' है, क्योंकि यदि कोई उसे ले ले, तो मोह खड़ा हो जाये।

३१७५. कोई दान कर रहा हो और उसे कहो कि, 'तुम तो ये बेअक़्ल का उल्टा काम कर रहे हो!' तो फिर वो कहे कि, 'छोड़ो, ये दान-वान', यही है चारित्रमोह!

३१७६. क्रिया से एतराज नहीं, बल्कि क्रिया में जो मोह है, उससे बाधा है। जब तक दर्शनमोह है, तब तक जप करो, तप करो, दान करो - ये सब 'मोह' ही कहलाये।

३१७७. भगवान ने दो प्रकार की निर्मलता को 'मोक्ष का कारण' बताया : एक, दर्शन-निर्मलता; और दूसरी, चारित्र-निर्मलता। दर्शनशुद्धि के बाद बाह्य संयोग खड़े होवें और उनमें तन्मयाकार हो जाये, वो है चारित्रमोह और यदि ज्ञाता-दृष्टा रहे, तो वो है चारित्र-निर्मलता।

३१७८. 'स्वरूपज्ञान' के बाद जो चारित्रमोह रहता है, वो फिर संसारबीज बोए ऐसा नहीं होवे, हालाँकि वो जब तक रहे, तब तक 'समाधिसुख' उत्पन्न नहीं होवे।

★★★

३१७९. 'वीतराग' तो ये कहते-कहते थक गये कि जो चारित्रमोह से लटका हो, तो उसे हम चला लेंगे। लेकिन जो दर्शनमोह से लटका हो, वो 'यहाँ' नहीं चलेगा! चारित्रमोह से लटके हुये लोगों के दो-चार अधिक अवतार हों, लेकिन दर्शनमोह के लटके हुए का तो कुछ ठिकाना ही नहीं।

★★★

३१८०. दर्शनमोह ''ज्ञानीपुरुष'' के 'ज्ञान' से चला जाये और चारित्रमोह ''ज्ञानी'' की 'आज्ञा' से जाये! अत: ''ज्ञानी'' 'ज्ञान' और 'आज्ञा' दोनों ही देते हैं।

★★★

३१८१. ''ज्ञानीपुरुष'' की आज्ञा, ये तो भवों में जाने से रोकनेवाली अवरोधक दीवार है।

३१८२. हर एक को जो जो चीज़ें मिलती हैं, वे उसकी बुद्धि के आशय के अनुसार ही होती हैं। यदि बुद्धि के आशय में हो कि 'मुझे तो कुटिया में ही भायेगा', तो फिर उसके पास करोड़ों रुपयों के रहते हुए भी उसे बिना झोंपड़ी के मज़ा न आये, क्योंकि उसने ऐसी प्रतिष्ठा की है ना!

३१८३. भाव करना नहीं पड़ता। बुद्धि के आशय के अनुसार अंदर 'सेटलमेंट' हो गया होता है। उसमें खुद प्रतिष्ठा करके पुतला तैयार करता है!

३१८४. बुद्धि के आशय में कोई ऐसा भर के लाया हो कि 'मुझे चोरी करके ही गुज़र-बसर करनी है, काला-बाज़ारी करके ही चलाना है!' फिर वह चोरी करे और उसमें यदि पुण्य आ मिले, तो कोई उसे पकड़ न सके और यदि पाप आ मिले, तो वो ऐसे ही पकड़ा जाये। जिस प्रकार भोगने की इच्छा की हो, वैसा आ मिलता है।

३१८५. सारी ज़िंदगी भतीजे से सेवा करवाई और अंतकाल में सारी संपत्ति अपने बेटे को दे दी - ये है बुद्धि का आशय!

३१८६. दादाश्री कहते हैं कि हम बुद्धि के आशय में ऐसा लाये थे कि 'ये क्यों बच्चों की झंझट और झमेला ?' तो 'दादा' के बच्चे मर गये, ये तो बुद्धि का आशय वैसा था इसलिए ही तो। बुद्धि के आशय में पढ़ना नहीं था, आत्मा खोजनी थी, तो 'मेट्रिक' में नापास हो गये ! बुद्धि के आशय में नौकरी नहीं करने की इच्छा थी, अतः नौकरी नहीं की और 'कोंट्रैक्टर' का धंधा किया !!

३१८७. अवश्य मोक्ष पाने का एकमात्र साधन यदि इस जगत् में कोई है, तो वो है 'स्वच्छंद को रोकना'। ये सबसे बड़ा साधन है। स्वच्छंद यानी खुद की अक्लमंदी से मोक्ष को ढूँढ़ना !

३१८८. ये संसार रूपी वृक्ष स्वच्छंद के आधार पर ही खड़ा है। उसकी कई सारी टहनियाँ और कई सारे पत्ते फूटते हैं !

३१८९. स्वच्छंद रुक जाये, उसीका नाम है संयम !

★★★

३१९०. 'स्वच्छंद' यानी अधिकरणक्रिया को आधाररूप होना और 'स्वच्छंद नहीं' अर्थात् उस अधिकरणक्रिया को निराधार करना। वो है बग़ैर-छंद की दशा !

★★★

३१९१. एक 'सेकंड' के लिए भी किसीका स्वच्छंद ना छूटे। 'मैं ही नवनीत हूँ, मैं ही नवनीत हूँ', ये जब तक है, तब तक स्वच्छंद जाये ही नहीं।

३१९२. स्वच्छंद यानी क्या? खुद ही 'जज', खुद ही वकील और खुद ही आरोपी!

३१९३. अपना स्वच्छंद कोई नहीं पहचान पाता और जो उसे पहचान ले, वो 'ज्ञानी' कहलाये।

३१९४. समकित अर्थात् उल्टी समझ छूट जाना। समकित समाधि करवाये और स्वच्छंद को रोके।

३१९५. कोई डाँट-डपट करनेवाला होवे, तभी मनुष्य मोक्ष जा सके। अगर डाँट-डपट करनेवाला कोई न होवे, तो फिर मनुष्य स्वच्छंदविहारी हो जाये। प्रत्यक्ष सद्गुरु का योग अर्थात् डाँट-डपट का योग!

३१९६. पूछकर करने से तो जो कहे उसकी ज़िम्मेदारी; स्वच्छंद से करने में खुद की ज़िम्मेदारी!

३१९७. संपूर्ण 'स्व' हो जाने के बाद छंद न रहे, जबकि 'आरोपित भाव' में सारे छंद उत्पन्न हो जायें। 'स्वच्छंद रुक जाये' - ये ही संयम परिणाम!

३१९८. शुद्धात्मा के सिवा पुद्गल में अस्तित्व ही नहीं रहे, इसे ही 'स्वच्छंद रुक गया' कहा जाये। किंचित्मात्र भी खुद का छंद नहीं होना चाहिए।

★★★

३१९९. स्वच्छंद की जड़ तो सब में रहती ही है। अतः आखिर तक जागृत रहना होगा, क्योंकि स्वच्छंद का पेड़ होते होते कोई साल-दो साल लगेंगे क्या ? नहीं, वो तो क्षण में बड़ा होकर फैल जाये !

★★★

३२००. जिसकी स्वच्छंद की जड़ निकल गई, वो तो ''ज्ञानी'' ही कहलाये। स्वच्छंद की जड़ क्या कर दे, ये जानते हो क्या ? वो तो जिनके आश्रय में रहे हैं, उनकी अधीनता को तुड़वा दे। ये स्वच्छंद की जड़ तो बहुत भारी है ! जिसकी वो निकल जाये, समझो वो तो ''ज्ञानी'' ही हो गया। वो जड़ जब तक रहे, तब तक फूल नहीं लगते ! ''ज्ञानी'' में और तुममें सिर्फ़ इतना ही फ़र्क़ है। तुम्हारी स्वच्छंद रूपी जड़ का उन्मूलन नहीं हुआ।

★★★

३२०१. स्वच्छंद, ये तो बहुत भारी रोग है ! उसकी जड़ को जान लेना चाहिए। जान लिया हो तो अच्छा रहे, नहीं तो ये भटका देवे !

★★★

३२०२. मोक्षमार्ग शुरू हुआ ये कब कहा जाये ? जो मोक्षस्वरूप हो गये हैं, ऐसे ''ज्ञानीपुरुष'' के पीछे-पीछे उनके पदचिन्हों पर चलने लगे, तब कहा जाये कि मोक्षमार्ग आरंभ हुआ ! उनके पीछे-पीछे चलने का निश्चय किया कि, 'देर-सवेर भी अब तो उनके पीछे-पीछे ही जाना है', तब मोक्षमार्ग शुरू हो गया समझो, फिर मुक्ति अवश्य होगी ही !!

★★★

३२०३. स्वच्छंद क्या करे ? वो तो जहाँ अभेद बुद्धि उत्पन्न हुई हो, वहाँ भेद करवा दे। 'ऐसा करूँ तो ही मेरी क़ीमत रहेगी', इस प्रकार भेद करवा दे। यदि कोई मुझसे रूठा हो तो किस कारण रूठे ? भेद पैदा हो तभी ना ! इसे ही 'माया' कहा।

३२०४. माया यानी स्वयं मूलतः जो है, उसे उसी तरह न जानकर, कुछ और तरह से जानना।

३२०५. 'मैं कौन हूँ', ये नहीं जानना और टकराते रहना, इसी का नाम है माया!

★★★

३२०६. दो प्रकार के ज्ञान : एक, मायावी ज्ञान; और दूसरा चेतनज्ञान। सच्चा 'ज्ञान' ये चेतनज्ञान कहलाये। सच्चा ज्ञान किसे कहा जाये ? कि जिसे जब जानें, फिर उसके मुताबिक हुआ ही करे, हमें कुछ करना न पड़े।

★★★

३२०७. माया अर्थात् अज्ञानता! ये अज्ञानता चली जाये फिर माया जैसी कोई वस्तु ही नहीं। सारी माया 'रिलेटिव' है। माया विनाशी है और 'हम' अविनाशी हैं। माया कब तक रहे ? जब तक हमें विनाशी चीज़ों के प्रति मोह होवे, तब तक वो खड़ी रहे। जब हमें 'स्वरूप' का मोह उत्पन्न होवे, तब सब ख़लास!

३२०८. आत्मा प्राप्त होने के पश्चात् ही आत्मधर्म में आ सकें।

★★★

३२०९. आत्मा का धर्म क्या ? सारे धर्मों को जानना। मन-बुद्धि-चित्त-देह ये सब क्या कर रहे हैं, इसे जो जानती रहे, उसीका नाम आत्मा! सब अपने अपने धर्म में हैं और 'तुम' अपने धर्म में रहो।

३२१०. आत्मा का धर्म क्या है ? जानना, देखना और परमानंद के अनुभव में रहना।

३२११. 'वीतरागों' का मार्ग किसी को 'ऑब्स्ट्रेक्ट' (अंतराय) करने का नहीं, अपितु 'एन्करेज' (प्रोत्साहित) करने का है। जहाँ 'ऑब्स्ट्रेक्ट' करने का मन हो, वहाँ उदासीन रहो।

३२१२. 'वीतरागों' को विरोध ना होवे। जहाँ विरोध हो, आग्रह हो, वहाँ वीतराग मार्ग नहीं होता।

३२१३. वीतरागमार्ग में तो झुँझलाहट से ऊँची आवाज में बोलना नहीं है, और मन तो ज़रा भी बिगड़ना नहीं चाहिए।

३२१४. दीक्षा अर्थात् 'ज्ञान' को 'ज्ञान' में बैठाना तथा अज्ञान को अज्ञान में बैठाना। ''ज्ञानीपुरुष'' के सिवा ये दीक्षा कोई नहीं दे सके!

३२१५. जो 'आत्मदशा साधे' वो साधु!

★★★

३२१६. साधु किसे कहा जाये ? जिसके क्रोध-मान-माया-लोभ 'कंट्रोलेबल' (संयमित) होवे, उसके क्रोध-मान-माया-लोभ से किसी को परेशानी न हो।

★★★

३२१७. लोगों को सीधा करने की आवश्यकता नहीं, अपितु हमें ही सीधा होने की ज़रूरत है। जो 'सीधे हुए' वे साधु!

३२१८. जहाँ बाधकता है वहाँ साधु नहीं। साधु ये साधक-बाधक नहीं होता, सिर्फ़ साधक ही होता है।

३२१९. 'अपने कषायों को निरस्त करना' ये ही है साधुपन!

३२२०. जो संसार में रहे, हर तरह से संसारी है, परंतु संसार के भाव में अर्थात् परभाव में नहीं है, स्वपरिणति में है, वो है संन्यासी; या तो स्वपरिणति जिसे शुरुआत हुई है, लेकिन पूर्णाहूति नहीं हुई, वो है संन्यासी !!

३२२१. संन्यस्त किसे कहा जाय ? कि जो परपरिणति को हटाता रहे।

३२२२. जो 'परपरिणाम तथा स्वपरिणाम को समझकर चलते हों', वे 'संन्यासी' कहलाये ।

३२२३. संन्यासी अर्थात् संसार में उसकी मूर्ति दिखे, लेकिन वो मूर्तिरूप न होवे ।

३२२४. जहाँ क्रोध है वहाँ संन्यास नहीं, जहाँ लोभ है वहाँ संन्यास नहीं, जहाँ अहंकार है वहाँ संन्यास नहीं, जहाँ कपट है वहाँ संन्यास नहीं; 'ज्ञान' से ही सच्चा संन्यासी हुआ जा सकता है, और वो भी संसार में रहकर!

३२२५. ये क्रोध-मान-माया-लोभ की सृष्टि कब तक खड़ी रहे ? जब तक 'मैं इन्दुभाई हूँ', ऐसी खुद ने प्रतिष्ठा की हुई है तब तक। मानों इसके बाद वो आचार्य हुआ, तो फिर 'मैं आचार्य हूँ' इसकी प्रतिष्ठा हुई !' मैं शुद्धात्मा हूँ' ये भान हो जाये, 'निजस्वरूप' में आ जायें, तब ये सारी प्रतिष्ठा टूट जाये, और तभी क्रोध-मान-माया-लोभ चले जायें !! अन्यथा चाहे उन्हें कितना भी मार-मार करो फिर भी वे न जायें, बल्कि बढ़ते ही जायें।

★★★

३२२६. क्रोध किसे कहेंगे ? जिसके मूल में हिंसक भाव या तंत (मनो-डंक, कुढ़न) होवे। इसमें एक अपवाद है : माता-पिता अपनी संतान के प्रति क्रोध करें, उसके मूल में हिंसक भाव नहीं होता, मात्र आग्रह ही होता है, अतः वे पुण्य बाँधे।

★★★

३२२७. 'तंत'(मनो-डंक, कुढ़न) रखना ये अहंकार का गुण है और 'हिंसक भाव' ये क्रोध का गुण है।

★★★

३२२८. क्रोध में तंत (मनो-डंक, कुढ़न) और हिंसक भाव न हो तो ये 'उग्रता' कहलाये। लोभ में सातत्य न हो, तो वो 'आकर्षण' कहलाये।

★★★

३२२९. बग़ैर-अहंकार के जो क्रोध-मान-माया-लोभ हैं, वे दुःख न पहुँचाये।

३२३०. तंत (मनो-डंक, कुढ़न) बैर बढ़ाता रहे और तंत निकल जाये तो बैर घटे।

३२३१. जिसका तंत (मनो-डंक, कुढ़न) निरस्त हो जाये, उसका संसार बंद हो जाये ! फिर भले ही संसार यथावत् हो !!

३२३२. जहाँ राग-द्वेष, वहाँ जगत् की स्मृति। राग-द्वेष निर्मूल हो जायें, तो जगत् की विस्मृति।

३२३३. 'ज्ञान' में स्मृति की आवश्यकता नहीं। 'स्मृति' ये पुद्गल है।

३२३४. इस जगत् में कुछ भी याद रखने जैसा नहीं ! आत्मा की इतनी सारी अनंत शक्तियाँ हैं कि जिस वक़्त जिसकी ज़रूरत होगी, उस वक़्त कोई पूछे तो बहुत सुंदर बोल निकले।

३२३५. अज्ञाशक्ति के पास यादशक्ति है और प्रज्ञाशक्ति के पास प्रतिक्रमणशक्ति है।

३२३६. जो कुछ याद आता है, वो प्रतिक्रमण करवाने के लिए याद आता है !

३२३७. जिसके प्रति तुम वीतराग, उसकी स्मृति न रहे। केनेडा आपको हर रोज याद आता है क्या ? नहीं।

★★★

३२३८. जगत् विस्मृत कब होवे ? जब सत् के चरण में होवें तब। असत् के चरण में कभी भी जगत् विस्मृत नहीं होता।

★★★

३२३९. 'ज्ञान' हाज़िर तो दुनिया गैरहाज़िर, 'ज्ञान' गैरहाज़िर तो दुनिया हाज़िर !

३२४०. आत्मा के हेतु जगत् को भूलना, इसीका नाम समकित !

३२४१. 'रिलेटिव' को जो देखे-जाने, वो वीतरागचरित्र ! देखे-जाने फिर भी राग-द्वेष न होवे !!

३२४२. कषाय चले जाना, इसीका नाम 'चारित्र', इसे 'सम्यक् चारित्र' कहा जाये, हालाँकि 'दरअसल चारित्र' तो 'देखने-जानने' को कहते हैं। सम्यक् चारित्र हो तो ही 'दरअसल चारित्र' आये। लोगों को ये चारित्र दिखे नहीं। लोग तो बीवी-बच्चों के त्याग को ही चारित्र कहते हैं।

३२४३. ये सुख कहाँ से आता है ? विषयों में से ? मान में से ? लोभ में से ? कहाँ से ये आता है ? इन किसी में से भी न आता हो, तब समझना कि ये समकित है।

★★★

३२४४. क्रोध-मान-माया-लोभ हैं, तो मानो कुछ भी जाना नहीं, वहाँ सारी निर्बलताएँ ही हैं। जाना तो इसी का नाम कि सारी निर्बलताएँ चली जायें।

★★★

३२४५. इस दुनिया में ऐसी एक भी जगह नहीं कि जहाँ क्रोध करना पड़े। 'क्रोध करना' ये तो दीवार से माथा फोड़ने के बराबर है। नासमझी के कारण मनुष्य क्रोध करे।

३२४६. ये क्रोध-मान-माया-लोभ कौन कराता है ? अंदर ये जो भाव होते है, वो तो 'भावक' करवाता है। अंदर भावक है, क्रोधक है, लोभक है, मानक हैं।

३२४७. आत्मा भाव्य है, भावक भाव करवाते हैं ! उसमें अगर आत्मा जुड़ जाये तो भावक व भाव्य एकाकार हो जायें, तो फिर योनि में बीज पड़े और उससे संसार खड़ा हो जाये। यदि भावक और भाव्य एकाकार न होवे, तो संसार बंद हो जाये।

३२४८. लोग ये मानते हैं कि ये सारे भाव आत्मा करती है, लेकिन ऐसा है नहीं। भावक ही भाव करवाते हैं।

३२४९. जगत् में (सबकुछ) भावक हैं, जबकि 'स्वयं' भाव्य है। भाव्य यदि भाव में एकाकार हो जाये तो फँस जाये। 'तुम' परमात्मा हो, अतः भाव को जानो। ज्ञाता-दृष्टा रहोगे तो फँसोगे नहीं। यदि भावकपन ना हो, तो तुम परमात्मा ही हो।

३२५०. भावक भाव करवाते हैं ! उन्हें यदि सच मान लिया तो फिर उसमें स्वयं जुड़ गया, इसीसे ही बीज पड़ जाय।

३२५१. भावक कौन है ? पूर्व में किये हुए कसूर।

३२५२. जैसे जैसे मैं-पन की प्रतिष्ठा बढ़ती जाए वैसे वैसे क्रोध-मान-माया-लोभ भी बढ़ते चलें ! समाज में जो प्रतिष्ठित पुरुष हो, उसे मान बढ़े, क्रोध बढ़े, लोभ बढ़े ! जब मैं-पन की प्रतिष्ठा उड़ जाये, तो फिर क्रोध-मान-माया-लोभ की सृष्टि भी चली जाये।

३२५३. 'वीतरागों' का विज्ञान कैसा होना चाहिए ? निष्पक्षपाती होना चाहिए। 'पक्षपात' ये सभी गच्छमत हैं।

३२५४. 'मोक्ष' ये किसी पक्ष में रहकर प्राप्त न होवे । 'मोक्ष' और 'पक्ष' ये तो विरोधाभास हुआ।

३२५५. 'वीतराग' का मत सांप्रदायिक नहीं होता। जहाँ 'वीतराग' है, वहाँ संप्रदाय नहीं। जहाँ संप्रदाय है, वहाँ 'वीतराग' नहीं।

३२५६. जहाँ तक पक्षपात है, समझो वहाँ तक वो पूर्णता के अंश में भी नहीं आया। पक्षपात है, वहाँ कर्ता है।

३२५७. पक्षपात से आत्यंतिक कल्याण न होवे, लेकिन पाक्षिक कल्याण होवे।

३२५८. 'पाक्षिक ज्ञान' ये मोक्ष का कारण नहीं। अंततः तो निष्पक्षपाती ज्ञान चाहिए होगा।

३२५९. जो एक 'मिनट' के लिए भी निष्पक्षपाती हो जाये, तो समझो वो भगवान हो जाये। 'निष्पक्षपाती गुण' ये तो वीतरागता है।

३२६०. मोक्षमार्ग में 'तेरी बात ग़लत है' - ऐसा कभी भी नहीं कहना है।

३२६१. 'पक्षपाती होना' ये रौद्रध्यान का बीज है।

३२६२. मतभेद अर्थात् अहंकार की मौजूदगी!

३२६३. बुनियादी मतभेद हो तो मन को विलग कर देवे। एक-दूसरे की अक़्ल में नुक्स निकालें, तो फिर वहाँ बुनियादी मतभेद हो जाये - वहाँ सावधानी बरतनी पड़े।

३२६४. मत यानी खुद का अभिप्राय!

★★★

३२६५. दृष्टिराग यानी जब किसी को लगे कि जहाँ पर मैं हूँ-ये ही सत्य है, ये 'डिग्री' ही सत्य है, फिर वहीं पर वो चिपका रहे, वहाँ से खिसके नहीं!

★★★

३२६६. 'वीतराग' के मार्ग में मतभेद न होवे। जहाँ मतभेद हो वहाँ 'वीतराग' का मार्ग नहीं होता।

३२६७. संसार में टेढापन हो तो चल सके, लेकिन ''ज्ञानी'' के पास टेढ़ा न चले, तभी काम बने। दादाश्री कहते हैं कि हम जब यात्रा पर जाते हैं तब हर जगह दर्शन करते हैं। पक्षवाले तो कहेंगे, 'यहाँ नहीं, हम तो जैन हैं इसलिए वैष्णव के दर्शन नहीं करना है!' इस तरह हर जगह टेढ़ापन किया था-ये भूल साफ़ तो करनी पड़ेगी न ?! इसलिए हम राम के, कृष्ण के, जैन के, सभी मंदिरों में दर्शन करने के लिए जाते हैं।

३२६८. जहाँ स्वाभाविकता आयी हो, वहाँ बाड़ा होता ही नहीं। जहाँ विभाविकता हो, वहाँ ही बाड़े होते हैं। स्वाभाविकता से सहजता उत्पन्न होवे। पेड़-पत्ते, गाय-भैंस सभी में जब भगवान के दर्शन करते हों, जब सब जगह भगवान ही दिखाई देते हों, फिर अलग-अलग बाडों का क्या मतलब ?!

★★★

३२६९. इस द्वैत से आगे लाख 'मील' पर अद्वैत का 'स्टेशन' आये, वहाँ से फिर 'लाख मील' पर शब्द का 'स्टेशन' आये, वहाँ से बहुत दूर निःशब्द का 'स्टेशन' आये, उसके बाद तीन 'स्टेशन' आते हैं : १. सहजप्रतीति का बड़ा 'स्टेशन', २. फिर सहजलक्ष्य का 'स्टेशन' और ३. आख़िर में सहजअनुभव का 'स्टेशन' ! ये सभी बाड़े के बाहर ही होते हैं।

★★★

३२७०. 'संसार में से जो मुक्ति दिलवाये' वो ही सच्चे गुरु। बाक़ी और गुरु तो बहुत से होते है, लेकिन वे किस काम के ?! वैसे तो यहाँ से 'स्टेशन' जाना हो तो भी उस रास्ते का गुरु करना पड़े।

३२७१. रास्ता दिखानेवाले की ज़रूरत कब तक ? उदा. रास्ता दिखानेवाला 'मामा की गली' में पैठे और हमें दिखाए कि 'यहाँ से छठा घर है, वहाँ जाओ'। अतः उसी ज्ञान से हम वहाँ पहुँच सके। हमने जो ज्ञान धारण किया, उसीसे फिर वहाँ पहुँच सकें।

३२७२. जिसमें क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं दिखे, 'मैं' न दिखे, वहाँ पर ही बात सुनना, अन्यथा मोक्ष होनेवाला नहीं।

३२७३. गुरु यानी भारी ! ये संसार समुद्र, ऊपर से उसमें गुरु भारी, और फिर उस पर हम बैठें, तो समझो डूब ही गए समंदर में !

३२७४. गुरुकुंजी के बिना कोई गुरु कैसे हो सके ? "ज्ञानी" गुरुकुंजी देवें, फिर वो न डूबे।

३२७५. जिसे किंचित्मात्र स्वार्थ न हो, उसे ही तुम गुरु बनाना ! मिला कोई ऐसा ?

३२७६. जो शिष्य बने, वो ही तुम्हारा गुरु होगा, अतः सचेत रहना। गुरुपन धारण करके बैठ मत जाना।

३२७७. गुरु में एक भी नुक़्स निकालें, तो ज्ञान आना बंद हो जाये। शिष्य तो गुरु का प्रशंसक होना चाहिए, जो गुरु के पीछे पीछे चलता रहे।

३२७८. गुरु-शिष्य का भेद जिसे कभी न भूले, समझो वो तिर गया ! एक क्षण के लिए भी यदि वो भूल जाये कि 'मैं शिष्य हूँ और वे गुरु हैं' तो फिर गिरा ही समझो; और जो कभी न भूले कि 'मैं शिष्य हूँ', वो तिर जाये।

★★★

३२७९. जहाँ 'ये मेरे हैं' ऐसा माना गया वहाँ क्लेश होवे ही। जहाँ 'मेरे शिष्य' कहा, वहाँ क्लेश होना ही है।

★★★

३२८०. मूर्ति के दर्शन करें तब तक हमारा मूर्तिपद न जाये। अमूर्त के दर्शन करें, तभी काम बने।

★★★

३२८१. अमूर्त आत्मा को देख नहीं सके, अतः सारा जगत् मूर्ति को भजता है। मूर्ति को भजने से मोक्ष न मिले, अमूर्त को भजने से ही मोक्ष मिले।

★★★

३२८२. जब तक अमूर्त के दर्शन नहीं हुए, तब तक मूर्ति के दर्शन अवश्य करने चाहिए। 'मूर्ति के दर्शन' ये तो हिन्दुस्तान का 'सायन्स' है! मंदिर को देखते ही लोग नमस्कार करें !!

★★★

३२८३. विनाशी भाग मूर्त है, निश्चेतन-चेतन है। 'मूर्त भाग' ये आत्मा नहीं। आत्मा अमूर्त है, मूर्ति में रही है। 'अमूर्त' ये 'रियल है ; 'मूर्त' ये तो पेकिंग बॉक्स है।

★★★

३२८४. चेतन सा दिखे, हालाँकि उसका विनाश होनेवाला है, फिर भी उसे ही जगत् 'चेतन' कहता है। हक़ीक़त में वो चेतन नहीं, अपितु निश्चेतन-चेतन है!

३२८५. जो 'अन्य' को 'अन्य' जाने, वो मुक्त। 'अन्य' को 'अन्य' जाने और 'स्व' को 'स्व' जाने वो है महामुक्त।

★★★

३२८६. जब 'अन्य' को 'अन्य' जाने उस समय यदि मन-वचन-काया का योग कंपायमान न होवे, तभी वो 'स्व' को 'स्व' जाने, और अगर कंपायमान होवे, तो 'स्व' को 'स्व' जाना नहीं ऐसा कहा जाये।

★★★

३२८७. जगत् ने 'मानी हुई आत्मा', ये 'मशीनरी सी आत्मा' है और ये चंचल भी है। 'मूल आत्मा' तो अचल है! अगर इतना समझ लिया होता तो भी मोक्ष हो जाता।

★★★

३२८८. आत्मा जब अपने स्व-गुण को जाने, स्व-स्वरूप को जाने, स्वज्ञान को जाने, तभी 'इनइफेक्टिव' होवे।

★★★

३२८९. आत्मा तो वैसी की वैसी ही है, हालाँकि मन-वचन-काया 'इफेक्टिव' होने के कारण ये संसार खड़ा हुआ है! ये बात पहली दफ़ा ही बाहर आयी। ये 'इफेक्टिव' नहीं होते, तो कोई तकलीफ़ ही नहीं थी!

★★★

३२९०. ये मन-वचन-काया की 'इफेक्ट्स' अपने आप होती रहती है, परंतु 'स्वयं' अंदर 'कॉज़िज' करता है, आधार देता है कि 'मैंने किया, मैं बोला'! 'इफेक्ट्स' में तो किसी को करने की ज़रूरत ही न रहे । वो तो अपने आप ही सहजभाव से 'इफेक्ट' होती है लेकिन उसे 'हम' समर्थन देते हैं कि 'मैं करता हूँ', ये भ्रांति है और वो ही 'कॉज़' है और फिर इस 'कॉज़' का 'कॉज़' यानी 'रूटकॉज़' अज्ञानता है!

३२९१. ये सारा जगत् 'विज्ञान' ही है और भगवान उसमें विचरण करते हैं। जैसे एक वैज्ञानिक, हो रहे प्रयोग को देखा करे, वैसे ही भगवान भी हैं।

३२९२. जगत् कहता है कि 'आत्मा की इच्छा से ये सब खड़ा हो गया है'। अगर आत्मा इच्छावान हो, तो फिर उसकी इच्छा का कभी भी अस्त ही नहीं होता।

३२९३. आत्मा का स्वभाव अनंतगुणी होने के कारण आत्मा से स्पर्श होते ही 'चार्ज' हो जाये। 'मैं तिलक हूँ' ये कहते ही ज़बरदस्त 'चार्ज' हो जाये, फिर 'थियरी ऑफ रिलेटिविटी' (सापेक्षवाद) में ही रहना पड़े। इसमें आत्मा खुद तो कुछ भी नहीं करती ! वो तो बिल्कुल स्थिर है, मगर मन चलता है, क्योंकि 'मन' ये 'डिस्चार्ज' स्वरूप है।

३२९४. जैसे ये 'बेटरी' 'पॉवर' से चलती है, वैसे ये जगत् भी 'पॉवर' से चल रहा है ! ये 'पॉवर' उतर जाये, तो वो बंद हो जाये, लेकिन 'पॉवर' के उतर जाने से पहले फिर दूसरा 'पॉवर' भर जाता है। अतः ये 'चार्ज' होवे और 'डिस्चार्ज' होवे !

★★★

३२९५. जगत् को चलाने के लिए आत्मा को कुछ करना ही नहीं पड़ता। इन सब 'प्रतिष्ठित आत्माओं' के जो परिणाम हैं, वे बड़े 'कम्प्यूटर' में जाते हैं। फिर अन्य सारे 'एविडन्स' इकठ्ठा होकर वो 'कम्प्यूटर' के मारफ़त बाहर आते हैं, वे रूपक में आते हैं। उसे 'व्यवस्थित शक्ति' कहते हैं, 'ओन्ली साइन्टिफिक सर्कमस्टेंशिअल एविडन्स' !

३२९६. आत्मा तो शुद्धात्मा ही है, लेकिन हमें 'राँग बिलीफ' थी कि 'मैं रसिकभाई हूँ,' लोगों ने तुम्हें कहा, कि 'तुम रसिकभाई हो', फिर तुम भी ये मानकर काम करने लगे ! फिर क्या हुआ ? इस मूर्ति में 'मैं हूँ' ऐसा मानकर उसकी प्रतिष्ठा करते हो, इसलिए नयी मूर्ति गढ़ी जा रही है, अतः प्रतिष्ठित आत्मा फिर से प्रतिष्ठित हो रही है, जिससे अगले 'जनम' में 'तुम' और प्रतिष्ठित आत्मा ये दोनों एकसाथ रहोगे। 'स्वरूपज्ञान' के बाद नयी प्रतिष्ठित आत्मा नही बँधती और पुरानी 'एक्ज़ोस्ट' (खलास) होती रहती है।

★★★

३२९७. तुम 'फाइलों का निपटारा' करो ! वे 'फाइलें' प्रतिष्ठित आत्मा की हैं, वे हमारे कसूर हैं, क्योंकि 'हमने' अज्ञान भाव से ये सब खड़ा किया है।

३२९८. भावमन से नयी प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न होती है, जबकि द्रव्यमन अर्थात् 'डिस्चार्ज' हो रही प्रतिष्ठित आत्मा। अहंकार हो, तो ही 'चार्ज' होवे।

★★★

३२९९. भावमन अर्थात् अस्तित्व का स्थापन करना, जहाँ 'स्वयं' नहीं, वहाँ अस्तित्व का स्थापन करना।

★★★

३३००. अब जो प्रतिष्ठित आत्मा है, वो मूल 'आत्मा' की प्रतिनिधि है, अतः प्रतिष्ठित आत्मा दोष करे, लेकिन ये पहुँचे 'मूल आत्मा' को !

★★★

३३०१. शरीर में आत्मा कुछ भी नहीं करती, केवल प्रकाश ही डालती है, फिर मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार उसके प्रकाश में कार्य करते रहते हैं। ये 'अंबुभाई' 'कम्पलीट' 'डिस्चार्ज' हैं।

३३०२. आत्मा कैसी है ? आत्मा इतनी सूक्ष्म है कि आहार तो उसे स्पर्श तक ना करे, विषय भी उसे स्पर्श ना करे । ये लोग कहते हैं, 'मैंने विषय भोगा', ये बात ही ग़लत है । वो तो केवल अहंकार करता रहता है, इसीसे ही संसार-बँध लग जाता है। आत्मा विषय को भोग ही नहीं सकती । आत्मा का बहुत सूक्ष्म स्वरूप है जबकि विषय इतने स्थूल हैं कि दोनों का मेल कभी हो ही न सके! ये सारी बातें 'स्वयं' शुद्धस्वरूप होने के बाद ही लागू होती हैं।

★★★

३३०३. भगवान कहते हैं-'आत्मा को अग्नि जला नहीं सकती, अग्नि स्थूल है जबकि आत्मा सूक्ष्म स्वरूप है। सूक्ष्म को स्थूल कभी जला न सके।'

★★★

३३०४. जब तक ''ज्ञानीपुरुष'', शुद्ध न करायें, तब तक कैसे शुद्ध हो सके ? ''ज्ञानीपुरुष'' शुद्ध कराये, तत्पश्चात् तुम्हें शुद्ध उपयोग उत्पन्न होवे, तभी 'शुद्ध' कहा जाये।

★★★

३३०५. 'स्वरूपज्ञान' के बाद संपूर्ण चित्तशुद्धि हो जाय, इसीका नाम केवलज्ञान, वहाँ तक 'केवलदर्शन' कहा जाय।

★★★

३३०६. 'स्वरूप' के बाहर कहीं भी चित्त जाये, उसे 'वीतरागों' ने 'परिग्रह' कहा है। ये परिग्रह छूटे, तो ही मोक्ष जा सकोगे!

★★★

३३०७. ''ज्ञानी'' 'स्वरूपज्ञान' देते हैं तब कोई एक समय के लिए शुद्धचित्त को पाता है। इस एक समय की ही ज़रूरत है! एक ही समय के लिए जिसे चित्तशुद्ध हो गया, तो समझो काम बन गया ; फिर केवलज्ञान तक वो उसे न छोड़े।

३३०८. ये जो जगत् है उसे सत्य मानना और उसमें ही रमण करना–ये है अशुद्ध चित्त और इस जगत् का जो ज्ञान–दर्शन है, वो सच नहीं ऐसा मानना और सच्ची वस्तु में रमणता रखना, उसीका नाम शुद्ध चित्त। 'शुद्ध चित्त' ये ही शुद्धात्मा है।

३३०९. अशुद्ध चित्त की भी ज्ञान–दर्शन शक्ति होवे।

३३१०. विशेष ज्ञान और विशेष दर्शन यानी अशुद्ध चित्त।

३३११. चित्त का स्वभाव है भटकते ही रहना। चाहे उसमें अहंकार जुड़े या न भी जुड़े, लेकिन चित्त तो भटकता ही रहे!

३३१२. चित्त किसी और जगह पर हो, तो भी संसारी कार्य हो सके, क्योंकि संसार के साथ उसका अशुद्ध चित्त जुड़ा ही होता है।

★★★

३३१३. जो चित्त ज्ञाता–ज्ञेय को देखे, वो है शुद्ध चित्त!

★★★

३३१४. 'ज्ञान, दर्शन इकट्ठे' इसी का नाम चित्त! ये चित्त यदि अपने 'स्वरूप' की तरफ़ न मुड़कर दूसरी तरफ़ देखे तो अशुद्ध हो जाये, अन्यत्र दृष्टि जाये तो 'अशुद्ध' कहलाये; अपने 'स्वभाव' की तरफ़ देखे तो 'शुद्ध' कहलाये।

३३१५. लोगों के चित्त संसारदृष्टि की तरफ देखते हैं, इसलिए क्रोध-मान-माया-लोभ सब पैदा होते हैं और उसमें से बहुत दु:ख आता है ! लेकिन उसका उपाय नहीं मिलता। इसीलिए जहाँ 'ठंडक' लगे, वहाँ राग करे, और 'गर्मी' लगे, वहाँ द्वेष करे !

★★★

३३१६. विचार आये इसे संकल्प-विकल्प नहीं कहा जाता। विचारों में तन्मयाकार होना, उसीका नाम संकल्प-विकल्प !

★★★

३३१७. मन गाँठों का बना हुआ है। मन में जो विचार आते हैं, वे मनोग्रंथि से उत्पन्न होते हैं ! विचार जब आये तब उनसे दूर रहें, विचारों में तन्मयाकार न होवें, उनका ज्ञाता-दृष्टा रहें तो 'ग्रंथिभेद हुआ' कहलाये। विचारों में तन्मयाकार हो जायें, तो जैसे विचार आते हो, वैसा ध्यान उत्पन्न होवे।

★★★

३३१८. मन की गाँठो में से विचार फूटते हैं, इसे कौन संचालित करता है ? 'नेचर' ! हालाँकि, तुम्हें समझना चाहिए कि-'ये ज्ञान ग़लत है, अहितकारी है', फिर ये समझयुक्त 'ज्ञान' ही गाँठों का छेदन कर देवे। इस जगत् में 'ज्ञान' अकेला ही प्रकाश है जो मन की गाँठों का छेदन कर सके।

★★★

३३१९. 'मन को आत्मा में लीन करना' ये बड़ा गुनाह है। प्रेक्षक और 'फिल्म' दोनों एक हो जायें, तो फिर क्या देखें ? मन तो 'फिल्म' दिखाये, उसका हमें ज्ञाता-दृष्टा रहना है। सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम संयोगों का ज्ञाता-दृष्टा रहना है।

★★★

३३२०. 'मन' ये तो 'गत-आत्मा' कहलाये। बीते 'माइल' की 'आत्मा' अलग, इस 'माइल' की 'आत्मा' अलग और आनेवाले 'माइल' की 'आत्मा' भी अलग!

३३२१. 'जगत्' ये प्रमेय है और आत्मा 'प्रमाता' कहलाती है। सारे बह्मांड में आत्मा प्रकाशमान होवे, तभी वो सच में 'प्रमाता' कहलाये। प्रमेय पूरा ब्रह्मांड है, लोकविभाग है, अलोक विभाग नहीं।

३३२२. 'स्वरूप का भान' होने से पहले प्रतिष्ठित आत्मा को ही हम 'ज्ञाता' मानते थे। 'स्वरूपज्ञान' के बाद वो 'ज्ञाता' खुद ही ज्ञेय हो जाये और वहाँ फिर 'जागृति' ही 'ज्ञाता' बन जाये, हालाँकि 'मूल आत्मा' तो इससे भी आगे है! संपूर्ण जागृत हो जाने पर, 'मूल आत्मा' में एकाकार हो जाये, तब तक अंतरात्मा रूप में रहे, जहाँ बहिर्मुखी पद छूट गया होता है! अंतरात्म दशा पूरी हो जाने पर परमात्मपद प्राप्त होवे।

३३२३. जागृति का परिणाम सूक्ष्मता लाये, हालाँकि सूक्ष्मता से तो अभी बहुत आगे जाना होगा। वे सारे किले पार कर लें, तब आत्मा स्वसंवेदन में आये! स्वसंवेदन बढ़ते बढ़ते अंततः स्पष्ट वेदन उत्पन्न होवे।

३३२४. किसी भी जीव को किंचित्‌मात्र दुःख न होवे, ऐसा अपना 'अव्याबाध-स्वरूप' है, फिर भी खुद 'मैं साँप हूँ', ऐसा मानके, आरोपित भाव करके सामनेवाले को काट ले, तो वो मर जाये। देखो, ये भी अजूबा ही है न ! क्योंकि उसकी मान्यता है। जैसा माने वैसी शक्ति उत्पन्न हो जाये ! 'इसे मार ही डालना है', ऐसा यदि नक्की किया हो, तो वैसा ज़हर अंदर उत्पन्न हो जाये, हालाँकि जैसा माने, वैसी शक्ति उत्पन्न होना इसकी स्वतंत्रता होती, तो सब कुछ तरह तरह का हो गया होता, लेकिन बीच में 'नेचर' आती है। इस शक्ति के सामने फिर प्रतिकार शक्ति भी 'नेचरली' होगी, अतः प्रतिकार में खुद उलझ जाता है ! अन्यथा स्वयं की ग़ज़ब की शक्तियाँ हैं, अनंत शक्तियाँ हैं, लेकिन शक्ति बरबाद हो रही है।

३३२५. भावशक्ति तो ज़बरदस्त शक्ति है, जगत् में सामर्थ्य दिखाये ऐसी शक्ति है, परंतु सामने 'नेचर' भी तो है न ! सामर्थ्य दिखाने की 'लिंक' मिले नहीं न ? कभी किसी को ही वो 'लिंक' मिल जाये। बिरले ही कोई मनुष्य ठेठ ऊपर जाकर कैसे कैसे सरस सामर्थ्य दिखाते हैं ! जैसे कि तीर्थंकर !!!

३३२६. सांसारिक आत्मा के पास भावना भाने के अलावा अन्य कोई शक्ति नहीं और भावना भी तो 'साइन्टिफिक सर्कमस्टेन्सिअल एविडन्स' के आधार पर उत्पन्न होवे। खुद की इच्छा के अनुसार भावना भा नहीं सकते, और इसमें भी भावना अकेली ही करने की छूट है, बाक़ी सब 'मिकेनिकल' है। 'मिकेनिकल' में हस्तक्षेप करो, तो हाथ जल जाये ! 'भावना' अकेली ही पुरुषार्थ है।

३३२७. भावना कैसी हो रही है, उस पर से हमें हिसाब लगाना है। खराब भावना आती रहती हो, तो समझ लेना कि कुछ बिगड़ने का समय आया है, अत: तब हमें अपने आप को समेट लेना है। खुद के प्रति निष्पक्षपातीपन का भाव रखें, तो ये हो सके! हालाँकि हमारे हाथ में संपूर्ण सत्ता तो है ही नहीं।

★★★

३३२८. भावना और प्रतिभावना करने की सत्ता है, लेकिन वो करने की शक्ति कुछ ही लोगों की होती है। प्रतिभावना करने से क्या हो ? आज की भावना में कोई फेर (बदलाव) न हो, परंतु आनेवाला भव न बिगड़े, 'प्रिन्ट' मिट जाये ; हालाँकि इस भव में तो उसका फल मिले बिना रहेगा ही नहीं।

★★★

३३२९. मनुष्य से एक राई के दाने जितना भी फेरबदल नहीं हो सके, और जहाँ फेर हो सकता है उसे वो जानता नहीं! 'राई का दाना इधर-उधर करना है' ऐसा भाव किया तो किसी दिन ये होगा!! जब भाव ही न किया हो, तो ये कैसे हो ?! अज्ञानदशा में जो भाव किये थे, उनका ये सब फल मिला। अब ज्ञानदशा में भाव नहीं करना है, अब तो 'स्वभाव' कहलाये। 'स्वभाव' ये स्वधर्म और 'भाव' ये परधर्म।

★★★

३३३०. आत्मा निरालंब है, बिल्कुल निरालंब है! कुछ भी 'टच' नहीं हो पाए, ऐसी आत्मा तुम में है और सभी में भी ऐसी ही आत्मा है!! फाँसी पर चढ़ाये तो भी देह फाँसी पर चढ़े, आत्मा न चढ़े। देह का भेदन कर दे तो भी आत्मा का भेदन न हो। जिसे आत्मा प्राप्त हो गई, उसे फिर भय किस बात का ?!

३३३१. जगत् अवलंबन के बग़ैर जी ही नहीं सकता। कोई न कोई अवलंबन तो चाहिए ही। मन को खुराक चाहिए। जो अवलंबनरहित हुआ, वो मुक्त हुआ।

३३३२. 'सत्' ये निरालंब वस्तु है! वहाँपर 'अवलंबन' लेकर खोजने जाएँ तो वो कैसे मिले?! ये तो एक ''ज्ञानीपुरुष'' का अवलंबन लें, तो काम बने, क्योंकि ये सबसे अंतिम साधन है! आत्मा निरालंब है।

★★★

३३३३. इस जगत् में ऐसा कोई कारण नहीं जो किंचित्मात्र भी क्लेश करने योग्य हो। क्योंकि आत्मा सुख-परिणामयुक्त है, उसका सुख कोई छिन सके ऐसा नहीं। स्वयं अव्याबाध-स्वरूप है! बहुत ऐश्वर्य है उसके पास। अतः इन परायी वस्तुओं में, 'फॉरेन डिपार्टमेंट' में, 'इतना ज़्यादा' गौर नहीं करना चाहिए। 'फॉरेन' में 'सुपरफ्लुअस।'

★★★

३३३४. आत्मा कैसी है? 'अव्याबाध'! जो किसी को किंचित्मात्र भी दुःख न पहुँचाये!! और हर किसी की आत्मा अन्य को किंचित्मात्र भी दुःख न पहुँचाये, ऐसी है!!! परंतु मान्यता में कितना बड़ा फ़र्क़ है! क्योंकि अज्ञान- मान्यताएँ हैं, वे कैसे जायें?!

★★★

३३३५. ''ज्ञानीपुरुष'' ने ऐसी आत्मा जानी है कि जो किसी को किंचित्मात्र दुःख न पहुँचा सके! अव्याबाध-स्वरूप!!

३३३६. शुद्धात्मा स्वयं स्वभाव से ही 'असंग' है, फिर हमें उसे असंग करना कहाँ रहे?

★★★

३३३७. जैसा संग वैसा रंग लगे। आत्मा 'असंग' है। तुम 'असंग' हो, तो तुम्हें रंग छूए तक नहीं, वो तो 'नवनीत' को छूता है। 'हमें' तो बस 'जानते' रहना।

३३३८. स्पष्ट वेदन कब होवे ? जब संसारी 'संग-प्रसंग' न होवे तब। संसारी संग से हर्ज नहीं, अपितु 'प्रसंग' से हर्ज है। जब इस देह का संग ही भारी पड़ गया है, तो फिर 'प्रसंग' करने क्यों जाएँ ?

३३३९. है खुद असंग, लेकिन पड़ गया है संग-प्रसंग में !

३३४०. क्रोध-मान-माया-लोभ अपने 'डिस्चार्ज' भाव में खड़े हो जाये-ये है 'संग' और सामनेवाले के निमित्त से खड़े हो जाये-वो है प्रसंग !

★★★

३३४१. 'असंग'-सत्संग ये ही सच्चा सत्संग ! पौद्‌गलिक संग को 'कुसंग' कहते हैं।

३३४२. ''ज्ञानीपुरुष'' ये 'मूर्तिमान मोक्षस्वरूप' कहलाये। मूर्तिमान मोक्ष यानी 'परम सत्' ! परम सत् के संग में अकारण ही बैठे रहें, तो भी वो परम सत्संग है, उसका फल मिलता ही रहे।

★★★

३३४३. तृष्णा अनंत है, मनुष्यों के विकल्प असंख्यात हैं, इसमें फिर मनुष्यों का मेल कैसे बैठे ?

३३४४. लोगों को संतोष होता है किन्तु तृप्ति नहीं होती। संतोष क्यों होता है ? उसने इच्छा की थी कि 'रस-पूड़ी खाने को मिल जाये तो अच्छा', फिर ये मिले तब संतोष हो जाये, लेकिन तृप्ति नहीं होती। तृप्ति तो ''ज्ञानी'' को होती है।

३३४५. फिर से भोगने की इच्छा न होवे, इसीका नाम तृप्ति!

३३४६. संतोष ये तो परिणाम है। पूर्व में संतपुरुषों की बात सुनी हो, उसके परिणामस्वरूप संतोष उत्पन्न होता है।

३३४७. संतोष का सही अर्थ है समतृष्णा!

★★★

३३४८. जो आशा, निराशा में परिणमित हो जाये, वो आशा किस काम की ?!

★★★

३३४९. गाड़ी तुम्हें मिलेगी ऐसी आशा रखो, लेकिन अगर गाड़ी छूट गई, तो ये मान लेना कि आशा ही नहीं रखी थी!

★★★

३३५०. संसार की आशा रखें, लालच रखें, तब भी वो ही का वो ही फल आनेवाला है ; तो फिर उसका लालच ही क्यों रखना ?!

३३५१. मनुष्य लालच में लिपटा हुआ है, इसीसे ही संसार खड़ा है! सारा जगत् लालच में ही लिपटा हुआ है।

३३५२. जिसे लालच न रहे, वो ब्रह्मांड का स्वामी है।

३३५३. लालच दीनता करवाये और दीनता हो जाये तो फिर मनुष्यत्व खो बैठे।

३३५४. लालच पैठ जाये फिर सब कुछ पैठ गया समझो। 'कितना सुंदर' ये कहा कि समझो लालच पैठी!

३३५५. इस दुनिया में कौन छला जाये ? लालची ! यदि खुद लालची न हो, तो उसे भगवान भी छल न सके। लालच न होवे तभी जगत् कल्याण हो सके।

★★★

३३५६. भगवान ने एक शर्त रखी थी कि लाचार मत होना!

★★★

३३५७. लाचारी का कारण क्या ? लाचारी का कारण है 'अहंकार' । बहुत 'अहंकार' होवे, तब लाचारी का अनुभव होता है।

★★★

३३५८. 'वास्तविक' जाने बिना कोई भी मनुष्य स्वतंत्र नहीं हो सकता; बाक़ी, जगत् तो स्वतंत्र ही है!

३३५९. हर एक जीव संपूर्ण स्वतंत्र है ! खुद की अज्ञानता के कारण उसे यह सब दिखता है।

३३६०. इस जगत् में कोई जीव किसी अन्य जीव को किंचित्मात्र भी दख़ल पहुँचा ही नहीं सकता। हर एक जीव संपूर्ण स्वतंत्र है। यहाँ तक कि भगवान भी दख़ल न दे सके, ऐसी स्वतंत्रता है !

३३६१. किसी भी तरह के 'इफेक्टस' में–असरों में, 'मैं मुक्त ही हूँ', ऐसा बरते, ये ही सच्ची आजादी !

३३६२. संसार स्पर्श न करे, इसीका नाम मुक्ति ! 'संसार की उपाधि न छूए'–ये ही मुक्ति !! सारे जगत् के तमाम जीवों को मुक्ति की झँखना (तीव्र इच्छा/आकांक्षा) होवे।

३३६३. इस जगत् में कोई भी चीज़ मुक्ति न दिलाये। शास्त्र के ज्ञान से मुक्ति नहीं अपितु ''ज्ञानी'' के 'ज्ञान' से मुक्ति होवे।

★★★

३३६४. मोक्ष यानी संपूर्ण मुक्त भाव ! जहाँ भाव का अभाव है, वहाँ मोक्ष है।

३३६५. मोक्ष अर्थात् सनातन सुख, सर्व दुःखों से आत्यंतिक मुक्ति !

३३६६. अहंकार व ममता का मोक्ष करना है। तुम्हारा तो मोक्ष है ही, तुम्हारा स्वरूप ही मोक्ष स्वरूप है। ये 'इगोइज़म' रूपी पच्चर मोक्ष नहीं होने देती।

३३६७. जो परवश करे, उसका संग कैसे किया जाए ?!

३३६८. 'टेढ़े के साथ टेढ़ा होना' ये जगत् का स्वभाव है। 'टेढ़े के साथ सीधा रहना' ये ''ज्ञानियों'' का स्वभाव है।

३३६९. टेढ़ापन खड़ा होने पर मनुष्य कुरूप दिखे, जबकि टेढ़ापन चला जाये तो रूपवान दिखे।

३३७०. जो हमारी 'लाइन' नहीं, जो हम जानते नहीं, उसका तोल कैसे कर सकते हैं ?! अपनी बुद्धि से ''ज्ञानी'' की वाणी समझ में न आये, तो जान लेना कि उतना टेढ़ापन अंदर भरा पड़ा है।

३३७१. दुष्ट के आगे हम झुकें, तो वह ज़्यादा अकड़ करे, जबकि नम्र के आगे झुकें, तो वह अधिक विनम्र हो जाये।

★★★

३३७२. 'टेढ़ापन' ये ही अज्ञान ! मोक्ष जाने में ये 'मोटरें'-बंगला आड़े नहीं आते, लेकिन टेढ़ापन बाधा करे।

★★★

३३७३. जो सीधा-सरल होगा, वो मोक्ष में जायेगा जबकि टेढ़ा होगा, वो भटकता रहेगा। जितना सुकुमार उतना ही मोक्ष के लायक। ये 'डेवलपमेन्ट' की निशानी है !

३३७४. सरल यानी जैसा भीतर सूझे, वैसा बोले।

३३७५. सरलता दो प्रकार की : एक, अज्ञान-सरल; और दूसरी ज्ञान से सरल। अज्ञान-सरल ये भोले-भाले होते हैं और अज्ञानता के कारण छले जाते हैं; जबकि ज्ञान-सरल तो जानबूझकर छला जाये।

★★★

३३७६. बुद्धिपूर्वक की नम्रता, बुद्धिपूर्वक की सरलता और बुद्धिपूर्वक की पवित्रता; ये सब गुण होवें, तो ही मोक्ष के दरवाज़े में दाखिल हो सकें। इन सब गुणों का संग्रह हो, तब ही ''ज्ञानी'' से भेंट होवे, इन गुणों के बग़ैर ''ज्ञानी'' से भेंट न हो पाये।

★★★

३३७७. यह 'वीतराग भगवान' कभी भी 'हमारा मार्ग सच्चा है' ऐसा दबाव न डालें, क्यों ? अगर वे दबाव डालें, तो उनकी वीतरागता टूट जाये। मोक्ष निराग्रही का होवे, आग्रही का नहीं। 'वीतराग भगवान' कभी भी आग्रह न करें। 'आग्रही' तो पक्ष में पड़ जाये और पक्षपाती का कभी भी मोक्ष न होवे।

★★★

३३७८. किसी के भले के लिए यदि आग्रह करें, तो ये ग़लत नहीं कहलाये, हालाँकि हमारे आग्रह करने पर सामनेवाला यदि उसका अपना आग्रह करे, तो हमें छोड़ देना है। 'आग्रह' ये ज़हर है।

★★★

३३७९. 'आग्रह' ये अहंकार का 'फोटो' है। सामनेवाले का अहंकार उसके आग्रह पर से समझ में आये।

३३८०. जिद्द पर आ जाना यानी अपना स्थान छोड़कर नीचे गिरना।

३३८१. 'ज्ञान' की बातों से कल्याण नहीं, अपितु निराग्रहता से मोक्ष है।

३३८२. आत्मज्ञान के लक्षण कौन से ? निराग्रही होवे, जिसे किसी भी प्रकार के आग्रह नहीं हों।

३३८३. निराग्रही को कोई भी ग्रह बाधा न करे।

३३८४. 'हम निराग्रही हैं' ऐसा भी आग्रह नहीं, इसीका नाम स्याद्‌वाद !

३३८५. 'निराग्रहता' ये ही वीतरागता है।

३३८६. 'दोष दिखें' ये संसार की अधिकरणक्रिया और 'निर्दोष दिखे' ये मोक्षक्रिया।

३३८७. ''ज्ञानी'' तुम्हें खुलकर कहते हैं, कि तुम्हारी 'बाउन्ड्री' में हस्तक्षेप करने की शक्ति किसी में नहीं; यदि तुम्हारी भूल है, तो कोई भी हस्तक्षेप करेगा। अरे, डंडा भी मारेगा !

३३८८. खुद के दोष दिखें, तब से समझो तैरने का उपाय हाथ लग गया !

★★★

३३८९. मोक्ष में जानेवाला खुद की ग़लतियाँ देखा करे, जबकि दूसरों की ग़लतियाँ देखनेवाला संसार में भटकता रहे।

३३९०. गुनहगार को 'दंड' देने का अधिकार है, लेकिन द्वेष रखने का नहीं। 'दंड' ये तो जो भाग सड़ गया है उस हिस्से की मरम्मत है। बाक़ी, है तो वह आत्मा ही, परमात्मा ही है! 'बाय रियल व्यूपॉइन्ट, ही इज शुद्धात्मा।'

★★★

३३९१. मनुष्य पूर्वग्रहरहित हो जाये, तो वह परमात्मा हो जाये।

★★★

३३९२. ये इन्द्रियाँ बाधक नहीं बनती, अभिप्राय बाधक बनता है।

★★★

३३९३. जैसा अभिप्राय बरतता है, वैसा अगले जनम का बीज पड़ता है, वहीं पर 'चार्ज' होता है।

★★★

३३९४. अभिप्राय की वजह से ये सब वस्तुएँ रही हैं। अभिप्राय के कारण वस्तुओं के प्रति रस रहा है। 'वस्तु' का त्याग नहीं करना है किन्तु 'वस्तु का जो अभिप्राय है वो ग़लत है' – ऐसा समझना है।

★★★

३३९५. सामनेवाला 'कंजूस है' ऐसा अभिप्राय होवे, तो उसके प्रति 'वो नोबल है' ऐसा प्रतिपक्षी अभिप्राय 'क्रियेट' (उत्पन्न) करना है।

★★★

३३९६. यदि मनुष्य पूर्वग्रह रहित हो जाय, तो कल्याण ही हो जाये। कल के झगड़े के लिए आज मैं यदि पूर्वग्रह रखूँ, तो ये मेरी भूल है, चाहे फिर दूसरे दिन भले ही तुम वैसे ही रहो। पूर्वग्रह के कारण सारा जगत् मार खा रहा है। तुम, जैसे हो वैसा मानते नहीं, और तुम जो नहीं, वैसा मानते हो।

३३९७. संयोगावशात् के चोर को 'चोर' नहीं कह सकते। संयोगवश तो राजा भी चोरी करे। अत: पूरे यकीन के बिना अभिप्राय नहीं देना है। पूरा यकीन करने की शक्ति भला किस में है ?

३३९८. जिसे पूज्य माना, वे फिर चाहे कितना भी खराब करे, फिर भी तुम अपनी दृष्टि मत बिगाड़ना ! ये पहले से मेरा सिद्धांत है। मैंने जिस पौधे को सींचकर बड़ा किया हो, वहाँ से अगर 'रेल्वे लाइन' ले जानी हो, तो मैं उसे मोड़ दूँ, लेकिन मेरे सींचे हुए पौधे को उखाड़ूँगा नहीं। अभिप्राय तो क्या, लेकिन सामनेवाले के प्रति दृष्टि भी नहीं बदलनी चाहिए। ये सिद्धांत होना चाहिए !

३३९९. 'वीतराग-विज्ञान' कैसा है ? यदि ये अभिप्राय बँधा कि 'यह व्यक्ति ग़लत है और यह दोषी है', तो ये अभिप्राय बाँधनेवाला पकड़ा जाये !

३४००. 'करना पड़े' ऐसा बोलने में हर्ज नहीं, लेकिन जब तक ऐसा अभिप्राय बरते, तब तक आत्मा पूर्ववत् नहीं होगी। 'किए बिना होवे ही नही' ऐसा अंदर अभिप्राय बरतता हो, तो जब तक वो जाये नहीं तब तक 'व्यवस्थित' पूरी तरह से समझ में नहीं आयेगा। ये बात सूक्ष्म भी है और स्थूल भी है। समझ लें, तो काम बन जाये। अभिप्राय के कारण ही तो आत्मा का पूरा अनुभव अटका हुआ है।

★★★

३४०१. 'खुद का' ज़रा सा भी अभिप्राय पैठ जाये, तो समाधि टूट जावे। खुदपन को ही खो देना है। 'ऐसा तो करना ही चाहिए, ऐसा तो करना ही नहीं चाहिए', इस प्रकार अभिप्राय रखें, तो समाधि टूटे। जहाँ थोड़ा भी खुदपन होवे, तो वो सब दख़ल ही है।

३४०२. खुदपन का नाश कब होवे ? जब पूर्णत: आज्ञा में रहें तब ! आज्ञा में रहें, फिर स्वच्छंद रहे ही नहीं न ?!

३४०३. मुक्त पुरुष की आज्ञावश रहना, इसीका नाम धर्म ! फिर पुस्तक का कोई काम नहीं।

३४०४. कौन सा धर्म करें ? "ज्ञानीपुरुष" की आज्ञा में रहना-वो ही। आज्ञा ये ही धर्म और आज्ञा ये ही तप। धर्म क्या है ? खुद के 'स्वरूप' में रमणता करना ! लौकिक धर्म यानी भगवान की आज्ञा में रहना।

३४०५. आज्ञा भूले तब से दु:खदायी; आज्ञा में रहो तब से सुखदायी।

३४०६. "ज्ञानीपुरुष" की आज्ञापूर्वक चलकर, चाहो तो अंतिम लक्ष्य भी प्राप्त कर सकते हो ! ऐसा समय बार-बार नहीं आता।

★★★

३४०७. "ज्ञानीपुरुष" की 'पाँच आज्ञा' के बाहर इस जगत् का एक भी परमाणु नहीं।

★★★

३४०८. तुम "ज्ञानीपुरुष" की पाँच आज्ञा में रहो, ये ही पुरुषार्थ है, ये ही धर्म है ! अन्य कोई पुरुषार्थ नहीं। इसमें सब कुछ आ गया समझो !

३४०९. ''ज्ञानीपुरुष'' की एक भी आज्ञा का यदि संपूर्ण पालन करें, तो एकावतारी हुआ जा सके। पर हाँ, यदि अबुध होकर काम निकालें तो। आगे फिर जैसी जिसकी समझ !!

३४१०. ''ज्ञानीपुरुष'' के पाँच 'फन्डामेन्टल' वाक्य हैं, इन से पूरे 'वर्ल्ड' को यदि काम निकाल लेना हो, तो संभव है। 'स्वरूप का ज्ञान' भले न भी होवे, फिर भी इन वाक्यों की आराधना से काफ़ी काम बन जाये।

३४११. तुम्हें 'आज्ञा में रहना है' – ये नक्की करना है, फिर 'आज्ञा में रखना' ये कुदरत का काम है।

३४१२. 'आज्ञा देना' ये कोई आसान वस्तु नहीं, उसके पीछे तो 'ज्ञानी' का प्रत्यक्ष बल चाहिए ! ये तो ऐसा संयोग आये, तभी आज्ञा दी जा सके।

३४१३. ''परस्त्री माता समान होनी चाहिए, नीतिपूर्ण धन आना चाहिए, और तीसरा, मुझे कुछ भी नहीं आता !'' इतना जिसे हृदयस्थ हुआ, उसकी जिम्मेदारी ''ज्ञानीपुरुष'' लेते हैं।

३४१४. संसार के सार में सार, तो अकेले ''ज्ञानीपुरुष'' ही हैं।

३४१५. जो हमें दुःखमुक्त कर दे, वो ''ज्ञानी'', जो दुःख बढ़ाये वो ''ज्ञानी'' नहीं।

३४१६. आत्मा को जाने तब से वो 'सत्पुरुष' कहलाये और आत्मा को जानकर, उसीमें ही मुक़ाम करे, उसीमें ही उनकी क़ायम स्थिरता बनी रहे, वे ''ज्ञानीपुरुष'' कहलाये।

३४१७. जब तक मुक्त हास्य उत्पन्न न होवे, मुक्त वाणी उत्पन्न न होवे, मुक्त वर्तन उत्पन्न न होवे, तब तक मनोहर नहीं हुआ जा सकता।

३४१८. कषाय से मुक्त हो जायें, तभी मुक्त हास्य उत्पन्न होवे।

३४१९. अखंड प्रेमस्वभावी भगवान हास्य के अधीन हैं। अखंड रागस्वभावी मनुष्य शोक के अधीन है, आसक्ति के अधीन है।

३४२०. सारा जगत् जब निर्दोष दिखेगा तभी मुक्त हास्य उत्पन्न होगा। एक भी मनुष्य का दोष दिखे तो मुक्त हास्य उत्पन्न न होवे। मुक्त हास्यवाले के दर्शन से ही हमारा कल्याण होवे।

★★★

३४२१. इस दुनिया में जब भी देखो तब जो 'फ्रेश ही फ्रेश' नज़र आयें, वो हैं ''ज्ञानी''।

★★★

३४२२. मुक्त हास्य के बिना जगत् वश न हो सके। तुम में जब मुक्त हास्य आयेगा, तब कई लोगों को लाभ होगा। मन बिगड़े तो मुक्त हास्य टूट जाये, शुरू हुआ हो तो भी टूट जाये। मुक्त हास्य यानी क्या ? मन से मुक्त, बुद्धि से मुक्त, अहंकार से मुक्त, चित्त से मुक्त ! 'मुक्त हास्य' ये ही दुनिया का सबसे बड़ा अजूबा है !!

३४२३. मुक्त हास्य 'वर्ल्ड' में अकेले ''ज्ञानीपुरुष'' को ही होवे। वीतरागता हो वहाँ मुक्त हास्य होवे।

★★★

३४२४. ''ज्ञानीपुरुष'' की आँखें संपूर्ण स्वच्छ होती हैं। किसी भी प्रकार का संसार भाव न हो, तभी ये स्वच्छता उत्पन्न होवे। कोई संसार भाव न रहे, अतः 'उनकी' आँख में 'वीतराग परमात्मा' के दर्शन होवें।

★★★

३४२५. 'वीतराग' कुछ देते भी नहीं और लेते भी नहीं। 'वीतराग' तो कहते हैं, 'हम मोक्ष देते हैं और कुछ नहीं! अतः मोक्ष ले जाओ।'

★★★

३४२६. लोग तो 'वीतराग' के पास बच्चे माँगे! 'वीतराग' के दर्शन से तुम्हें पौद्‌गलिक माल मिलेगा, लेकिन वहाँ पौद्‌गलिक माल माँगना मत।

★★★

३४२७. 'उदासीनता' ये वीतरागता की जननी है! पहले उदासीनता आये, तत्पश्चात् वीतरागता आये।

★★★

३४२८. 'उदासीनता' यानी सभी नाशवंत चीज़ों पर भाव टूट जाये और अविनाशी की खोज चल रही हो, हालाँकि उसकी प्राप्ति न हुई हो!

★★★

३४२९. जिसमें वृत्तियाँ उलझी रहे उसका नाम भोग! जिसमें वृत्तियाँ उलझी न रहे, वो है उदासीनता!!

३४३०. जिसे वीतराग ही होना है उसे कौन रोक सके ?! जो राग-द्वेष करे ही नहीं, तो फिर उसे कौन रोके ?!

३४३१. मनुष्य स्वभावतः परायी वस्तुओं को खुद की बना लेना चाहता है। वस्तु स्थायी नहीं, पराया भी स्थायी नहीं, और तुम लेनेवाले भी तो क़ायम नहीं। आत्मा का स्वभाव 'मैं परद्रव्यों से सदा उदासीन ही हूँ'-ऐसी दृष्टियुक्त है।

३४३२. ये 'सद्‌गुण-दुर्गुण', 'अच्छी-बुरी आदतें', ये विनाशी हैं, हालाँकि जगत् को इनकी ज़रूरत है ! जिसे संपूर्ण वीतराग होना हो, उसे इनकी ज़रूरत नहीं।

३४३३. 'वीतरागता' करने से नहीं सीख सकते, 'वीतरागता' देखकर सीखनी होती है ! 'वीतरागता' करने की चीज़ नहीं, अपितु जानने योग्य चीज़ है। जिसमें कुछ भी करना होता है, वे सारे पौद्‌गलिक साधन हैं। भगवान के घर तो कोई भी पौद्‌गलिक साधन मोक्ष ले जाने में काम न आये।

★★★

३४३४. अक्रम 'ज्ञान' द्वारा पहले द्वेष जाये, तत्पश्चात् राग जाये, अतः पहले वीतद्वेष हो जाते हैं। चूँकि द्वेष में से राग उत्पन्न होता है, अतः जब द्वेष में से राग का बीज उत्पन्न होना बंद हो जाये, तब क्रमशः धीरे धीरे राग बंद हो जाये। जगत् में राग को पिघलाने का साधन है, लेकिन द्वेष को पिघलाने का साधन नहीं।

३४३५. आत्मा की विभाविक अवस्था से राग-द्वेष होवे और स्वाभाविक अवस्था से वीतराग होवे।

३४३६. वीतराग किसे कहेंगे ? 'समभाव से निपटारा' करने लगें, तब से लेकर संपूर्ण वीतराग हो जायें तब तक वो 'वीतराग' कहलाये। अरे, 'समभाव से निपटारा' करने का नक्की किया, तब से ही वीतरागता की शुरुआत हो जाये, जो संपूर्ण वीतराग होने तक 'वीतरागता' कहलाये!

३४३७. क्रोध-मान-माया-लोभ में न रहना-ये ही सच्ची वीतरागता, इसके अलावा जो वीतरागता रहे, वो है अहंकारी वीतरागता!

३४३८. वीतरागता ऐसी शक्ति है कि पूरा जगत् घूम लें तथापि कोई भी वस्तु उसे न चिपके।

३४३९. प्राकृतिक शक्ति उत्पन्न होना, व्यय होना और आज की जो शक्ति है, ये सब कुछ 'वीतराग' देखते थे, अतः उन्हें राग उत्पन्न नहीं होता।

३४४०. वीतराग किसे कहेंगे ? कि जो किसी के दुःख से दुःखी न हो जाये। वीतराग में करुणा होती है! जो दयालु हो, वो दुःखी हो जाय; जबकि करुणावान दुःखी नहीं होता। 'दया' ये तो द्वंद्व गुण है, अतः दया के साथ साथ निर्दयता भी होगी ही।

३४४१. जब हम पर कोई दया करे, तो हमे हीनता महसूस हो, लेकिन करुणा में ऐसा कुछ नहीं होता।

३४४२. धर्म की शुरुआत दया से होती है और 'एन्ड' (अंत) करुणा से होता है।

३४४३. जब तक आँखें स्वच्छ नहीं हों, तब तक सामनेवाले का कल्याण नहीं होवे, अतः ''ज्ञानीपुरुष'' सबको दर्शन करवाते हैं। 'स्वच्छ आँखें' ये ही कारुण्यता, दूसरा कोई भाव ही नहीं हो।

३४४४. लोग दर्शन कब करेंगे ? आँखों में जब कोई बुरे भाव न दिखें, तभी लोग दर्शन करेंगे ! ''ज्ञानी'' की आँखों को देखते ही समाधि लग जाय !!

३४४५. इस जगत् में कारुण्यमूर्ति होने की ज़रूरत है ! यदि कारुण्यमूर्ति हो जाएँ, तो मोक्ष सामने से आये, खोजना न पड़े। विरोधी के प्रति भी करुणा हो !

३४४६. एकचित्त होने के पश्चात् कारुण्यमूर्ति हुआ जा सके।

★★★

३४४७. खुद के सुख का ख़याल नहीं, अपितु सामनेवाले को क्या अड़चन है, ये ही ख़याल रहा करे, तब से कारुण्य की शुरुआत हुई समझो। दादाश्री को बचपन से ही सामनेवाले की अड़चन का ख़याल रहता था, अपने लिए तो उन्हें कभी विचार तक नहीं आए, इसे 'कारुण्यता' कहा जाये !! इससे ही 'ज्ञान' प्रकट होवे।

३४४८. करुणा से ही 'ज्ञान' उत्पन्न होवे। जिसमें कारुण्यता का बीज पड़ा हो, उसे 'ज्ञान' प्रकट हुए बिना रहे ही नहीं।

३४४९. कोई भी जीव को किसी भी तरह के काम में लेने की इच्छा न हो, तब से ही करुणा उत्पन्न होती है। परस्पर आधार हो तब तक करुणा नहीं होती। आधार-आधारी संबंध नहीं होना चाहिए। करुणावान खुद किसीका आधार भले ही बने, लेकिन वे किसी के आधारी नहीं होते।

३४५०. 'करुणा' ही इस जगत् का सबसे अंतिम 'पेम्फ्लेट' है।

३४५१. ''ज्ञानीपुरुष'' की करुणा 'वर्ल्डवाइड' होती है, ये जीवमात्र पर होवे !

३४५२. कोई भी, किसी भी उपाय से जिन्हें न पहचान पाये, वो है ''ज्ञानीपुरुष'' ! ''ज्ञानीपुरुष'' पहचाने जा सकते हैं तो अकेली उनकी वीतरागता से !

★★★

३४५३. ''ज्ञानीपुरुष'' हमेशा 'ओपन' होते हैं, वे संसार में ही होते हैं। वे गुफाओं में नहीं होते, गुप्त नहीं रहते ! गुफा में तो सब अभ्यासी रहें। पूर्ण दशा को पहुँचे हुए ''ज्ञानी'' तो संसार में ही होवें और लोक कल्याण करें।

★★★

३४५४. 'वीतराग' के अलावा इस दुनिया में और कोई तारणहार नहीं !

३४५५. खुद का अहंकार और बुद्धि की दख़ल खलास हो जाय, तभी मनुष्य 'अपना' कल्याण कर पाये।

३४५६. इस बंधन में से छूटने के लिए जो बंधनमुक्त हुए हों ऐसे ''ज्ञानीपुरुष'' के आश्रय में जाना चाहिए। आश्रय यानी ? 'टु एप्रोच नियर एन्ड नियर' (निकट और निकट जाना)। आश्रय यानी तदनुरूप होना।

३४५७. ''ज्ञानीपुरुष'' जहाँ विचरण करे – वो 'तीर्थ' कहलाये !

३४५८. अज्ञानी की साहजिकता राग-द्वेषयुक्त होवे, जबकि ''ज्ञानी'' की साहजिकता वीतराग होवे।

३४५९. प्रकृति सहज हो जाए तो आत्मा भी सहज हो ही जाये; या तो आत्मा सहज होने का प्रयत्न होवे, तो प्रकृति सहज हो जाये। दोनों में से एक भी यदि सहजता की ओर चले, तो दोनों ही सहज हो जायें !

★★★

३४६०. देह सहज यानी स्वाभाविक ! उसमें 'हमारी' दख़ल न हो, अहंकार की दख़ल न हो। ''ज्ञानी'' की देह 'सहज' कहलाये, अतः आत्मा भी सहज ही होवे। अहंकार उड़ गया तो समझो सब चला गया !

★★★

३४६१. शरीर नरम-गरम होवे, कोई जलती चीज़ के स्पर्श से सिहर जाये, ये सब देह का सहज स्वभाव है, जबकि आत्मा पर-परिणाम में नहीं हो – वो है सहजआत्मा। सहजआत्मा यानी स्वपरिणाम !

३४६२. प्रकृति, प्रकृति के भाव में ही होवे। उसे 'कंट्रोल' करने की तुम्हें ज़रूरत नहीं। 'तुम' सहजभाव में आ जाओ, फिर प्रकृति तो सहजभाव में है ही।

३४६३. प्रकृति का सहजभाव यानी 'जैसे है वैसे' बाहर प्रकट हो जाना।

३४६४. उदय के अनुसार भटकना, इसीका नाम सहज!

३४६५. सहज यानी क्या? इस मन-वचन-काया की क्रियाएँ चलती रहती हैं, उनका निरीक्षण करते रहना, उसमें दख़ल नहीं करना, ये।

३४६६. प्रकृति और आत्मा के बीच की चंचलता उड़ जाये, उसका नाम साहजिकता!

३४६७. 'ऐसा क्यूँ नहीं हुआ,' ये कहते ही रोग पैठ गया समझो! सहज रहना चाहिए।

३४६८. 'सहजता के बाहर जो कुछ हो', वो सब चालाकी है। जो 'सहजता को तोड़े' वो सब चालाकी।

★★★

३४६९. विकल्पी स्वभाववाले को तो कुछ भी स्वयं करना नहीं चाहिए! उसे तो कोई सहज मनुष्य को ढूँढ़ लेना चाहिए, और वो जैसा कहे वैसा करना है।

३४७०. हरेक जीवमात्र की प्रकृति उसके सहजस्वभाव में ही है। अकेले इन मनुष्यों की प्रकृति ही विकृत हो गई है, इसलिए आत्मा में 'फोटो' विकृतता का आये, अतः आत्मा (प्रतिष्ठित आत्मा) विकृत हो जाये।

३४७१. इस काल में प्रकृति सहज हो पाए ऐसी नहीं है, अतः ''ज्ञानीपुरुष'' पहले 'आत्मा का ज्ञान' देते हैं; तत्पश्चात् प्रकृति अपने आप ही सहज होती चले! सहज में किसी भी तरह का दोष नहीं, जबकि विकृति में दोष है।

३४७२. शरीर-मन-वाणी की जितनी निरोगिता, उतनी ही आत्मा की सहजता।

३४७३. साहजिक मन-वचन-काययुक्त हरेक कार्य सरल हो जाये, अनुभव असहज हो तो वो कार्य नहीं होवे। अनुभव के साथ साहजिकता होनी चाहिए, तभी कार्य होवे।

३४७४. साहजिक वाणी यानी कि जिसमें किंचित्मात्र भी अहंकार न हो।

३४७५. 'सब कुछ सहज रूप से चल रहा है' इसका भान होगा तभी आत्मज्ञान हो पायेगा। सहज यानी क्या? बिना प्रयत्न के जो चल रहा है! फिर भी लोग कहते हैं -'मैंने किया, मैंने किया।'

३४७६. सहज यानी संपूर्ण अप्रयत्न दशा! अप्रयत्न दशा में कोई चाय लाये, खाना लाये लेकिन उन्हें कोई हर्ज न हो।

३४७७. प्रयास का फल है संसार, अप्रयास का फल है मोक्ष।

३४७८. प्रयास से सब उल्टा हो जाय। सहज होना चाहिए। प्रयास हुआ यानी सहज रहा नहीं।

३४७९. सहज प्रयत्न नियम से फल देवे ही।

३४८०. 'अप्रयास' को 'ज्ञान' कहा जाता है और 'प्रयास' तो 'विकल्प' है।

३४८१. प्रयत्न करने जाओ वहाँ संसार है! प्रयत्न करने से दोष न जायें; जहाँ सच्चा 'ज्ञान' हो, वहाँ जाने पर ही दोष चले जायें।

३४८२. ''ज्ञानीपुरुष'' किसे कहेंगे ? जो निरंतर अप्रयत्न दशा में होवे। सारा जगत् प्रयत्न दशा में है और तुम ('ज्ञानप्राप्त महात्मा') यत्न दशा में हो। 'अच्छा-बुरा' मानते हो, अतः दख़ल करते हो। क्या तुम्हें ऐसा लगता है कि पुद्गल का वंश चला जाएगा तो फिर क्या होगा ? इस पुद्गल का वंश कभी जाता नहीं। ज्ञाता-दृष्टा अक्रिय ऐसी आत्मा है। ना यत्न हो, ना प्रयत्न हो!

३४८३. जिसे देह की मस्ती नहीं, वाणी की मस्ती नहीं, मन की मस्ती नहीं, वो है ''ज्ञानी''।

३४८४. अज्ञानी को टटोलने से अज्ञान खड़ा हो जाय, ''ज्ञानी'' को टटोलने से 'ज्ञान' खड़ा होवे।

३४८५. अज्ञानी तो 'कलेक्टर' हो जाय, तो उन्मत्त हो जाये। जबकि ''ज्ञानीपुरुष'' को पूरे ब्रह्मांड के साम्राज्य की सत्ता है, फिर भी वे ज़रा भी उन्मत्त नहीं।

३४८६. कुदरत का क़ायदा ऐसा है कि जहाँ जितना अहंकार कम हो, वहाँ उतनी ही सरलता से सब मिल जाये। यह बालक सरल है, इसलिए उसे जो चाहिए वो मिलता ही है न ? अहंकार के कारण भगवान से भेद पड़ जाये। जितना अहंकार गया, समझो उतने अभेद हुये।

३४८७. एक हो जाना इसीका नाम वीतरागभाव, और अलग हो जाना इसीका नाम राग-द्वेषभाव।

३४८८. 'मत' ये संसार में भेद का कारण है और सत् ये अभेद का कारण है।

३४८९. एक का अल्लाह, एक का गॉड, एक का भगवान और एक का परमात्मा ! वस्तु एक ही है पर मनुष्यों के 'व्यूपोईन्ट' अलग-अलग हैं। मनुष्य के 'फोटो' में, रंग में, ऊँचाई में, चौड़ाई में, उसके 'स्पेरपार्ट्स' में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा, तो फिर मनुष्य के भगवान में फ़र्क़ कैसे ?! मनुष्य खुद ही भगवान हैं, किन्तु ये भगवानपन छिपा हुआ है; ये भी अजूबा ही है न !

★★★

३४९०. हक़ीक़त में इस जगत् में वास्तविक रूप से देखा जाए तो भगवान अपनी अवस्थाओं के साथ घूमते रहते हैं। कोई पंगु, अपाहिज, दुःखी, क्षयरोगी; इस प्रकार विविध अवस्थाओं में भगवान खुद घूमते रहते हैं। हम 'अवस्था' को देखते हैं, परंतु यदि 'भगवान' को देखना आ जाये, तो समझो काम बन गया !

★★★

३४९१. सब में परमात्मा दिखे, कुत्ते में, गधे में, सब में दिखे, इसी हेतु ये मनुष्य जन्म है। जब स्वयं परमात्मा हो जाये, तब अन्य में परमात्मा दिखे।

३४९२. व्यक्तित्व को जो अलग नहीं मानता, उसे दुनिया में कुछ भी करना बाक़ी ही न रहे। यह सब 'मैं ही हूँ, मैं ही हूँ।'

३४९३. सब में 'एक्ज़ेक्ट' महावीर दिखेंगे, तभी तुम 'महावीर' हो जाओगे।

३४९४. 'भेद' यानी संसार और 'अभेदता' ये है परमात्मपन! लोगों के साथ जितनी अभेदता बरते, उतना परमात्मपन प्रकट होवे।

३४९५. भगवान क्या कहते हैं? यदि तुम बाबूभाई हो, तो हम दोनों में भेद है। यदि तुम शुद्धात्मा हो, अभेद हो, तो फिर हम दोनों एक हैं!

३४९६. आत्मा 'अभेद' है; भेदबुद्धि से 'संसार' है।

★★★

३४९७. भगवान का क़ायदा ही है, कि जहाँ–'मैं कुछ हूँ', ऐसा हुआ तो भगवान से वह अलग!

★★★

३४९८. संसार की अन्य सारी चीज़ों पर से भाव छूट जाये, तो ''ज्ञानीपुरुष'' के साथ अभेदता उत्पन्न हो जाये।

३४९९. एकरूपता हो सके ये संभव नहीं, किन्तु एकता होवे इतना कर लेने की ज़रूरत है।

★★★

३५००. शरणागति यानी क्या ? अभेदभाव ! शरणागति यानी मैं-तू-हम एक ही हैं, एकभाव !!

३५०१. जहाँ परमात्मा व्यक्त हुए हैं ऐसे ''ज्ञानीपुरुष'' को पूर्णरूप से समर्पित हो जाना है ! वहाँ हमारी आत्मा आत्मस्वभाव में और देह परम विनय में हो।

३५०२. 'गुरुतमभाव' ये अविनय है जबकि 'लघुतमभाव' ये परम विनय है।

३५०३. जो लघुतमपद है ना, वो ही गुरुतमपद देनेवाला है। ये गुरुतमपद कि 'मैं कुछ हूँ' ये तो नाश करे। गुरुतमपद चाहते हो, तो लघुतमपद की आराधना करो।

३५०४. जो बड़ा होने चले, वो तो छोटा हो जाये ! 'छोटा-बड़ा' ये पौद्गलिक है। प्रत्यक्ष लघुपन दर्शाये उसी हिसाब से मनुष्य बड़ा होवे।

★★★

३५०५. ''ज्ञानीपुरुष'' कहते हैं, 'एक तरफ हम लघुतम पुरुष हैं, हमसे कोई जीव छोटा नहीं; दूसरी तरफ हम गुरुतम भी हैं, हम से कोई बड़ा नहीं !'

३५०६. ''ज्ञानीपुरुष'' कहते हैं: 'बाय रिलेटिव व्यूपॉईन्ट' हम लघुतम हैं, 'बाय रियल व्यूपॉईन्ट' हम गुरुतम हैं। 'निश्चय' में हम गुरुतम जबकि 'व्यवहार' में हम लघुतम, ये है हमारा स्वभाव !!

३५०७. ''ज्ञानीपुरुष'' का दिखाव-वर्तन सब लघुतम सा होवे जबकि वैभव गुरुतम सा होवे।

३५०८. लघुतम में हमेशा 'सेफ साइड' रहे, जबकि गुरुतमवाले को तो 'भय' रहे।

३५०९. आत्मशक्ति के विस्तार का तो पार ही नहीं, हरेक मनुष्य के विचार को 'एक्सेप्ट' करे वहाँ तक इसका विस्तार है ! चोर चोरी करे ये भी 'एक्सेप्ट' करे, दानेश्वरी दान करे उसे भी 'एक्सेप्ट' करे, सबकुछ 'एक्सेप्ट' करे ऐसी ये आत्मशक्ति है, परमात्म शक्ति है और ये ही आत्मा है !!

३५१०. इस दुनिया में जब तक तुम्हारी ओर से कोई भी विरोध है तब तक समझो तुम्हारे अंदर भी विरोध है। जब तक तुम्हारे अंदर विरोध है, तब तक तुम ब्रह्मांड के स्वामी नहीं हो सकते।

३५११. विरोधाभास में स्वयं स्थिर रहे, इसी का नाम ही मोक्ष ! स्वयं भले ही कट जाये, पर किसी और को नहीं काटना है।

३५१२. विरोध करने पर दोष ज़्यादा लगे। इस जगत् में विरोध करने जैसा कुछ है ही नहीं। तुम जो जो विरोध करते हो, वो तुम्हारे खुद का ही विरोध कर रहे हो! अतः 'प्रोजेक्ट' (योजना) यूँ करो कि विरोध ना होवे।

★★★

३५१३. यदि हम सामनेवाले का विरोध करें, तो फिर वो हमारे विरोधी के पक्ष में बैठ जाएगा और वो उसमें और ज़्यादा मजबूत होगा! इससे तो अच्छा है कि हम विरोध ही न करें। भगवान वीतरागता से ही मुक्त हुए थे।

३५१४. विरोध तो चल भी जाये, किन्तु विराधना नहीं चलेगी।

३५१५. विरोध प्राकृत से संबंधित है जबकि विराधना आत्मा से संबंधित है।

३५१६. जिस ज्ञान से ठोकर लगे, उस ज्ञान को यदि 'ज्ञान' कहें, तो समझो 'ज्ञान' की विराधना की।

३५१७. इस दुनिया में ''ज्ञानी'' से जो मिले थे, उनके अलावा किसी का भी मोक्ष हुआ नहीं। ''ज्ञानी'' अर्थात् प्रकाश! प्रकाश को स्पर्श करने पर ही दीया प्रज्ज्वलित हो पाये।

३५१८. जो सीधा-सरल हुआ, उसीका मोक्ष होवे। अगर सीधे नहीं हो, तो लोग मार-मार के सीधा कर देंगे!

३५१९. इस जगत् में जब ये समझ में आये कि 'मैं सबसे बड़ा मूर्ख हूँ', तब आत्मज्ञान के उदय की शुरुआत होवे।

३५२०. आत्मा को तो जानना ही होगा न? वरना पार ही न आये न?! तुम्हारे अंदर घी, दीया, बाती सब कुछ तैयार है। कमी किस बात की है? दियासलाई चाहिए। "ज्ञानीपुरुष" के पास जाओ, जिससे कि दीया प्रज्ज्वलित हो जाये!

३५२१. अभी तुम्हारे अंदर क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष का साम्राज्य है। "ज्ञानीपुरुष" इन सबको 'गेट आउट' कर देवें और फिर आत्मा रूपी भगवान 'अपना' साम्राज्य स्थापित कर दे! तभी 'स्वयं' ज्ञाता-दृष्टा पद में आ जाये।

३५२२. इस दुनिया में जानने लायक एक आत्मा ही है, अन्य कुछ जानने योग्य नहीं। पुस्तक में आत्मज्ञान नहीं होता, आत्मा में ही आत्मज्ञान होवे।

३५२३. तुम्हारी खुद की मिल्कियत को यदि जानो, तो वो अगाध मिल्कियत है। ये तो परायी मिल्कियत हथिया बैठे हो!

★★★

३५२४. अकेला आत्मा ही जानना है, समझना है और उसमें स्थिर होना है। हर कोई चिल्लाता है कि 'शक्कर मीठी है' जबकि "ज्ञानीपुरुष" अनुभव कराये कि मीठी यानी क्या!

३५२५. आत्मज्ञान को जाने बग़ैर आत्मा का स्वाद ज़रा भी न आये।

३५२६. आत्मा से आत्मा जानना इसी का नाम आत्मज्ञान ! संपूर्ण आत्मज्ञान किसे कहेंगे ? जिसमें केवलदर्शन हो।

३५२७. संसार का एक भी दुःख स्पर्श न करे, तभी कहेंगे कि 'आत्मा को जाना'।

३५२८. आणंद (गुज़रात का एक नगर) में रहने से 'आनंद' नहीं होता, कल्याण (मुंबई का उपनगर) में रहने से 'कल्याण' नहीं होता ! हाँ, स्वरूप में रहने से आनंद व कल्याण होवे।

★★★

३५२९. आत्मा और देह का इतना सामीप्य है कि उनके अलग होने का भान ही नहीं रहता, अतः भ्रांति उत्पन्न होती है। विविध असर जैसे कि ठंड का, ताप का, भूख का, प्यास का, ये सब आत्मा को नहीं होते। असर पुद्‌गल को होता है, लेकिन आत्मा स्वयं मान बैठती है कि 'मुझे ही असर होता है' !

★★★

३५३०. आत्मा और अनात्मा दोनों अनादि काल से भ्रांतिरस से एकाकार हुए हैं। भ्रांति का रस इतना तो चिकना है कि 'वर्ल्ड' में ऐसी चिकनाईयुक्त और कोई वस्तु नहीं। ये भ्रांति का रस आया कहाँ से ? 'मैं काकुभाई' यूँ बोलें कि तुरंत रस उत्पन्न हो जाये, और 'ये बेग मेरा है' बोलें कि तुरंत रस उत्पन्न हो जाये। ये दोनों रस मिलकर भ्रांतिरस उत्पन्न होता है ! निरंतर ये रस टपकता रहे और जो पुराना रस है वो निष्कास (निकाल) होता रहे।

★★★

३५३१. भ्रांति यानी कि देखते ही तन्मयाकार हो जाये, इतना ज़्यादा सामीप्यभाव होवे !

३५३२. आत्मा को शुद्ध नहीं करना है, अपितु 'तुम्हारी' विपरीत मान्यता को बदलना है ! जो शुद्ध है वो अशुद्ध कैसे हो ?! ये तो तुम्हारी 'बिलीफ' 'राँग' है। आत्मा तो शुद्ध ही थी, शुद्ध ही है, फिर उसे शुद्ध करना कहाँ रहा ?

३५३३. आत्मा वीतरागता को नहीं छोड़ती और पुद्गल भी वीतरागता को नहीं छोड़ता। समझ उल्टी हो जाये तो फल भुगतना पड़े ! 'राँग बिलीफ' का फल 'दुःख' मिले और 'राइट बिलीफ' का फल 'सुख' मिले।

३५३४. 'जिस 'ज्ञान' से जगत् का असर न हो, वो है आत्मज्ञान !

३५३५. शुद्धात्मा का उपादान देने पर नियम से ही संसार का अपादान हो जाये।

३५३६. बाहर का 'पेकिंग' क्रोध-मान-माया-लोभ के आधार पर है जबकि अंदर जो शुद्धात्मा है वो वीतराग है।

३५३७. स्वक्षेत्र का अस्तित्व है अविनाशी; परक्षेत्र का अस्तित्व है विनाशी।

३५३८. आत्मा कभी भी वेदक हुई नहीं। वेदक यानी कि ममता ! ममतापद में वेदन होवे। भोक्तापद में यदि ममता बँध जाय तो ये शातावेदनीय । भोक्तापद में ममता न बँधे तो ये अशातावेदनीय।

★★★

३५३९. देह है तब तक आत्मा द्वैत ; और जब देह न हो, सिद्धगति में हो तो अद्वैत ! भगवान महावीर विचरण करें, ये किस आधार पर ? द्वैत के आधार पर। भगवान महावीर शुक्लध्यान में किस आधार पर रहे ? अद्वैत के आधार पर।

★★★

३५४०. आत्मा न तो द्वैत है और ना ही अद्वैत, आत्मा तो द्वैताद्वैत है। 'स्वभाव' की अपेक्षा से अद्वैत है और 'पर्याय' की अपेक्षा से द्वैत है !

★★★

३५४१. आत्मा का 'स्पष्ट वेदन' जब तुम्हें होगा तब क़ायम समाधि रहेगी।

★★★

३५४२. 'आत्मा अमर है' ऐसा बोलने से काम न बने। ये तो आत्मा अपने 'स्वभाव' में आ जाये तभी बोल सकते हैं, मृत्यु का भय टल जाय तभी बोल सकते है !

★★★

३५४३. आत्मा शब्द से परे है और निःशब्द से भी परे है ! शब्द से 'स्वरूप' अनुभव में न आये, निःशब्द से भी वो अनुभव में न आये; स्वरूप की तो प्रतीति होनी चाहिए।

★★★

३५४४. एक समय भी यदि 'स्वरूप के भान' में जो रहे, वो कभी भी पर का स्वामी होने की इच्छा न करे।

३५४५. पहले जो विपरीत ज्ञान जानने का प्रयत्न था, इससे तो बंधन में आ जायें। 'सम्यक्-ज्ञान' जानने का प्रयत्न ये तो अपना खुद का है, उससे स्वतंत्र हो जायें। 'विपरीत ज्ञान' ये भी ज्ञान ही है! उसे जानने का भी 'टेस्ट' आये, हालाँकि उससे बंधन में आ जायें।

३५४६. सम्यक्-ज्ञान स्वसुखदाता है, स्वावलंबी है; जबकि विपरीत ज्ञान परावलंबी है।

३५४७. ये वीतरागमार्ग है, इसमें व्यवहार आदर्श होवे तो वीतराग हो सकें। व्यवहार को छोड़ना नहीं, बल्कि व्यवहार को आदर्श करना है। व्यवहार आदर्श कब हो ? आत्मज्ञान होने पर। आत्मज्ञान कब हो ? ''ज्ञानीपुरुष'' 'भेदज्ञान' करवायें तब।

३५४८. व्यवहार को 'रियल' माना फिर भी लोग व्यवहार तो सीखे ही नहीं। व्यवहार कैसा होना चाहिए ? आदर्श। ये तो हर घर में क्लेश! घर-घर में गड़बड़!!

★★★

३५४९. 'निश्चय' को 'निश्चय' में रखना और 'व्यवहार' को 'व्यवहार' में रखना, इसी का नाम शुद्ध व्यवहार!

★★★

३५५०. जिसके वाणी, वर्तन और विनय मनोहर हो जायें, समझो उसका सारा व्यवहार आदर्श हो गया!

३५५१. 'आदर्श व्यवहार' और 'निर्विकल्प पद' ये दोनों प्राप्त हो जायें, तो फिर बाक़ी क्या रहा ? ये तो पूरे ब्रह्मांड को बदल सके।

३५५२. बूढ़े होने के बाद व्यवहार आदर्श हो, वो किस काम का ?! आदर्श व्यवहार तो जीवन की शुरुआत से ही होना चाहिए।

३५५३. आदर्श व्यवहार कैसे प्राप्त हो ? स्वरूप ज्ञान प्राप्त महात्माओं को 'निर्विकल्प पद' प्राप्त हुआ है, अत: उसमें रहने से आदर्श व्यवहार अपने आप ही आयेगा।

३५५४. व्यवहार जितना आदर्श होता जाये, उतनी ही समाधि बढ़ती जाये।

३५५५. समभाव से जो व्यवहार बँधे, वो 'आदर्श व्यवहार' कहलाये।

३५५६. जिस व्यवहार में क्रोध-मान-माया-लोभ का प्रयोग न हो, ये 'शुद्ध व्यवहार' कहलाये।

३५५७. जहाँ शुद्ध निश्चय को प्राथमिकता दी जाती है, वहाँ सारा व्यवहार शुद्ध है।

३५५८. आर्तध्यान और रौद्रध्यान न हो, इसी का नाम व्यवहारशुद्धि!

३५५९. शुद्ध व्यवहार निर्अहंकारी होवे। जिसमें अहंकार की बूँद भी न हो, वो है शुद्ध व्यवहार!

३५६०. जब तक व्यवहार स्वच्छ नहीं हो, तब तक मोक्ष संभव नहीं। व्यवहार के आधार पर ही मोक्ष है। आदर्श व्यवहार होना चाहिए, अन्य किसी को दु:खदायी न बने ऐसा!

३५६१. भगवान कहते हैं कि, “ ‘व्यवहार’ के वाक्य कभी भी ‘निश्चय’ होनेवाले ही नहीं। हमने सभी वाक्य ‘व्यवहार’ से ही बोले हैं, ‘निश्चय’ से नहीं बोले! तुम हमारे वाक्यों को ‘निश्चय’ के मान लो, तो उसमें हम क्या करें? ‘तप करने से मोक्ष होगा’, ऐसा तुमने ‘निश्चय’ से मान लिया, तो उसमें हम क्या करें?!”

★★★

३५६२. मोक्ष जाने हेतु की जानेवाली सभी तरह की मेहनत विकल्पी है, यदि निर्विकल्पी मेहनत होती तब तो ठीक है। विकल्पी मेहनत ये तो खेत में से प्याज निकाल कर गन्ना बोने जैसा है!

★★★

३५६३. मोक्ष जाने के लिए लोग भारी प्रयत्न करते हैं! इसमें उनका दोष नहीं, उन्हें संयोग नहीं मिलता। वैसे समकित के साधन तो बहुत इकठ्ठा किये हैं, लेकिन समकित का संयोग नहीं मिल रहा।

★★★

३५६४. खुद के इकठ्ठा किये हुए समकित के साधनों को लोग सच्चे मानते हैं, हालाँकि वे सच्चे नहीं। बढ़ई यदि लोहार के साधन लेकर आये तो चलेगा क्या?! हर एक को उनके योग्य साधन ही चाहिए।

★★★

३५६५. समकित प्राप्ति के लिए सबसे बड़ा साधन है, “ज्ञानीपुरुष” से भेंट। जब ये साधन मिल जाये फिर अन्य किसी साधन की ज़रूरत नहीं!

★★★

३५६६. ‘संसार’ ये तो बिना मेहनत का फल है! अतः भोगो, हालाँकि भोगना आना चाहिए।

★★★

३५६७. यदि मेहनत का फल संसार होता, तो सेठ लोगों को खाना ही न मिलता, और मजदूरों को ही खाना मिलता होता!

३५६८. जितनी मेहनत, समझो उतना ही अंतराय है, नहीं तो मेहनत करनी ही क्यों पड़ती ?!

३५६९. क़ायम के लिए सुख, उसीका नाम ही मोक्ष!

३५७०. मोक्ष में कब जाये ? जब मनुष्य 'फुल्ली डेवलप' हो जाये, तभी मोक्ष में जा सके! आत्मा और अनात्मा का विवरण (भेदांकन) हो जाये और दोनों ही क़ायम के लिए अलग हो जाएँ, तब !!

३५७१. ''ज्ञानीपुरुष'' 'ज्ञान' देवें तत्पश्चात् 'वर्ल्ड' में हमें किसीसे झगड़ा न रहे, केवल पिछले कुसूर बाक़ी रहें। कुसूर यानी हमने पहले की हुई भूलें, कुदरत के कानून-भंग की जो धाराएँ हम पर लग चुकी हैं वे। उन धाराओं का हमें हिसाब चुकाना पड़े!

★★★

३५७२. मोक्ष यानी संसार के लिए 'कम्पलीट अनफीट' (अयोग्य), अतः तुम 'अनफीट' होते जा रहे हो ये तुम्हारे हित में है या अहित में, ये तुम्हें देखना चाहिए!

★★★

३५७३. शब्द का परम अर्थ यानी मोक्ष! वस्तु का चरमतम अर्थ, ये मोक्ष !!

३५७४. व्यवहार में विधवा होवे तब घर के कोने में बैठे, संसार में बेवा हो जाये तब मोक्ष के कोने में बैठे!

३५७५. निर्वाण आत्मा का होता है या अनात्मा का ? अनात्म विभाग का। आत्मा पर से अनात्मा का आवरण विलग हो जाता है!

३५७६. 'मोक्ष', ये पाने की वस्तु नहीं बल्कि मोक्ष तो अपना स्वभाव ही है। तुम मोक्षस्वरूप ही हो, लेकिन तुम्हारा मोक्षसुख तुम भोगते नहीं हो। तुम्हें अपने 'स्वरूप का भान' हो जाना चाहिए।

३५७७. ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य सम्यक् हो जाएँ, इसीका नाम मोक्ष!

३५७८. किसी भी धर्म के प्रमाण को किंचित्मात्र भी ठेस न पहुँचे, यही हमारा भाव होना चाहिए। 'धर्म के प्रमाण को ठेस पहुँचाना' और 'मोक्ष भी पाना' ये दोनों एकसाथ संभव नहीं।

३५७९. वारण से निवारण और निवारण से निर्वाण!

३५८०. दुश्मन सामने आ जाने पर यदि मन बिगड़ जाये, तो तुरंत ही वारण रख देना है, उसके लिए ज़रा-सा भी उल्टा विचार न आने दें, बल्कि 'सामनेवाला अनंत उपकारी है', ऐसा मानें।

३५८१. कोई हमारा हाथ काट डाले, चाहे कितना ही तूफ़ान मचाये, फिर भी उसे किसी अन्य दृष्टि से न देखें ! उसे शुद्धात्मा-दृष्टि से ही देखें। उल्टा विचार आये तो समझो कि 'व्हील' उल्टा घूमा।

★★★

३५८२. यदि मोक्ष चाहते हो तो एक अवतार इस देह के कोई टुकड़े-टुकड़े कर दे तो भी सब्र करना है। 'इस देह के टुकड़े-टुकड़े हो जाय, तो भी मैं मोक्षमार्ग से नहीं हटूँ' - ये निश्चय हो जाये तभी से अंतर में अपार सुख उत्पन्न हो जाये। इस देह को एक अवतार सट्टे में रख दो, फिर देखो।

★★★

३५८३. जहाँ क़ायदा है, वहाँ मोक्ष नहीं ! ये दादाश्री की, अनंत अवतारों की खोज है।

३५८४. जहाँ क़ायदा है वहाँ धर्म तो है किन्तु आत्मज्ञान नहीं।

★★★

३५८५. जहाँ कायदा वहाँ 'लॉ-कोर्ट' होवे, न कि आत्मधर्म। जहाँ क़ायदा नहीं, वहाँ भगवान का निवास !

★★★

३५८६. जहाँ 'लॉ' हो, वहाँ संपूर्ण 'वीतरागी ज्ञान' नहीं होवे। 'अक्रम विज्ञान' में तो 'नो-लॉ-लॉ' होता है।

३५८७. 'नो-लॉ-लॉ' अर्थात् स्वसंयमी !

३५८८. ये जो सारे कषाय खड़े होते हैं, ये विषय में से खड़े होते हैं। ये चारित्रमोह ऐसा है कि 'ज्ञान' को भी उड़ा दे, आग लगा दे!

३५८९. यदि भय रखने योग्य कुछ है तो एक विषय ही है, उसीका भय रखो, इस जगत् में अन्य कोई जगह खौफ़ खाने जैसी नहीं है! अतः इससे सचेत रहना है।

३५९०. 'विषय की चंचलता' ये ही अनंत जन्मों के दुःख की जड़ है।

३५९१. एक ही बार के विषयों से अरबों का नुक़सान है, भयंकर हिंसा है।

३५९२. एक 'मिनट' में वैराग्य आ जाये ऐसा है ये जगत्, फिर भी वैराग्य नहीं आता, ये भी एक अजूबा है न!

★★★

३५९३. विषय हो फिर भी याद न आये, इसका नाम निर्विषय! विषय न हो फिर भी याद आये, उसका नाम विषय!!

★★★

३५९४. जो भोग हमें याद आये वो उपभोग में परिणमित होवे। जो भोग याद न आये, वो स्पर्श न करे, निर्लेपभाव रहे।

३५९५. वासनाएँ क्या हैं ? वे किस प्रकार जाएँ ? 'मैं त्रिभोवनदास हूँ', ये मिटे तभी वासनाएँ जायें ! अन्यथा वासनाएँ न जायें।

३५९६. सर्व प्रकार के भाव उत्पन्न होवें, ऐसा ये जगत् है ! इसमें देहनिद्रा आयेगी तो चलेगा, लेकिन भावनिद्रा नहीं आनी चाहिए।

३५९७. 'ट्रेन' सामने से आती हो, तब क्या नींद आती है ? ये 'ट्रेन' तो एक अवतार का मरण लाये, लेकिन भावनिद्रा तो अनंत जन्मों का मरण लायेगी। चित्रविचित्र भाव उत्पन्न होवे, ऐसा है ये जगत् ! इसमें तुम्हें अपना हित समझ लेना है। यदि तुझे भावनिद्रा होगी तो जगत् तुझे चिपकेगा।

★★★

३५९८. जहाँ भावनिद्रा आये, वहीं प्रतिक्रमण कर लेना है और जिसके प्रति भावनिद्रा आये, उसकी ही आत्मासे ब्रह्मचर्य का पालन करने की शक्ति माँगना, ये 'डायरेक्ट' बात है ! जिसके साथ व्यापार शुरू हो रहा हो, उसीसे ही शक्ति माँगना, जिससे कि हिसाब निरस्त हो जाये।

★★★

३५९९. ब्रह्मचर्य यानी क्या ? ये जो पूरण हुआ, वो गलन न होवे, ये ही ब्रह्मचर्य ! पूरण जिसे नियमसर हो, वो ही ब्रह्मचर्य का पालन कर सके !

३६००. इस काल में तो जैसे ही बाहर निकलें कि 'ओपन' बाजार ! शाम तक भले ही कोई सौदा किया न हो, हालाँकि बारह सौदे तो यूँ ही लिख डालें ! खाली देखने से ही सौदे हो जायें ! दूसरा सौदा तो जब होना हो तब होगा, लेकिन मनुष्य देखने के ही सौदे कर दे !! ये तो 'भयंकर रोग' कहलाये । देखने मात्र से ही सौदा हो जाय ! ''ज्ञानीपुरुष'' से 'स्वरूप' का 'ज्ञान' मिले, उसके बाद सामनेवाले में शुद्धात्मा दिखे ।

★★★

३६०१. ये तो आँख की चमक-दमक है । आँख के छूते ही चित्त चिपक जाये ! इसमें आँख का क्या दोष ? मन का भी क्या दोष ? हम ही कच्चे हों, तभी तो मन हावी हो जाये न ? गुनाह हमारा ही है ।

★★★

३६०२. एकपत्नीव्रत का नियम यह उत्तम मर्यादायुक्त ('लिमिट') कहलाये ! ये उर्ध्वगति में ले जाये । मोक्ष जाने के लिए किस 'लिमिट' की आवश्यकता है ? 'एकपत्नीव्रत' ।

★★★

३६०३. इस काल के मनुष्यों में ब्रह्मचर्य का पालन करने का सामर्थ्य नहीं । तो फिर ये शादीशुदा लोग क्या करें ?! अतः ''ज्ञानीपुरुष'' कहते हैं, कि इस काल में जो एकपत्नीव्रत धारण करेगा, उसका मोक्ष होगा ! वे ऐसी 'गारंटी' देते हैं, हालाँकि उनके पास जाकर इस बात को समझ लेना है ।

★★★

३६०४. जहाँ आकर्षण हुआ, आकर्षण में तन्मयाकार हुआ कि वहाँ मनुष्य चिपक गया समझो ! आकर्षण हुआ इससे हर्ज नहीं, लेकिन जो 'तन्मयाकार न हो जाये', वो जीत जाये ।

३६०५. विषय, विषय में ही बरतते हैं। लेकिन लोग बिना वजह 'इगोइज़म' करते हैं। जब तक 'इगोइज़म' न जाये, तब तक तो 'इगोइज़म' किये बिना रहेंगे ही नहीं न ? ये 'इगोइज़म' कब जाये ? उसका आधार चला जाये तब। उसका आधार क्या है ? अज्ञान। अज्ञान कब जाये ? ''ज्ञानी'' मिलें तब।

★★★

३६०६. 'आत्मा' ये ही ब्रह्मचर्य है। जिसे आत्मसुख प्राप्त हो, उसे अब्रह्मचर्य के विचार आये ही नहीं।

★★★

३६०७. 'शुद्धात्मा में ही सुख है', ऐसा यदि यथार्थ रूप से समझ में आ जाये, तो फिर विषय में सुख न लगे।

★★★

३६०८. जगत् की सारी चीज़ें अधोगामी हैं। मनुष्य अगर चाहे, तो वीर्य अकेला ही उर्ध्वगामी हो सके!

★★★

३६०९. स्ववीर्य को स्फुरायमान करना, ये है पराक्रम!

★★★

३६१०. जो विषय को जीते, उस पर तीनों लोक के नाथ राज़ी हो जायें।

★★★

३६११. जिसकी वाणी से किसी को किंचित्मात्र भी दुःख न हो, जिसके वर्तन से किसी को किंचित्मात्र भी दुःख न हो, जिसके मन में खराब भाव न उठे, वो ही शीलवान!

३६१२. शील में ब्रह्मचर्य समाविष्ट है, इतना ही नहीं, साथ-साथ किसीको किंचित्‌मात्र भी दुःख न पहुँचाये - ऐसे शीलवान को देखते ही आनंद हो जाये!

★★★

३६१३. तुम्हारा शील देखते ही सामनेवाले में परिवर्तन हो जाये। 'शीलवान' होना ये बहुत ऊँची वस्तु है। शीलवान बनने के लिए ही ये सत्संग करना है। आत्मा तो मोक्षस्वरूप है ही! जब से 'सेल्फ रियलाइज' हुआ, तब से समझो मोक्षस्वरूप ही है। मोक्ष की क्या जल्दी है ?! पहले शीलवान होना है। शीलवान के गुण उत्पन्न हो जाये, जिससे जगत् में बहुत सारा बदलाव आ जाये!

★★★

३६१४. सबसे बड़ी कमाई चारित्र की है। चारित्र से 'स्ट्राँग' हो गये, तो समझो जगत् जीत लिया!

★★★

३६१५. 'हक़ के वैभव को भोगना' ये उर्ध्वगति है। 'बग़ैर-हक़ का भोगना' ये अधोगति है।

★★★

३६१६. देह सयाना हो जाये, इसका नाम व्यवहारचारित्र! आत्मा सयानी हुई इसका नाम निश्चय-चारित्र!! आत्मा सयानी हुई, इसका नाम ही ज्ञाता-दृष्टा! फिर वो परमानंद में ही रहे, अन्य किसी झंझट में उतरे ही नहीं।

★★★

३६१७. व्यवहारचारित्र किसे कहेंगे ? कि जो वीतरागमार्ग में हो। वीतरागमार्ग में हो यानी किसी भी धर्म को जो पराया न समझता हो, पर वीतरागधर्म को अपना ध्येय मानता हो; 'वीतरागों' को मान्य रखे और अन्य किसी को अन्याय न करे। किसी धर्म के प्रति, किसीके भी प्रति जब द्वेष ना रहे, तब ही 'व्यवहार-चारित्र' कहा जाय।

३६१८. आत्मा का चारित्र यानी कि ज्ञाता-दृष्टा और परमानंद में रहना।

★★★

३६१९. इस देह में क्रोध-हर्ष-शोक ये सब कुछ भरा पड़ा है, परंतु उसमें आत्मा तन्मयाकार न हो और पुद्‌गल के हरएक संयोगों को परपरिणाम जाने, उसे 'सम्यक् चारित्र' कहा जाय।

३६२०. बाहर सन्निपात हुआ हो, उसका 'वीतरागों' को हर्ज नहीं, पर अंदर ज्ञाता-दृष्टा रहते हैं या नहीं - ये ही देखा जाता है।

३६२१. 'ज्ञान-दर्शन-चारित्र' ये रूपी नहीं, अपितु अरूपी हैं। हालाँकि लोग रूपी को खोजते हैं, जो प्रत्यक्ष दिखाई दे ऐसा खोजते हैं। 'ज्ञान-दर्शन-चारित्र' ये रूपी नहीं हैं; भगवान 'वीतरागों' के मुताबिक वो रूपी नहीं, अरूपी हैं। जिसे मोक्ष में जाना हो, उसे वीतरागों का कहा हुआ मान्य करना होगा।

३६२२. चारित्र कहाँ तक प्रकट हुआ है, उसका प्रमाण यह है कि अंतर-दाह कितना बंद हुआ!

३६२३. 'कषायरहित चारित्र' ये सम्यक् चारित्र और 'केवलचारित्र' ये चरम चारित्र है।

३६२४. कर्म की खपत हो, निर्जरा हो, संवर रहता हो, तो समझो ये मोक्ष का मार्ग है, और यदि संवर न रहता हो, तो फिर वो सब जगह जो चल रहा है ऐसा सामान्य मार्ग ही है! हालाँकि उसमें घाटा नही।

३६२५. संवर यानी नये कर्म बँधना थम जाये। संवर कहाँ हो ? जहाँ स्याद्वाद हो वहाँ। जहाँ यथार्थ ज्ञान हो, वहाँ स्याद्वाद होवे।

★★★

३६२६. समकित किसे कहेंगे ? पहले तो व्यवहार-समकित होना चाहिए कि इन सब में कौनसे देव हैं जो मोक्ष ले जायेंगे ? इसकी समझ आनी चाहिए। समझ में ऐसा बैठे कि ये स्त्रीवाले, शस्त्रवाले देव मोक्ष में न ले जायें, केवल 'वीतराग' ही मोक्ष ले जायेंगे ; ऐसा पक्का यकीन हो जाये, तब व्यवहार-समकित होवे ! तत्पश्चात् शब्दों द्वारा आत्मा की कुछ समझ बैठे, तब सच्चा 'समकित हुआ' ऐसा कहलाये, शुद्ध समकित !! जबकि ''ज्ञानीपुरुष यहाँ 'अक्रम' में परमार्थ समकित देते हैं।

★★★

३६२७. 'व्यवहार से कर्ता' नहीं मानना ये भी मिथ्यात्व और 'मैं निश्चय से कर्ता हूँ' ये भी मिथ्यात्व। 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा भान ये मिथ्यात्व है।

★★★

३६२८. ''ज्ञानी'', सम्यक् में रहे जबकि दुनिया मिथ्यात्व में रहे। ''ज्ञानी'' सम्यक् में जागे जबकि दुनिया मिथ्यात्व में जागे।

★★★

३६२९. शास्त्रज्ञान से सम्यक् दर्शन नहीं होता, बल्कि अनुभवज्ञान से सम्यक् दर्शन होवे।

★★★

३६३०. अज्ञान चला जाये तब से मुक्ति का अनुभव होवे ! अज्ञान से बंधन है। किस बात का अज्ञान ? 'स्वयं' अपने आप से ही अज्ञान है ! श्रीकृष्ण भगवान ने इसे 'गुह्यतम विज्ञान' कहा है। जब कोई गुह्य ही समझ नहीं सकता, तो फिर गुह्यतर और गुह्यतम कैसे समझ में आये ?

३६३१. ‘मैं सुमितभाई हूँ’, ये उल्टी श्रद्धा बैठी है, इसे कितना भी भूलाना चाहो, कैसे भूल पाओगे? इसका तार तो यथार्थतः “ज्ञानी” के आधार से कट जाना चाहिए। सूक्ष्म तार, श्रद्धा के तार भीतर जुड़े हुए होते हैं। ये सब ‘रॉंग बिलीफ’ टूट जायें और ‘राईट बिलीफ’ बैठ जाये तभी काम बने! ‘राईट बिलीफ’ को ‘सम्यक्दर्शन’ कहा है। ‘रॉंग बिलीफ’ को ‘मिथ्यात्व’ कहा।

★★★

३६३२. ‘मैं सुमितभाई हूँ, इन शास्त्रों का ज्ञान मुझे मुखपाठ है, श्रुतज्ञान भी मुझे मुखपाठ है’, इन सबको भगवान ने देहाध्यास कहा है, क्योंकि ‘मैं सुमितभाई हूँ’, ये अध्यास अभी तक टूटा नहीं। ‘मैं शुद्धात्मा हूँ’, ये भान हो जाये तभी सारा हल निकले।

★★★

३६३३. समकित तो आत्मज्ञानी पुरुष से प्राप्त होवे। निमित्त चाहिए। समकित होने के बाद चिंता-उपाधि न होवे, आर्तध्यान-रौद्रध्यान न होवे। आत्मज्ञानी की भक्ति करने से, उनकी प्रत्यक्ष कृपा हम पर उतरने से समकित हो जाये।

★★★

३६३४. जब तक समकित नहीं हो, तब तक ‘विषरस’ टपकता रहे! इसीसे वाणी विषाक्त हो जाये, वर्तन विषाक्त हो जाये, सब कुछ विषाक्त हो जाये; लेकिन समकित होते ही भीतर अमृत झरने लगे, अतः दिन-ब-दिन वाणी अमृतमय होती जाय, वर्तन अमृतमय होता जाय, सबकुछ अमृतमय हो जाये, क्रोध-मान-माया-लोभ सब चले जायें।

★★★

३६३५. एक पूर्व दिशा को जान लें तो फिर अन्य सभी दिशाओं का पता चल जाये न? अज्ञान की दिशा जानें तो फिर दूसरी ओर ‘ज्ञान’ की दिशा मिल ही जायेगी ना? लेकिन यहाँ तो अज्ञान को भी नहीं जाना! अज्ञान को अगर जान लिया फिर जो बाक़ी बचा, वो है ‘ज्ञान’। अज्ञान को ही जानना बहुत मुश्किल है। जबकि ‘ज्ञान’ को जानना आसान है।

३६३६. संसार में रहें फिर भी संसार स्पर्श न करे, इसीका नाम समकित। वो तो ''ज्ञानीपुरुष'' की कृपा से प्राप्त होवे! ''ज्ञानीपुरुष'' में भगवान प्रकट हुए होते हैं।

३६३७. जहाँ 'कुछ भी करना हो', वहाँ समकित प्राप्त न होवे।

३६३८. कर्ताभाव में 'मोह' है जबकि अकर्ताभाव में 'चारित्रमोह' है। मोह में से बीज पड़े, जबकि चारित्रमोह में से बीज न पड़े। परेशान करने पर जिसके चेहरे के भाव बदल जाये, तो समझ लो कि उसे मोह है।

३६३९. 'दर्शन मोहनीय' ये संसार का 'कॉज़' है, जबकि 'चारित्र मोहनीय' ये संसार का 'इफेक्ट' है।

३६४०. दर्शनमोह यानी क्या ? कि स्वयं जो है वो न जानकर, आरोपित भाव से बोलना कि 'मैं चंदुलाल हूँ', इसीका नाम दर्शनमोह!

★★★

३६४१. जगत् का 'रूटकॉज़' दर्शनमोह है। 'दर्शनमोह' ये किस स्वरूप में है ? 'इगोइज़म' स्वरूप में!

★★★

३६४२. दर्शनमोह यानी क्या ? 'खुद' को 'अपनी' विस्मृति हो गई, इसकी वजह से जो खड़ा हुआ, वो। वो बड़ी भूल है! इस भूल के कारण संसार खड़ा रहा है!! उस भूल को ''ज्ञानीपुरुष'' तोड़ देते हैं।

३६४३. 'अकर्ताभान' ये संवर; 'कर्ताभान' ये आश्रव।

३६४४. पौद्‍गलिक लेन-देन का व्यवहार जिसे बंद हुआ, उसे नि:शंक आत्मा प्राप्त हुई कहलाये; यही 'क्षायक समकित' कहलाये।

३६४५. क्षायक समकित यानी पुद्‍गल परिणति का संपूर्ण त्याग! वे तो दर्शन करने योग्य हैं!! वे तो सारे 'वर्ल्ड' का अजूबा कहलायें!!!

३६४६. मन-वचन-काया, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म "ज्ञानी" के चरणों में अर्पण करना है। नोकर्म यानी 'डिस्चार्ज' हो रहे कर्म, भावकर्म यानी 'चार्ज' हो रहे कर्म तथा द्रव्यकर्म यानी दृष्टि, जो है उससे उल्टा दिखाये। विपरीत दिखे अत: विपरीत चले!

३६४७. जो आनेवाले जनम के लिए बीज बोते हैं-वो भावकर्म, बग़ैर बीज के जो कर्म हैं वो नोकर्म। द्रव्यकर्म क्या है? ये बीते जनम से किस प्रकार के चश्में लाया है: चार 'नंबर' के, आठ 'नंबर' के या बारह 'नंबर' के? जैसे चश्मे लाया हो, उनसे ही मनुष्य सारी ज़िंदगी देखे। मनुष्य जैसे चश्मे लेकर आया हो, उनके मुताबिक उसे सूझे!

३६४८. द्रव्यकर्म में मनुष्य शक्तियाँ भी लेकर आता है। आत्मा में अनंत शक्तियाँ हैं, लेकिन मनुष्य उन्हें अंतराय करनेवाली शक्तियाँ भी लेकर आता है! और मूर्च्छितभाव, मोह भी लेकर आता है।

★★★

३६४९. द्रव्यकर्म अर्थात् भावकर्म का 'रिज़ल्ट', हालाँकि वो 'रिज़ल्ट' स्थूल नहीं, आनेवाले भव के चश्मे के स्वरूप में होता है।

★★★

३६५०. गाली देवे ये नोकर्म, उस समय रौद्रध्यान उत्पन्न हो वो भावकर्म, और रौद्रभाव उत्पन्न होते समय भीतर मूल 'मशीनरी' की 'स्विच' दबे, दृष्टि बिगड़े-ये द्रव्यकर्म। ''ज्ञानीपुरुष'' 'ज्ञान' देकर उस दृष्टि को उड़ा देते हैं! फिर भाव तो पैदा होवे लेकिन दृष्टि न बिगड़े, हिंसक भाव उत्पन्न न होवे, फलस्वरूप कर्म 'चार्ज' नहीं होवे।

★★★

३६५१. चूँकि दृष्टि नहीं बिगड़ती इसलिए जो भावकर्म हों, वे भी 'डिस्चार्ज' हैं। भावकर्म के साथ दृष्टि भी बिगड़े-इसीका नाम 'चार्ज'! 'अक्रम' में भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म सभी 'डिस्चार्ज' रूप बन जायें।

★★★

३६५२. आत्मा स्वभाव में ही है, परंतु कोहरा घना होने के कारण दिखाई न दे; हालाँकि धुँध के छँट जाने पर दिखाई देवे। द्रव्यकर्म कोहरे जैसा है। कोहरे से बाहर निकलने के बाद भी मनुष्य पर लंबे काल तक उसका असर रहे! ''ज्ञानी'' उससे मुक्त करा देवे।

★★★

३६५३. पीला चश्मा चढ़ायें तो जगत् पीला दिखे। इस चश्मे से वो वाक़िफ़ है इसलिए समझ जाता है कि इस चश्मे के कारण ही पीला दिखता है। पूर्वजन्म के द्रव्यकर्म के चश्में चढ़ाये हुए हैं, उन्हीं से ये सब दिखता है। यदि चश्मे का भान रहे, 'स्वयं' के जुदापन का अवबोध रहे और बाहर की हक़ीक़त ध्यान में रहे, तो कोई हर्ज नहीं।

३६५४. आत्मज्ञानी और उनके आश्रयवान ही द्रव्यकर्म को समझ सकते हैं। द्रव्यकर्म यानी जो परिणमित हो चुका हो, 'इफेक्टिव' हो।

३६५५. संसार में भटकानेवाला जो धर्म है, उसे 'शुभाशुभ धर्म' कहा जाता है। मोक्ष में ले जानेवाले धर्म को 'शुद्ध धर्म' कहा जाता है।

३६५६. 'शुद्ध व्यवहार', ये प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण है। 'सद्व्यवहार' ये परोक्ष मोक्ष का कारण है।

३६५७. शुद्ध व्यवहार किसे कहा जाये ? 'स्वरूप का भान' हो जाये तत्पश्चात् ही शुद्ध व्यवहार शुरू होवे, तब तक तो सद्व्यवहार है।

३६५८. शुद्ध व्यवहार और सद्व्यवहार में क्या फ़र्क़ है ? सद्व्यवहार अहंकारसहित होता है, जबकि शुद्ध व्यवहार अहंकाररहित होवे।

३६५९. शुद्ध व्यवहार संपूर्ण धर्म-ध्यान देवे ! सद्व्यवहार अल्पांश धर्म-ध्यान देता है।

३६६०. जितना शुद्ध व्यवहार हो, उतना शुद्ध उपयोग रहे।

३६६१. शुद्ध उपयोग अर्थात् 'स्वयं' ज्ञाता-दृष्टा हो, लेकिन देखे क्या ? शुद्ध व्यवहार को देखे।

३६६२. शुद्ध व्यवहार अर्थात् कषायरहित व्यवहार !

३६६३. जहाँ शुद्ध व्यवहार नहीं, व्यवहार का 'फाउन्डेशन'(नींव) ही नहीं, समझो वहाँ 'निश्चय' जैसी कोई वस्तु ही नहीं है।

३६६४. जहाँ शुद्ध व्यवहार नहीं, वहाँ निश्चय का आराधन फल न देवे।

३६६५. व्यवहार तो होना ही चाहिए पर शुद्ध व्यवहार होना चाहिए।

३६६६. आर्तध्यान और रौद्रध्यान न हो, इसीका नाम शुद्ध व्यवहार ! आर्तध्यान और रौद्रध्यान होवे – ये अशुभ व्यवहार !! आर्तध्यान और रौद्रध्यान शल्य की भाँति चुभे, तब वो है शुभ व्यवहार।

३६६७. 'यथार्थ व्यवहार' ये सापेक्ष वस्तु है, अत: संसारी व्यवहार को 'यथार्थ व्यवहार' कहा जाये, साधु–व्यवहार को भी 'यथार्थ व्यवहार' कहा जाये; लेकिन जहाँ आत्मा और परमात्मा की बात हो, वहाँ जो व्यवहार है, वो शुद्ध व्यवहार है। वहाँ व्यवहार तो हो, फिर भी बंधन नहीं होवे !

★★★

३६६८. हक़ीक़त में यथार्थ व्यवहार किसे कहा जाये ? शुद्ध व्यवहार को। 'निश्चय' प्राप्त होने के बाद जो बाक़ी रहे– उसीका नाम शुद्ध व्यवहार !

३६६९. शुद्ध व्यवहार में कुछ भी करना न पड़े, वो तो 'ऑटोमेटिक' हो जाय, वो निष्कास रूप है। शुद्ध व्यवहार में अहंकार की ज़रूरत नहीं होती। शुभ व्यवहार में अहंकार की ज़रूरत होती है।

★★★

३६७०. 'निश्चय' शुद्ध होगा तो व्यवहार जल्द शुद्ध होगा, अन्यथा 'निश्चय' का प्रज्ञान रखकर व्यवहार को शुद्ध करना पड़ेगा।

★★★

३६७१. 'निजस्वरूप का भान' हुए बग़ैर व्यवहार 'हेल्प' नहीं कर सकेगा, और शुद्ध व्यवहार के बग़ैर 'निज स्वरूप का भान' 'हेल्प' नहीं कर सकेगा। ये दोनों 'रिलेटेड' ही हैं।

★★★

३६७२. ये तो 'विज्ञान' है! शुद्ध व्यवहार और शुद्ध निश्चय सहित!! शुद्ध व्यवहार हुए बग़ैर मोक्ष की बात न करें।

★★★

३६७३. ये तो सिर्फ़ व्यवहार खड़ा हो गया है समसरणमार्ग का! जैसे आईने के सामने व्यवहार खड़ा हो जाता है न? आईने में कुछ दिखाई देता है या नहीं? क्या वो 'एक्ज़ेक्ट' व्यवहार नहीं? हम जो कुछ करें ये सब वो (प्रतिबिंब) 'एक्ज़ेक्ट' करता ही है न? लेकिन ये लोग इस आईने के व्यवहार पर ध्यान दें तो समझे न! ये हम सबका भी ऐसा ही व्यवहार है, और कुछ भी नहीं।

★★★

३६७४. जो-जो व्यवहार तुम्हें स्पर्श न करे, वो व्यवहार, 'व्यवहार' कहलाये। ऐसा करते-करते समग्र व्यवहार स्पर्श ही न करे, तब समझो हो गया केवलज्ञान!

३६७५. शुद्ध व्यवहार में बुद्धि की बिल्कुल ज़रूरत नहीं।

३६७६. अंततः जब बुद्धिरहित 'विज्ञान' होगा तभी काम बनेगा। 'अक्रम विज्ञान' किसके द्वारा देखे ? प्रज्ञाशक्ति से।

३६७७. एक अज्ञाशक्ति से जगत् खड़ा हो गया है ! अज्ञाशक्ति से जगत् की अधिकरण-क्रिया चलती ही रहती हैं।

३६७८. क्रमिक मार्ग में ठेठ आख़िरी 'स्टेशन' पर अज्ञाशक्ति बिदा ले और प्रज्ञाशक्ति हाज़िर हो जाये। यहाँ 'अक्रममार्ग' में पहले प्रज्ञाशक्ति उत्पन्न होती है और अज्ञाशक्ति उसी वक़्त बिदा हो जाती है।

३६७९. अज्ञा नामक शक्ति से पाप-पुण्य रचे जाते हैं।

३६८०. प्रज्ञा नामक शक्ति 'ज्ञान' से उत्पन्न होवे।

३६८१. अज्ञाशक्ति संसार में ही भटकाती रहे, और उसे फिर बुद्धि मदद करे। प्रज्ञा को आत्मा की मदद रहे।

३६८२. ये बुद्धि है या प्रज्ञा, इसकी परिभाषा क्या ? 'ज़रा सी भी बेचैनी करवाये' वो है बुद्धि; जबकि प्रज्ञा में 'बेचैनी' ना हो।

३६८३. अज्ञाशक्ति क्यों उत्पन्न हुई ? आत्मा पर संयोगो का भारी दबाव आया, इसलिए ज्ञान-दर्शन विपरीत हुआ, स्वाभाविक न रहा, अतः अज्ञाशक्ति उत्पन्न हुई।

३६८४. अज्ञाशक्ति ये आत्मा की कल्पना है, विकल्प है। जैसी कल्पना करे वैसा देह बँध जाये, इसमें कुछ मेहनत करनी न पड़े ! फिर 'इगोइज़म' साथ में ही रहा करे। पुराना 'इगोइज़म' खत्म भी नहीं हुआ हो कि नया 'इगोइज़म' शुरू हो जाये !

★★★

३६८५. संजोगों के दबाव के कारण अज्ञाशक्ति उत्पन्न हुई और यदि "ज्ञानीपुरुष" मिल जाये तो प्रज्ञाशक्ति उत्पन्न हो जाये, फिर अज्ञाशक्ति बिदा हो जाये ! प्रज्ञाशक्ति संयोग और आत्मा दोनों को विलग कर दे।

★★★

३६८६. संकल्पशक्ति से जगत् चलता रहता है। रात के अँधेरे में 'मोटर-कार' की 'लाइट' चालू होने पर पता चले कि जीवजंतु मरते हैं। तो फिर क्या पहले नहीं मरते थे ? परंतु प्रकाश होने पर दिखाई दिया कि जीव-जंतु मरते हैं। फिर खुद मान लेता है कि मैं जीवों को मारता हूँ !

★★★

३६८७. ये जो कढ़ी बनाते हैं, वे द्रश्यमान सांयोगिक प्रमाण हैं, जबकि ये जगत् जो चलातें हैं वे तो गुप्त सांयोगिक प्रमाण हैं।

★★★

३६८८. द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव ये सब जब इकट्ठा होवे, तभी काम होता है, अन्यथा कुछ भी संभव नहीं; तो फिर अहंकार करना ही कहाँ रहे ?! भगवान की बात समझ में न आने से ये जगत् फँसा हुआ है, हालाँकि जगत् तो वैसा का वैसा ही रहेगा। अहंकार किये बिना रहे ही नहीं ना ? स्वभाव जो है ! लेकिन जिसे ये समझना हो, उसे तो समझ लेना चाहिये।

★★★

३६८९. आठ बजकर पैंतीस मिनट पर क्या होनेवाला है-ये काल के प्रज्ञान में ही होवे, वो 'एविडन्स' है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव ये सब इकट्ठे हों, तब ही कार्य हो पाये !

★★★

३६९०. 'व्यवस्थित' ये है नदी और हम हैं नाव ! नाव नदी से कहती है, 'तुम टेढ़ी-मेढ़ी मत बहना।' तब नदी नाव से कहती है, 'बेवकूफ, तुम टेढ़ी-मेढ़ी मत चलना। तुझे अगर जिंदा रहना है तो जैसे मैं करूँ वैसा करना, मैं चलूँ वैसे चलना। मेरे अनुकूल होना, वरना तुम टूटकर चूर-चूर हो जाओगी, मर जाओगी !'

★★★

३६९१. व्यवहार में कोई केवल ये माने कि 'सब हो जाता है', और कोई केवल ये माने कि 'करना पड़ता है'; ऐसा माननेवाले दोनों ही कच्चे हैं। 'ये अक्रम विज्ञान' दो आँखोंवाला ज्ञान है; जबकि सारे जगत् का ज्ञान एक आँखवाला है, एकांतिक ज्ञान है। 'यह करना पड़े', ऐसा व्यवहार में बोलना है जबकि 'हो जाता है' ये प्रज्ञान में रखना है। 'करना पड़ेगा' ये भाव है, जबकि 'हो जाता है' ये व्यवस्थित है।

३६९२. 'व्यवस्थित' यानी कोई अंकित वस्तु नहीं। तुम जैसे 'परिणाम' करो, वैसा ही 'व्यवस्थित' गठित हुआ होता है। 'व्यवस्थित', खुद के 'परिणाम' पर आधारित होता है! खुद के 'परिणामों' का वैसे सीधा नतीजा नहीं मिलता, पहले वो परिणाम 'कुदरत' में जायें और उसमें अन्य संयोग मिलें, फिर कुदरत के संयोग मिलने से जो प्रमाण बने, जो रंग-रूप तैयार हो, वैसा रूपक आये।

★★★

३६९३. ये 'व्यवस्थित' नहीं होता, तो मुंबई शहर में किसी नये आदमी को घर ही नहीं मिलता, पर ये 'व्यवस्थित' 'हेल्प' करता है।

★★★

३६९४. 'व्यवस्थित' पर तो 'व्यवस्थित' की भी सत्ता नहीं। 'व्यवस्थित' तो मात्र 'रिज़ल्ट' देता है। यदि 'व्यवस्थित' की सत्ता होती तो वो कहता, 'मेरे कारण ही सब चल रहा है।' यदि भगवान की सत्ता होती तो वह 'रौब' में आ जाता! कोई कुछ नहीं बोल सकता! केवल निमित्त से ही जगत् खड़ा हुआ है!

★★★

३६९५. 'निमित्त का त्याग करना' - ये भी गुनाह है, और 'निमित्त के आगे दीन हो जाना' - ये भी गुनाह है।

★★★

३६९६. 'व्यवस्थित का ज्ञान' जगत् के लोगों को नहीं दिया जा सकता, क्योंकि जब तक 'स्वरूप का ज्ञान' न हो, और फिर बाहर का सब 'व्यवस्थित है' ऐसा मानकर सोता रहे, और 'कोई हर्ज नहीं', ऐसा कहे। इस प्रकार उलटे भाव करे जिससे कि आनेवाला भव बिगड़ जाए! हालाँकि इस भव में तो न बिगड़े ऐसा 'व्यवस्थित' है। 'व्यवस्थित' गहराई से समझने लायक है, ये बहुत ही गहरी बात है।

३६९७. दादाश्री कहते हैं कि ''हमारे अनंत अवतार का 'यह' निचोड़ है ! मैं 'जो' लाया हूँ वह अनंत अवतार से निचोड़ करते, करते, करते, करते हुए लाया हूँ, यह निचोड़ है, 'व्यवस्थित' !! 'साइन्टिफिक सर्कमस्टेन्शिअल एविडन्स' !!! जो कि जगत् को चलाता है।''

★★★

३६९८. एक आत्मा में पूरे ब्रह्मांड की शक्ति है ! उसे प्रकट करने में लग जाओ। जैसे जैसे दृष्टि संसार की ओर से हटती जाये वैसे वैसे आत्मा के प्रति दृष्टि होती जायेगी, और वैसे वैसे आत्मशक्ति प्रकट होती जायेगी; पर इस तरफ़ जो बेहिसाब खेत हैं, वे सब जोतने तो पड़ेंगे न ?

★★★

३६९९. परमात्मा यानी 'स्वयं' की 'अपनी' 'फुल' (संपूर्ण) शक्तियाँ 'डेवलप' हो जायें, पूरी शक्ति प्रकट हो जाये ! चूँकि ये शक्तियाँ बस आवृत्त हो गई हैं, अन्यथा तो स्वयं ही परमात्मा है। किसी करोड़पति के अरबों-खरबों रुपये जमीन में गड़े हुये हों, पर मिल नहीं रहे हों और फिर वो पाँच रुपये माँगने जाये, ऐसा हो गया है।

३७००. संयम में आये तब से 'स्वभाव' सत्ता प्रकट होती जाये।

★★★

३७०१. आत्मा वीतराग है या राग-द्वेष युक्त ? आत्मा वीतराग है। तो फिर राग-द्वेष कैसे छुड़वाते हो ? तुम तो वीतराग ही हो। हालाँकि 'तुम' किस प्रकार वीतराग हो, ये तुम समझे नहीं, अतः ''ज्ञानीपुरुष'' के पास जाकर समझ लो। ये तो तुम्हारे अंदर इस संसार के संयोगों के धक्कों के कारण भ्रमणा खड़ी हो गई है।

३७०२. 'राग-द्वेष' ये गुरु-लघु स्वभाव के हैं; जबकि 'आत्मा' अगुरु-लघु स्वभाव की है। दोनों के गुण-धर्म अलग हैं!

★★★

३७०३. आत्मा नया देह ग्रहण करती है या पुद्गल? ये तो आत्मा भी ग्रहण नहीं करती और पुद्गल भी ग्रहण नहीं करता। ये तो मिश्रचेतन ग्रहण करता है।

★★★

३७०४. अज्ञानता का स्वभाव ही चिकनाहट है! कोई ज़रा-सा मीठा बोले कि आकर्षण होवे और कड़ुवा बोले तो विकर्षण होवे।

★★★

३७०५. कोई भी संयोग जो हमें प्राप्त होवे, उसके प्रति शिकायत खड़ी न हो इस प्रकार हल निकालना है! भले खुशी न हो तो कोई बात नहीं, किन्तु फ़रियाद तो होनी ही नहीं चाहिए।

★★★

३७०६. ये जो चेतन दिख रहे हैं ना, वे सारे मिश्रचेतन ही हैं। ये तो सिर्फ़ 'राँग बिलीफें' सारी पैठ गई हैं!' 'बिलीफ' ये भी तो भगवान को हुई 'बिलीफ' है, फिर उसे ऐसी-वैसी तो नहीं कह सकते ना!!

★★★

३७०७. ये सारी पुद्गल की स्थिति है, आत्मा की नहीं। हालाँकि जगत् ने पुद्गल की स्थिति को आत्मा की स्थिति मान लिया। आत्मा तो उसे बस जानती ही रहती है कि क्या हो रहा है और क्या नहीं ?! आत्मा को तो उसके साथ कोई लेना-देना ही नहीं।

३७०८. 'अनैच्छिक दशा' ये ही मोक्ष ! दशा परिपक्व होने पर स्वदशा प्राप्त होवे। 'व्यूपॉइन्ट' से जो दिखता है, वैसा कुछ भी 'सेन्टर' में से न दिखे । हालाँकि 'सेन्टर' वाले को तो सारे 'व्यूपॉइन्ट' समझ में आ जायें।

★★★

३७०९. मोक्ष यानी अंतिम स्वाभाविक दशा !

★★★

३७१०. मोक्ष अर्थात् कभी भी कर्म चिपक नहीं पाये।

★★★

३७११. अहंकार की निवृत्ति, इसीका नाम मुक्ति !

★★★

३७१२. क्रियाएँ किस हेतु हैं ? सारी क्रियाएँ इस संसार में उर्ध्वगति हेतु हैं ! हालाँकि जिसे मोक्ष के अलावा और कुछ नहीं चाहिए, उसे इन क्रियाओं के झमेले में पड़ने की आवश्यकता नहीं, वो तो दृष्टिराग है।

★★★

३७१३. 'जीते जी मोक्ष' अर्थात् भयंकर उपाधि में भी समाधि बनी रहे !

★★★

३७१४. 'प्रॉब्लेम' खड़े न हों, इसीका नाम मुक्ति ! ''ज्ञानीपुरुष'' को कितना भी भला-बुरा कहो, लेकिन उन्हें कोई 'प्रॉब्लेम' खड़ा नहीं होगा, पर तुम्हें तो प्रॉब्लेम हो जाये, क्योंकि तुम बँधे हुए हो-अज्ञान के रस्से से !! उस रस्से को ''ज्ञानीपुरुष'' तोड़ देवें।

★★★

३७१५. भगवान ने सबसे बड़ा कर्मबँध किसे कहा ? रात को 'मैं चंदुलाल हूँ', कहकर सो गये और फिर आत्मा को बोरी में ठूँस दिया, वो है सबसे बड़ा कर्मबँध !

३७१६. आत्मा दिखे नहीं, किन्तु कर्मफल दिखाई देवे।

३७१७. कर्मफल आनेपर उसमें 'टेस्ट' आ जाये, फिर उसमें मनुष्य तन्मयाकार हो जाये – जिससे भुगतना पड़े !

३७१८. कर्म–उदय किसे कहेंगे ? जो घसीटकर ले जाये वो, संजोगों के शिकंजे में फँस जायें, और जाना ही पड़े, वो ! राज़ीखुशी से जायें, उसे कर्म–उदय नहीं कह सकते ! कर्म–उदय यानी जो खुद की इच्छापूर्वक न हो, जैसे कि 'पुलिसवाला' डंडा मारकर मांसाहार करवाये, वैसे।

३७१९. 'कर्म' ये संयोग है और उसका स्वभाव वियोगी है।

३७२०. जिस विषय में हमारे अंदर चिकनाहट हो, उसी प्रकार के चिकने कर्मों का हमें उदय आये, और वो हमारी चिकनाहट छुड़ाने के लिए आता है ! सब कुछ हमारा ही हिसाब है।

३७२१. कर्म बाँधते समय ये याद न रहे कि क्या परिणाम आयेगा। 'स्वरूप का ज्ञान' हो, तो ये जागृति रहे।

३७२२. जब तक कर्म बँधने बंद न हो, तब तक भगवान से भेंट न होवे।

३७२३. अज्ञानी को जहाँ जाये वहाँ कर्म बँधे, जबकि ''ज्ञानी'' को जहाँ जाय वहाँ कर्म छूटें।

३७२४. उल्लासपूर्वक बाँधे हुये कर्म पश्चाताप करने से नष्ट हो जायें।

३७२५. अब तक तो लोग हड़बड़ी में थे, लेकिन अब कर्म भी हड़बड़ी में आ गये हैं।

३७२६. कर्म बाँधने का अधिकार मनुष्यों को ही है, और किसी को नहीं। जिसे कर्म बाँधने का अधिकार है, उसे चारों गतियों में भटकना पड़े।

३७२७. कर्म कितने प्रकार के हैं ? जितने मनुष्य उतने कर्म। निर्विकल्प एक जबकि विकल्प तो अपार हैं। जितने विकल्प हैं, उतने कर्म हैं।

★★★

३७२८. जो 'वस्तु' है, उसका विकल्प आये। जो नहीं, उसका विकल्प कैसे आयेगा ?! 'ये है', ऐसी 'रॉंग बिलीफ' के कारण विकल्प आते हैं। 'रॉंग मान्यता' निकाल दें और जान लें कि 'ये है ही नहीं', तो फिर उसका विकल्प कैसे आयेगा ?! जो जो माना है, वे सारी 'रॉंग बिलीफ' हैं। 'राइट बिलीफ' हो जाने पर कुछ भी न रहे।

३७२९. जगत् निरंतर प्रकृति को ही पूजता है। एक क्षण भी आत्मा को पूजे तो काम बने। जो खुद विकल्पी हो, वो निर्विकल्पी को कैसे भजे ?! जब खुद निर्विकल्पी हो जाये, तभी आत्मा की भजना हो पाये ! इसके सिवा की हुई सारी भजना, ये प्राकृत सत्य है।

३७३०. हम तो आत्मा के ग्राहक हैं। बाक़ी सब तो अपने आप आता ही रहे, इच्छा करनी ही न पड़े। इच्छा करने योग्य यदि कुछ है, तो वो है केवल आत्मा। बाक़ी ये सब तो जूठन है ! इसकी क्या इच्छा करना ?!

३७३१. जिसे इच्छा हो, उसे पूरा दिखे नहीं, क्योंकि इच्छा का आवरण होता है।

३७३२. जो याद आये, उसका प्रतिक्रमण करें। इच्छा हो, उसका प्रत्याख्यान करें।

३७३३. इच्छाएँ पूरी कब होगी ? शुद्धात्मा हो जायें तभी ! ये तो इच्छाओं का समुद्र है। एक इच्छा पूरी हो, फिर दूसरी शुरू हो जाये !!

३७३४. मोक्ष की इच्छा करने पर शेष सारी इच्छाएँ छूट जायें।

३७३५. जिस इच्छा में किसी भी प्रकार का मैल नहीं, किसीसे कुछ भी लेने की बिल्कुल इच्छा नहीं, वो निर्मल इच्छा कहलाये ! वो इच्छा फलीभूत होवे।

३७३६. जो होनेवाला हो, उसकी पहले इच्छा होवे; और अंतराय टूटने पर अपनी इच्छानुसार आ मिले।

३७३७. ''ज्ञानीपुरुष'' के इतने सारे अंतराय टूट चुके होते हैं कि हरेक वस्तु उन्हें सामने से आ मिले। अहंकार के कारण अंतराय पड़े-'मैं कुछ हूँ', इसके कारण।

३७३८. जिसका विचार न आये, वो वस्तु तुम्हारे पास हाज़िर हो जाये; लेकिन जिसके लिए बहुत विचार आयें, वो तुम्हारे पास हाज़िर न होवे। जिस जिस के लिए विचार आये नहीं, वो सब कुदरत सँभाल लेवे, लेकिन जिसके लिए बहुत विचार आते हों, वो कुदरत नहीं सँभालती।

३७३९. विकल्पी होने पर उत्तरदायी हो जाये! उत्तरदायी हो जाये तो फिर कुदरत अवश्य प्रहार करे ही। कुदरत किसी को दुःख नहीं देती। कुदरत तो सबको 'हेल्पफुल' ही है।

३७४०. सरकारी गुनाहों में आँखों-देखें प्रमाण होवें, जबकि कुदरत के गुनाहों में 'साइन्टिफिक सर्कमस्टेन्शिअल एविडन्स' होवें।

३७४१. कुदरती रचना किसे कहेंगे? कि जो संयोगी पदार्थ हो!

३७४२. कुदरत यानी स्वाभाविक!

३७४३. 'अवस्थामात्र कुदरती रचना है', ये जब 'फीट' होगा, तभी आत्मज्ञान उत्पन्न होगा।

३७४४. केवलज्ञान की व्याख्या क्या ? पहले ये कहो, 'केवल-अज्ञान' की व्याख्या कौन-सी ? 'केवल-अज्ञान' का जत्था जो है, उसकी 'स्लाइस' करें तो एक भी 'स्लाइस' प्रकाश न दे, जबकि 'केवलज्ञान' के जत्थे की 'स्लाइस' करे, तो एक भी 'स्लाइस' अंधकार नहीं देगी- हरेक 'स्लाइस' प्रकाश देगी !

३७४५. बुद्धि-मति का 'एन्ड' (अंत) हो जाय, तब केवलज्ञान हो जाये।

३७४६. पाँचों इन्द्रियाँ 'रेग्युलर' हों, तभी केवलज्ञान होवे; इन्द्रियाँ नाकाम-सी हो गई हों, तो फिर केवलज्ञान न होवे।

३७४७. 'केवलज्ञान', ये करने की वस्तु नहीं ! 'करना' ये तो संसार है। 'केवलज्ञान', ये तो जानने का है।

३७४८. केवल आत्मप्रवर्तन, इसीका नाम केवलज्ञान। दर्शन-ज्ञान के अलावा और कोई प्रवर्तन नहीं, उसीका नाम केवलज्ञान !!

३७४९. ज्ञानी की कृपा से सब कुछ होवे, कृपा से आत्मज्ञान हो जाये।

३७५०. केवलज्ञान श्रद्धा में आ जाने पर सदेह मुक्ति होवे, जबकि केवलज्ञान, ज्ञान में आ जाने पर मोक्ष हो जाये। श्रद्धा में आया हुआ केवलज्ञान यानी केवलदर्शन!

३७५१. केवल आत्मा की ही जिसे श्रद्धा हो, वो ही केवलदर्शन।

३७५२. इस जगत् में जो कुछ भी किया जाये, वो जगत् को भाये या न भाये, किन्तु 'मैं कुछ भी करता नहीं', ऐसी जो निरंतर सुध रहे, ये है केवलदर्शन।

३७५३. आत्मदशा सभी मनुष्यमात्र में एकसमान ही होवे, परंतु देहदशा जितनी पारदर्शक हुई हो उतनी आत्मदशा व्यक्त होवे, उजियारा देवे।

३७५४. देहदशा हरेक की भिन्न-भिन्न होवे। मनुष्यमात्र के परिणाम अलग-अलग होते हैं; जबकि आत्मदशा सबकी एक ही प्रकार की!

★★★

३७५५. 'श्रद्धा' ये देह गुण नहीं, आत्मगुण है।

★★★

३७५६. जिसे संवेदना उत्पन्न हो, समझो उसमें चेतन है। जिसमें संवेदना नहीं, जिसे कोई असर न हो, वो जड़ है, आत्मा नहीं।

★★★

३७५७. 'ज्ञान' है वहाँ चेतन है ; जहाँ ज्ञान नहीं, वहाँ चेतन नहीं – वो जड़ है।

३७५८. इस जगत् में ''ज्ञानीपुरुष'' ये एक ही निमित्त है कि जो जड़ और चेतन को विलग कर सके!

३७५९. सद्-असद् के विवेक को ही समझना है कि पुद्‌गल असद् है ; जबकि आत्मा सद् है, अविनाशी है। हम अविनाशी हैं, अत: हमें विनाशी की चिंता नहीं करनी है।

३७६०. पुद्‌गलद्रव्य विनाशी है, अत: उसके साथ एकता करने पर 'हमें' भी विनाशी होना पड़े। यदि पुद्‌गल से विलग रहे तो 'स्वयं' अविनाशी है ! और उसे अपना अमरत्व मालूम हो जाये। लेकिन कर्तापन के भान के कारण पुद्‌गल के साथ एकता हो जाती है।

३७६१. विनाशी वस्तु की एक मुद्दत होवे, जबकि अविनाशी वस्तु की कोई मुद्दत नहीं होती। विनाशी को विनाशी समझनेवाला 'अविनाशी' होवे।

३७६२. चैतन्य अविनाशी है और अचेतन भी अविनाशी है, हालाँकि चैतन्य को तत्त्वस्वरूप से जानना है और तत्त्वस्वरूप से उसका अविनाशी-पन समझना है।

★★★

३७६३. चेतन में हल-चल करने का गुण ही नहीं। आत्मा यदि हल-चल करे, तो वो थक जाये, और उसे सो जाना पड़े, यानी उसका 'एन्ड' (अंत) आ गया कहलाये। आत्मा में बोलने का गुण नहीं, यदि बोलने का गुण हो, तो बोलना तो बंद भी हो जाता है। आत्मा के गुण तो 'परमेनन्ट' होवे! ये 'टेम्परारी गुण', 'रिलेटिव गुण', ये तो 'रिलेटिव आत्मा' के हैं। 'रियल आत्मा' और 'रिलेटिव आत्मा'- ये दो हैं!

★★★

३७६४. जगत् में उपादान तरह तरह के हैं, लेकिन अंतिमतम उपादान, मोक्ष का उपादान, वो है- अपना 'स्वरूप' शुद्धात्मा !

३७६५. आत्मा का सही अर्थ है 'सेल्फ' (स्वजाति)।

३७६६. आत्मोन्नति के तीन सोपान : १. धर्माधर्म आत्मा : जो अधर्म को हटाता रहे और धर्म का संग्रह करे-ये संसार फल देवे, २. ज्ञानघन आत्मा : जिसे 'रियल' और 'रिलेटिव' का 'ज्ञान' हो, ३. विज्ञानघन आत्मा : यानी 'एब्सोल्यूट' (केवल)। ''ज्ञानीपुरुष'' 'विज्ञानघन आत्मा' में बैठे हैं।

३७६७. आत्मा खुद ही परमात्मा है ! वो तपस्वरूप नहीं, जपस्वरूप भी नहीं; ना ही अन्य कोई कल्पना स्वरूप। 'स्वरूप का भान' होने पर अन्य सब कल्पनाओं के संयोग बंद हो जायें।

★★★

३७६८. जो कुछ दिखाई पड़ता है वे सारी अधातु की क्रिया है, यदि धातु की क्रिया दिखाई पड़े, तो धातु क्या है ये समझ में आ जाये।

★★★

३७६९. क्रियाओं में 'ज्ञान' नहीं होता और 'ज्ञान' में क्रिया नहीं होती, दोनों अलग-अलग स्वभाव के हैं!

३७७०. जितने प्रकार के जीव हैं, उतनी आत्माएँ हैं, दरअसल आत्मा हैं ! ये जो दिखती हैं वो एक भी आत्मा नहीं । ये सब 'मिकेनिकल आत्मा' हैं । ये सच्चा चेतन नहीं, अपितु 'डिस्चार्ज चेतन' है !

३७७१. ''ज्ञानी'' 'डिस्चार्ज' हो रही वस्तुओं को आधार नहीं देते। तुम 'डिस्चार्ज' हो रही वस्तुओं को आधार देते हो; आधार देने पर फिर से 'चार्ज' हो जाये। ये जो चार्ज होता है, यही संसार की अधिकरण क्रिया है ! बहुत गूढ़ 'सायन्स' है यह !! ये 'सायन्स' हमें समझना तो पड़ेगा ना ?!

३७७२. अहंकार की उपस्थिति के कारण निरंतर 'चार्ज' होता ही रहता है। 'ये मैंने किया', ऐसा बोलते ही 'चार्ज' हो जाये, 'यह अंगूठी मेरी है' ऐसा बोलते ही 'चार्ज' हो जाये।

३७७३. जड़ में 'ममत्व-चेतन' है; जीव में 'अहंकार-चेतन' है।

३७७४. आत्मा की अवस्था को 'जीव' कहा गया, जबकि जो 'परमेनन्ट' है, वो है आत्मा । जो 'जीये-मरे' वो जीव। जिसे 'जीना है' ऐसा भान है, 'मैं मर जाऊँगा' ऐसा भी भान है – उस अवस्था को 'जीव' कहा गया है।

३७७५. यह चंद्रमा जो दूज, तीज....पूर्णिमा दिखाई देता है, वो क्या है ? वो तो उसके 'फेज़िज़' (अवस्थाएँ) हैं। चंद्र तो वो ही का वो ही है ! ठीक वैसे ही तुम आत्मा हो और बाक़ी सब 'फेज़िज़' हैं। ये 'फेज़िज़' हैं, हालाँकि लोगों के लिए ये चंद्रकांत है। क्या चंद्र दूज हो गया ? क्या वो कट गया ? वो तो चंद्र ही है ! ये तो जैसे 'फेज़िज़ ऑफ दि मून', वैसे ही 'फेझिझ ऑफ दि मेन' हैं !!

★★★

३७७६. 'जीये और मरे' वो जीव, और 'अमरपद प्राप्त करे' वो आत्मा। 'आत्मा' ये 'सेल्फ' है, जबकि जीव ये 'रिलेटिव सेल्फ' है। 'जीव' तो अवस्था है।

★★★

३७७७. 'जीव' को विनाशी चीज़ों में श्रद्धा है, विनाशी चीज़ों का ही वो भोगी है; जबकि परमेश्वर को अविनाशी चीज़ में श्रद्धा है, और वो अविनाशी का ही भोगी है।

★★★

३७७८. भगवान ने सच में विराधना किसे कहा ? 'ज्ञान' की विराधना करनेवाला 'विराधक' कहलाये जबकि अज्ञान की विराधना करनेवाला 'आराधक' कहलाये।

★★★

३७७९. ''ज्ञानी'' अज्ञान की विराधना करते हैं। ज्ञान की विराधना तो एक क्षण के लिए भी उन्हें नहीं होती। ''ज्ञानी'' तो ज्ञान की आराधना करवाने हेतु आये हैं। 'ज्ञान', ये ही आत्मा है ! 'ज्ञान', ये ही परमात्मा है !! 'ज्ञान', ये ही तीर्थंकर है !!! 'ज्ञान', ये ही सिद्ध है' !!!! अर्थात् यदि 'ज्ञान' की विराधना हुई – तो समझो तीर्थंकरों की विराधना हुई, सिद्ध की विराधना हुई, परमात्मा की विराधना हुई। 'ज्ञान' की विराधना हुई, जिससे देखो ना, कैसी दशा हुई !

★★★

३७८०. ग़लत की भी विराधना न करें। तुम्हें आराधना न करनी हो तो मत करो। वो तो सामनेवाले का 'व्यूपॉइन्ट' है, ग़लत नहीं है। तुम्हें यदि न भाये तो आराधना न करो। विराधना न तो सच्चे की करनी है और ना ही ग़लत की भी। विराधनामात्र दु:खदायी है।

३७८१. धर्म की विराधना अर्थात् किसी भी जीव को किंचित्‌मात्र भी दु:ख देने का भाव होना।

३७८२. संसार में जो दु:ख आता है, वो हम से हुई धर्म की विराधना के कारण हमें भुगतना पड़ता है।

३७८३. आराधना किसे कहेंगे ? जिसकी आराधना की हो उसकी कभी भी विराधना नहीं होनी चाहिए, फिर चाहे जीवन-मरण का प्रश्न ही क्यों न आ जाये ! आराधना मतलब आराधना ही !!

३७८४. ये उल्टा ज्ञान मिलता है, उससे तृष्णा पैदा होती है। इस उल्टे ज्ञान की आराधना करते हों उसके कारण ही तो ये सारे दु:ख हैं !

★★★

३७८५. 'अज्ञानता' ये ही हिंसक भाव है ; 'ज्ञान' ये ही अहिंसक भाव है।

★★★

३७८६. दर्शन किसे कहेंगे ? जो कैफ़ उतार दे। किसी भी स्थिति में पेट का पानी भी ना हिले, इसे कहेंगे 'ज्ञान' !

३७८७. 'डिप्रेशन' आये ही नहीं, इसीका नाम 'ज्ञान' की पूर्णाहुति!

३७८८. जो 'सेबोटेज' (तोड़फोड़) करे वो अज्ञान, जो 'हेल्प'(निवारण) करे वो है 'ज्ञान'!

★★★

३७८९. इन्द्रियज्ञान सीमित है; अतीन्द्रिय ज्ञान असीमित है।

★★★

३७९०. जो अविनाशी तत्त्व हैं, वे दिव्यचक्षुगम्य हैं, जबकि अन्य सारी विनाशी चीज़ें इन्द्रियप्रत्यक्ष हैं।

★★★

३७९१. इन्द्रियप्रत्यक्ष में बुद्धि है जबकि अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष में 'ज्ञान' है।

★★★

३७९२. इस संसार के सारे जंजाल इन्द्रियप्रत्यक्ष हैं, जबकि 'शुद्ध चेतन' अतीन्द्रिय-प्रत्यक्ष है!

★★★

३७९३. आत्मा के अलावा सब कुछ पूरण-गलन है। देह भी पूरण-गलन है। देह गलन होते-होते आख़िरी 'स्टेशन' की ओर जाती है!

★★★

३७९४. देह की सभी क्रियाओं में अज्ञानी की आत्मा भी अलग रह सकती है। यहाँ भोजन कर रहा हो पर 'खुद' हो 'ऑफिस' में! हालाँकि मन की क्रिया में और वाणी की क्रिया में विलग नहीं रह सकता!!

★★★

३७९५. आत्मशक्ति का 'लिकेज' वाणी से होवे, क्रियाओं से नहीं।

३७९६. परायी शक्ति को अपनी मानना, इसीका नाम भ्रांति!

३७९७. एक आत्मा में सारे ब्रह्मांड को उंगली पर उठाने की शक्ति है! ज्यों-ज्यों वो प्रकट होती जाये, त्यों-त्यों अनुभव में आये!!

३७९८. हमारे पास क्या है, यही देखना है; क्या नहीं है, ये नहीं देखना है!

३७९९. जब तक इगोइज़म है, तब तक आत्मा की प्रत्यक्ष शक्ति मिलती नहीं।

३८००. आत्मा की शक्ति व्यक्त हो जाये फिर बाहर की कोई झंझट करनी ही न रहे। भीतर सिर्फ़ विचार आने पर बाहर सब कुछ तदनुसार अपने आप ही हो जाये। 'व्यवस्थित' सब कर देवे! किसी राजा से भी आत्मा का वैभव बहुत ऊँचा है!! ये तो भगवान पद है!

३८०१. आत्मा की शक्तियाँ दो प्रकार की : एक, स्वक्षेत्र में रहने पर खुद की स्वशक्ति उत्पन्न होवे; और दूसरी, बाहरी क्षेत्र में रहने पर विभूतिशक्ति उत्पन्न होवे।

३८०२. आत्मा की अनंत शक्ति है! तुम आत्मा को जानने के पश्चात् आत्मा में तल्लीन हो जाओ, तो वो शक्तियाँ प्रकट होवे।

३८०३. आत्मा की तो अनंत शक्ति है, इसे जितनी दिशाओं में मोड़ना चाहो, उतनी दिशाओं में मुड़ सकती है । बस, उसे मोड़नेवाला चाहिए ! अनगिनत दिशाओं में उसे मोड़ सकते हैं । हालाँकि मनुष्य यदि खुद ही उलझ जाये कि 'इतनी सारी झंझट आ गई, अब क्या होगा ? क्या होगा ?' यूँ कहे तो फिर क्या हो ? क्या से क्या हो जाय ! कैकेयी ने किया था न ?!

३८०४. एक-एक मनुष्य में अनंत शक्ति है, लेकिन क्षुल्लक बाबतों में वो व्यय हो जाती है।

३८०५. हमें बलवान नहीं होना है, अपितु खुद की निर्बलता को मिटाना है ! तुम स्वयं ही अनंत शक्ति के स्वामी हो। सुख को भी बाहर नहीं खोजना है, भीतर ही अपार सुख है।

३८०६. भगवान तो भगवान ही हैं ! अनंत शक्ति है, अनंत सुख है, अनंत ज्ञान है, अनंत दर्शन है !! अनंत गुण हैं ! अनंत शक्ति है उनके पास !! यदि भगवान के पास इतनी सारी अनंत शक्ति नहीं होती, तो जगत् उन्हें मोक्ष में जाने ही नहीं देता । ये जो अनात्मा की माया है ना, वो तो भगवान के बाप को भी मोक्ष में जाने ही न दे !! लेकिन भगवान भी तो अनंत शक्ति वाले हैं न !

३८०७. "मोक्ष जाते हुए विघ्न अनेक प्रकार के होते हैं, अत: उनके सामने 'शुद्ध चेतन' भी अनंत शक्तिवाला है !" वे सब माया के विघ्न हैं।

३८०८. आत्मा में इतनी सारी शक्ति है कि यदि वो दीवार में भी प्रतिष्ठा करे, तो दीवार भी बोलने लगे !

३८०९. आत्मा निर्गुण है अर्थात् उसमें प्रकृति का एक भी गुण नहीं।

३८१०. सगुण अर्थात् देहधारीरूप में परमात्मा आये हो-ये ही हैं सगुण परमात्मा !

३८११. आत्मा अरूपी है ! ये जो आँखों से दिखता है, ये सब तो भ्रांति है। यथार्थ तो 'दिव्यचक्षु' से ही दिखाई दे, कि 'ये भगवान और ये भगवान नहीं' । दो भाग अलग-अलग दिखे ! भगवान अमूर्त हैं, अतः आँख से-रूपी वस्तु से, वे न दिखे। भगवान अरूपी-'ज्ञान' से, जाने जा सके, चारित्र से पहचाने जा सके।

३८१२. आत्मा अरूपी है और रूपी भी है। केवल 'रूपी' कहोगे तो ये ग़लत साबित होगा ! देह की अपेक्षा से वो रूपी है, जबकि हक़ीक़त में वो अरूपी है !! दोनों में से एक का आग्रह करने पर ग़लत साबित होगा। 'ज्ञान' हो जाये फिर वो अरूपी है।

३८१३. ज्ञान का स्वभाव ही ऐसा है कि किसी को स्पर्श ही न करे, निर्लेप रहे ! अज्ञान के साथ भी ज्ञान 'निर्लेप' रहे। क्रिया में भी ज्ञान जुड़ता नहीं, निर्लेप ही रहता है।

३८१४. 'लेपायमान् भावों में निर्लेप रहें', यही है मोक्ष।

३८१५. जिसे कुछ भी वेदना होती है वो भाग 'हमारा' नहीं है। 'हमारे' भाग में तो वेदना का गुण है ही नहीं।

३८१६. जो भाग 'डिप्रेस' होता है, वो 'हमारा' नहीं। जो भाग 'एलिवेट' होता है, वो भाग भी 'हमारा' नहीं। जो भाग अरथी में जाता है, वो भाग भी 'हमारा' नहीं। इस जगत् में जिस किसी ने जन्म लिया, वे सब बेआबरू हो गए हैं! ऐसे जगत् में क्या पड़े रहना ?! इस जगत् से हमें कोई लेना-देना तो है नहीं। 'एब्सोल्यूट' (केवलस्वरूप) हुए बिना काम नहीं बनेगा।

३८१७. इसीलिए तो भगवान ने कहा था कि आत्मज्ञान जानो! आत्मज्ञान और 'केवलज्ञान' में कोई बहुत बड़ा अंतर नहीं। 'आत्मज्ञान जाना' ये 'कारण-केवलज्ञान' है, जबकि केवलज्ञान यानी 'कार्य-केवलज्ञान'।

३८१८. 'आत्मा' ये तो 'ज्ञानस्वरूपी' है, 'केवलज्ञान-स्वरूपी' है, और कुछ भी नहीं।

३८१९. 'आत्मा' को पाना सरल नहीं। अनंत प्राकृत अवस्थाओ में से 'खुद' जब बाहर ही नहीं निकलता, फिर वो आत्मा' को कैसे पा सके ?!

★★★

३८२०. कोई भी क्रिया हो और उसका पृथक्करण करें कि चित्त का भाग इतना है, अहंकार का भाग इतना है, इन्द्रियों का भाग इतना है, ज्ञानेन्द्रियों का भाग इतना है, तो फिर आत्मा ने क्या किया ? 'आत्मा' तो वीतराग ही है, उसने तो बस 'देखा' और 'जाना'। सारे भागों को अलग किये जायें तो आख़िरकार 'केवलज्ञान' अकेला ही बाक़ी रह जाये! ये जो केवलज्ञान का भाग है, वो ही आत्मा का!!

३८२१. संसार के जो विचार पैठ गये हैं, उन सबको निकाल दें, तब हो जाये केवलज्ञान ! जितना लिया था, वो सब वापस लौटा दें – तो हो जाये केवलज्ञान !! केवलज्ञान यानी क्या ? जो कुछ लिया हो, वो सब लौटा देना ! दो टूक बात !!

★★★

३८२२. स्वसत्ता ये परसत्ता में बिल्कुल प्रवेश न पा सके – इसका नाम 'एब्सोल्यूटीज्म' (केवल) ! स्वसत्ता ये परसत्ता में भी प्रवेश करने का प्रयास करे – वो है 'थियरी ऑफ रियालिटी' (निरपेक्षवाद); और वो सिर्फ़ परसत्ता में ही बरते – वो है 'थियरी ऑफ रिलेटिविटी' (सापेक्षवाद) !!

★★★

३८२३. 'आत्मा का अस्तित्व' – ये है 'थियरी ऑफ रिलेटिविटी'; 'आत्मा का वस्तुत्व' – ये है 'थियरी ऑफ रियालिटी'; और 'आत्मा का पूर्णत्व' – ये है 'थियरी ऑफ एब्सोल्यूटीज़म' ! ''ज्ञानी'' 'थियरम ऑफ एब्सोल्यूटीज़म' में हैं !!

★★★

३८२४. 'एब्सोल्यूट' अर्थात् सांसारिक विचार आने ही बंद हो गए हों, 'खुद' 'स्वयं' के परिणाम की ही भजना करे !

★★★

३८२५. जड़ में कभी चेतन न होवे और चेतन में कभी जड़ न होवे । मात्र ये शरीर अकेला ही मिश्रचेतन है जो चेतन जैसा कार्य करे, किन्तु वास्तव में वो चेतन नहीं ! वस्तुतत्त्व का भान 'भेदविज्ञान' से होवे, जिससे कि जड़-चेतन का भेद हो जाये ।

३८२६. जगत् का रहस्य क्या है ? चेतन बोलता नहीं, सुनता नहीं, कुछ भी करता नहीं। ये तो लोग, जो 'बोलता है, सुनता है, करता है', इसमें 'चेतन' समझकर, उसीमें 'चेतन' को ढूँढ़ते हैं! मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार, ये सारे निश्चेतन-चेतन हैं, 'रिलेटिव' हैं। ये निश्चेतन-चेतन ही तो शास्त्र पढ़ता है। मूल चेतन तो सारे जगत् से गुप्त ही रहा है!

★★★

३८२७. ये 'वीतरागों' के 'सायन्स' की बहुत ही ऊँची खोज है। कैसा गूढार्थ ?! अत्यंत गुह्य ! ये 'रियल' और ये 'रिलेटिव', इनका भेद करना - ये तो ''ज्ञानीपुरुष'' के अलावा और किसी का काम ही नहीं!

★★★

३८२८. सारे 'ज्ञान' का निष्कर्ष क्या है ? यदि तुम 'रियल' जानकर बैठे हो, तो फिर 'रिलेटिव' तो 'साइन्टिफिक सर्कमस्टेन्शिअल एविडन्स' ही है, अतः तुम बस 'देखते' रहो, कुछ भी न करो! जो हो रहा है उसे होने दो, जो नहीं होता है - उसे तुम न करना, मात्र 'देखते' रहना।

★★★

३८२९. तमाम क्रिया मात्र 'परसत्ता' है। क्रियामात्र और क्रियावाला 'ज्ञान' भी परसत्ता है। जो 'ज्ञान' अक्रिय है, 'ज्ञाता-दृष्टा, परमानंदी' है, जो ये तमाम क्रियावाले ज्ञान को जानता है, वो हमारी 'स्वसत्ता' है - ये ही शुद्धात्मा है।

★★★

३८३०. मूलतः 'ये' 'लाइट' ही है, परंतु जगत् के लोगों ने कहा, 'तुम चंद्रकान्त हो', फिर तुमने भी मान लिया कि 'मैं चंद्रकान्त हूँ' इसलिए 'इगोइज़म' खड़ा हुआ ! ये 'इगोइज़म', मूल 'लाइट' का 'रिप्रेजेन्टेटिव' हुआ !! और उस 'रिप्रेजेन्टेटिव' की 'लाइट' से देखा-वो हुई बुद्धि !!!

३८३१. ये जो ‘लाइट’ है, इसका उजाला पूरे ‘रूम’ में है, हालाँकि ‘लाइट’ तो वहीं की वहीं पर ही है! इसी प्रकार भगवान विश्व में उजाला करते हैं, लेकिन भगवान उनकी जगह पर ही हैं!!

३८३२. एक है आत्मा और दूसरा है अहंकार। जिसे सांसारिक, पौद्‌गलिक वस्तुएँ चाहिए, उसे ‘अहंकार’ का ‘बटन’ दबाना है, और जिसे आत्मा का सुख चाहिए, उसे ‘आत्मभाव’ का ‘बटन’ दबाना है।

★★★

३८३३. तुम्हारी सारी चित्रकारी करनेवाले तुम ही हो। तुम्हारी ये चित्रकारी किसी और ने नहीं की। भगवान तो अंदर बैठे हुए ही हैं, लेकिन जब तक ‘तुम’ अपने ‘स्वरूप’ को नहीं पहचानोगे, तब तक ‘भगवान’ अलग ही हैं। और जब ‘स्वरूप’ को पहचानोगे, तो ‘तुम’ स्वयं ही ‘भगवान’ हो। जब तक ‘स्वरूप’ को नहीं पहचानोगे, तब तक ‘तू ही, तू ही’ करना पड़ेगा; जबकि ‘स्वरूप’ को पहचानने के बाद ‘मैं ही, मैं ही’ करना है। सर्वत्र ‘मैं ही हूँ, बस मैं’ !!

★★★

३८३४. ये संसार जो दोषों से भरा हुआ है, वो वस्तुओं के संसर्गदोष के कारण है। इस संसर्गदोष से “ज्ञानीपुरुष” अलग कर देवें, फिर दोनों अपने-अपने गुणों की भजना करे ! जैसे गोरैया आईने में चोंच मारती रहती है न, वो एक समय के बाद बंद हो जाये; इसी प्रकार आईने का संसर्गदोष लगने से उसके अंदर तुम्हारे ही जैसे दूसरे ‘प्रोफेसर’ दिखते हैं ना ?!

★★★

३८३५. जैसे शीशमहल में हम अकेले ही खड़े हों, लेकिन डेढ़ सौ दिखाई दें, वैसा ही है ये जगत्। ये तो विकल्प करने पर दिखाई दिया। विकल्प किया तो तुरंत दिखाई दिया, ये तो विकल्प के प्रतिघोष आते हैं।

३८३६. ये आईना तो सबसे बड़ा 'सायन्स' है। आत्मा का 'फिज़िकल' वर्णन करना हो, तो आईना ही एकमात्र साधन है!

★★★

३८३७. होलिकादहन देखने से आँख न जले, इसी प्रकार ये 'ज्ञान' 'ज्ञान' में ही रहे। 'ज्ञान' जलता ही नहीं। वो अंगारों पर गिरे तो भी न जले–न ही गर्म होवे, कीचड़ पर पड़े तो भी उससे न सने, बांद्रा (मुंबई) की बदबूदार खाड़ी पर पड़े तो भी दुर्गंधित न हो, कीचड़ तो उसे छू भी न सके। यदि खाड़ी में 'गाडी' की 'लाइट' पड़े, तो 'लाइट' कीचड़वाली हो जायेगी क्या? 'लाइट' बदबूदार हो जाएगी क्या? नहीं। ऐसे ही 'ज्ञान' का भी समझो! छूये, लेकिन बिगड़े ही नहीं!!

★★★

३८३८. देह से आत्मा अलग ही है। गधे में भी वो अलग ही है, एकाकार कुछ भी हुआ ही नहीं। ये तो 'राँग बिलीफ' के कारण तन्मयाकार बरते! आत्मा तन्मयाकार होती ही नहीं, सिर्फ 'राँग बिलीफ' ही हो जाती है कि 'ये मैं ही हूँ' और 'मुझे ही छुआ' और 'ये मेरा ही' !! बस, इतनी ही गड़बडी है। इसी से ही हुई परमात्मा की ये दशा!!

★★★

३८३९. ये बहुत विचारणीय है कि इस दुनिया में, 'स्वयं' परमात्मा होकर ये दशा ?! ये तो हमारे साथ क्रूर मजाक हुई! स्वयं परमात्मा होते हुए, सर झुकाकर किसी 'पुलिसवाले' की डाँट भी सुनने की ?! क्रूर मजाक है ये तो! खुद का इतना बुरा मज़ाक हो रहा है, फिर भी बुरा नहीं लगता? और फिर शादी करने को भी जाता है! अरे भाई ..ये तो मज़ाक है, मज़ाक!!

३८४०. भ्रांति ये ही तुम्हारी माया, ये ही तुम्हारा अहंकार, ये ही तुम्हारा अज्ञान और ये ही तुम्हारी बहिर्मुख दशा!

३८४१. यथार्थस्वरूप में आत्मा तो केवलज्ञान-स्वरूप है, हालाँकि 'राँग बिलीफ' बैठते-बैठते उसकी क्या दशा हो गई, ये तो देखो ! 'राँग बिलीफ' कैसी, जैसे कि मौसी-सास का बेटा आए तो भी तुरंत पता चल जाय !! अब क्या हो ?! 'आदत जो हो गई, वो मरते दम तक न मिटे !'

३८४२. यह सारा जगत् नैमित्तिक है। इस जगत् में कोई कर्ता हुआ ही नहीं, कोई कर्ता ने जन्म ही नहीं लिया ! ये तो भ्रांति के कारण कर्ता हो जाता है; इससे तो देखो, कैसे-कैसे कर्म चिपक जाते हैं !

३८४३. जब तक खुद कर्ता होवे, तब तक 'कर्ता कौन है', ये समझ में न आये। और जब 'कर्ता कौन है' - ये समझ में आ जाये, तो फिर खुद कर्ता ना रहे।

३८४४. लौकिक भगवान सर्जनहार हैं, जबकि अलौकिक भगवान सर्जनहार नहीं।

३८४५. इस 'वर्ल्ड' में कोई ऐसा कह नहीं सकता कि, 'यह मैं करता हूँ' ! किसीको भी ये हक़ नहीं। भगवान भी ऐसा नहीं कह सकते कि, 'मैंने ये बनाया है' ! भगवान यदि कहें कि 'मैंने बनाया' तो फिर अन्य तत्त्व कहेंगे कि 'लो भाई, बनाओ दूसरी दुनिया, हम हट जाते हैं।' यदि वे हट जायें, तो भगवान यूँ ही हाथ पर हाथ धरे रह जायें ! और यदि अन्य तत्त्व रौब में आ जायें, तो फिर भगवान कहे कि 'लो, मैं खिसक लेता हूँ।' तब अन्य तत्त्व कहेंगे-'नहीं भाई, हम सबका हक़ है।' ये तो सभी छह तत्त्वों की 'इक्वल पार्टनरशीप' (समान हिस्सेदारी) है !

३८४६. कुदरत की कला ऐसी है कि यह जगत् कभी बंद होवे ही नहीं, भगवान भी यदि बंद करना चाहें, तो भी बंद न हो। अत:, भगवान ने धीरज धारण किया कि 'क्या होता है' - इसे बस देखते रहो, और कहा कि जिसे छूटना हो, वो ऐसा धैर्य बनाए रखना। जिसे यह जगत् रास न आता हो, वो बस देखा करे कि 'क्या हो रहा है', तो ही छूट पाएगा! ''ज्ञानी'' भी ऐसा ही करते हैं। ये तो 'आ फँसे भाई, आ फँसे'!

★★★

३८४७. सारा जगत् निमित्तभाव से है, हालाँकि 'निमित्तभाव से है' ऐसा बोल भी नहीं सकते और ऐसा बरत भी नहीं सकते। ''ज्ञानी'' तो निमित्तभाव में ही होते हैं।

★★★

३८४८. सारा जगत् नैमित्तिक भाव से चलता है। नैमित्तिक भाव अर्थात् तुम मेरे दबाव से करो और मैं किसी और के दबाव से करूँ, ऐसे ही चलता रहे।

★★★

३८४९. पहाड़ पर से पत्थर गिरे, उसे लोग कुछ नहीं कहते; लेकिन यदि किसी मनुष्य ने मार दिया, तो चीखने-चिल्लाने लग जाएँ। क्योंकि लोग समझते हैं कि ये मनुष्य जिंदा है! हक़ीक़त में दोनों एक समान ही हैं, लेकिन ये बात समझ में आये नहीं न?! यही तो है भगवान की माया, यही फँसाती है। ''ज्ञानियों'' ने इसे 'प्रकृति' कहा ; उसमें आत्मा नहीं, वो दीवार के समान ही है।

★★★

३८५०. दु:ख किसके अधीन है ? दृष्टि के अधीन है! 'वस्तु' दु:खदायी नहीं, 'स्वयं' भी दु:खदायी नहीं, 'व्यूपॉईन्ट' के आधार से ही दु:ख है। आत्मा स्वभावत: सुखी ही है, फिर उसे दु:ख कैसे हो ? इस अग्नि को ठंड लगेगी क्या ?!

३८५१. दु:ख क्यों अनुभव होता है ? उपादान की अजागृति के कारण। यदि उपादान जागृत हो, तो फिर दु:ख लगे ही क्यों ?! आत्मा दूर बैठी है क्या ? उसे तो ये केवल स्पर्श ही होता है।

३८५२. 'उपादान' है 'निज-जागृति', 'निमित्तभाव' है ''ज्ञानी'', इनका फल है मोक्ष !

३८५३. 'उपादान' और निमित्त ये दोनों इकठ्ठे होंगे तभी छूट पाओगे। बँधे भी थे तो निमित्त से ना !

३८५४. 'निमित्त' और 'उपादान' दोनों कारण कभी इकठ्ठा होते नहीं। दोनों 'रेलवे-लाइन' कभीकभार ही मुश्किल से आ मिले ! निमित्त अकेले की भक्ति करो - तो देवगति मिले। उपादान अकेले की भक्ति करो - तो भी देवगति मिले।

३८५५. जब किसी एक का अपादान हो, तभी दूसरे का उपादान होवे। मिथ्यात्व का अपादान हो, तभी समकित का उपादान होवे।

३८५६. ''हे दादा भगवान' ! आप तो मोक्ष ले कर बैठे हो। हमें आप मोक्ष दीजिए, या तो निमित्त से हमारा मिलन करवा दीजिये !'' इस प्रार्थना से हमारा काम बन जाये।

★★★

३८५७. निमित्त-नैमितिक के आधार पर ये जगत् चल रहा है, इसमें तुम्हारा भाव चाहिए। भाव हो उसके मुताबिक सारा इंतजाम हो जाये !

३८५८. 'नापसंद निमित्त के प्रति झल्लाना' - ये 'अधर्म' कहलाये, जबकि 'निमित्त को निमित्त जानकर शांतभाव से रहना' - ये 'धर्म' कहलाये।

३८५९. चोर को निमित्त कैसे मिले ? चोर को चोरी करने की इच्छा हो और उसका पुण्य जागा हो और हमारे हिसाब में भी पैसा जानेवाला हो-तभी जेब कट जाये। चोर तो निमित्त बन जाता है ! चोर का पाप यदि जागा हो, तो उसे एक रूपिया भी न मिले। निमित्त भी पाप-पुण्य के हिसाब से बनते हैं।

३८६०. कोशिश करना तुम्हारे हाथ में नहीं, जबकि भाव करना तुम्हारे बस में है। कोशिश करना ये अन्य की सत्ता में है। भाव का फल आता है। हक़ीक़त में तो भाव भी परसत्ता है, हालाँकि भाव करो तो उसका फल आये।

३८६१. तुम्हारे मन के भाव यदि उच्च हों, तो वे फलेंगे ही; लेकिन मन की भावना में अन्य कोई रोग हो, तो वो भावना नहीं फलेगी।

★★★

३८६२. फाँसी लगानेवाले मनुष्य को यदि 'स्वरूप का ज्ञान' दिया गया हो, और फिर उसके हिस्से में फाँसी देने का काम आ जाये, लेकिन यदि उसके भाव बदले हुए हों, तो उसे किसी प्रकार का बंधन नहीं। लेकिन कोई दूसरा, जिसके भाव ऐसे हों कि 'इसे फाँसी पर चढ़ाया जाए', वो किसी को फाँसी न भी चढ़ाए, तो भी उसे बंधन लग जाये।

३८६३. दादाश्री कहते हैं कि 'हमने किसी भी जीव के प्रति मन से वार करने की चेष्टा तक नहीं की, अर्थात् मानसिक हिंसा कभी भी नहीं की। हमने तलवार जमीन पर रखने के बाद उसे कभी उठायी ही नहीं ! सामनेवाला शस्त्रधारी हो, तो भी हम कभी शस्त्र धारण नहीं करते, मन से भी नहीं।

★★★

३८६४. जिसे इस जगत् से भाग निकलना है, जिसे यह जगत् अनुकूल नहीं लग रहा, उसे तो 'यही' राह लेनी पड़ेगी कि 'किसी भी जीव को मन से भी नहीं मारना है,' अन्य कोई रास्ता ही नहीं।

★★★

३८६५. सारा जगत् चार प्रकार के भावों में रमण करता है : १. हिंसक भाव. २. पीड़ाकारक भाव. ३. तिरस्कार भाव. ४. अभाव भाव। ये चार सोपान लाँघने के बाद, पाँचवे सोपान पर भगवान महावीर पहुँचे थे – वो है 'वीतराग-विज्ञान' का अंतिम 'प्लेटफार्म' !

★★★

३८६६. हिंसक भाव अर्थात् ज़रा भी, किंचित्मात्र भी हिंसा या किसी का कुछ भी नुक़सान करना, किसी पर गुस्सा होना, दुःख देना, पीड़ा पहुँचाना, ऐसे भाव ! पहले, ये सारे भाव निकल जाने चाहिए।

★★★

३८६७. हिंसकभावों के चले जाने के बाद पीड़ाकारक भाव निकल जाने चाहिए। हालाँकि ऊँची जाति में हिंसक भाव चले गए होते हैं, लेकिन पीड़ाकारक भाव बाक़ी होते हैं। वे दिनभर कषाय करते रहते हैं ! ये भाव निकल जाने चाहिए।

★★★

३८६८. पीड़ाकारक भाव चले जाने के बाद तिरस्कार भाव निकल जाने चाहिए। मन में जो गुप्त तिरस्कार भाव रहते हों, सामनेवाले की क्रिया पर तिरस्कार भाव आते रहते हों ; इस प्रकार के भाव दूर हो जाने चाहिए।

★★★

३८६९. तिरस्कार भाव के चले जाने के पश्चात् चौथा जो अभाव भाव है वो भी निकल जाना चाहिए। अभाव भाव अर्थात खुद के दोष तो चले गये हों, लेकिन सामनेवाले की भूल को लेकर खुद को उसके प्रति अभाव (नापसंद भाव) खड़े हों ! ये तो कितना बड़ा गुनाह कहलाये ?! स्वरूप ज्ञान प्राप्त महात्मा चौथे स्टेज में आ जाने चाहिए। अभाव भाव के प्रतिक्रमण करते रहना पड़े।

★★★

३८७०. भगवान महावीर हिंसक भाव, पीड़ाकारक भाव, तिरस्कार भाव और अभाव भाव इन चारों सोपानों को लाँघकर 'वीतराग-विज्ञान' के अंतिम 'प्लेटफार्म' पर पहुँचे थे।

★★★

३८७१. जगत् रुक जाएगा तो ? जगत् रुक पाये ऐसा है ही नहीं, क्योंकि जगत् स्वाभाविक है, उसका स्वभाव ही ऐसा है कि वो निरंतर चलता ही रहे। बरगद में से बीज और बीज में से बरगद। लोग कहते हैं कि, 'भगवान ये चलाते हैं'। यदि कोई चलानेवाला होता, तो ये देर-सबेर रुक ही जाये। जो मोक्ष में जाते हैं, वे भी स्वभाव से ही जाते हैं, अतः कुछ रूक जायेगा, बिगड़ जायेगा - ऐसा है ही नहीं। रामचंद्रजी गये, श्रीकृष्ण भी गये फिर भी जगत् तो चल ही रहा है ! इस जगत् को किसी ने बनाया नहीं, ये तो स्वभावतः ही चलता है !!

३८७२. इस जगत् में कोई बाप भी कर्ता बनके उत्पन्न नहीं हुआ है ! भगवान यदि कर्ता बनें, तो उन्हें भी कर्म बँधे।

३८७३. जगत्‌नियंता शक्ति तो है, परंतु वो भगवान नहीं। लोग उसी शक्ति को ही 'भगवान' कहते हैं।

३८७४. भगवान ने इस जगत् को बनाने में कुछ भी नहीं किया, वे तो बस निमित्त हैं, उनकी मात्र हाज़िरी ही है। भगवान की हाज़िरी के कारण ही यह सब 'सायन्स' चल रहा है!

३८७५. 'साइन्टिफिक' सिद्धांत क्या है ? भगवान की हाज़िरी से 'रॉंग बिलीफ' उत्पन्न होवे, भगवान की हाज़िरी से संसार बंद हो जाये और भगवान की हाज़िरी से ही परमात्मपद उत्पन्न होवे।

★★★

३८७६. 'कर्ता खुद है' ऐसा मानने से जगत् खड़ा रहा है, जबकि 'कर्ता कौन है ?' - ये जान लें तो छूट जाये। ये 'भगवान' कर्ता नहीं हैं और 'लोग' भी कर्ता नहीं हैं! कर्ता तो अन्य शक्ति है, जो काम कर रही है!! ''ज्ञानी'' उसे 'व्यवस्थित शक्ति' कहते हैं।

★★★

३८७७. व्यवस्थित अर्थात् क्या ? 'ओन्ली साइन्टिफिक सर्कमस्टेन्शिअल एविडन्स' है।

★★★

३८७८. अवस्थामात्र कुदरती रचना है जिसका कोई बाप भी रचनाकार नहीं और वो 'व्यवस्थित' है। 'व्यवस्थित है' ये स्वाभाविक है और अनंत काल तक है। किसी को ये बनाना पड़े ऐसा ये नहीं!

★★★

३८७९. इस जगत् के 'मूल तत्त्व' जो हैं, वे स्वाभाविक हैं, वे जब 'रिलेटिव' में आते हैं तब विभाविक हो जाते हैं।

३८८०. यथार्थतः इस जगत् में क्या है ? मूल 'छह वस्तु' ओं को लेकर ये जगत् खड़ा रहा है। ये मूल 'छह वस्तुएँ' अविनाशी हैं और परस्पर संमिलन होने पर ये सारी अवस्थाएँ खड़ी हो गई हैं, और इसीसे ये सारा जगत् दिखाई देता है! सारी अवस्थाएँ 'रिलेटिव' हैं, विनाशी हैं, निरंतर परिवर्तनशील हैं।

★★★

३८८१. 'रियल' ये तो 'मूल स्वरूप' में अविनाशी है और अवस्थास्वरूप में विनाशी है। वस्तु 'परमेनन्ट' है जबकि वस्तुओं के पर्याय 'टेम्पररी' हैं। 'मनुष्य' ये पर्याय है। 'गाय, कुत्ते, गधे' ये सब पर्याय हैं।

★★★

३८८२. स्वयं जो 'रियल' था, वो 'रिलेटिव' हो गया। बहुत सारे 'रिलेशन' हो जाने से खुद को भ्रांति उत्पन्न हुई। भ्रांति से 'मैं पोपटलाल हूँ' कहता है, ये 'इगोइज़म' कहलाये।

★★★

३८८३. पूरे ब्रह्मांड में छह 'परमेनन्ट' तत्त्व हैं। इन छह तत्त्वों में से शुद्ध चेतन एक है। अन्य पाँच में चेतनभाव नहीं, हालाँकि उनमें अनंत प्रकार के गुणधर्म हैं, वे सबके गुणधर्मों के कारण सिर्फ़ ये 'रियल' और 'रिलेटिव भाव' उत्पन्न हुआ है। आत्मा तो आत्मा ही रहती है, निरंतर चेतनरूप में ही रहती है, एक क्षण के लिए भी परिवर्तित नहीं हुई, ये तो सिर्फ़ 'रॉंग बिलीफ' हो जाती है!

★★★

३८८४. 'मैं नटुभाई हूँ' ये तो जो विनाशी है उसे 'खुद स्वयं' समझ बैठे हो। तुम 'स्वयं' तो सनातन हो, लेकिन वो 'भान' उत्पन्न नहीं होता! वो 'भान' हो जाने पर हो जायें मुक्त।

★★★

३८८५. इस जगत् में कोई वस्तु न घटती है, ना ही बढ़ती है। ये घटना–बढ़ना किसका दिखाई देता है ? वस्तुओं का परस्पर संमिलन होने से अन्य 'एविडन्स' खड़ा होता है, जिसे 'अवस्था' कहा जाता है। अवस्था विनाशी है। केवल आकार का नाश होता है और नये पर्याय उत्पन्न होते हैं, लेकिन एक परमाणु भी न तो बढ़ता है और न ही घटता है। यह सब नियम में है !

★★★

३८८६. 'समय' वस्तु नहीं है। एक परमाणु, दूसरे परमाणु को जितनी अवधि में लाँघता है, उसे 'समय' कहा जाता है।

★★★

३८८७. 'वस्तु' स्वयं अविनाशी है। 'तुम' खुद भी अविनाशी हो, लेकिन तुम्हें 'राँग बिलीफ' है कि 'मैं प्रवीणभाई हूँ', अतः तुम विनाशी हो।

★★★

३८८८. ''ज्ञानीपुरुष'' 'राँग बिलीफ' को 'फ्रेक्चर' कर देवें और 'राइट बिलीफ' बैठा दें, अतः 'तुम' अपने 'स्वभाव' में पैठ जाओ। ' राँग बिलीफ' निकल जाये, अहंकार 'फ्रेक्चर हो जाय – फिर 'तुम' 'भगवान' हो जाओगे !

★★★

३८८९. 'खुद' परमात्मा ही तो है, लेकिन परमात्मा की सत्ता कब प्राप्त हो ? जब भूल टूटे तभी। ये भूल टूटती नहीं, अतः मनुष्य को सत्ता प्राप्त नहीं होती – फिर लोगों के सास–ससुर बनकर मौज़ मनाता है !

★★★

३८९०. आत्मा निरंतर अलग है, देह से निरंतर विलग ही रहे ऐसी है, जब ऐसा 'भान' हो जाये तब से ही वो परमात्मा है !

३८९१. आत्मा टंकोत्कीर्ण है, अतः एक वस्तु दूसरी वस्तु के साथ कभी भी एकाकार नहीं होती ! इकट्ठी होने के बावजूद वस्तु अपने निजी गुणधर्म को कभी न छोड़े।

३८९२. 'वीतरागों' द्वारा कथित 'रियल आत्मा' को भाव ही नहीं। वृत्ति को भाव-अभाव कहते हैं। हक़ीक़त में आत्मा को भावाभाव हैं ही नहीं, वरना वो तो उसका गुणधर्म हो गया !

३८९३. इच्छापूर्वक की वृत्ति को 'भाव' कहा जाये। 'भाव' ये ही पुद्गल है।

३८९४. जो आत्मज्ञानी पुरुष होते हैं, वे आत्मा-अनात्मा का भेदांकन करवा दें। अनादि काल से आत्मा जो कि 'विभावदशा' में है, उसे "ज्ञानीपुरुष" 'स्वभावदशा' में ला दें, स्वभाव-सन्मुख कर देवें। 'स्वभाव-सन्मुखदशा' को 'आत्मज्ञान' कहा जाये ! तत्पश्चात् क्रोध-मान-माया-लोभ भूगर्भ में चले जायें।

३८९५. जब तक 'प्रत्येक भाव' है तब तक आत्मा प्रत्येक है, और जहाँ 'स्वभावभाव' में है, वहाँ स्वभाव रूप से एक है।

★★★

३८९६. आत्मा न तो भाव करता है, ना ही अभाव करता है ! आत्मा 'स्वभावमय' ही है।

३८९७. ये अक्रम विज्ञान ऐसा है कि वो किसी बाहरी बाबत में हाथ ही नहीं डालता। ये तो कहता है कि बस, तुम अपने भाव में-स्वभाव में आ जाओ !

३८९८. आत्मा तो वो ही की वो ही रहती है, सिर्फ़ 'बिलीफ' बदल जाती है, द्रव्य नहीं बदलता।

३८९९. इस रूपीतत्त्व, पुद्गल तत्त्व के कारण यह जगत् खड़ा हो गया। रूपीतत्त्व ही उलझाता है। रूपीतत्त्व ने आत्मा की 'बिलीफ' को बदल दिया है। आत्मा बदलती नहीं। ये तो 'कल्प' के विकल्प हो गए! बिलीफ ही यह सारा शरीर तैयार करती है!! वैसे तो इसमें 'बिलीफ' काम नहीं करती, लेकिन उसी 'बिलीफ' से परमाणु आकर्षित होते हैं और परमाणु स्वयं स्वाभाविक रीति से क्रियाकारी हो जाते हैं। आँख, कान, नाक, देह आदि, ये सब स्वाभाविक रूप से बन जाते हैं।

३९००. ये तो इतना गूढ़ सायन्स है कि यदि तुम एक बुरा विचार करो तो तुरंत ही बाहर के परमाणु अंदर आकर्षित हो जायें और उनका जिस प्रकार हिसाब बैठे, वैसे ही फल देकर जायें। बाहर से किसीको फल देने के लिए नहीं आना पड़ता! बाहर फल देनेवाला कोई ईश्वर है ही नहीं।

३९०१. बुरा भाव करने पर ऐसे बुरे परमाणु अंदर पैठ जायें कि जो कड़वे फल देवें, अच्छे भाव करने पर मीठे फल देवें और यदि कोई भावाभाव ही नहीं किया, बस 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसे हो गये– तो कर्ता बंद हो जाये, फिर पुराने परमाणु फल देकर चले जायें और नये फल न आयें। परमाणु ही सब कुछ कर रहे हैं!

३९०२. पुद्गल अकेले में ही क्रियावर्ती शक्ति है। पुद्गल अकेला ही सक्रिय है। अन्य पाँच तत्त्वों में क्रियावर्ती शक्ति नहीं। पुद्गल की क्रियावर्ती शक्ति के कारण ही ये सारे आकार खड़े हो जायें।

३९०३. पुद्गल का पूरण-गलन स्वभाव ही है। पूरण होवे फिर वो ही गलन भी हो जाये। हिमवर्षा हो रही हो, तब कभी महावीर की मूर्ति जैसा कोई आकार दिखे और फिर वो गलन हो जाये।

३९०४. जहाँ चेतन नहीं, वहाँ भी पुद्गल की क्रिया होवे। लकड़ा पड़ा रहा हो, वो सड़ता ही रहे! पुद्गल स्वभाव से ही क्रियावान है।

३९०५. आत्मा को 'क्रियावान' कहने से ही भ्रांति खड़ी हो गई!

३९०६. स्वाभाविक आत्मा कैसी है ? अक्रिय है! शरीर में भी वो स्वाभाविक ही है, ज़रा सी भी विभाविक नहीं हुई। आत्मा में विभाविक होने की शक्ति ही नहीं। "ज्ञानी" ने जो आत्मा देखी है, उसमें कभी कोई बदलाव होता उन्होंने नहीं देखा।

३९०७. आत्मा की स्वाभाविक क्रिया कहना हो तो 'ज्ञानक्रिया' और 'दर्शनक्रिया' को कह सकते हैं। अन्य द्रव्य भी अपनी स्वभाविक क्रिया में होते हैं।

३९०८. मन-वचन-काया सहजस्वभाव से क्रियाकारी हैं, वे सबकुछ करते ही रहते हैं जबकि आत्मा के ज्ञान-दर्शन सहज स्वभाव से क्रियाकारी हैं। ये सभी वस्तुएँ पड़ी हों, तो आत्मा उन्हें सहज स्वभाव से देखा ही करे, जाना ही करे!

३९०९. जो अनात्म भाग है, वो परिणामी स्वभाव का है और आत्मा भी परिणामी स्वभाव की है। परिणामी स्वभाव अर्थात् क्षण क्षण में पर्याय बदलनेवाला। आत्मा और अनात्मा दोनों अपने-अपने परिणाम बाँट लेते हैं। एक क्रिया की धारा है और एक ज्ञाता-दृष्टा की धारा है, जो कि ज्ञानी में अलग-अलग बरते! जबकि अज्ञानी को एक कटु और एक मीठी, ऐसी 'मिक्स्चर' धारा बरते, अत: उसे बेस्वाद कढ़ी जैसा स्वाद आये।

३९१०. कोई मनुष्य इतना सारा अफीम घोलकर पी जाए, तो फिर क्या उसे मारने के लिए भगवान को आना पड़े ? पुद्गल -परमाणु की शक्ति से ही ये हो जाये। आत्मा की तो अलौकिक शक्ति है ही, परंतु जड़ की भी तो भयंकर शक्ति है। उसकी शक्ति तो आत्मा से भी ज़्यादा बढ़कर हो जाय ऐसा है! इसलिए ही तो ये सब फँस गया है ना! अन्यथा आत्मा फँस जाने के बाद, जब चाहे तब छूट क्यों नहीं पाती ?! जब तक वो असल 'विज्ञान' में नहीं आ जाये, तब तक छूट न सके!

३९११. ये बंधन कैसे हुआ ? बंधन से मुक्त कैसे हों ? पहले तो कइयों को 'ये बंधन है', इसका भी भान नहीं हुआ! जब परवशता का अनुभव हो तभी बंधन का अनुभव होता है। क्रोध-मान-माया-लोभ का बंधन, घर के बंधन, अन्य सारे बंधन! बंधन का अनुभव होने के बाद ही मुक्ति का मार्ग मिल पाये।

३९१२. एक क्षण के लिए भी बंधन न सुहाए, तभी वो 'वीतराग के विज्ञान' को समझने लायक हुआ कहा जाये! चाहे कितना भी वैभव हो, फिर भी उसे बंधन लगे!!

३९१३. 'आत्मा' और 'पुद्‌गल' दो ही वस्तुएँ हैं। जिसने आत्मा को जान लिया, उसने पुद्‌गल को समझ लिया और जिसने पुद्‌गल को जान लिया, उसने आत्मा को समझ लिया।

३९१४. 'पुद्‌गल' वस्तु समझ में आए ऐसी नहीं। ये तो ''ज्ञानी'' के अलावा अन्य कोई समझ ही न सके! पुद्‌गल की करामात ही कुछ और तरह की है!! देखिये न, एक पुद्‌गल ने ही तो सारे जगत्‌ को उलझन में डाल दिया है!

३९१५. सब कुछ पुद्‌गल कर रहा है लेकिन लोग मानते हैं कि 'मैं करता हूँ!' ये 'मैं' भी तो पुद्‌गल ही है। ये तो पुद्‌गल की करामात है!

३९१६. वीतरागों का एक ही वाक्य समझ में आ जाये तो हल निकले! पुद्‌गल में ही क्रिया है, आत्मा में कोई क्रिया नहीं। जगत्‌ को यहीं पर भ्रांति हो जाती है कि यह सब कैसे चल रहा है? जगत्‌ जिसे आत्मा मानता है, वहाँ आत्मा का एक अंश भी नहीं। आत्मा तो ''ज्ञानियों'' ने अलग देखी है, अलग जानी है, अलग अनुभव की है!

★★★

३९१७. परिणामिक भाव क्या है? शकरकंद खायेंगे तो वात होगा–ये परिणामिक भाव है, उसे 'संसारी जागृति' कहा जाये! वस्तुतः परिणामिक भाव क्या है? ये तो मूलतः 'हम' 'जो' हैं उसी रूप में भाव उत्पन्न होवे, अपने स्वयं के ही गुणधर्म सहित, उसीका नाम परिणामिक भाव!

३९१८. इन पाँच इन्द्रियों में जो दिखता है वो सब 'मेरा' भाव नहीं। परिणामिक भाव यानी आत्मा का अपना ही भाव।

३९१९. शास्त्र पढ़कर कोई बड़बड़ करता रहे; मना करो, 'नहीं सुनना', कहो तो भी बड़बड़ाता रहे – ये सब 'सन्निपातभाव' कहलाये।

३९२०. चाय में शक्कर पीसकर नहीं डालनी पड़ती, क्योंकि उसका स्वभाव ही है पानी में घुल जाने का; ठीक उसी प्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञाता-दृष्टा और परमानंदी है। आत्मा अपने गुणधर्म में ही रहती है!

३९२१. इस संसार में आत्मा का ज़रा भी इस्तेमाल नहीं होता, मात्र उसका प्रकाश ही इस्तेमाल होता है। आत्मा इसमें हस्तक्षेप करती ही नहीं!

३९२२. दादाश्री कहते हैं कि इन दो ही वाक्यों में मैं पूरा 'सायन्स' कहे देता हूँ: जीवमात्र में परमात्मशक्ति निहित है! उस परमात्मशक्ति को कोई दख़ल दे ही नहीं सकता।

३९२३. 'ख़लल' ये 'कॉज़' है। 'दख़ल' ये परिणाम है।

३९२४. संसार समुद्र है, अतः जितने स्पंदन तुम उछालोगे, उतने स्पंदन सामने आयेंगे।

३९२५. संसार में सुख है ही कहाँ ? हालाँकि हम चाहें तो अपना परमात्मसुख बरते ऐसा है, कोई दख़ल ही न दे सके, ऐसी सच्ची आज़ादी हो सकती है। जो भी दख़ल आती है, वो तो पूर्व में हमने जो ख़लल की थी, उसीके परिणाम हैं।

३९२६. जब तक पूर्ण परमात्मा का अनुभव न होवे, सच्चे रूप में आज़ादी नहीं होवे, तब तक रूकना नहीं चाहिए।

३९२७. तुम (स्वरूप-ज्ञान प्राप्त महात्मा) ने ख़लल बंद तो कर दी है, लेकिन अभी भी दख़लें क्यों आती हैं ? जो दख़लें तुमने पहले औरों को की थीं, वे ही वापस लौटायी जा रही हैं।

३९२८. आत्मा की शक्ति ग़लत मार्ग पर क्यों जा रही है ? मान्यता उल्टी है इसीलिए; 'बिलीफ' 'राँग' है इसलिए। 'राइट बिलीफ' हों, तो शक्ति सच्चे मार्ग पर बहेगी।

★★★

३९२९. हिंदुस्तान के लोगों को इतना 'भान' तो हुआ है कि 'मुझे कुछ भ्रांति बरतती है !' 'फोरेन'वालों को तो भ्रांति का भी 'भान' नहीं। उन्हें यदि पूछें कि 'तुम्हें भ्रांति हैं ?' तब वे कहेंगे, 'मुझे कोई भ्रांति नहीं, मैं विलियम ही हूँ।' जब तक 'भ्रांति का भान' न होवे, तब तक अगला मार्ग न मिल पाये।

३९३०. भ्रांति की बातों से सारी भ्रांति ही मिले, जबकि भ्रांतिरहित 'ज्ञान' से निराकुलता रहे।

३९३१. कुछ भी साथ ले जाना नहीं है, ये तो सिर्फ़ ममता है कि ये देह मेरी, पत्नी मेरी, बेटी मेरी ! आत्मा को देह है ही नहीं । जो 'देहधारी दिखता है' ये तो भ्रांति है, भ्रांति ! बाक़ी, 'तुम' देहधारी नहीं हो । 'तुम्हें' भ्रांति है कि 'मैं ये हूँ' । 'तुम' 'आत्मस्वभाव' छोड़कर देह की पीड़ा में पैठ गये । 'तुम्हारी' 'आत्मा' ''ज्ञानी'' को स्पष्ट विलग दिखे । ये तो अहंकार के अमल में तुम बोलते हो कि 'मैं चंदुलाल हूँ' ! क्या आत्मा को कभी देह होती है ?! आत्मा को बेटी भी नहीं होती और देह भी नहीं होती। आत्मा को कभी देह थी ही नहीं, है भी नहीं, और होगी भी नहीं। ये तो सारी विपरीत मान्यताएँ पैठ गई हैं।

३९३२. 'इगोइज़म' कम है या ज़्यादा, ये अंदर समझ में आता है – ये 'इटसेल्फ' दर्शाता है कि 'स्वयं' उससे अलग है।

३९३३. 'इगोइज़म' ये तात्त्विक वस्तु नहीं। तात्त्विक वस्तु तो न कभी बढ़े, न तो घटे। 'पुलिस'वाला जब डाँटे, तब 'इगोइज़म' घट जाता है न ?

★★★

३९३४. 'अहंकार' ये चेतन नहीं, अपितु पुद्गल है, हालाँकि वो 'चेतन के प्रकाश' से 'चेतनभाव' को पा चुका है ! उसमें चेतन ज़रा सा भी नहीं।

★★★

३९३५. स्थूल, सूक्ष्म व कारण 'इगोइज़म' जिसका ख़लास हो गया हो, तभी वो निरपेक्ष बात को समझाने के लिए सापेक्षित बात कह सके ; और ये तो सिर्फ़ ''ज्ञानीपुरुष'' का ही काम !

३९३६. अहंकार के कारण ही संसार में भटकन है। एक है उत्पात करता हुआ अहंकार, और दूसरा, शमन हो रहा अहंकार। ये वापस लौट रहा अहंकार, उतरता हुआ अहंकार ही मोक्ष में जाये।

३९३७. जितना समताभाव होता जाये, उतने प्रमाण में 'अहंकार गया' कहा जाये, और उतना आत्म-उजाला प्रकट होवे। संपूर्ण समता हो जाने पर पूर्ण उजाला प्रकट हो जाये।

३९३८. आत्मा का मोक्ष नहीं करना है, आत्मा तो मोक्ष स्वरूप ही है। अहंकार का मोक्ष करना है।

३९३९. अहम् का स्थान कब तक रहे ? 'कार्मण शरीर' और 'शुद्धात्मा' इन दोनों के बीच 'जो' है, 'वो' न उड़ जाये तब तक।

३९४०. संपूर्णतः अहंकाररहित कैसे हुआ जा सके ? हम शुद्धात्मा हैं, इसकी संपूर्णतः प्रतीति हो जाये और उसका निरंतर अवबोध हृदयंगम हो जाय, तभी अहंकार जाये ! हालाँकि, प्रतीति के बाद भी परछाईरूप अहंकार रहे, लेकिन मूल अहंकार चला जाए !! परछाई यानी 'ड्रामेटिक' अहंकार।

★★★

३९४१. समझ में अहंकार नहीं होता जबकि बुद्धि में अहंकार होवे, अतः बुद्धि उल्टा दिखाये। समझ को 'सूझ' कहते हैं। तुम ज़्यादा विचार करो तब भीतर एकदम सूझ खड़ी हो जाय, वो 'अंतःसमझ' कहलाये।

३९४२. 'समझ' ये दर्शन है। दर्शन आगे बढ़ते बढ़ते 'केवलदर्शन' तक जाये।

३९४३. 'प्रज्ञा' और 'समझ' में कोई बड़ा फ़र्क़ नहीं। जब समझ फुल (पूर्ण) दशा में हो, तब वो 'प्रज्ञा' कहलाये। संसार में बाक़ी सब सूझ उत्पन्न होवे, लेकिन अपने बारे में सूझ उत्पन्न न होवे कि 'मैं कौन हूँ'; और तब तक केवलदर्शन न होवे।

३९४४. मनुष्यमात्र अनंत भूल का भाजन है, लेकिन उसे अपनी भूल नहीं दिखती। भूल मिटेगी तब ही मोक्ष जा सकेंगे। भूल मिटेगी कैसे ?! जीवमात्र में भीतर सूझ नामक शक्ति है ! ये अकेली शक्ति ही मोक्ष ले जाये।

३९४५. सूझ नामक शक्ति कैसे खिले ? जितनी भूल टूटती जाये, उस प्रमाण में सूझ खिलती जाये ; और यदि भूल क़बूल कर लें और क्षमा माँग लें, तब से तो वो शक्ति बहुत बढ़ती जाये।

३९४६. अपनी भूल टूटेगी तभी काम बनेगा, या तो ''ज्ञानीपुरुष'' तुम्हें तारें तो काम बन जाये। ये तो जो खुद तिर गये हैं और अनेक लोगों को तारने में समर्थ हैं, ऐसे ''ज्ञानीपुरुष'' का ही काम !

★★★

३९४७. संसार-आधार हो तब तक 'मिथ्यात्व सूझ' होवे; ये सूझ विनाशी चीज़ों में ही सुख ढूँढ़े। जब सच्चा अवलंबन मिल जाये, तत्पश्चात् 'सम्यक् सूझ' उत्पन्न हो जाये।

★★★

३९४८. जीवमात्र को सूझ उभरे, विशेष रूप से मनुष्यों को उभरे; इसीलिए तो मनुष्यदेह उत्तम माना गया।

३९४९. सूझ के दो प्रकार: एक 'निश्चय' की सूझ और दूसरी 'व्यवहार' की सूझ। व्यवहार की सूझ को 'ज्ञेय' कहा जाये, जबकि निश्चय की सूझ को 'ज्ञेय' नहीं कह सकते।

★★★

३९५०. जब तक भ्रांति न हटे तब तक 'निश्चय' कैसे प्राप्त हो सके? पहले भ्रांति को हटाना है, फिर निश्चय की बात। व्यवहार व निश्चय दोनों चाहिए! किसी एक से न चले।

★★★

३९५१. 'सक्रिय' ये सब 'व्यवहार' और 'अक्रिय' ये 'निश्चय'। 'निश्चय' सक्रिय न होवे, 'व्यवहार' अक्रिय न होवे।

★★★

३९५२. 'व्यवहार' जिसे स्पर्श न कर पाये, इसीका नाम 'निश्चय'! 'व्यवहार' इतनी पूर्णता के साथ करना है कि वो 'निश्चय' को स्पर्श करे नहीं, फिर चाहे वो 'व्यवहार' किसी भी प्रकार का क्यों ना हो।

★★★

३९५३. 'व्यवहार' तो महावीर को भी था, ''ज्ञानियों'' को भी होवे। जगत् के लोगों को तो 'व्यवहार' होता ही नहीं।

★★★

३९५४. परमार्थ का प्रतिपादन किये बग़ैर जो व्यवहार किया जाता है, वो संसार बढ़ानेवाला होता है। जो व्यवहार 'निश्चय' का प्रतिपादन न करे, वो व्यवहार 'व्यवहार' न कहलाये।

★★★

३९५५. जब तक योग (मन-वचन-काया इ.) है, तब तक 'व्यवहार' रहेगा ही। जब योग नहीं रहता, तब फिर 'निश्चय' की कोई गुंजाइश ही नहीं रहती।

३९५६. आत्मा ने किसी विषय को भोगा ही नहीं। आत्मा विषय को भोग सकती ही नहीं, और अहम् भी तो विषय को नहीं भोगता। अहम् ऐसी सूक्ष्म वस्तु है कि वो विषय को भोग ही न सके, सिर्फ़ ' मैंने भोगा' ऐसा अहंकार करे। 'मैंने भोगा, मैंने तो भोगा नहीं' ऐसा सिर्फ़ अहंकार करे!

★★★

३९५७. अहंकार यह सब भोगता है। अहंकार को इसमें 'टेस्ट' क्यों आया? अहंकार ने भावना की थी, कि 'यह चाहिए!' वो प्राप्त हुआ, अतः वो आनंदित हो गया। आनंदित हो जाने पर उसे मस्ती लगी। बाक़ी तो ये सारी झंझट ही अहंकार की है। मन-बुद्धि-चित्त तो मात्र उसके 'हेल्पर' ही हैं।

३९५८. निर्अहंकारियों का काम कौन चलाता है? अहंकारी।

३९५९. तुम जो-जो विचार करोगे वो अहंकार है, तुम जो-जो बोलोगे वो अहंकार है, तुम जो-जो करोगे वो अहंकार है, तुम जो-जो दुन्यवी जानोगे-वो भी तो अहंकार है। जब तक दृष्टि न बदले, तब तक क्या फ़ायदा?!

३९६०. जैसा दिखता है वैसा ये जगत् नहीं, क्योंकि दृष्टिरोग जो है!

३९६१. 'मूल वस्तु' तो दृष्टि बदले बग़ैर प्राप्त न होवे। दृष्टि कब बदल पाये? जब ''ज्ञानीपुरुष'' स्वयं मिले तब।

★★★

३९६२. आज जो दृष्टि तुम्हारे पास है, वो दृश्य को ही देखती है। अंदर मुरलीवाले कृष्ण दिखते हैं, वो तो दृश्य है। दृष्टा दिखे नहीं। दृष्टि द्रष्टा की ओर मुड़ जाय–एक क्षण के लिए ही सही, तो भ्रांति रहेगी ही नहीं और हल निकल जाये।

★★★

३९६३. दृष्टि द्रष्टा की ओर कब मुड़ जाये ? 'स्वरूप' को जान लें तभी ! ''ज्ञानीपुरुष'' ये 'स्वरूप' की पहचान करवा दें।

★★★

३९६४. दृष्टि दृष्टा की ओर मुड़ जाये, और 'ज्ञान' ज्ञाता में पैठ जाये – तभी निर्विकल्प समाधि का सुख उत्पन्न होवे।

★★★

३९६५. जब तक साधनों का अवलंबन है, तब तक सविकल्प समाधि ! निर्विकल्प समाधि अर्थात् किसी भी प्रकार का विकल्प नहीं।

★★★

३९६६. जो निर्विकल्प पद दिलाए या तो उस पद के निकट ले जाय – वो है शुद्ध विकल्प; अन्यथा इन सारे विकल्पों का तो पार ही न आये।

★★★

३९६७. विकल्पी खुद कभी भी निर्विकल्पी नहीं हो पाता। इसके लिए तो निर्विकल्पी पुरुष का निमित्त चाहिए।

★★★

३९६८. अहंकारशून्य हो जाएँ तभी 'निर्विकल्प समाधि' कहलाए। अहंकार होवे तब इसे 'सविकल्प समाधि' कहा जाये।

३९६९. सच्ची समाधि किसे कहेंगे ? निरंतर जागृत होवे उसे। बाहर का भान चला जाये – उसे समाधि नहीं कह सकते, वो तो 'निद्रा' कहलाए। देह का भी भान चला जाए – उसे सच्ची समाधि नहीं कह सकते, ये सब तो लौकिक समाधियाँ हैं।

★★★

३९७०. लोग तो मन के स्तरों में ही रहते हैं! मन के बहुत सारे स्तर होते हैं। लौकिक समाधि में मन के किसी स्तर में पैठ जाये, और वहीं पर खो जाय, अतः फिर शरीर का या बाहर का कुछ भी भान बिल्कुल न रहे। मन के सभी स्तरों को लाँघने के बाद बुद्धि के 'लेयर्स' पार करने होते हैं। बुद्धि के सभी स्तर पार करके आख़िरी स्तर को भी लाँघ जाये – तब 'ज्ञान-प्रकाश' में प्रवेश करे, 'युनिवर्सल ट्रूथ' में आ जाये!

★★★

३९७१. मन के किसी स्तर में खो जायें-ऐसी समाधि भोगना ये सच्ची समाधि न कहलाये, ये तो टेम्पररी अवस्था है। वो अवस्था समाप्त हो जाये, फिर तो जहाँ थे वहीं के वहीं! इसे तो 'निद्रा' कहा जाये।

★★★

३९७२. सारा जगत् खुली आँखों से सोता है। खुद का ही अहित कर रहे हैं-इसका लोगों को पता ही नहीं। जागृति तो उसे कहेंगे कि एक क्षण के लिए भी खुद का अहित न होने दे! निरंतर जागृत ही रहे।

३९७३. जागृति का परिणाम है समाधि।

३९७४. भगवान कहते हैं कि सोते समय जागना नहीं और जागते समय सोना नहीं है ! लोग पूरा दिन जागते समय सोते हैं। परभव की तो उन्हें जागृति ही नहीं होती। परभव अवश्य है ही। इस जीवन में रोटी खाते-खाते अगले जनम में घास-फूस खाने जाना पड़ेगा - ये बात उन्हें समझ में ही नहीं आती।

३९७५. संपूर्ण जागृत हो जाने के पश्चात्, ये जगत् एक क्षण भी सहन हो पाए ऐसा नहीं है।

३९७६. 'स्व'पन जिस (अवस्था) में बरते, ये सारा ही 'स्वप्न' कहलाये। जिसे 'स्व'पन 'स्व' में बरते - वो 'जागृत' कहलाये।

३९७७. संपूर्ण जागृत कब होवे ? जब अहंकार का विलय हो जाय तब।

३९७८. मोक्ष का परिणाम जागृति नहीं, बल्कि जागृति का परिणाम मोक्ष है।

३९७९. जागृति तो किसे कहेंगे ? विचार आने से पहले ही समझ में आ जाय कि 'ये तो ज्ञेय है और मैं ज्ञाता हूँ!'

★★★

३९८०. "ज्ञानी" कहाँ पर जागते हैं ? स्वपरिणति में ! और वे कहाँ पर सोते हैं ? परपरिणति में। परपरिणति अर्थात् सारा संसार !

३९८१. 'रियल' को 'रियल' जाने और 'रिलेटिव' को 'रिलेटिव' जाने, इसीका नाम स्वपरिणति !

३९८२. परपरिणति कौन उत्पन्न करता है ? जीवंत 'इगोइज़म'।

३९८३. चरम दशा कौन-सी ? कि जो परपरिणति में रहे ही नहीं, निरंतर स्वपरिणति में रहे वो।

३९८४. इस जगत् में भगवान किसे कहेंगे ? जो स्वपरिणति से बाहर निकलते ही नहीं, भले चाहे वे किसी भी भेष में क्यों ना हों, वहीं से भगवानपद शुरू होता है, और उसके पूर्ण होने तक वे 'भगवान' कहे जाते हैं।

३९८५. स्वपरिणति में रहे ऐसा तो 'वर्ल्ड' में एक ही मनुष्य होवे, दूसरा कोई ना हो, इतना दुर्लभतम पद है ये !

★★★

३९८६. परमात्मा किसे कहेंगे ? जिसे परपरिणति उत्पन्न न हो, जो निरंतर स्वपरिणाम में ही रहे, वो 'देहधारी परमात्मा' कहलाये ! जब तक किंचित्मात्र परपरिणति न हो, परक्षेत्र में किंचित्मात्र मुक़ाम न हो, तब तक खुद को 'भगवान कहलवाना' ये बहुत बड़ा गुनाह है। कहनेवाला तो छूट जाये, लेकिन कहलवानेवाला बँध जाये।

३९८७. ये जो 'ए. एम. पटेल' दिखते हैं, वे तो मनुष्य ही हैं, लेकिन 'ए. एम. पटेल' की जो वृत्तियाँ हैं और उनकी जो एकाग्रता है, ये न तो पररमणता है और ना ही परपरिणति भी ; इनका तो निरंतर स्वपरिणाम में ही मुक़ाम है ! निरंतर स्वपरिणाम तो 'वर्ल्ड' में कभी-कभार, हजारों-लाखों वर्षों में ही होता है !! स्वरमणता कुछ अंशों में हो भी, किन्तु सर्वांश स्वरमणता और वो भी संसारी भेष में तो, होती ही नहीं ! इसलिए इसे आश्चर्य कहा है न ! असंयति पूजा नामक ढीठ आश्चर्य है यह !!

★★★

३९८८. तुम (स्वरूपज्ञान प्राप्त महात्मा) स्वपरिणति की ओर जा रहे हो। पहले 'वस्तु' की प्रतीति बैठे-''ज्ञानीपुरुष'' की कृपा से। फिर प्रतीति क्रमशः आगे बढ़ते-बढ़ते संपूर्ण दर्शन में पहुँचे। संपूर्ण दर्शन में पहुँचा दे ऐसा यह 'अक्रमज्ञान' है ! तत्पश्चात् स्वपरिणति की शुरुआत होवे। 'वस्तु' में जब पुरुषार्थ जगे, 'वस्तु' का स्वाभाविक पुरुषार्थ जगे, वस्तु स्व-स्वरूप में आ जाये, तब स्वपरिणति उत्पन्न होवे। 'स्वपरिणति' ये तो अलौकिक वस्तु है ! लौकिक में देखने में या सुनने में आयी न हो, ऐसी है ये वस्तु !!

★★★

३९८९. लोकसार का सार क्या ? तत्त्व ! तत्त्वसार का सार क्या ? ''ज्ञानी'' की वाणी ! वीतरागवाणी के अलावा और कोई उपाय नहीं !!

★★★

३९९०. दादाश्री कहते हैं, कि अनंत अवतार से 'हम' पूर्ण पुरुषोत्तम को खोज रहे थे, वे इस अवतार में 'हमारी' ही देह में प्रकट हो गए !!

३९९१. दादाश्री कहते हैं, ''सारा 'वर्ल्ड' मुझमें है और मैं 'वर्ल्ड' में हूँ।''

३९९२. ये सब तुम्हारे ही रूप हैं। थप्पड़ मारनेवाला भी तुम्हारा रूप है, और फूल चढ़ानेवाला भी तुम्हारा रूप है। सब एक सा रूप ही है!

३९९३. सर्वात्मा में शुद्धात्मा देखें, तो हो जायें परमात्मा!

३९९४. देह में-मन में-वाणी में, 'मैं'पन रखने के कारण भगवान दूर रहें जबकि स्वरूप में 'मैं'पन रखनेवाले के साथ भगवान अभेद हो जायें!

३९९५. 'नवनीत' जब चिल्लाये, तब 'तुम' 'नवनीत' को कहना, 'इसमें तुम्हें क्या लाभ ? हमारे साथ एकाकार हो जाओ न! इसमें बहुत सुख है, अपार सुख !!' 'नवनीत' से 'तुम' अलग हो, इसलिए 'तुम्हें' उसे कहना पड़े न!

३९९६. शरीर जब चिल्लाये तब 'तुम' 'शांताबहन' के साथ आईने में बात करना-''देह का इतना ख़याल क्यों रखती हो ? देह में इधर-उधर होता है, तो भले ही हो। 'तुम' 'मेरे' साथ आ जाओ न, 'टेबल' पर !! 'हमारे' पास तो अपार सुख है !!!''

३९९७. बुद्धि 'भेद' दिखाये जबकि दिव्यचक्षु 'अभेद' दिखाये।

३९९८. आत्मा ही सर्वत्र दिखे, तब समझो काम हो गया ! अन्य सब दिखना बंद हो जाय, तब 'अनन्य' उत्पन्न हो जाये!

३९९९. किसी का मन तुमसे ज़रा–सा भी विलग हुआ, तो समझो तुम केवलज्ञान से विलग हुए। शायद ही किसी का मन हमसे विलग हो–ये ध्यान रखना है। अन्यथा तब तक 'मुक्त हास्य' उत्पन्न नहीं होगा, और मुक्त हास्य के बिना जगत् वश नहीं होगा और तब तक जगत् का कल्याण नहीं होगा।

★★★

४०००. जगत्कल्याण की तो हमें मात्र भावना ही करनी है, फिर कार्य तो कुदरत ही करेगी।

★★★

४००१. हमारा कल्याण तो हो गया, अब औरों का कल्याण हो – ऐसी भावना रखना है। वो ही हमें संपूर्णतः पूर्णदशा उत्पन्न करायेगी!

★★★

४००२. 'ज्ञान' यदि अकेले ज्ञानी के पास ही रह जाय, तो ये 'ज्ञान' रसातल में चला जाये। 'ज्ञान' तो प्रकट करना ही चाहिए। ज्ञान के उजाले का दीपक तो कभी कभार ही प्रकट होवे, तब तक तो घना अंधेरा ही रहता है। ये तो सूरत के स्टेशन पर 'साइन्टिफिक सर्कम्स्टेन्शिअल एविडन्स' के आधार पर कुदरती रूप से ज्ञान का उजाला उत्पन्न हो गया। 'दिस इज बट नेचरल'! फिर इससे जितने भी दीये जलाने हों, जलाये जा सकते हैं। वैसे तो सब लोगों ने घी डालकर दीया तो तैयार रखा ही है!

★★★

४००३. जगत् का कल्याण कौन कर सके? जो 'खुद का' कल्याण करे – वो ही औरों का कर पाये।

४००४. ''ज्ञानीपुरुष'' कमरें में बैठे-बैठे भी जैसे विचरण करते हैं, ऐसा विचरण तो कोई करता ही नहीं। जगत्कल्याण का जिसे 'नियाणा'(दृढ़ संकल्प) न हो, वो 'ज्ञानी' नहीं। जिसे और कुछ 'नियाणा' हो वो ज्ञानी, ''ज्ञानी'' ही नहीं।

४००५. भावना से भी कल्याण संभव है। भावना कौन कर सके? जो ऐसा महापुण्यशाली हो कि जिसे जगत् में कोई भीख या लालच रही न हो, वो।

★★★

४००६. दादाश्री कहते हैं कि जगत्कल्याण के 'हम' निमित्त हैं, कर्ता नहीं। हम जो जगत्कल्याण की भावना करते हैं, वो एक दिन रूपक में आयेगी। जो जो भाव होते हैं, वे रूपक में आए बिना नहीं रहते। क्रिया करने की ज़रूरत नहीं, रूपक अपने-आप ही आता है, अतः भावना भावन करें।

★★★

४००७. 'आतमभावना' भावन करोगे, तो उसका रूपक 'मोक्ष' आयेगा। 'देहभावना' भावन करोगे, तो 'संसार' रूपक में आयेगा।

★★★

४००८. दादाश्री कहते हैं कि हमारी यही भावना है, कि भले ही एक जनम देरी भी हो जाय, तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु इस 'विज्ञान' का प्रसार होना चाहिये, लोगों को 'विज्ञान' का लाभ मिलना चाहिए। सारा जगत्, जैसे शकरकंद को भाड़ के अंगारों में रखा हो, ऐसे भूँजा जा रहा है। 'फोरेन' वाले भी भूँजे जा रहे हैं, और यहाँ-वाले भी भूँजे जा रहे हैं। अरे, अब तो शकरकंद जलने भी लगे !!

४००९. जिसे मात्र जगत्कल्याण करने की ही भावना रहती हो और संसार का कोई मोह न रहा हो, सब कुछ 'ड्रामेटिक' करता हो – वो 'तीर्थंकर गोत्र' बाँधता है।

४०१०. इस दुनिया में जितने भी सेव्य बने हैं, वे सेवकपद में से आगे बढ़कर ही सेव्य बन पाये।

४०११. हमें तो 'वीतरागों' सी दृष्टि रखनी है! 'वीतराग' क्या कहते हैं? सारे जगत् का शिष्य होने की दृष्टि जिसमें नहीं, वह ''ज्ञानी'' होने के लायक नहीं।

४०१२. पूर्ण होने के लिए लघुतम भाव जैसा अन्य कोई भाव ही नहीं है, पर जगत् लघुतमभाव किस प्रकार पा सके?! कठिन से कठिन यदि कोई भाव है, तो वो है लघुतम भाव!

४०१३. बड़ा हुआ और खुद को 'बड़ा' मान लिया – तो समझो भटक ही गया! पूर्ण पुरुष 'बड़े' होते ही नहीं।

४०१४. गुरुतम कौन हुये? जो लघुतम हुए थे, वे ही गुरुतम हो सके।

४०१५. दृष्टि लघुतम में रखोगे, तभी गुरुतम में पहुँच पाओगे, अन्यथा गुरुतम में कैसे पहुँचोगे?!

४०१६. जो लघुतम में रहे, उसे गुरुतमपद 'फ्री ऑफ कॉस्ट' (मुफ़्त) मिलेगा ही!

४०१७. ‘लघुतमभाव में रहना’ और ‘अभेददृष्टि रखना’, ये इस ‘अक्रम विज्ञान’ का ‘फाउन्डेशन’ है।

४०१८. दादाश्री कहते हैं ‘हम’ इस जगत् में दो भाव से रहते हैं: लघुतमभाव व अभेदभाव ! ये हमारी बाउन्ड्री है। रिलेटिव में लघुतमभाव से हैं, जबकि रियल में ‘हम’ गुरुतमभाव में हैं, और स्वभाव से अभेदभाव में हैं।

४०१९. दादाश्री कहते हैं कि “यदि तुम्हें मोक्ष चाहिये तो मैं गुरुतम हूँ। यदि तुम मुझे गाली देना चाहते हो, मारपीट करना चाहते हो, तो मैं लघुतम हूँ।” लघुतम को मार स्पर्श न करे, गाली स्पर्श न करे, उसे कुछ भी स्पर्श न करे। लघुतम तो आकाश समान होवे !

४०२०. बीचवाले पद सारे विनाश करानेवाले हैं। लघुतमपद ये गुरुतमपद देनेवाला है। ‘मैं कुछ हूँ’ ये सारे बीचवाले पद हैं, ये बीचवाले पद अस्तित्ववाले हैं, हालाँकि ये सभी अस्तित्व, नास्तिवाले हैं।

४०२१. आत्मा प्राप्त करने के पश्चात् ही परम विनय उत्पन्न होवे, फिर जुदापन न लगे, अभेददृष्टि हो जाये।

४०२२. ‘नय’ होने पर ‘दृष्टिबिंदु’ समझ में आये, जबकि ‘विनय’ होने पर ‘मोक्ष’ में जा सकें।

४०२३. बाहरी विनय से ‘जनम’ मिले, जबकि भीतरी विनय से ‘मोक्ष’ मिले।

४०२४. 'परम विनय' से मोक्ष होवे, और संसार में भी तुम परम विनय से बहुत सुखी हो जाओगे।

४०२५. परम विनय यानी क्या ? हमारे निमित्त से किसी को किंचित्‌मात्र भी दु:ख न हो, ये ही हमारा परम विनय है।

४०२६. विनय तो 'प्रज्ञा' के उत्पन्न होने के बाद ही आये। संसार में लोग जिसे 'विनय' कहते हैं, वो यथार्थत: विनय न कहलाये, वो तो 'विवेक' कहलाये।

४०२७. विवेक अर्थात्‌ 'सही-ग़लत' को अलग करना ! सद्‌विवेक यानी जो अच्छे को ग्रहण कराये वो। विनय यानी व्यवहार-रीति में जो चलता है, उससे बढ़कर होवे - वो ! परम विनय यानी जो दिखाई देता है, उसके प्रति आदरभाव नहीं, अपितु जो नहीं दिखता, उसके प्रति आदरभाव !!

४०२८. परम विनय यानी कि संपूर्ण समर्पण !

★★★

४०२९. परम विनय में खुद का मत ही न होवे, और भीतर जो हलचल हो उसे 'देखा' करे ! किसी बात का आग्रह न पकड़े।

४०३०. मोक्ष का मार्ग क्या है ? विवेक में से सद्‌विवेक, सद्‌विवेक में से विनय, विनय में से परम विनय और परम विनय से मोक्ष !

४०३१. यह ''दादा'' तो ऐसा है, जो किसी से भी खरीदा न जा सके, मात्र परम विनय से ही वो खरीदा जा सकता है। विनय और प्रेम की अवहेलना तो कोई भी नहीं कर सकता।

४०३२. ''ज्ञानीपुरुष'' यानी क्या ? आईना ! तुम्हारा रूप जैसा हो, वैसा ही दिखाई दे, क्योंकि ''ज्ञानीपुरुष'' स्व-द्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव में रहते हैं; चारों तरह से 'स्व' में ही रहते हैं।

४०३३. इस दर्पण को खुद को यदि ये सारा जगत् दिखता हो, ये दर्पण खुद ही यदि देखनेवाला हो, तो फिर कितनी सारी उपाधियाँ हो जायें ?! ठीक वैसे ही ये चैतन्य देखता है। जबसे वो जान ले कि मेरे स्वभाव के कारण ही ये सारी वस्तुएँ प्रकाशमान होकर मुझमें झलकती हैं, हालाँकि वस्तुएँ तो बाहर ही हैं, तब से वो अपना सुख चखता है, और फिर सारी उपाधियाँ छूट जाती हैं ! तत्पश्चात् आत्मा का सुख बना रहे।

४०३४. अपने अंदर जो ये जगत् दिखता है, उसे 'स्वयं' उपाधि मान लेता है - और इसीसे ही जगत् खड़ा है।

★★★

४०३५. आत्मा ही प्रकाशमय है ! इस दर्पण में हम सब दिखाई दें कि नहीं ? अगर ये आईना चेतन होता तो ?!

४०३६. आत्मा व्यवहार में आया है और जगत् उसके प्रकाश में झलकता है। हक़ीक़त में आत्मा के प्रकाश में सारा जगत् झलकता है लेकिन अज्ञानतावश 'स्वयं' को लगता है, 'ये क्या है ?' अत: स्वयं जो दृष्टा था, वो दृश्य हो गया। आत्मा के विषय में 'यह' पेचीदगी समझ में आना ये बहुत बड़ी बात है; बिना ''ज्ञानी'' के ये समझ न आये, और ऐसे निमित्त का मिलना भी तो अत्यंत दुर्लभ है। सारा जगत् इसी कारण उलझन में है!

४०३७. ''ज्ञानी'' निमित्त होवें जबकि अज्ञानी कर्ता होवें।

४०३८. भगवान किसीको भी बाँधने नहीं आते। ये तो अज्ञान से बँधा है, जो 'ज्ञान' से छूटेगा। एकबार छूट गया, तो फिर वो दुबारा न बँधेगा। 'अज्ञान' भी निमित्त से मिले और 'ज्ञान' भी निमित्त से मिले। ''ज्ञानीपुरुष'' के निमित्त से 'ज्ञान' प्राप्त होवे।

४०३९. जन्म हुआ तब 'तुम चंदुलाल हो, ये तुम्हारी माता, ये तुम्हारे पिता' इस प्रकार सारा अज्ञान उसे निमित्त से आ मिला। लोग इस अज्ञान के लिए निमित्त बने; जबकि ''ज्ञानीपुरुष'' शुद्धात्मा बनाये और कहें 'तू शुद्धात्मा है, अकर्ता है!' ये 'ज्ञान' हो जाने के बाद वह मुक्त होता जाय!!

★★★

४०४०. यह जगत् अज्ञान का ही प्रदान है। संसार ने ज़बर्दस्त अज्ञान का प्रदान किया है। ''ज्ञानी'' पैदा हो, तब'ज्ञान' का प्रदान करे! संसार का मूल कारण ही 'अज्ञान का प्रदान' है।

४०४१. 'ज्ञान', ''ज्ञानी'' के हृदय में स्थित है, बाहर नहीं।

४०४२. इस जगत् की अधिकरण क्रिया 'अज्ञान' ही है।

★★★

४०४३. जब से अज्ञान खड़ा हो जाये, तब से देह के साथ संबंध शुरू हो जाये, जो कि 'ज्ञान' मिलने पर विलग हो जाये।

४०४४. सर्व ज्ञान का फल है आत्मस्थिरता। सर्व अज्ञान का फल है चपलता।

४०४५. 'ज्ञान' किसका नाम ? कि अज्ञान खड़ा होने पर तुरंत पता चल जाये, और ये जिसने जाना – उसीका नाम ही 'ज्ञान' !

४०४६. 'प्रकाश' उसे कहेंगे कि 'ठोकर' न लगे। यदि 'ठोकर' लगे तो समझना कि 'प्रकाश' अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। जितना अज्ञान, उतनी ठोकरें।

★★★

४०४७. 'हम कौन हैं' – ये श्रद्धा बैठे वो है 'समकित' और 'हम क्या हैं' ये 'ज्ञान' हो जाये, – वो है 'ज्ञान' !

★★★

४०४८. 'ज्ञान' किसे कहेंगे ? श्रद्धा की प्रतीति पर जो खड़ा रहा हो, उसे। श्रद्धा तो 'ज्ञान' की पहली सीढ़ी है। श्रद्धा नहीं तो 'ज्ञान' नहीं।

४०४९. जिसे 'निजस्वरूप का अवबोध' हृदयंगम हो गया, समझो उसे संसार का अवबोध उड़ गया, और जिसे संसार का अवबोध है, उसे 'निजस्वरूप का अवबोध' न रहे! एक म्यान में दो तलवार न रहे।

★★★

४०५०. सच्चा चरित्र यानी ज्ञाता-दृष्टाभाव!

★★★

४०५१. जिससे अज्ञान घटे - वो है 'ज्ञान'। 'ज्ञान' क्रियाकारी होवे जबकि शास्त्रज्ञान क्रियाकारी न होवे। अनुभवज्ञान क्रियाकारी होवे।

★★★

४०५२. क्रियाकारी ज्ञान किसे कहेंगे ? जिस 'ज्ञान'-प्राप्ति के बाद हमें ऐसा लगे कि 'मैं कुछ भी नहीं करता'! तो कौन करता है ? यह 'ज्ञान' ही सचेत करे। सचेत करनेवाला भी 'ज्ञान' है और सचेत होनेवाला भी 'ज्ञान' है-ऐसा हमें लगे! शास्त्र का ज्ञान सचेत न करे। 'विज्ञान' सचेत करनेवाला होवे, क्रियाकारी होवे!

★★★

४०५३. 'शुभाशुभ ज्ञान' ये परमात्मशक्ति है। 'शुद्ध ज्ञान', ये है परमात्मा।

★★★

४०५४. 'वीतराग' इतना ही कहना चाहते हैं कि कर्म बाधक नहीं बनते, तुम्हारा अज्ञान ही आड़े आता है!

★★★

४०५५. जब तक अज्ञान है तब तक कर्म तो होते ही रहेंगे। अज्ञानता जाये, राग-द्वेष बंद हो, फिर कर्म बँधना बंद हो जाये।

४०५६. ''अनंत ज्ञेयों को जानने में परिणमित अनंत अवस्थाओं में 'मैं' संपूर्ण शुद्ध हूँ, सर्वांग शुद्ध हूँ।'' – जो इस वाक्य का अर्थ यथार्थ समझ ले, वो परमार्थ-स्वरूप हो जाये।

४०५७. मिथ्यात्व यानी क्या ? अवस्था में तन्मयाकार रहे, वो। इसका फल क्या ? अ-स्वस्थता। सम्यक्दर्शन यानी क्या ? स्व-स्थ, 'स्व' में मुकाम करे, वो।

४०५८. दुनिया में 'रियल करेक्ट' ये सारी वस्तुएँ हैं जबकि 'रिलेटिव करेक्ट' ये सारी अवस्थाएँ हैं! ये जो दिखती है, वो वस्तु नहीं, अपितु वस्तु की अवस्थाएँ हैं। वस्तु अविनाशी है जबकि वस्तु की अवस्थाएँ विनाशी हैं। सारी अवस्थाएँ 'टेम्परऱी एडजस्टमेंट' है।

४०५९. 'अवस्था में अवस्थित रहे, तन्मयाकार रहे' वो अस्वस्थ, जबकि 'शुद्धात्मा में रहे' वो स्वस्थ!

४०६०. 'वस्तु में मुक़ाम' ये है स्वस्थता! 'अवस्था में मुकाम' ये है अस्वस्थता!!

४०६१. अवस्थाओं में तन्मयाकार रहे, इसका नाम संसार! ये ही संसारबीज बोये। 'स्वरूप' में तन्मयाकार, इसका नाम मोक्ष!!

४०६२. जगत् में और कुछ नहीं, सभी अवस्थाएँ बदलती रहती हैं, जबकि आत्मा यथास्वरूप में ही रहती है! 'वस्तु'ओं का विनाश होता ही नहीं, जबकि 'वस्तु'ओं की अवस्थाओं का विनाश होवे। 'मैं नगीन हूँ, ये मेरा बेटा है, ये मेरी बहू', इस प्रकार अवस्था में ही वो मुकाम करता है। फिर कहेगा, 'मैं बूढ़ा हुआ'। अरे, आत्मा कहीं बूढ़ी हो सकती है, भला ?! ये सारी प्राकृत अवस्थाएँ हैं, आत्मा की नहीं।

४०६३. ये जगत् वास्तविक नहीं, फिर भी वास्तविक लगता है, ये भी अजूबा ही है न ?! अवस्थाएँ अवास्तविक हैं जबकि 'मूल वस्तु' वास्तविक है।

४०६४. हरेक अवस्था अच्छी हो या बुरी-वो छूटने के लिए हमें आ मिलती है, वहाँ यदि हम उपयोगपूर्वक रहें, तो सब बिल्कुल निर्मल हो जाये।

४०६५. एक तत्त्व दूसरे तत्त्व में मिश्रित न होवे, दोनों विलग ही रहें! एक-दूसरे के निकट आने पर अवस्थाएँ उत्पन्न हो जायें।

४०६६. अवस्था का ज्ञान नाशवंत है जबकि स्वाभाविक ज्ञान अविनाशी है।

४०६७. जहाँ भी 'टेम्परारी एडजस्टमेंट' है, वहाँ चेतन नाममात्र भी नहीं। जहाँ 'परमेनन्ट एडजेस्टमेंट' है, वहाँ चेतन है।

४०६८. इन्द्रियों से जो कुछ भी किया जाता है, वो सभी 'टेम्पररी' है।

४०६९. जो परमेनन्ट है – वो निर्विकल्प है ; जो टेम्पररी है – वो विकल्पी है।

४०७०. 'परमेनन्ट' वस्तु ही 'टेम्पररी' को समझ सके। 'टेम्पररी', 'टेम्पररी' को समझ न सके। 'टेम्पररी', 'परमेनन्ट' को समझ ही न पाये। यदि सब कुछ 'टेम्पररी' होता, तो फिर 'टेम्पररी' कहने की ज़रूरत ही क्या ?! कुछ 'परमेनन्ट' है न, इसीलिए तो 'टेम्पररी' कहना पड़ता है!

४०७१. तुम हो ही 'परमेनन्ट', किन्तु 'टेम्पररी' को 'परमेनन्ट' मानते हो!

४०७२. आत्मा 'परमेनन्ट' होने के कारण आत्मा का अनुभव भी 'परमेनन्ट' है। संसार की सभी वस्तुएँ 'टेम्पररी' हैं, अतः उसका अनुभव भी 'टेम्पररी' है।

४०७३. 'मैं शुद्धात्मा हूँ', 'ऐसा निर्णय होना, इसीका नाम है आत्मानुभव!

★★★

४०७४. बाहर सच्चा प्रेम ढूँढ़े, लेकिन जब वो कहीं भी न मिले – तभी आत्मा प्रकट होवे।

★★★

४०७५. आत्मा मानने से मानी जा सके ऐसी नहीं! जैसे ये पुद्गल अनुभव में आये ऐसा है, उसी प्रकार आत्मा भी अनुभव में आये ऐसी है।

४०७६. अहंकार का अमल उतर जाये, तो आत्मा का अनुभव होवे।

४०७७. 'रियल' को जाने वो ''ज्ञानी'' और 'रियल' के बारे में सब कुछ जाने, वो है ''अनुभवज्ञानी'' !

४०७८. एक क्षण के लिए भी जो संसार में न रहे, वो है ''ज्ञानी'' ! कोई देह में जितना रहेगा, उतना ही अहंकार भी रहेगा ना ? जबकि 'दादा भगवान' तो बरसों से देह में रहे ही नहीं।

४०७९. 'स्वयं' तो अनंतकाल से वीतराग ही था, कभी भी उसके अपने गुणधर्म बदले ही नहीं ! जब ''ज्ञानीपुरुष'' आत्मा-अनात्मा दोनों को विलग करा दें, तो दरअसल आत्मा का अनुभव हो जाये। अनात्मा का एक भी परमाणु जब तक आत्मा में हो, तब तक 'अनुभव' नहीं होवे।

४०८०. 'खुद'ने अपने 'सेल्फ' का 'रियलाइज़' किया, इसीका नाम साक्षात्कार !

४०८१. आत्मसाक्षात्कार हो जाये, तब 'प्रत्यक्ष भक्ति हुई' कहलाये।

४०८२. 'मैं ही शिव हूँ' ऐसा भान हो जाना चाहिये - इसीका नाम अनुभूति ! 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा भान भी हो जाना चाहिए - इसीका नाम अनुभूति !!

४०८३. अनुभूति होने तक भगवान की परोक्ष भक्ति करना अच्छा है, उससे हमें भौतिक सुख मिलते हैं, फिर आगे-आगे हमें अध्यात्म का रास्ता मिलता जाय, परंतु वहाँ अनुभूति न हो पाये ! अनुभूति तो, जब जीव-शिव की भेदबुद्धि टल जाये, तभी उसे 'अनुभूति' कहा जाये।

४०८४. इस जगत् के सभी अनुभव होने के पश्चात् ही 'आत्मतत्त्व' की प्राप्ति होवे।

४०८५. जिस 'ज्ञान' से संसार छूट जाये, वो 'आत्मज्ञान' कहलाये और जब इस 'ज्ञान' का इस्तेमाल हो, उस समय उसे 'प्रज्ञा' कहा जाये।

४०८६. ''ज्ञानी'' की वाणी तुम सुनते हो, तब उसे कौन धारण करता है ? आत्मा ? नहीं, आत्मा तो धारण नहीं कर सकती। प्रज्ञा और सम्यक्त्व, ये दोनों धारण कराते हैं ! क्षायक समकित, धारणा को स्वच्छ रखता है और प्रज्ञा उसे धारण करती है। जबकि संसार में उसे अहंकार धारण करे।

४०८७. प्रज्ञाशक्ति कैसे भी करके मोक्ष में ले जाये; जबकि अज्ञाशक्ति भी इतनी बलवान है कि वो कैसे भी करके संसार में भटकाती रहे।

४०८८. प्रज्ञाशक्ति तो क्या कहती है ? सचेत रह और देखा कर ! और कुछ हस्तक्षेप करने की ज़रूरत ही नहीं।

४०८९. 'प्रज्ञा' ये आत्मा की प्रतिनिधि है, आत्मा का 'पावर ऑफ अटर्नी' उसके पास है।

४०९०. 'रियल–रिलेटिव' ये प्रज्ञा देखती है, आत्मा नहीं देखती। प्रज्ञा देखे, अतः आत्मा के खाते में ही गया समझो। जगत् के लोग जो देखें – वो तो अज्ञा देखती है, अतः वो अहंकार के खाते में गया ! दोनों के देखने–जानने में फ़र्क़ है। पहलेवाला अतीन्द्रियगम्य है जबकि दूसरा इन्द्रियगम्य है।

४०९१. 'जो वर्तना में रखवाये' वो आत्मा है और 'जो श्रद्धा में रखवाये', वो प्रज्ञा है। वर्तन यानी चारित्र !

४०९२. सच्ची समझ कभी भी मिटे नहीं।

४०९३. समझ 'ज्ञान' में परिणमित हो अर्थात् वो वर्तन में परिणमित हो जाये।

४०९४. समझ किसे कहा जाये ? जिस ज्ञान को, जानते तो हों, लेकिन वर्तन में नहीं आये, वो 'समझ' कहलाये और जो ज्ञान वर्तन में आ जाये, वो 'ज्ञान' कहलाये।

४०९५. अज्ञान से हुए कर्म, 'ज्ञान' से नाश हो जायें। बाक़ी और किसी भी क्रियाओं से बदलाव नहीं हो पाये।

४०९६. कर्म यानी क्या ? जहाँ कोई और करता हो, और वहाँ हम आरोप करें कि 'मैं करता हूँ', इसीका नाम कर्म !

★★★

४०९७. आरोपित भाव यानी क्या ? जहाँ तुम नहीं, वहाँ आरोप करते हो कि 'मैं रजनीकान्त हूँ', ये; लेकिन तुम जो हो वो तो जानते नहीं ! तुम 'रिलेटिव स्वरूप' को अपना 'स्वरूप' मानते हो, जो कि तुम्हारा 'मूलस्वरूप'- 'रियल स्वरूप' नहीं !! 'रिलेटिव स्वरूप' से कर्ता; जबकि 'रियल स्वरूप' से अकर्ता। 'रिलेटिव स्वरूप' से संसार; 'रियल स्वरूप' से मोक्ष।

★★★

४०९८. ये शरीर नहीं, ये तो कर्म की गठरी है ! ये तो जैसी गठरी मिली हो, वैसा ही आ टकराता रहे !!

★★★

४०९९. प्रारब्ध कर्म, संचित कर्म और क्रियमाण कर्म – ये क्या हैं ? संचित कर्म सारे सूक्ष्म हैं, तद्दन सूक्ष्म हैं ! संचित में से जितना भी स्थूल रूप में आ जाये, उतने को 'प्रारब्ध' गिना जाय, और प्रारब्ध होने के बाद फिर क्रियमाण किसे कहेंगे ? प्रारब्ध भोगते समय 'ये मैं करता हूँ', ऐसा जो भान होता है, उसीसे क्रियमाण कर्म उत्पन्न होते हैं।

४१००. जगत् जिसे कर्म कहता है, वो कर्म ही नहीं, अपितु वे तो कर्म के परिणाम हैं।

४१०१. कर्म करो तथापि कर्म न बँधे – ऐसा विज्ञान जानो, तो कर्म नहीं बँधेगा।

४१०२. कर्म का परिपाक हो, तब कर्म झड़ जायें। वीतरागभाव हो जाये, तो कर्म का परिपाक जल्दी हो जाये। हालाँकि लोग अहंकार के कारण कर्म का परिपाक होने नहीं देते।

४१०३. ''ज्ञानी'' इस देह के बाहर रहकर देखा करते हैं कि – बाल उड़ रहे हैं, मन क्या करता है, चित्त व अहंकार क्या करते हैं, बुद्धि क्या ख़लल कर रही है ? यह सब ''ज्ञानी'' देखें !

★★★

४१०४. ''ज्ञानी'' सकाम कर्म भी नहीं करते और निष्काम कर्म भी नहीं करते ! सकाम कर्म करो तो बंधन और निष्काम करो तो वहाँ भी बंधन है !! जहाँ कुछ भी करने की भावना है, वहाँ बंधन है।

★★★

४१०५. तीन प्रकार की चेतना : १. कर्मचेतना : 'मैं कुछ करता हूँ', ये आरोपित भाव – ये है कर्मचेतना ! २. कर्मफलचेतना : कर्मचेतना का फल आये तब वो रोये या हँसे – ये है कर्मफलचेतना ! ३. शुद्ध चेतना : ये है 'परमात्मा स्वयं' !

★★★

४१०६. परस्पर असमाधान हो, लेकिन उसमें यदि कर्तापन न हो, तो कर्म न चिपके। कर्ता हो जाये उसे कर्म बँधे।

★★★

४१०७. कर्म का कर्ता मिट गया, तब से निर्विकल्प दशा !

★★★

४१०८. 'कर्तापद' ये ही भ्रांतिपद है। अशुभ करो या शुभ करो, दोनों ही भ्रांति है। एक है सोने की बेड़ी और एक है लोहे की बेड़ी !

★★★

४१०९. जहाँ कर्ताभाव है, वहाँ परधर्म है। परधर्म का फल है संसार।

४११०. जहाँ तक 'तुम करते हो' वहाँ तक भ्रांति में हो ! तब तक आत्मा का एक अंश भी चखा नहीं।

४१११. आत्मा में 'करने' का गुण ही नहीं। जिसमें जो गुण नहीं, उसका आरोप करना – ये दोष है। इसमें ही सब धोखा खाते हैं !

४११२. 'मैं शुद्धात्मा हूँ', यह दृष्टि रखना–ये है शुद्ध उपयोग, सामनेवाले में शुद्धात्मा देखना–ये है शुद्ध उपयोग, सामनेवाला कर्ता न दिखे–ये भी है शुद्ध उपयोग ! 'शुद्ध उपयोग' ये संपूर्ण चारित्र का कारण है–ये ही चरम चारित्र कि जिसमें भगवान थे !!

४११३. 'मैं कर्ता नहीं हूँ', यह भान कराने की ज़रूरत नहीं, बल्कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ये भान ही 'इटसेल्फ' कर्तापद को उड़ा देता है।

४११४. कर्ता होना यानी क्या ? योजना को आधार देना। अकर्ता होना यानी क्या ? योजना को निराधार कर देना।

★★★

४११५. 'कर्तापद खड़ा हुआ' ये ही भ्रांति है। 'कर्ता कौन है', ये जान लिया तो ज्ञाता–दृष्टा पद उत्पन्न हो जाये।

★★★

४११६. कर्ता होवे तो कर्म बँधे। कर्ता हुआ इसीलिए भोक्ता हुआ। कर्म तो पच्चर है बीच में। कर्म से ही जगत् नहीं चलता। जगत् 'व्यवस्थित' चलाती है। 'व्यवस्थित' काल को मिला दे, क्षेत्र को मिला दे और सारे संयोग इकट्ठा कर दे, तभी कार्य होवे।

४११७. 'वीतरागों' के मतानुसार तो ये सारे पकड़ में आ जायें - करनेवाला, करानेवाला, और अनुमोदना करनेवाला !!

★★★

४११८. आत्मा कर्म का कर्ता किस प्रकार है ? 'बाय रिलेटिव व्यूपॉइन्ट' आत्मा कर्म का कर्ता है ! ये भी 'इस' (अभी दृश्यमान) कर्म का कर्ता नहीं, अपितु भावकर्म का कर्ता है। 'इस' कर्म का कर्ता तो कुदरत है। 'बाय रियल व्यूपॉइन्ट', आत्मा 'स्वभावभाव' का कर्ता है।

★★★

४११९. जब तक आत्मा संसारी भाव से है, तब तक वो भावकर्म का कर्ता है ! परंतु उसका भी वह खुद ही क़ायम के लिए कर्ता नहीं। ये तो इस भाई का धक्का इनको लग जाय और फिर वो कुछ करने लगे, ठीक उसी तरह संयोगों के धक्के से भाव हो जाता है ! भावकर्म के कारण संसार है !! 'अक्रम' में तो भावकर्म को ही उड़ा देते हैं। 'मैं अरूणा हूँ' - ये पहला भाव, 'मैं इसकी वाइफ हूँ' - ये दूसरा भाव... सारी 'राँग बिलीफ' हैं !

★★★

४१२०. 'जगत् का कर्ता कोई है ही नहीं और कर्ता के बिना ये हुआ नहीं !' 'कर्ता के बिना हुआ नहीं', इस कथन का भावार्थ क्या ? कि वो नैमित्तिक हुआ है। 'नैमित्तिक कर्ता' को वास्तविक कर्ता नहीं कह सकते।

★★★

४१२१. हक़ीक़त में जगत् का कोई स्वतंत्र कर्ता है ही नहीं। यदि कर्ता होवे, तो फिर बाक़ी रहा ही क्या ?! ये नैमित्तिक कर्ता है। 'पार्लियामेंटरी' पद्धति से होता है ! जबरन कर्ता होना पड़ता है। कोई वास्तविक कर्ता नहीं है, इसीलिए तो छूट सकता है।

४१२२. आत्मा कर्ता नहीं, जड़ कर्ता नहीं, तो फिर कर्ता कौन है ? स्वभाव कर्ता है !

४१२३. जगत् स्वभाव से चल रहा है। हरेक वस्तु स्व-स्वभाव में ही है। स्वभाव के बाहर कुछ हुआ नहीं !

४१२४. इस पानी को ऊँचे चढ़ाना हो तो 'पंप' चलाना पड़े, लेकिन खाली करना हो तो ? खाली हो जाय - ये स्वभाव से ही हो जाये।

४१२५. पानी को ठंडा करना हो तो मेहनत करनी पड़े ? ये तो अपने स्वभाव से ही ठंडा हो जाये।

४१२६. ये जगत् जो चलता है - वो स्वभाव से ही चलता है, और उसे चलाती है 'व्यवस्थित' नामक शक्ति ! बरगद का बीज राई से भी छोटा होता है, फिर भी उसमें पूरे बरगद की शक्ति है। शक्तिरूप में सारा बरगद इसमें समाया है ! 'व्यवस्थित', संयोग इकठ्ठा कर देवे और वो बीज, बरगद के रूप में परिणत हो जाये - स्वभाव से।

★★★

४१२७. 'व्यवस्थित' अर्थात् 'साइन्टिफिक सर्कम्स्टेन्शिअल एविडन्स' ! उसे हम लोग 'नेचर-कुदरत' कहते हैं। जो जो संयोग इकठ्ठा होते हैं, वे अपने-अपने स्वाभाविक भाव दिखाते हुए, इकठ्ठा मिलने पर कुछ नये तरह के भाव दिखाते हैं। H_2 और O इकठ्ठे हों और पानी बन जाये ! ऐसे यह सब इकठ्ठा होता है, बिखरता है। खाना, पीना और फिर पाख़ाने जाना, ये सब 'साइन्टिफिक सर्कमस्टेन्शिअल एविडन्स' है !

★★★

४१२८. पुद्गल का स्वभाव ही प्रसवधर्मी है ! इस जगत् में जो दिखता है, वो सब प्रसवधर्मी है। हमारे इर्द-गिर्द आईने लगाये हुए हों और हम खुद को एक चाँटा मार दें तो ?! बहुत सारे दिखाई दें ! वैसा ही इस पुद्गल का प्रसवधर्म है। इसका मूल कारण क्या ? स्पंदन। स्पंदन से ध्वनि उत्पन्न होती है और ध्वनि से ही यह सब खड़ा हो जाता है !

★★★

४१२९. बावड़ी में जाकर बोलो कि, 'तुम चोर हो', तो तुम्हें क्या मिलेगा ? थोड़ी देर बाद वे ही शब्द वापस मिलेंगे। दादाश्री कहते हैं 'बावड़ी का उदाहरण तो तुम्हारे समझने के लिए देता हूँ। वैसे तो सारा जगत् स्पंदन-स्वरूप है'।

★★★

४१३०. 'व्यवस्थित' अर्थात् ''ज्ञानी'' क्या कहना चाहते है ? 'तुम' क्यों 'इगोइज़म' करते हो ? 'तुम' क्यों स्पंदन करते हो ? 'मन-वचन-काया' ये तो 'व्यवस्थित' के अधीन है, उसकी प्रेरणा से ही वे चल रहे हैं, लेकिन 'तुम' कहते हो कि 'मैंने ये चलाया'। 'तुम' अपने 'स्वरूप' में रहो ना !

★★★

४१३१. ये स्पंदन क्यों होता है ? 'चंचल' में 'खुद' तन्मयाकार हो जाने पर। 'चंचल' और 'तन्मयाकार होनेवाला' ये दोनों अलग हैं। 'तन्मयाकार होनेवाला', वो स्वभाव से अचल है, जबकि ये 'भारती' (स्पंदनशील नामरूप) सचर है। 'तुम' खुद 'मूल स्वरूप' से अचल हो और ये बीच में जो है, वो तुम्हारा 'इगोइज़म' है।

४१३२. आईने के सामने अगर हाथ ऊपर–नीचे करो, तो कैसी प्रक्रिया हो ? वैसी ही प्रतिक्रिया होवे ! और यदि सारी प्रक्रियाओं को बंद करना हो, तो क्या करना पड़े ? जगत् बंद करना हो, तो हम अचल हो जाएँ – तो फिर वो भी अचल हो ही जायेगा ! हम अचल ही हैं, लेकिन हमारे अंदर नासमझी के कारण चंचलता खड़ी हो गयी है कि 'ये कौन सामने आया ?!'

४१३३. जैसे दर्पण में – ऐसे ही ये जगत् खड़ा हो गया है। ये आँखें ऐसी हैं कि दर्पण में से देखती हैं और उन्हें अपनी ही प्रक्रिया सर्वत्र दिखती है ! 'खुद' 'अपनी' ही प्रक्रिया में फँस गया है !

४१३४. मन–वचन–काया–बुद्धि–चित्त–अहंकार, ये जो चंचल भाग है, वो सारा व्यवस्थित के अधीन है, जबकि अकेला अचल भाग ही हमारा ! अचल के अलावा सब कुछ व्यवस्थित के अधीन है, क्योंकि कुछ भी चलायमान कर सकें, ऐसा 'हमारे' अंदर है ही नहीं, लेकिन 'इस' अज्ञानता के कारण प्रतिष्ठा हुआ करती है। प्रतिष्ठा बंद हो जाये, तो फिर मुक्ति हो जाये !

४१३५. 'पुरुष' अचल ही है, क़ायम के लिये ! वो अभी भी अचल है, जबकि 'प्रकृति' सचर है। प्रकृति 'मिकेनिकल' है, अतः उसे 'चंचल' कहा गया। यह 'मिकेनिकल'पन कभी भी न छूटे। 'तुम्हारी' जो 'रॉंग बिलीफ' है, उसके कारण 'मैं'पन का आरोप हुआ है कि – 'ये मैं हूँ' । जो 'तुम' नहीं हो, वहाँ पर आरोप किया गया है !

४१३६. प्रकृति विनाशी है। हर क्षण आयोजन हो रहा है और हर क्षण विनाश हो रहा है !

४१३७. प्रकृति का अस्तित्व है, हालाँकि वो विनाशी है, रिलेटिव है। पुरुष का अस्तित्व है, वो रियल है, अविनाशी है।

४१३८. प्रकृति तद्दन जड़ नहीं, अपितु निश्चेतन-चेतन है। निश्चेतन-चेतन यानी 'डिस्चार्ज चेतन' है। वस्तु को 'चार्ज' करने के बाद 'डिस्चार्ज' अपने आप ही होवे न ? उसमें क्या हमें कुछ करना पड़ता है ? यह सब 'इफेक्टिव' है। 'इफेक्टिव शक्ति' को ''ज्ञानी'' 'निश्चेतन-चेतन' कहते हैं।

४१३९. पुरुष और प्रकृति जुड़े हुए नहीं, दोनों सामीप्य भाव में हैं। पुरुष ज्ञानमय है। प्रकृति सब करती है। सामीप्यभाव से 'उसे' अपने ज्ञान में विभ्रमता उत्पन्न हो जाती है कि - 'ये किसने किया ?' फिर कहेगा कि 'मैंने किया'। ज्ञान बदल जाने पर प्रकृति उत्पन्न हो जाती है। 'स्वयं' विशेषभाव में से ज्ञान-स्वभाव में आ जाये, फिर प्रकृति नष्ट हो जाये।

४१४०. पुरुष 'स्वयं' आत्मस्वरूप है, भगवान ही है स्वयं, लेकिन बाहरी दबाव के कारण प्रकृति खड़ी हो गयी ! ये सब क्या ? ये सब किसने किया ? 'मैंने किया' ऐसा जो भान उत्पन्न हो जाता है, वो विशेषभाव है और उसीसे प्रकृति खड़ी हो जाती है।

४१४१. 'यह विशेषभाव कौन-सा है ? प्रकृति अपने आप कैसे खड़ी हो जाती है ?' ये सब ''ज्ञानीपुरुष'' ने देखा है, ''वे'' ये सब देखकर कहते हैं इसलिए यह 'विज्ञान' उजागर होता है। किसी भी चीज़ का कोई कर्ता है ही नहीं, और बिना कर्ता के कुछ हुआ नहीं !

४१४२. लोहे को समुद्र किनारे रख देने पर बदलाव आये न ! इसमें लोहा कुछ भी नहीं करता, और समुद्री हवा भी कुछ नहीं करती। यदि हवा कुछ करती होती, तो हर चीज़ को जंग लग जाता! यह तो दो वस्तुओं का संयोग होने पर कोई तीसरी वस्तु उत्पन्न हो जाती है – ये है विशेष भाव। जो जंग है – वो है प्रकृति। लोहा, लोहे के भाव में है और प्रकृति, प्रकृति के भाव में ! इन दोनों को अलग करो तो पुरुष, पुरुष की जगह पर और प्रकृति, प्रकृति की जगह पर !! जब तक एकाकार हैं तब तक जंग बढ़ता ही रहे, बढ़ता ही रहे......

★★★

४१४३. 'मूल पुरुष' को कुछ होता ही नहीं ! बाहर के संयोगों के कारण ये विशेषभाव उत्पन्न हुआ है। जब तक पुरुष अपनी जागृति में न आये, तब तक वो प्रकृति भाव में ही रहा करे।

★★★

४१४४. दो सनातन वस्तुओं के इकठ्ठा होने पर दोनों में ही विशेषभाव उत्पन्न हो जाता है ! इसमें, दोनों के अपने गुणधर्म तो बने ही रहते हैं, लेकिन अतिरिक्त विशेष गुण भी उत्पन्न हो जाते हैं। छह 'मूल वस्तु'ओं में से जड़ और चेतन दोनों सामीप्यभाव में आने पर विशेष परिणाम उत्पन्न होता है। अन्य चार तत्त्व तो, जब चाहे–जहाँ चाहे–जैसे चाहे सामीप्यभाव में आयें, फिर भी उन्हें कोई असर ही नहीं होता।

★★★

४१४५. सूर्यनारायण की हाज़िरी से संगमरमर के पत्थर तपते हैं, इसमें मूल मालिक ऐसा मान ले कि 'पत्थर का स्वभाव गर्म है', ठीक वैसे ही ये विशेष परिणाम के बारे में है। सूर्यनारायण अस्त होने पर वो विशेष परिणाम ख़लास हो जायेगा। पत्थर तो स्वभावतः शीतल ही है ! इसी प्रकार आत्मा और पुद्गल के सामीप्य भाव से विशेष परिणाम खड़ा हुआ, उसमें अहंकार खड़ा हुआ। मूलतः जो स्वाभाविक पुद्गल था, वो न रहा !

★★★

४१४६. दो वस्तुएँ इकट्ठा होने पर दोनों के स्वभाव में बदलाव नहीं आता, लेकिन अज्ञानदशा में तीसरा विशेष भाव उत्पन्न होता है। जैसे इस पुस्तक को दर्पण के सामने रखें, तो पुस्तक अपना स्वभाव नहीं बदलेगी। तो क्या दर्पण अपना स्वभाव बदलता है ? नहीं। दर्पण तो स्वयं अपने स्वभाव में ही है, लेकिन अगर उसके सामने जाओ तो 'वो' अपना स्वभाव भी दिखाये और 'विशेषभाव' भी दिखाये ! ये बहुत ही सूक्ष्म बात है, 'साइन्टिस्टों' को ये जल्दी समझ में आ जाये !!

४१४७. जगत् में किसी भी चीज़ में 'करनेवाले' की ज़रूरत नहीं है। इस जगत् में जो वस्तुएँ हैं, वे निरंतर परिवर्तनशील हैं, इसी आधार पर सारे विशेषभाव बदलते ही रहे और नयी-नयी तरह का सब दिखाई देता रहे।

४१४८. संसार को चित्रित करता है 'खुद', फिर विचित्रता लाने का काम 'नेचर' के हाथ में है ! चित्र के विशेष परिणाम को लेकर, विचित्र करने का काम 'नेचर' का है ! इसमें कोई हस्तक्षेप न कर सके, दखलंदाजी न कर सके।

★★★

४१४९. 'पुद्गल' ये जीवंत वस्तु नहीं, किन्तु वो 'आत्मा' के विशेषभाव को ग्रहण करे और वैसे ही तैयार हो जाये, अत: उसमें भी बदलाव हो जाता है। आत्मा को कुछ करना नहीं पड़ता ! 'उसका' विशेषभाव हो जाने पर पुद्गल परमाणु खिंच जायें। बाद में वो अपने आप ही मूर्त हो जाये और अपना कार्य करता रहे !

४१५०. जो बाहरी है, वो 'हमारे' अंदर दिखता है ! जैसे आईने में बाहर की वस्तु दिखे वैसे। 'खुद' प्रकाशित भाव है, इसलिए अंदर दिखे, किन्तु है तो बाहर का ही। 'आत्मा' का स्व-पर प्रकाशित स्वभाव है, अत: 'उसे' बाहर का, अपने अंदर दिखे। तो क्या वो अंदर पैठ गया ? हक़ीक़त में अंदर पैठता ही नहीं। आत्मा स्व-पर प्रकाशक है, इसलिए वो दिखेगा तो सही। ''ज्ञानी'' को भी दिखे, किन्तु 'वे' कभी उलझते नहीं कि 'ये हमारे अंदर पैठ गया !' पैठे ही नहीं न !

४१५१. परिणामी वस्तुएँ – संयोगों के आ मिलने पर विपरिणाम पाती हैं और इसलिए संसार खड़ा हो जाता है। सोना लाख बरस तक पड़ा रहे तो भी उसका परिणाम न बदले। हर एक 'वस्तु' अपने स्वभाव-परिणाम को भजती ही रहे !

४१५२. विपरिणाम अर्थात् विशेष परिणाम, विरुद्ध परिणाम नहीं !

४१५३. ''ज्ञानी'' को तो 'आत्मा', आत्म-परिणाम में रहे और 'मन' मन के परिणाम में रहे। 'मन' में तन्मयाकार होने पर विशेष परिणाम हो जायें। 'आत्मा' स्वपरिणाम में परमात्मा है। दोनों अपने-अपने परिणाम में आ जायें और अपने-अपने परिणाम को भजें – इसीका नाम मोक्ष !

★★★

४१५४. वस्तुओं के संयोगों के कारण ये विपरिणाम दिखते हैं और विपरिणाम को देखकर लोग उलझ जाते हैं। ''ज्ञानी'' कहते हैं, बात को समझो ! मेहनत करने की ज़रूरत नहीं। स्वपरिणाम को समझो और विशेष परिणाम को भी समझो। आत्मा विभाविक नहीं हुई, ये तो विशेष परिणाम है और हक़ीक़त में इस विशेष परिणाम का 'एन्ड' आ जाता है।

४१५५. 'दूध का फट जाना' ये उसका स्वभाव है, और 'दही हो जाना' ये उसका विशेष परिणाम है।

४१५६. 'वस्तु' अविनाशी है, उसके परिणाम भी अविनाशी हैं; केवल विशेष परिणाम विनाशी हैं। यदि हम इस बात को समझ लें, तो दोनों का 'मिक्स्चर' न हो, अतः दोनों अपने-अपने परिणाम को भजते रहें!

४१५७. 'दानेश्वरी' दान दे या 'चोर' चोरी करे, वे दोनों 'उनके' अपने परिणाम को भजते हैं! फिर उसमें राग-द्वेष करने जैसा कहाँ रहा ?!

४१५८. 'ये विशेष परिणाम है' - इसे 'खुद' ने जाना, ये ही स्वपरिणाम। विशेष परिणाम में 'अच्छा-बुरा' ऐसा नहीं होता। अज्ञान से मुक्ति अर्थात् ये अपने परिणाम और ये विपरिणाम इस प्रकार इन दोनों को समझना, और मोक्ष अर्थात् विशेष परिणाम बंद हो गये, वो। स्वभाव-परिणाम को ही 'मोक्ष' कहते हैं।

४१५९. विशेष परिणाम से क्या हुआ ? यह 'मिकेनिकल चेतन' खड़ा हुआ, 'पुद्गल' खड़ा हुआ, 'पुरण-गलन'वाला खड़ा हुआ! 'ये' स्वरूप 'हमारा' है - ऐसी जब तक 'बिलीफ' भी है, तब तक छूट नहीं पाते।

४१६०. प्रतिक्रमण क्यों करना है ? हमारे विपरिणामों के कारण ये जो संयोग इकठ्ठा होते हैं, वे प्रतिक्रमण से मिट जायें ! वास्तव में तो असल 'साइन्टिस्ट' (विज्ञानी) को प्रतिक्रमण की आवश्यकता ही नहीं । ये तो हमारे लोग चूक कर बैठते हैं, इसलिए प्रतिक्रमण करना है ! सच्चा 'साइन्टिस्ट' तो हस्तक्षेप करे ही नहीं । 'दि वर्ल्ड इज दि सायन्स'!

★★★

४१६१. ''ज्ञानी'' अर्थात् जिसे अपने 'स्वरूप' का और 'स्वभाव' का ही चिंतन होता रहे। 'स्वरूप' यानी खुद कौन है – ये 'डिसाइडेड' होना, और 'स्वभाव' यानी आत्मा के गुणधर्म, उसमें ही रहा करना – इसीका नाम ''ज्ञानी'' ! ''ज्ञानी'' स्वरूप में ही निरंतर रहें, संसार में एक क्षण भर भी न रहें !!

★★★

४१६२. आत्मा का एक गुण ऐसा है कि वो जैसा चितवन करे वैसा ही हो जाय । मूल गुण निर्विकारी है, पर यदि वह चितवन करे कि 'मैं विकारी हूँ' तो वह विकारी हो जाये । हालाँकि मूल गुण न जाये ! चितवन किया हुआ गुण नष्ट हो जाये ।

★★★

४१६३. 'आत्मा' रत्नचिंतामणि है, कल्पवृक्ष है । स्वयं जैसा कल्पे, वैसा वो हो जाये ! 'तुम' कहो कि, 'मैं दिवालिया हो गया', तो दिवालिया । 'तुम' कहो कि 'नहीं, कुछ नहीं हुआ' – तो कोई असर न रहे !!

★★★

४१६४. जैसे कल्पे, वैसा खुद हो जाये ! जप करे, तप करे, तो वैसा वो हो जाये !! जैसा विचार करे – वैसा खुद हो जाये, जैसा बोले – वैसा वो हो जाय, जैसा वर्तन करे – वैसा वो हो जाय ! 'आत्मा' जैसा कल्पे – वैसा वो हो जाय !!

४१६५. आत्मा के गुण के कारण वो जैसे कल्पे वैसा हो जाता है। इसमें 'मूल वस्तु' में बदलाव नहीं होता, अवस्था में बदलाव आता है! वास्तव में तो 'आत्मा', आत्मा ही रहती है, परंतु असर हो जाता है, 'रॉंग बिलीफें' बैठ जाती हैं!!

४१६६. मूल द्रव्य को कोई असर होता ही नहीं। ये तो भ्रामक मान्यताएँ ही हैं! द्रव्य बिगड़ता नहीं। यदि द्रव्य बिगड़ता, तो फिर किसी का मोक्ष होता ही नहीं! 'ज्ञान' बदलता नहीं, सिर्फ़ 'बिलीफ' ही बदलती है।

४१६७. ''ज्ञानी'' ने जो देखा, वो 'आत्मा' कुछ और ही वस्तु है, इसीलिए तो 'तुम्हारी' दृष्टि एक घंटे में ही बदल जाती है, नहीं तो लाखों जन्मों में भी न बदले!

४१६८. पर्याय अर्थात् अवस्था जो हम देख रहे हैं, उसमें सबसे छोटी अवस्था को 'पर्याय' कहा जाता है। पर्याय के फिर आगे और भाग न हो सकें।

★★★

४१६९. आत्मा के साथ जो क़ायम रहे, उसे 'ज्ञान' कहा जाये, 'गुण' कहा जाय; और जो अवस्था तलक ही रहे, तत्पर्यन्त ही रहे, उसे 'पर्याय' कहा जाये। जो 'ज्ञान' हमारे दोष को दिखाता है, वो 'ज्ञान' नहीं अपितु 'ज्ञान' का पर्याय है!

४१७०. ये सूर्यनारायण हैं न, उनकी 'रेज' (किरणों) को 'पर्याय' कहा जाये ! वे खुद तो प्रकाशमान हैं ही, पर 'रेज' भी उत्पन्न होवें। 'लाइट' ये 'परमेनन्ट' वस्तु है जबकि 'रेज', ये 'टेम्पररी' हैं। 'रेज' तो नयी-नयी उत्पन्न होती ही रहेंगी। ''ज्ञानी''ने ये बात समझाने के लिए अत्यंत सरल भाषा में कही है।

★★★

४१७१. 'आत्मा' तो ज्ञानस्वरूप है, किन्तु उसका जो 'प्रकाश' उत्पन्न होता है वो स्वाभाविक प्रकाश है - जो कि बाहर की अवस्थाओं को देखता रहता है। एक को देखे, पूरा हो, फिर दूसरे को देखे, फिर तीसरे को देखे ! ये अवस्थाएँ कैसी होवें ? उत्पन्न हो, कुछ देर तक टिके, और फिर लय हो जायें ! पुद्‌गल में भी ऐसे ही पर्याय खड़े होते हैं। पुद्‌गल के पर्याय को 'तुम' देख सकते हो।

★★★

४१७२. आम दिखाने पर आत्मा का पर्याय आम के आकाररूप हो जाये, बाद में और कुछ देखने को मिलने पर उसके आकाररूप हो जाये और पहला आकार चला जाये ! ऐसे निरंतर चलता ही रहे.....

★★★

४१७३. संसार 'अज्ञान' से खड़ा हो जाये और 'प्रज्ञा' से अस्त हो जाये ! आत्मा ने इसमें कुछ किया ही नहीं।

★★★

४१७४. गधे का कट-आउट चित्र सूर्यनारायण के सामने धरें, तो दीवार पर गधे का चित्र ही दिखेगा ! इसमें सूर्यनारायण को क्या करना पड़ा ? इसमें सूर्यनारायण किस अपेक्षा से कर्ता ? और किस अपेक्षा से अकर्ता ? अपने अस्तित्व की अपेक्षा से वे कर्ता हैं जबकि अन्य अपेक्षा से वे कर्ता नहीं। सूर्यनारायण तो जानते तक नहीं कि गधे का चित्र रखा है !

४१७५. इस 'लाइट' की हाज़िरी में यहाँ उछल-कूद करें, पैर उपर-नीचे करें, इसमें 'लाइट' क्या करती है ? 'लाइट' की तो मात्र मौजूदगी ही है। इसी तरह ये चेतन कुछ भी कार्य नहीं करता ! ये बात जगत् के प्रज्ञान में नहीं।

४१७६. यह तो 'अक्रम विज्ञान' से सब उजागर हो गया है। ज्ञानी कहते हैं कि मैंने देखा है कि 'आत्मा' कुछ भी काम नहीं करती, हालाँकि उसकी मौजूदगी में ये सारी क्रियाएँ चलती रहती हैं।

४१७७. आत्मा जानने जैसी है, हालाँकि जानी जा सके ऐसी नहीं ! उसे तो ''ज्ञानीपुरुष'' की कृपा से ही जाना जा सके। ''ज्ञानीपुरुष'' चाहे सो करें, क्योंकि वे कर्ताभाव से नहीं, निमित्तभाव से हैं।

४१७८. आत्मा खोजी जा सके ऐसी वस्तु नहीं। इस देह में आत्मा कैसे खोज पायें ? आत्मा तो ऐसी है, जो घरों के आरपार निकल जाये। लाख दीवारें हों, इनके भी आरपार निकल जाये, ऐसी है आत्मा !

४१७९. 'आत्मा' संपूर्णतः जानना - इसीका नाम केवलज्ञान ! आत्मा संपूर्ण जानना, 'एब्सोल्यूट' आत्मा जानना - इसीका नाम ही केवलज्ञान !!

४१८०. 'शुद्धात्मा' ये परमात्मा नहीं है। शुद्धात्मा तो परमात्मा के 'यार्ड' में एक स्थान है ! 'तुम्हें' (स्वरूपज्ञान प्राप्त महात्माओं को) शुद्धात्मपद क्यों दिया गया है ? 'तुम' हो 'शुद्धात्मा', और 'माणेकलाल' जो कुछ भी करता है, 'तुम' उसके 'रिस्पोन्सिबल' नहीं – ऐसी प्रतीति हो जाये। अच्छा करो उसका भी दाग़ न लगे और ग़लत करो तो उसका भी दाग़ न लगे ! 'कर्तापद मेरा है ही नहीं' – इसे 'शुद्धात्मा का अवबोध हो गया' ऐसा कहा जाय।

★★★

४१८१. 'शुद्धात्मा' शब्द, ये तो मात्र संज्ञा ही है ! इससे 'मैं शुद्ध ही हूँ, त्रिकाल शुद्ध ही हूँ' – इस संज्ञा में रहा जा सके। शुद्धता के बारे में निःशंकत्व उत्पन्न हो जाये !! फिर आये अगला पद – जो है 'केवल ज्ञानस्वरूप' 'हमारा' !!

★★★

४१८२. तुम (स्वरूपज्ञान-प्राप्त 'महात्मा') 'शुद्धात्मा' रूप से रहो, जबकि ''ज्ञानी'' (प्रकट-प्रत्यक्ष आत्मज्ञानी) 'केवलज्ञान' रूप से रहें !

★★★

४१८३. सारे 'वर्ल्ड' का अजूबा सा पुरुष है 'यह' दादा ! 'केवलज्ञान-स्वरूपी' आत्मा जान लें – इसे ही 'जाना' कहा जाये।

★★★

४१८४. 'केवलज्ञान-स्वरूप' कैसा दिखे ? समग्र देह में आकाश जितना ही भाग अपना दिखे। मात्र आकाश ही दिखे, और कुछ न दिखे ! कोई मूर्त वस्तु उसमें न हो। ''ज्ञानीपुरुष'' के कहने पर ऐसे अभ्यास हुआ, अतः शुद्ध हो गया !

४१८५. ज्ञायकभाव के अलावा और कोई भाव ही नहीं – इसीका नाम केवलज्ञान !

४१८६. केवलज्ञान अर्थात् क्या ? सारे ज्ञेय और ज्ञेय के सारे पर्याय को जाने, वो। सभी ज्ञेयों का ज्ञाता हो जाये, तब केवलज्ञान हो।

४१८७. 'केवलज्ञान-स्वरूप' अर्थात् 'एब्सोल्यूट' ज्ञानस्वरूप है। केवलज्ञान आकाश जैसा है, आकाश जैसा स्वभाव है, अरूपी है। आत्मा आकाश जैसा सूक्ष्म है। आकाश अग्नि के स्पर्श से न जले। अग्नि स्थूल है। अन्य सभी वस्तुएँ आत्मा की अपेक्षा स्थूल हैं।

४१८८. 'ज्ञान' एक ही है, उसके सारे भाग अलग-अलग हैं ! हम इस 'रूम' को देखें तो 'रूम' है, और 'आकाश' को देखें तो 'आकाश' है, हालाँकि 'ज्ञान' तो वो ही का वो ही है। जहाँ तक यह विशेष ज्ञान दिखे, सांसारिक ज्ञान दिखे, वहाँ तक आत्मा दिखे ही नहीं, जबकि आत्मा को जानने के बाद दोनों दिखें। आत्मा को न जानें तो कुछ न दिखे। मानो, पूरी तरह अंधे !

४१८९. बुद्धि से परमात्मा संबंधी बातें करना, ये तो आत्मा की निंदा करने बराबर है। आत्मा तो अवर्णनीय है।

४१९०. मन की सभी क्रियाओं को 'डिस्चार्ज' समझ लें - वाणी की सभी क्रियाओं को 'डिस्चार्ज' समझ लें, देह की सभी क्रियाओं को 'डिस्चार्ज' समझ लें, तो मानों सब कुछ हो गया ! जो "ज्ञानी" की इतनी ही बात को समझ ले, उसे कुछ भी करना बाक़ी न रहे, कुछ भी पढ़ना बाक़ी न रहे और ना ही कुछ सुनना बाक़ी रहे।

४१९१. बुद्धिवाले से तुम बुद्धि लाये, "ज्ञानी" से मिलेगा 'ज्ञान'।

४१९२. आत्मा भ्रमित होने पर संसार खड़ा हुआ। बुद्धि भ्रमित होगी तब 'ज्ञान' प्रकट होगा।

४१९३. 'ज्ञान' दिया जा सके ? 'ज्ञान' भी दिया जा सके और अज्ञान भी दिया जा सके। यह जगत् अज्ञान दे रहा है, जबकि ''ज्ञानी'' 'ज्ञान' दे रहे हैं। 'ज्ञान' और 'अज्ञान' दोनों नैमित्तिक हैं। 'ज्ञान' तो तुम्हारे अंदर भरा पड़ा है ! ''ज्ञानी'' के निमित्त से वो प्रगट होवे। प्रकट-प्रत्यक्ष आत्मज्ञानी तो मात्र निमित्त हैं। किसी भी बाबत में इनका कर्तापन न होवे।

४१९४. आत्मा कर्तव्यस्वरूप नहीं, क्रियास्वरूप नहीं ! आत्मा तो क्रियाओं का ज्ञाता-दृष्टा है।

४१९५. ज्ञान तो अपार है, हालाँकि 'वीतराग' ने जिस ज्ञान को जीत लिया है, उसके आगे तो कोई ज्ञान ही नहीं। जो कहीं भी हारे नहीं, उनका नाम 'वीतराग' ! भले ही देह हारे, मन हारे, वाणी हारे, लेकिन 'स्वयं' कभी नहीं हारते !! देखो, कैसे हैं ये 'वीतराग' ?!

४१९६. ''विज्ञानी'' कब हो सके ? मन की सारी ग्रंथियाँ पार कर ले, बुद्धि के सारे पर्याय पार कर ले, उसके बाद 'ज्ञान' के पर्याय शुरू हों। फिर उन्हें भी लाँघ जाये और 'ज्ञान' के बाहर निकले तभी 'विज्ञानघन आत्मा' हो जाये !

४१९७. अनंत ज्ञेयों को 'वीतरागों' ने एक ही ज्ञेय में देखा था, वैसे ही ये 'दादा' ने एक ही ज्ञेय, एक पुद्‌गल देखा है। पुद्‌गल तो स्वाभाविक रुप से एक ही है, मूल स्वभाव का पुद्‌गल, विश्रसा ! जगत् एक ही विश्रसा का बना हुआ है, 'नेट' शुद्ध परमाणु का !!

★★★

४१९८. ''अनंत ज्ञेयों को जानने में परिणमित हुई अनंत अवस्थाओं में 'शुद्ध चेतन' संपूर्ण शुद्ध है, सर्वांग शुद्ध है।'' उन ज्ञेयों के अनंत पर्यायों में से 'स्वयं' ने अपना ज्ञाताभाव खींच लिया और फिर वो शुद्ध हो गया!

★★★

४१९९. सेब को देखने पर ज्ञेय के मुताबिक ज्ञान हो जाये, अतः वो ज्ञानाकार हो जाये, वो चिपक नहीं जाता! लेकिन वहाँ उस रूप, तद्रूप हो जाता है – इसकी दिक्कत है। फिर वहाँ से वो छूटे कैसे? वो तद्रूप किस कारण होता है? मान्यता के कारण। वस्तुतः तो वो तद्रूप भी नहीं होता, लेकिन 'रॉंग मान्यताओ' के कारण तद्रूपता का भास होता है। 'मान्यता' पलटकर सीधी हो जाने पर 'वो' अपने असल स्वरूप में ही होता है।

★★★

४२००. दो प्रकार के ज्ञेय : एक अवस्थारूप में ज्ञेय और दूसरा तत्त्वस्वरूप में ज्ञेय। तत्त्वस्वरूप का तो अभी तुम्हें समझ में न आये। १. ज्ञाताभाव ज्ञेयभाव में दिखे तब अपने स्वभाव में समाविष्ट हो जाये। २. ज्ञेय में ममत्वपन था वो छूट गया फिर ज्ञेय ज्ञेयस्वरूप में दिखे, वैसे वैसे आत्मपुष्टि होवे। जब तत्त्वस्वरूप में ये आत्मा दिखेगी तब अन्य सारे तत्त्व भी दिखेंगे। सही ज्ञेय तत्त्वस्वरूप में है और तत्त्वस्वरूपा ज्ञेय 'केवलज्ञान' के बिना न दिखे, हालाँकि श्रद्धा में आने पर फिर केवलज्ञान में आ ही जाये। ज्ञाताभाव खिंच गया अर्थात् 'एक्स्ट्रेक्ट' खिंच गया।

★★★

४२०१. जब से 'हम' ज्ञाता-ज्ञेय के संबंध में आ जायें, तब से ज्ञेय शुद्ध होते ही जायें। जिन ज्ञेयों का निबटारा हो गया, वे फिर से नहीं आयेंगे, क्योंकि वे शुद्ध होकर निष्कासित हो गये – अतः तत्त्वस्वरूप हो गये।

★★★

४२०२. ये 'अक्रम विज्ञान' सैद्धांतिक स्वरूप है। इसे बिलकुल अविरोधाभास सिद्धांत कहा जाये। जहाँ से भी पूछो, वहाँ सिद्धांत में ही परिणत होवे, क्योंकि स्वाभाविक ज्ञान है 'यह'।

४२०३. प्रकृति का एक भी गुण 'शुद्ध चेतन' में नहीं है, 'शुद्ध चेतन' का एक भी गुण प्रकृति में नहीं। सामीप्य होने के कारण भ्रांति से वे एकरूप लगते हैं – और इसीसे जगत् की अधिकरण क्रिया होती है!

४२०४. अभी तुम संसार के सम्मुख हुए हो और ''ज्ञानी'' से विमुख हुए हो। जब ''ज्ञानी'' के सम्मुख होओगे, तब संसार छूटेगा!

४२०५. जैसे कमल और जल के बीच कोई झगड़ा नहीं, वैसे ही संसार और 'ज्ञान' के बीच कोई झगड़ा नहीं है। दोनों अलग ही हैं, लेकिन मात्र 'बिलीफें' ही 'रॉंग' हैं! जब ''ज्ञानीपुरुष'' 'रॉंग बिलीफ' को 'फ्रेक्चर' कर देवें, तो फिर संसार छूट जाये!!

दादा भगवान की असीम जय जयकार हो।

॥ जय सच्चिदानंद ॥

विषयानुसार आप्तसूत्र संदर्भ सूची

१. अक्रम मार्ग

८२, ८३, ८४, ८५, ८७, ८८, ४२४, १३७०, १४५२, १८९२, १९१९, २१९१, २२४६, २२७९, २३७०, २३७१, २३७३, २३७४, २३७५, २३७६, २३८६, २६५२, २६६४, २६६६, २७९०, २८७७, २८९२, २९८३, २९८५, ३०४७, ३१२७, ३१५३, ३६५१, ३६७६, ३६७८, ३८९७, ४०१७, ४११९, ४१७६, ४२०२

२. अड़चनें

१३७, २३४, ४३९, ४४२, ७०९, ७९८, ८२९, ८८४, ८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ९२६, १३३७, १५४९, १७६३, १८०८, १८८३, १९०६, २१७२, २५२६, ३०१६, ३०४१, ३०९७, ३३६२, ३७३६, ३७३७, ३७३८, ३९२३, ४०५४

३. अधीनस्थ (अंडरहँड)

३०४, १८९५, १९९५, १९९७, १९९८

४. अध्यात्म, आध्यात्मिक व्यवहार

२, ५०, ९५८, १०२४, १०२५, १०२६, १३१२, १३१७, १७७७, १८०५, १९८६

५. अध्यात्म पथ

१०३६, १०४८, ११४१, १२२०, १२७९, १२८३, १३०६, १३७४, १३८७, १५९८, १७०९, १७५७, १७५८, २१८६, २१८७, २१८८, २३९३, २४१८, २५६८, २७२१, २८०५, २८१५, ३००१, ३००२, ३०२५, ३१८७, ३१९५, ३१९६, ३१९९, ३२००, ३२०१, ३२११, ३२१३, ३२१८, ३२६९, ३२७१, ३३२४, ३३३६, ३३५६, ३५४७, ३५८५, ३५८६, ३६२६, ३६७४, ३६८३, ३६९८, ३८५८, ३९७४, ४०२४

६. अध्यात्म-विज्ञान

५०, १६७, १७०, ३९४, ४२५, ४२६, ४६५, ८००, १०४७, १४८९, १४९१, २१५०, २३२५, २३६४, २३६५, २३६६, २३६७, २३६८, २३६९, २३७०, २७९४, २८५४, २८८१, २८८६, २८८८, २८९१, २८९२, २८९३, २९१७, २९८१, ३२५३, ३२८२, ३३९९, ३४०८, ३६७२, ३८२५, ३८२७, ३८२८, ३८३२, ३९१२, ३९२२, ४००८, ४०५२, ४१०१, ४१४१, ४१६०, ४१९६

७. अनात्म

११८, ११९, ७४६, ८०१, ९६२, २५७१, ३०७७, ३१५८, ३१६४, ३२९३, ३२९५, ३३३७, ३४५९, ३५२९, ३५३१, ३५७५, ३७०३, ३७०६, ३७०७, ३७५९, ३८०६, ४१०९, ४१३९, ४१४४, ४१५३, ४२०३

३१०२, ३१०८, ३५४०, ३७४३, ३७६८, ३७७५, ३८१९, ३८७८, ३८७९, ३८८०, ३८८१, ३८८५, ३९०९, ३९७६, ४०५६, ४०५८, ४०५९, ४०६०, ४०६१, ४०६२, ४०६३, ४०६४, ४०६५, ४०६६ ४१३१, ४१६८, ४१६९, ४१७०, ४१७१, ४१७२, ४१८६, ४१९८, ४२००

१८. असंग, अनासक्ति

४७७, २०९९, २१०२, २१४६, २२९५, ३२३७

१९. अज्ञान

७५, १८८, ३४७, ३६९, ३९१, ३९२, ३९३, ५०२, ५५६, ५६८, ५९२, ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६८४, ७१३, ९२१, ९२६, ९२७, १००२, १००६, १०१५, १०१६, १०९६, ११४४, ११६७, १२४३, १२४६, १३०५, १३०७, १४०५, १४०६, १४०९, १४३६, १४३९, १४४२, १४५३, १५८७, १६५१, १६६६, १७२५, १९८८, २०४३, २१५६, २२०५, २२०६, २२३४, २२३६, २२४७, २२४८, २२४९, २२५०, २२५१, २२६६, २२६७, २३४७, २३६९, २३७६, २३७७, २४३४, २४७४, २४८६, २४८७, २४८८, २४८९, २४९०, २४९२, २५०२, २६४५, २६५२, २६६७, २६७२, २६७६, २६७७, २७७५, २८२४, २८२५, २८२७, २८२८, २८२९, २८४९, २८५३, २८८५, २९६१, ३०६६, ३०९२, ३१०९, ३१३५, ३२०७, ३२९०, ३३३४, ३३७५, ३४५८, ३४८४, ३४८५, ३६०५, ३६३०, ३६३५, ३६७७, ३६७८, ३६७९, ३६८१, ३६८३, ३६८४, ३६८५, ३७०४, ३७१४, ३७१५, ३७२३, ३७७८, ३७८५, ३७८८, ३८१३, ३९४६, ४०३६, ४०३७, ४०३८, ४०४०, ४०४२, ४०४३, ४०४४, ४०४५, ४०४६, ४०५१, ४०५४, ४०५५, ४०८७, ४०९५, ४१४६, ४१५८, ४१७३, ४१९३

२०. अज्ञाशक्ति

३२३५, ३९४१, ३९४३, ३९४५, ३९४७, ३९४८, ३९४९, ४०२६, ४०८५, ४०८६, ४०८७, ४०८८, ४०८९, ४०९०, ४०९१, ४१७३

२१. आईना, दर्पण

१८८९, १९७७, २१७७, ३८३४, ३८३५, ३८३६, ३९९६, ४०३२, ४०३३, ४०३५, ४१२८, ४१३२, ४१३३, ४१४६, ४१५०

२२. आकर्षण

६७१, ६७७, ६७८, १०००, १००१, १२९२, १४४१, १७४२, २११५

२३. आग्रह

५२४, ५२५, ११३२, ११५०, ११५८, ११५९, ११६०, १२७०, ११६४, ११६५, ११६६, ११६७, ११६८, ११६९, ११७०, ११७१, ११७२, ११७३, ११७४, ११७५, १२७०, १२७१, १४९३, १७५०, १७५२, १७५४,

१८१५, १८१८, १८३०, १८७८, २३२०, २३९६, २५३८, २८१३, ३२१२, ३२२७, ३२६५, ३२६७, ३३७७, ३३७८, ३३७९, ३३८२, ३३८३, ३३८४, ३३८५, ४०२९

२४. आचरण, वर्तन

२७७, ६००, ९८३, ११५२, १२७८, १३०२, १७०३, १८५३, २१९४, २३१६, २६६८, २७४२, २८५६, २८५७, २८५८, २८६१, ३०९८, ३२४१, ३२४२, ३५८१, ३६११, ३६१६, ३६१७, ३६१८, ३६१९, ३६२१, ३६२३, ३६३४, ३६५६, ३६६६, ३६६७, ३६६९, ३६७१, ४०५०, ४०९१, ४०९३, ४०९४

२५. आत्म-अनुभव, आत्म-साक्षात्कार

११६६, १२००,१२३६, १२४१,१२४५, १३५८, १४२९, १४३१, १६३१, १६३४, १६३७, १८९४, १९४२, १९७५, २०६१, २०६३, २१९०, २२०५, २२१२, २२१३, २२१८, २२२१, २२२३, २२९०, २३८५, २४८१, २४८५, २४८८, २५४३, २५९२, २५९६, २५९७, २६०१, २६०२, २६०४, २६१३, २६३१, २६५८, २६५९, २६६१, २६६०, २६६२, २६९८, २७०७, २७१८, २७२०, २८३९, २८६२, २९१९, २९२०, २९५४, २९६७, २९७२, २९७३, २९८१, ३०२६, ३०३०, ३०३५, ३०७९, ३०८८, ३१२०, ३१३०, ३१३१, ३१३४, ३१४१, ३१५५, ३१६१, ३१७०, ३३०५, ३३२९, ३३३२, ३३३८, ३४०६, ३४२८, ३४९५, ३५०१, ३५२४, ३५२५, ३५२६, ३५३४, ३५३५, ३५४१, ३५४२, ३५४३, ३५४४, ३५४५, ३५४६, ३५५१, ३५८४, ३६२९, ३६३२, ३६५५, ३६५७, ३६७४, ३७०८, ३७४८, ३७४९, ३७५०, ३७६०, ३७९७, ३९२५, ३९२६, ३९२७, ३९३७, ३९६१, ३९८३, ३९८४, ३९८५, ३९८६, ३९८७, ३९८८, ४००८, ४०८०, ४०८३, ४०९१, ४११०, ४१६७, ४१८०, ४१८८, ४१८४, ४१९०

२६. आत्म-खोज, आत्म-जिज्ञासा

५२, १८२७, १९८४, २०९३, २१८३, २१८४, २१८५, २१८६, २१८७, २१८८, २१८९, २१९०, ३००४, ३०२९, ३०९४, ३९५४

२७. आत्म-निरीक्षण

१२०, १२१,१२२, १२५, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, १२००, १२८५, १७१४, १८२३, ३८२०, ३९४४

२८. आत्म-साक्षात्कार

३४६, ३९०, ५८४, ६२७, १३३०, १६७६, २०००, २४०४, २५८९, २८८४, २९८०, ३०२७, ३०३७, ३४४७, ३४४८, ३४५०, ३६४६, ४००२

२९. आत्म-ज्ञानी

२४, २८, ३४, ३५, ३६, ४७, ७३, ९९, १००, २९१, ३३२, ३७३, ३७५, ४२३, ४४१, ४५४, ५७४, ६१६, ६४२,

७४२, ७४३, ७६१, ८२२, ८३५, ८८२, ८८३, ९४९, ९५१, ९५५, ९५९, ९८९, ९९१, ९९३, १०३१, १०३७, ११०२, ११०७, ११५४, १३७७, १३७८, १३७९, १३८३, १३८८, १४०१, १४७४, १५८८, १६५६, १६७४, १७१०, १७११, १७७५, १८३३, १८६९, १९१९, २०१८, २०८६, २१८०, २२११, २४०८, २४७०, २४७२, २४९१, २४९२, २५०८, २५७५, २७१८, २७७२, २८३०, २८३६, २८५९, ३०५७, ३०८९, ३१०५, ३१३८, ३१५६, ३१६५, ३१६६, ३१६७, ३१७२, ३१७८, ३१९७, ३२०७, ३२०८, ३२२५, ३२४०, ३२८८, ३३०२, ३३८२, ३४१०, ३४१६, ३४७५, ३४८२, ३५२०, ३५२६, ३५२७, ३५२८, ३५७०, ३५८५, ३७२१, ३७३३, ३७४३, ३७५८, ३८१७, ३८२८, ३८९४, ३९२७, ३९९८, ४०२१, ४०४७, ४०७३, ४०७४, ४०७५, ४०७६, ४०७७, ४०८०, ४०८१, ४०८२, ४०८५, ४१८२

३०. आत्मा

१००९, १०३१, १२३६, १३३१, १७१६, १७१८, १७१९, १९०३, २५५३, २५५४, २८२६, २८२७, २८४१, ३७६५, ४१११, ४१२२

३१. आत्मानुभूति, आत्म-जागृति

६, ३२०, ४२२, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ५३३, ५३५, ५५२, ५५३, ५६६, ५६८, ५७४, ७४९, ८१७, ८५२, ८५८, ८६६, १२७६, १२७७, १३३४, १४३६, १४४५, १४४६, १४४७, १४४८, १४७८, १८३७, १८३८, १८४२, १८६७, २०३९, २०४९, २२२४, २२२५, २३६४, २४५६, २४७७, २५०२, २५७१, २५८७, २६६५, २६६६, २७२०, २८१४, २८४०, २८४४, २८५५, २८६१, २८६२, २८६३, २९०४, २९६१, ३००२, ३१०५, ३१९४, ३२१४, ३२१५, ३२२४, ३२४०, ३२४३, ३३२३, ३५४४, ३५५३, ३५६३, ३५६४, ३५६५, ३५७१, ३५७६, ३६२६, ३६३३, ३६३४, ३६३७, ३६४४, ३६४५, ३६७१, ३६७८, ३८५१, ३८८४, ३८९०, ३९१७, ३९१८, ३९६९, ३९७२, ३९७३, ३९७५, ३९७६, ३९७८, ३९७९, ४०४७, ४०८४, ४०८६, ४०८८, ४०९४, ४१४३

३२. आत्मोन्नति

१४६, १२२७, १२२८, १३२४, १३२५, १५५२, १९३३, २०१०, २२३९, २३९६, २४०७, २४२८, ३०२४, ३०७६, ३३२५, ३३२६, ३३४२, ३३७३, ३४०१, ३४२६, ३४५५, ३६०२, ३६१३, ३६१५, ३९८८, ४०१६, ४०१८, ४०९०, ४१०७

३३. आदत

१४०६, ३४३२

३४. आदर्श व्यवहार

१५६, ९२५, २०२४, ३५५३, ३५५४, ३५५५

३५. आध्यात्मिक-प्रगति

७६०, ७९३, १०६२, १२५३, १५४४, १८६०, २०७९, २२७६, २२७७, २२७८, २४७९, २६०३, २८४४, ४०२०

३६. आध्यात्मिक-शक्ति

९१४, १३८३, ३७९५, ३७९९, ३८००, ३८०४, ३८०५, ३८०६, ३८०७, ३८०८

३७. आनंद

७७६, ७७७, १०७२, १२४३, १२४५, १३०३, २१३५

३८. आपत्ति, आक्षेप

११६२, १९३४, १९३५, १९३६, १९३७, १९३८, १९३९, १९४०

३९. आबरू

१०६०, १०६१, १०६२, १८१३

४०. आलस्य, प्रमाद, जड़ता

२७७६, २७७७, २७७८, २७७९

४१. आवरण

१५२३, ३६४७, ३६४८, ३६४९, ३६५०, ३६५१, ३६५२, ३६५३, ३६५४

४२. आशा

३३४८, ३३४९, ३३५०, ३३५१, ३३५२, ३३५३, ३३५४, ३३५५

४३. आसक्ति

२१०१, २१०२, २२८८, ३५८८, ३५८९, ३५९०, ३५९१, ३५९३, ३५९७, ३५९८, ३६००, ३६०१, ३६०२, ३६०३, ३६०४, ३६०५, ३६०७, ३६१०

४४. आज्ञा

३४०४, ३४०५, ३४०६, ३४०७, ३४०८, ३४०९, ३४१०, ३४११, ३४१२, ३४१३, ३९७४

४५. इगो, इगोइज़म, (अहंकार)

१९, ३०, ४१, ४२, ४३, ४४, ९५, १७६, १८६, २४०, २४५, २७८, ३३६, ३३७, ३३८, ३८३, ४१०, ४१७,

४५२, ४८९, ४९८, ५४५, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६६, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५८९, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४३, ७४४, ७४५, ७४६, ७४७, ७४८, ७९५, ९०५, ९०८, ९०९, ९१०, ९११, ९१२, ९१३, ९१४, ९१५, ९१७, ९१८, ९१९, ९२७, ९२८, ९२९, ९३०, ९३२, ९३७, ९९७, १००८, १०७९, ११०१, ११०४, ११०५, ११०६, ११०८, ११०९, १११०, ११११, १११३, १११५, १११६, ११३०, १२५६, १२५७, १२५८, १२५९, १२६०, १२६१, १२६२, १२६४, १२६५, १२६६, १२८७, १३०२, १३२७, १३९१, १३९२, १४०२, १४०३, १४०५, १४३०, १४३१, १४३२, १४३३, १४३४, १४३५, १४४०, १४५४, १४७५, १५२३, १५७१, १६३०, १६३५, १६३६, १६३७, १६३८, १६३९, १६४०, १७२६, १७२७, १७२८, १७२९, १७३०, १७३१, १७३२, १७३३, १७३४, १७३५, १८२९, १८७१, १८७२, १८९९, १९००, १९०१, १९०२, १९०३, १९०४, १९७१, २०५६, २०६४, २१७९, २३८०, २४५७, २४६६, २४८० २४९४, २४९५, २४९६, २४९७, २४९८, २४९९, २५१५, २५४०, २६२४, २६२७, २६३५, २६५५, २७४७, २७४८, २७५७, २९१२, २९२५, २९२९, ३०१३, ३०३०, ३०३१, ३०३२, ३०३३, ३०३४, ३०३४, ३०९१, ३१२२, ३१२३, ३१२४, ३१२५, ३१२६, ३१२७, ३१२८, ३१२९, ३१३०, ३१३४, ३१३६, ३१३८, ३१३९, ३१४०, ३१४२, ३१४३, ३१४८, ३१४९, ३१५०, ३१५१, ३१५४, ३१५५, ३१५६, ३१५७, ३१५८, ३१५९, ३२२७, ३२२९, ३२४८, ३२४९, ३२५०, ३२५१, ३२५२, ३२७२, ३२७३, ३२९०, ३३११, ३३५७, ३३७९, ३४६०, ३४८६, ३५०२, ३५०३, ३५५९, ३६०५, ३६४१, ३६८४, ३६८८, ३७११, ३७३७, ३७५२, ३७७३, ३७९९, ३८३०, ३८३२, ३८६२, ३८८२, ३८८८, ३९३२, ३९३३, ३९३४, ३९३५, ३९३६, ३९३७, ३९३८, ३९३९, ३९४०, ३९४१, ३९५६, ३९५७, ३९५८, ३९५९, ३९६८, ३९७७, ३९८२, ४०७६, ४०७८, ४०८६, ४१३१, ४१४५

४६. इच्छा, स्पृहा

१४६, ५३०, ७४१, ८३८, ८६०,८७२, ८७८, ८७९, ८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६, ८८७, ८८८, १५०१, १७४६, २१२०, २१२१, २१२२, २१३२, २१७५, २१७६, २३००, २३०८, २३४५, २५३५, २६०५, २९८७, ३२९२, ३३२९, ३३४३, ३३४४, ३३४५, ३३४७, ३७३०, ३७३१, ३७३४, ३७३५, ३७३६, ३८९२, ३८९३, ३८९६

४७. इंद्रिय / इंद्रियज्ञान / इंद्रिय-विषय

४११, ६७२, ८९५, ११९९, १३३८, १३९७, १४४१, १४४२, १६१३, १६५४, १६५५, २१०१, २१६५, २२८१, २२८२, २२८४, २२८५, २२८६, २२८७, २२९१, २८२२, २८२३, २८२४, ३११०, ३१९०, ३३०२, ३३९२, ३६०७, ३६१०, ३७४६, ३८३९, ३९१८, ४०६८, ४१६२

४८. इफेक्ट (असर)

२७०, ३५८, १६८२, ३१४७, ४१४८, ४१५२

४९. उपवास

२७१५, २७१६

५०. उपाधि

१९१२, १९१३, ३०१६

५१. उलझन

१३१०, १३११, १३१२, १३१३, १३१४, २७३६, २८८८, ३९१०, ३९१४, ४०३६, ४१११

५२. उलाहना

१५१, १७६, १७७, १९१, २२४, १३७२, १४५६, १७५७, २०८२, २०९२, २५३३

५३. एकाग्रता

१०८१, २६२४, ३०४३, ३०८४

५४. एकांत, अकेलापन

२२५२, ३४५३

५५. एटीकेट

१८४२, १८४३, १८४४, १९५१, २०७६

५६. कठिनाई

१३५, १३६, २३४८, २४१३, २४४०, २५३६, ३७०५, ३७१३, ३८०३

५७. कपट

१७७, ७५७, ११३३, १३३८, १३३९, १५१८, १५१९, १५२२, १५२३, १५२४, १५२५, १५२६, १५२९, १५३१, १५३८, १७९८, १७९९

५८. करुणा

२११०, २१११, २२९४, २९१५, ३००७, ३४४०, ३४४१, ३४४२, ३४४३, ३४४५, ३४४६, ३४४७, ३४४८, ३४४९, ३४५०, ३४५१

५९. कर्ज

१७१६, १७२०

६०. कर्तव्य

२८५, १०४४, १७५७, १८१२, १८२२

६१. कर्ता, कर्तापन

९२, ९५, ९६, ९९, १००, १०१, १०२, १०३, १०५, १०६, ३३०, ३३१, ३६३, ५३२, ५३३, ५५८, ५६७, ८९३, ८९५, ८९९, ९००, ९०५, ९१६, ९३२, ११०४, ११८५, ११९४, १२८०, १२८१, १३६८, १३८५, १५६०, १६६६, १९४३, २०२९, २१९९, २४६६, २४७१, २४७२, २४७३, २४७४, २४७५, २४७६, २४७७, २४७८, २४७९, २४८०, २४८१, २४८२, २४८४, २४८५, २४८६, २४९९, २५००, २५०२, २५०३, २५०४, २५०५, २५०६, २५०७, २५१०, २५३१, २५४३, २५४४, २५४५, २५४६, २५४७, २५४९, २५५१, २५५२, २५५३, २५५४, २५८८, २६६४, २६९१, २६९६, २६९७, २६९८, २६९९, २७०१, २७०२, २७०३, २८८१, २९११, २९२९, २९३०, २९३१, २९५६, २९६३, ३०५५, ३१३८, ३२५६, ३२९०, ३४००, ३६२७, ३६३७, ३६३८, ३६४३, ३६८६, ३६८८, ३७४७, ३७६०, ३८४२, ३८४३, ३८७६, ३९१५, ४०९६, ४०९७, ४१०४, ४१०६, ४१०७, ४१०८, ४१०९, ४११०, ४१११, ४११२, ४११३, ४११४, ४११५, ४११६, ४११७, ४११८, ४११९, ४१२०, ४१२१, ४१२२, ४१३०, ४१४०, ४१४१, ४१४७, ४१७४

६२. कर्म, कर्मोदय

२३८, २४१, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, १३९७, १३९८, १३९९, १४००, १४०१, १४१०, १५९०, १६६८, १८९५, १९५४, २०८९, २२०२, २५४८, २६८०, २९०८, ३२५०, ३५७१, ३७१०, ३८७२, ३९००, ३९०१, ४०९६, ४०९८, ४०९९, ४१००, ४१०२, ४१०५, ४११७, ४११८

६३. कर्म का चार्जिंग-डिस्चार्जिंग

९८, ४०७, ८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९००, ९०१, ९०२, ९०३, ९०४, ९०५, ९०६, ९०७, ९०८, ९०९, ९४१, १२५६, १३६०, १५५३, १५५४, १५५५, १५५६, १५५७, १५५८, १८०२, १८०९, १८७२, २३५६, २६९६, २८५०, २९०९, २९१२, ३०५५, ३१३८, ३१७१, ३२४७, ३२९३, ३२९४, ३२९६, ३२९७, ३२९८, ३३९३, ३६२४, ३६२५, ३६३८, ३६४३, ३६४६, ३६४७, ३६५०, ३६५१, ३७१६, ३७१७, ३७१८, ३७१९, ३७२०, ३७२१, ३७२२, ३७२३, ३७२४, ३७२७, ३७७१, ३७७२, ३८४२, ३९०१, ४०५५, ४१०२, ४१३८

६४. कर्म का हिसाब / बही-खाता

२०९, २१८, ७५८, १३०९, १३६४, १३६५, १५५२, १७४७, १७५५, १७६४, १७६५, १७६८, १७७०, १९३०, १९५०, १९६०, १९७६, २००१, २१७५, २१८२, २४०५, २४५३, २४५४, ३०८९, ३५६८, ३७२०, ३८५९, ३९२५

६५. कर्म, क्रिया

५०३, ५७१, ७५१, ७५२, ७५३, ७५४, ७५६, ७५७, ७९८, ८९७, ९१५, ११०१, ११०४, १३८७, १६०९, १७२४, १८१०, १९००, २०९१, २०९२, २१८५, २२०८, २२७२, २४४९, २४८३, २५०१, २५०९, २६५१, २६७०, २६७१, २६७३, २६७४, २६९४, २७३२, २८७५, २९३१, २९६०, २९६१, २९६२, २९६४, २९६५, ३१५०, ३१७६, ३४७३, ३६४७, ३६८८, ३६८९, ३७२४, ३७६९, ३७७१, ३७७२, ३८२०, ३९१६, ३९५९, ४०५४, ४०९५, ४११६, ४११८

६६. कर्मबँध

२९२, २९३, २९४, २९५, २९६, २९७, ३३७, ४११, ४३२, ४८२, ४८३, ४८४, ५११, ५५५, ५५६, ५५७, ५५८, ५५९, ५६०, ५६१, ५६२, ५७१, ५८७, ६७५, ८२२, ८४७, ९००, ९३८, ९९०, १२०४, १२६२, १२८२, १३६०, १३८६, १४४६, १५८६, १५८७, १६०७, १६६९, १७२५, १७३६, १७५६, १८५९, १९४०, १९६३, २१०२, २१७९, २२०१, २२३९, २३०५, २४५३, २४७६, २४७८, २४८२, २४८४, २५०१, २५०७, २५४९, २५५०, २६३६, २९१०, २९११, २९५९, २९७७, ३२४९, ३२५०, ३२९०, ३३०२, ३४३६, ३५१२, ३६६७, ३७२३, ३७२५, ३७२६, ३८६२, ३९११, ४०३८, ४१०१, ४१०४, ४१०६, ४११६

६७. कलियुग

६५८, १०६०, १५०९, १५४६, १६३३, २४४९

६८. कल्पना

१३५४, १३५५, १४२७, १४८४, १४८५, २७०६, ३०२३, ३७६७, ४१६३, ४१६४, ४१६५

६९. कल्पित सुख, बाह्य सुख

२४८, २५५, २५६, २६६, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२, ६७३, ६७४, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९, ६८०, ६८१, ६८२, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ७५७, ९७४, १४४२, १५६४, १७८८, १८६३, २०५२, २१३२, २२८३, २२८९, २२९०, २३८४, ३०१०, ३१००, ३३०२, ३३९४, ३४२९, ३६०५, ३९५६, ३९५७

७०. कषाय, क्रोध-मान-माया-लोभ, आंतरशत्रु

३२४, ४३४, ४३५, ४३६, ४३७, ४३८, ४३९, ४४०, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ६६६, ६६७, ६७८, ९०६, ९८४, ९८५, ९८६, ९८७, ९८८, ९८९, ९९०, ९९१, ९९२, ९९३, १०२२, १३३५, १३३८, १३४२, १३४३, १३४४, १३४५, १३४६, १३४७, १३४८, १३४९, १३५१, १४२१, १५१४, १६२०, १६२१, १६२२, १६२३, १६२४, १६२५, १६२६, १६२७, १७९२, १८०२, १८०४, १८०५, १८०७, १८२४, १९४५, १९७८, १९७९, १९८०, १९८२, १९८३, २०७५, २०९३, २३७९, २५०६, २५८९, २७५६, २८१७, २८१८, २८१९, २८२०,

२८२२, २८२३, २८२५, २८५६, २९३०, ३०८६, ३०९२, ३०९३, ३१३१, ३१३२, ३१३३, ३१५१, ३१६४, ३१६५, ३१६६, ३२१६, ३२१९, ३२२१, ३२२२, ३२२४, ३२२५, ३२२९, ३२३०, ३२३१, ३२४२, ३२४४, ३२४६, ३२४७, ३२४८, ३२५२, ३२७२, ३३१५, ३३३८, ३३४०, ३३५१, ३४१८, ३४२४, ३४३७, ३५२१, ३५३६, ३५५६, ३५७४, ३५८८, ३६१९, ३६३४, ३६६२, ३७२०, ३८६७, ३८९४, ३९११, ४१५९, ४२०४

७१. क्रायदा

३५८३, ३५८४, ३५८५, ३५८६, ३५८७

७२. कीमत

१७३८, १७३९, १७४०, १७४१

७३. कुदरत

९७, २२३, २२४, ४७१, १२६७, १२७२, १४६६, १४७७, १५६५, १६१०, १६९१, १७५३, २५०३, २५०४, २५१९, २५२०, २५२१, २५२२, २५२८, २५७२, २५७३, २५७५, २६९५, ३७३९, ३७४१, ४१२४, ४१२५, ४१२६, ४१२७, ४१४८

७४. कुदरत के कायदे

२५२१, २५२२, २५२३, २५२४, २५२५

७५. केवलदर्शन

७, ३७५०, ३७५१, ३७५२

७६. केवलज्ञान

७, ९, ४४९, ४५०, ८६२, २५०९, २७३०, २८३१, २८३२, २८३३, २९६९, २९७०, ३३०५, ३३०७, ३७४४, ३७४५, ३७४६, ३७४७, ३७४८, ३७५०, ३७६६, ३८१७, ३८१८, ३८२०, ३८२१, ३८४१, ३९९९, ४१७९, ४१८०, ४१८१, ४१८२, ४१८४, ४१८५, ४१८६, ४१८७, ४१९५, ४१९६

७७. केवलज्ञान का पद

३८२१, ३८२२, ३८२३, ३८२४

७८. कॉज़

९२, १६८६, १६९९, १७८४

७९. कॉज़ एण्ड इफेक्ट

८९, ९०, ९१, ९३, ९४, १६०३, १६०४, १६०५, १६०६, १६०७, १६०८, १९३०, १९३२, २६९४

८०. कृतज्ञता

१९२४, १९४६

८१. कृपा

२०००, २०१८, २०१९, २०५५, २०९४, २१८९, २२२८, ३०२९, ३०७६, ३१६५, ३३७६, ३४०२, ३४०३, ३४१२, ३५४७, ३६१०, ३६३३, ३६३६, ३६८५, ३७४९, ३९६३, ३९८८, ४०३१, ४१७७

८२. क्रमिक मार्ग

८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ४२४, १४५२, २१९१, २३७१, २३७२, २५४३, २८७७, ३०४७, ३१२३, ३१२४, ३६७८

८३. क्रियाकांड, क्रिया

८, ३९५, ५०१, ५०७, ५०८, ५०९, ५१०, ११०५, १८७०, २७२०, २७२१, ३०५०, ३७१२

८४. क्रोध, चिढ़ना, उकसाना

२८०, ४७३, ४७४, ४७५, ९८३, ९८४, ९८५, ९८६, ९८७, ९८८, ९९०, ९९१, १५२२, १६२२, १८००, १८०१,१८०२, १८०३, २०८९, ३१४८, ३१७५, ३२२६, ३२२७, ३२२८, ३२२९, ३२४४, ३२४५, ३२४६

८५. क्लेश, दुख

१३०, १३४, १९०, ८१४, ८१६, १०१८, १०६५, १३४३, १३९०, १४११, १४८९, १५६४, १५६५, १५७०, १५८२, ३७८४, ३८६७

८६. खानदानी

२८३, २८४

८७. ख्याति

१२९०, १२९१, २९७९

८८. गुनाह

३७४०

८९. गुरु

१३१४, १९२४, २१२८, २१६१, २४५९, २८५२, ३२७०, ३२७१, ३२७२, ३२७३, ३२७४, ३२७५, ३२७६, ३२७७, ३२७९

९०. ग्रह

३३८३

९१. घर

२१९, २२०, ११५१, १५१४, १७८०

९२. चंचल, परिवर्तनशील

५४८, ५४९, ५५०, ५५२, १६५२, १६९०, १९३३, ३०६५

९३. चमत्कार

३००७, ३००८

९४. चेतन, आत्म-स्वभाव

३७, ७७, ११८, ४५५, ४५६, ५५२, ७२१, ७७५, ८९०, ८९१, १२१६, १२२५, १२२६, १३५८, १४०३, १४९७, १५८४, १७२२, १९२०, २०६८, २५५५, २५५६, २५६९, २५७०, २७३८, २७४०, २७६३, २८२१, २८३५, २८४२, २८५३, २८७५, २९२८, ३०२८, ३०५३, ३०६३, ३०७१, ३०७२, ३०७४, ३०७८, ३१२८, ३१३३, ३१५८, ३२२३, ३२४९, ३२८४, ३२९३, ३३०१, ३३०२, ३३०३, ३३०८, ३३१४, ३३२०, ३३२२, ३३२४, ३३३३, ३३३५, ३३३६, ३४३५, ३४५९, ३४६१, ३५३७, ३६९८, ३७०६, ३७०७, ३७१६, ३७२७, ३७५१, ३७५६, ३७५७, ३७६२, ३७६३, ३७७०, ३७७४, ३८०१, ३८०२, ३८०३, ३८२४, ३८२५, ३८२६, ३८५०, ३८५१, ३८७५, ३८८३, ३९२१, ३९३४, ३९७६, ३९९२, ३९९४, ४०३३, ४०३५, ४०३६, ४०४९, ४०६६, ४०६७, ४०७४, ४०७५, ४०७९, ४१०५, ४१३०, ४१३८, ४१३९, ४१४०, ४१४३, ४१५४, ४१५९, ४१६९, ४१७५, ४१७६, ४१७७, ४१७८, ४१८३, ४१८४, ४१८८, ४१८९

९५. चारित्र

२८१, ३४५, १६९७, २९४३, २९४४, ३१७७, ३६१४

९६. चालाकी

१७४४, ३४६८

९७. चित्त

४०७, ४०९, ४१२, ४१३, ४१४, ४१५, ४१६, ४२२, ७७३, ७७४, ७९६, ८४०, ८९८, १०७६, १०७७, १०७९, १०८१, १०८२, १०८३, १०८४, १०८५, ११९२, ११९३, १२४९, १२५१, १३६३, १३६९, २३७८, २६५५, २९९२, २९९३, २९९४, २९९५, २९९७, २९९९, ३०००, ३००१, ३००९, ३०१०, ३०११, ३०४९, ३०५०, ३०५२, ३०५३, ३०५४, ३०५५, ३०५६, ३०५७, ३०६१, ३०६२, ३०६३, ३१०१, ३१०२, ३१०३, ३१०४,

१०४. जगत् व्यवहार

१५, ४८०, ४८१, १३०४, १४६०, १७७६, १९३८, २५३५, २७९२, ३३३३, ३३३८, ३३३९, ३५५२

१०५. जन्म

१४९९, १६०४, ३७०३, ४०२३

१०६. जरूरतें

३५६, ९७५, १६९१, १६९२, १८६९, १९६७

१०७. ज़िम्मेदारी

१२७२, १६८९, २४६९, २७९८, ३२७६

१०८. जीत

१०९४, १५४०, १५४१, १५४२, १५४३, १६५८, १९४५, २०१७, २०९८, ३६१४

१०९. जीव

३७७०, ३७७४, ३७७६, ३७७७, ३७८१, ३८३८, ३९२२, ३९४८

११०. जीवन और जीना

२७२, २७३, २७४, २८६, ४६६, ५६४, ७१५, ७९२, ८७०, ९६५, १३१८, १३२३, १४२२, १४८१, १४९८, १५७५, १६३०, १६८८, १८०७, १८२२, १८८७, १८९२,१९२१, १९४७, १९५४, २०३८, २३३०, २४२१, २४४५, २४५४, २४६०, २५१६, २५१७, २५४९, २६०६, २९०३,३५५६, ३५५७, ३५५८, ३५५९, ३५६०, ३५६१, ३६९०, ३७५३, ३७५४

१११. जीवन का लक्ष्य

१८२३, २०२७, २१७१

११२. जीवन-व्यवहार

२१६, २२२, २७८, ९२२, १२०२, १२७१, १४५७, २५८४, २७९३, २७९६, २७९७, २७९९, २८००, २८०१, २८०३, २८०४, २८०६, २८०७, २८०८, २८०९, २८१०, २८११, २८१२, २८१३, २८१४, २८१६, २८१७, ३०२०, ३०३५, ३१०६, ३५५०, ३६६५, ३६७४, ३९५४

११३. जैसे को तैसा

१७६५, १८१६, १८१७, ३३६८

११४. ज्युबिली

२०३५

११५. टकराव

२०३, २०४, २०५, २०६७, २०६९, २०७०, २०७१, २०७२, २०७३, २५२४, २५२५, ३०१४

११६. टाइम, समय

९०७, १८६०, १८६३, १८६५, २६४१, २७३४, २९१९, ३६८९, ३८८६, ४१८१

११७. टेढ़ापन

३३७२, ३३७३

११८. टेम्परी एण्ड पर्मनेन्ट (स्थायी -अस्थायी)

२७२३, २७२४, ४०६७, ४०६८, ४०६९, ४०७०, ४०७१, ४०७२, ४१७०

११९. टोकना, क्लेश करना

१८८, १८१३, १८१५, १८१७, १८१९, १९९१, २३९२, ३७१४

१२०. डिप्रेस, डिप्रेशन (अवसाद)

२७५, २७६, १५९०, १८२६, १९९३, २१५४, २७३९, ३७८७, ३८१६

१२१. डिस्चार्ज

८९२, ८९३, ९०२, ११०४, २६०९, ३०५७, ३१७३, ४२०१

१२२. तत्त्व (substance, elements, eternal elements)

२७३८, २७४३, २८९८,

१२३. तन्मयता, तन्मयाकार

७७९, ७८०, ८५०, १३६१, १६५५, १८०२, २०५०, २६१२, २६१४, २६१६, २६१८, २६१९, २६२०, २६२१, २६२२, २६२५, २६२६, २६६३, २६६४, २६६५, २८०७, २८४२, २८४९, २८५५, २८८३, २८९७, २९०२, २९२१, २९४५, २९७८, २९९०, २९९१, २९९६, २९९८, ३०२४, ३०४५, ३०८८, ३०८९, ३०९०, ३१००, ३१५४, ३१५५, ३१६९, ३१९८, ३२२५, ३२४७, ३२४९, ३३१६, ३३१७, ३३१९, ३३२२, ३४९५, ३४९७, ३४९८, ३४९९, ३५२९, ३५३०, ३५९५, ३७१७, ३७६०, ३८३०, ३८३८, ३८३९, ३८४१, ३९९४, ४०३३, ४०३६, ४०५९, ४०६१, ४०६२, ४०७८, ४११९, ४१३१, ४१४२, ४१५३, ४१९९

१२४. तप

६५६, ६५७, ६५८, ६६०, ६६१, ६६२, ६६३, ६६४, ६६५, २७६१, २७६३, २७६४, २७६५, २७६६, २७६७, २८५९, ३४०४

१२५. तारीफ़

१९५८

१२६. तीर्थ, पवित्र भूमि

१७०३, ३२६७, ३४५७, ३५२८

१२७. तीर्थंकर

९१६, १०४७, ११६३, ११६९, १२४९, १३४६, १६५८, १७७८, १८०६, १८५७, १९५६, १९५७, १९९६, २०५२, २१०९, २११२, २१३०, २१५०, २१६८, २३२३, २३२४, २३२५, २३५८, २३५९, २३८२, २४०३, २४०५, २४२९, २४५८, २५८३, २९५८, २९८१, २९८६, ३००२, ३०४४, ३१४०, ३१५२, ३१७९, ३२११, ३२१२, ३२३८, ३२७४, ३६२०

१२८. त्याग, त्यागी

७६४, १२९५, २२७३ १३४७, १६२५, १६२८, १६३७, २५७८, २५८८, २७०८, २७०९, २७१०, २७११, २७१७, २७५१ २७५२, २७५३, २७५४, २७५५, २७५६, २७५७, २७६०, २७६२, २७६३, २७६९, २७७४, २७८१, २७८२, २७८३, २८५९, ३०७०, ३२२०, ३२२१, ३२२२, ३२२३, ३२२४, ३२४२, ३३९४

१२९. दख़ल, दख़लंदाजी

१२०८, १५४२, १५४८, १५५०, १५५१, १७६०, १७६२, १७७२, १७७३, १७७५, १७७६, १८१७, १९७१, १९९९, २००१, २४३९, २५२९, २५३९, २५४०, २६८५, २९२७, २९३६, २९४७, २९४८, ३३६०, ३३८७, ३४५५, ३९२२, ३९२३

१३०. दान

१९५५, २३३९

१३१. दुःख

१३८, १९४, २४१, २६३, २६४, २६५, २६९, २७०, ३६६, ४३५, ६६२, ७१२, ७८७, ८३०, ८४६, ९०४, ९९४, ११७२, १३०५, १३६२, १४२०, १४६३, १४८५, १४८६, १४८८, १४९५, १५६९, १५७२, १५७९, १५८२, १६३३, १६४९, १७१४, १७२८, १७८५, १९०१, २००१, २०५८, २१५६, २३८४, २३९३, २४२५, २४६४, २५२८, २५४०, २५९९, २८६३, ३०१९, ३१३४, ३१४२, ३१४५, ३३१५, ३३३५, ३३६५, ३४०५,

१३२. दृष्टि

१३३. दृष्टिकोण

१३४. देखना, जानना

१३५. देना

१३६. देव, देवियाँ

१३७. देह, शरीर

१३८. दोष, फरियाद

१३९. दोस्त

१४०. द्वेष

१८२१, २०९७, २४४१, ३०९५, ३३९०, ३५८०, ३८६८, ३८६९

१४१. द्वैत, अद्वैत

३३९, ७०७, १५०७, १५९४, १५९५, १५९६, १५९७, १५९८, १५९९, १६००, १६०१, १६०२, १९८६, १९८७, १९९०, १९९२, २१४०, २४९७, २९३०,३०५५, ३०६८, ३०८७, ३०८८, ३२६९, ३४४०, ३४८६, ३४८७, ३४८८, ३५४०, ३७२८, ३९०९, ४०१७, ४०२१

१४२. धर्म (आत्मधर्म)

६०, ६१, ६३, १६६, २८५, ३९९, ४००, ४०१, ४३६, ४८६, ४८७, ४९९, ५३२, ५३५, ५७६, ६०१, ६०२, ६०३, ६०४,६१५, ७५१, ७५९, ७८९, ८२८, ८३३, ८४०, १०२२, १०२३, १३८८, १३८९, १३९०, १३९१, २१९२, २१९३, २१९५

१४३. धर्म, अधर्म, धार्मिकता (Religion)

२९, ५१, ५३, १३४, १६६, २४२, २५७, २५८, ३९५, ३९६, ३९७, ३९८, ४८५, ४८६, ४८७,५३९, ६०१, १०२२, १०२४, १०२७, १०३२, १०३३, १०३४, १०३५, ११६५, १२२०, १२२१, १२२२, १२२३, १२२४, १२८१, १२८२, १२९३, १३०६, १३९२, १३९३, १३९५, १४२७, १४२८, १५०८, १५९८, १६४२, १६९५, १७०८, १८४३, १८४५, १८४६, १९०६, १९२३, १९३१, १९८५, २०११, २०२१, २१७५, २१८१, २१८४, २१९०, २१९४, २२३०, २३२६, २४६३, २५७०, २७५१, ३००१, ३११२, ३१२६, ३४०३, ३४०४, ३४४२, ३५७८, ३५८४, ३७१२, ३७६६, ३७८१, ३७८२

१४४. धर्ममार्ग

५००, १२८०, २४१६, २४२४

१४५. धैर्य, सब्र

१७१५, १८५९

१४६. ध्यान

१६७, ३४८, ४४०, ४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९, ७२८, ७२९, ८२३, ८२५, ८२६, ८२७, ८२८, ८२९, ८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६, ८३७, ८३८, ८३९, ८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४४, ८४५, ८४६, ८४७, ८४८, ८४९, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५५, ८५६, ८५७, ८७१, ९६०, ९६१, ९६२, ९६३, ९६४, ९६५, ९६६, ९६७, १८०७, १८५९, २१२४, २३२७, २३२८, २३५१, २५८०, २६१७, २६२२, २६२३, २६२४, २६२५, २६२६, २६२७, २६२८, २६२९, २८२५, २८३२, ३००१, ३००९,

३०७४, ३०९२, ३१०३, ३११५, ३१७८, ३२६१, ३३१७, ३४४४, ३५३९, ३५४१, ३५५४, ३६५९, ३७१३, ३९६४, ३९६५, ३९६८, ३९६९, ३९७०, ३९७१, ३९७३, ४१६१

१४७. नकल

५४६, १०९८, १६८७

१४८. नम्रता / विनय

९, १०, २८३, १०४१, ११०५, १११८, ११४९, १२३१, १७५९, २२५३, २२५४, २२५५, २२५६, २२५७, २२५८, २२५९, २२६०, २२६१, २२६२, २२६३, २४६७, ३३७१, ३३७६, ३४१३, ३५०१, ३५०२, ३५०४, ३५०५, ३५०६, ३५०७, ३५०८, ३५१९, ४०१२, ४०१३, ४०१४, ४०१५, ४०१६, ४०१७, ४०१८, ४०१९, ४०२०, ४०२१, ४०२२, ४०२३, ४०२४, ४०२५, ४०२६, ४०२७, ४०२८, ४०२९, ४०३०, ४०३१

१४९. निगेटिव, पॉज़िटिव

७०३, ७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०८, ७०९, ७१०, ७६६, १९१९, २०९२, २३०७, ३०३३, ३३९५

१५०. निंदा, बुराई

१३२२, १७५३, १७७१, १८४७, १८४८, १८४९, १८५६, १८७९, १८८६, १९४६, १९५२, २०३०, २३०६, ३५१४, ३५१५, ३७७९, ३७८०, ३७८२, ३७८३

१५१. नियम, सिद्धांत (principle)

५३१, १०५२, १०५३, १०५४, १०५५, १०५६, १०५७, १०५८, १०५९, १४९३, २५७८, २५८०

१५२. निरीक्षण

३०५६, ३४३९, ३४६५

१५३. निरुपाय

२९३५, ३३५३, ३३५६, ३३५७, ३३६७, ३६९५

१५४. निर्दोष दृष्टि

३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ७३१, ८५५, १०७२, ११९८, १३६५, १९४१, १९४२, १९७२, २७८०, २९४९, ३३८६, ३३९०, ३४२०

१५५. निर्बलता

५८८, ५८९, ५९०, ५९१, ५९४, ५९५, ५९६, १७३०, १८७४, ३८०५

१५६. निवृत्ति

१२५०, २०४९, २०५१, ३३२७, ३५७४, ३८९७, ४१३९, ४२००

१५७. निस्पृह, सस्पृह

२३४१, २३४१, २३४३, २३४४

१५८. नेकी, प्रामाणिकता (सिन्सीयारिटी)

२००८, २००९, २०१०, २०११, २०१२, २०१३, २०१४, २०१५, २०१६, २०१७, २०१८, २०१९, २०२०

१५९. नेता

१४९४, १९५९

१६०. नैतिकता

५३१, १६१६, १९२३

१६१. नॉर्मालिटी

२५२, ६६६, ६७२, १२९४, १७३२, २४१२, २४१३, २४१४, २४१५, २४१६, २४१७, २४१८, २४१९, २५२६, २६१६, २६१७, २९०३

१६२. पछतावा, अपराध-बोध

१३६६, १३६७, १५३२, १५८५, १९८२, १९८३, २०७३, २०७४, २०७५, २०७६, २०७७, २०७८, २०७९, २०८०, २०८१, २०८२, २०८३, २०८४, २०८५, २०८६, २०८७, २०८८, २०८९, २०९०, २०९१, २४३८, ३११४, ३१५१, ३२३५, ३२३६, ३७२४, ३७३२, ३८६९, ३९४५, ४१६०

१६३. पज़ल्स (पहेली)

१०४, ४५७, ७२८, १७८२, २६०२, २६६९

१६४. पढ़ना

२२०७

१६५. परमविनय

८, ५०७, ६१५, ६१८, ६२०, ६२३, ६२४, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, १२३०, २१२२, २१२३, २१२५, २१२६, २१२७, २१२८, २२००, २२९९, ३००५, ३००६, ३८५४, ४०८१, ४०८३

१६६. परमसुख, आनंद

१७२, २४३, २४४, ७७८, ७७९, ७८०, ७८२, ७८३, ७८५, ९३१, ९३२, ९८७, १२४१, १२४२, १२४३,

१२४४, १२४५, १३०८, १३८१, १४८६, १४८७, १४८८, १५६६, १८६८, १९२९, २१३४, २१३५, २१३६, २१३७, २१३९, २१४०, २१४५, २१४७, २१४८, २१४९, २२३३, २३२४, २३२९, २४९६, २६६०, २८७६, २८८२, २८९४, ३०३०, ३०६८, ३०६९, ३०७०, ३१००, ३१०३, ३११०, ३१३४, ३१७८, ३२१०, ३२४३, ३४०५, ३५२८, ३५६९, ३५८२, ३७७७, ३८३२, ३९२५, ३९६४, ३९९६, ४०३३

१६७. परमज्ञानी

३६४६, ४०११

१६८. परमात्म शक्ति

३४९३, ३५०९, ३५१०

१६९. परवशता, स्वतंत्रता

२९८, २९९, ३०२, ३०७, ६०९, ८७८, १०६८, ११५२, ११५३, ११५४, ११५५, १२०८, १४०४, १४०७, १४०८, १४०९, १६८१, १८३१, १९९९, २००१, २१४६, ३०९३, ३३३१, ३३३२, ३३५९, ३३६०, ३४४९

१७०. परिग्रह

३५०, ३५१, ३५२, ३५३, ३५४, ३५५, ३५६, ३५७, ३५८, ३५९, ३६०, ३६१, ३६२, ९३४, १३४८, १६७७, १७६७, १८९६, १९५१, २००४, २०४४, २२७३, २६३२, २७५३, ३०७०, ३३०६

१७१. परिणाम

२५८६, २६०८, २६१०, २६६३, २६६४, २६६५, २७६५, २७७२, २८११, २८३१, ३१३५, ३१४४, ३१४४, ३१४५, ३१४६, ३१४७, ३१४८, ३२८७, ३२८८, ३२८९, ३४६१, ३७५४, ४१४५, ४१५१, ४१५३, ४१५४, ४१५६, ४१५८, ३७५३

१७२. परिवार, रिश्ते

१६०, २११, २१४, २१५, २१७, २१८, २२०, २२१, २२२, २२३, २२८, ४७५, ७९९, ८०३, १२९६, १४६७, १५२३, १६२८, १६३२, १७४३, १९२४, १९४७, २०८३, २०८८, २३३६, २३९४, २३९५, २४०७, २४५९, २४९८, २७९५, ३२२६, ३६०२

१७३. परोपकार (ऑब्लाइजिंग नेचर)

७८७, ७८८, ७८९, ७९०, ७९१, ७९२, ७९३, ७९४, १०३४, १०४४, १०६४, १०६५, १५८१, १७२७, १८१२, १९६४, २१७६, २१८५, २४६२, २४६४, २९१४

१७४. पसंद, नापसंद

६३६, ६३७, ६३९, ८३९, ९४१, १००५, १०१८, १०९५, ११८०, १५९१, १५९२, १५९३, १५९४, १६४६, १७४२, २१४२, २१९८, २४१५, २४५८, ३८६९, ३८९२, ४१०५, ४१५७

१७५. पहचान

१५१९, २५९५, २८२८, ३०७९, ३१२९, ३१६२, ३८८७, ३८८९

१७६. पापकर्म

१८५७, २०८७

१७७. पुण्य,पाप

५११, ५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ७५४, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ८५१, १६५३, १७२२, १९६०, १९६१, १९६२, १९६३, १९६४, १९६५, २००७, २०५९, २१८१, २३२७, २४५५, २४५६, २४५७, २४५८, २४८३, २८५८, २९१४, २९१५, ३१८४, ३६५५, ३६७९, ३८५९, ४०५३, ४०९६, ४१०८

१७८. पुद्‌गल

१२७, ४३२, ५५२, ५७२, ५७३, ६२८, ८५१, ८८०, ८९२, १०६६, १०६७, १०६८, १०६९, १०७०, १०९७, ११५५, ११९४, १५८०, १७५४, २३८३, २५५७, २५५८, २५५९, २५६०, २५६१, २५६३, २५६७, २६५६, २६९७, २८६०, २९४६, ३०६२, ३०९०, ३५२९, ३७९३, ३८९९, ३९००, ३९०१, ३९०२, ३९०३, ३९०४, ३९१०, ३९१४, ३९१५, ३९१६, ४०७९, ४१२८, ४१३९, ४१४२, ४१४५, ४१४९

१७९. पुनर्जन्म, जन्म-मृत्यु चक्र

४९२, ४९४, ४९५, ९०८, १८८७, १९८५, २०२७, २६५६, ३०९०, ३११९, ३१३६, ३१८१, ३३२०

१८०. पुरुषार्थ

२६०, ६९१, ६९२, ६९३, ६९४, ६९५, ६९८, ६९९, ७००, ७०२, १५८३, १६५६, १७१२, १८६०, १९६१, १९६४, २०८५, २४६७, २६२९, २६३०, २६३१, २६३२, २६३३, २६३४, २६३५, २६३६, २६३७, २६३८, २६४०, २६४१, २६४३, २६४४, २६८२, २६८४, २६८६, २७१६, २७४४, २७८८, ३३२९, ३४०४, ३४०८, ३४३३, ३४९१, ३४९२, ३५६१, ३५६२, ३५६३, ३५६४, ३५६५, ३६०९, ३६१३, ३६६४, ३९२६, ४१२४

१८१. पूज्यता

१०४०, १०७३, १०७४, १२२९, १२३१, १२३२, १२३३, १८९१, ३७८३, ४०१०

१८२. पूर्वग्रह

१८१, ३६३, ९२६, १७६९, ३३९१, ३३९६

१८३. पैसा, कमाई, खर्च

७८४, ७९०, ८६९, ८७४, ८७५, ८७६, ८७७, ९७८, ९७९, ९८१,१३१५, १३१६, १३१७, १३२१, १३२२, १३२३, १६९२, १७४१, १९०८, १९२२, २१३२, २३३१, २३३७, २३३८, २४६०, ३४१३

१८४. पॉज़िटिव थिंकिंग (सकारात्मक सोच)

७०३, २०६८, २४४३, २५१४, ३०९६

१८५. पॉलिसी

१८५१, २०२५

१८६. प्रकृति

७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ११८७, ११८८, ११८९, ११९१, ११९२, ११९४, १३६०, १३६१, २०८६, २१४२, २५५३, २५५४, २५५५, २५५६, २५५९, २५६०, २५६३, २५७२, २५७३, २५७४, २६४०, २८०४, २९३८, २९३९, २९४०, २९४१, २९४२, २९४३, २९४४, २९४५, २९४६, २९४७, २९४८, २९४९, २९५०, २९५१, २९५२, २९५३, २९५४, २९५५, ३४६२, ३४६३, ३४६६, ३४७१, ४१३५, ४१३६, ४१३७, ४१३८, ४१३९, ४१४०, ४१४१, ४१५७, ४२०३

१८७. प्रतिकूलता

२६१, २३४७

१८८. प्रभाव

३३६१

१८९. प्रयत्न, उपाय

३१३९, ३१४०, ३१४१, ३४७६, ३४७७, ३४७८, ३४७९, ३४८०, ३४८१, ३४८२, ३५४९, ३६९१, ३८६०

१९०. प्रज्ञा

३९१, ३९२, ३९३, ३९४, १५३७, २२५८, २२७४, २५६३, २९८९, ३०७५, ३१२०

१९१. प्रामाणिकता

७९१, १३१९, १७१६, १७२०, २३३०

१९२. प्रारब्ध

६९३, ६९५, ६९६, ६९७, ६९९, ७००, १२०९, १२८९, १३२९, १७१३, १९५२, २४३९, २६३३, २६३४, २६३८,

१९३. प्रेम, स्नेह

९७०, १०२०, ११५१, १२०७, १२७०, १३२१, १३७६, १८२०, २०९२, २०९३, २०९४, २०९५, २०९६, २०९७, २०९८, २१००, २१०४, २१०५, २१०६, २१०७, २१०८, २१०९, २११२, २११४, २१९७, २८०१, ३०९५, ४०७४

१९४. बदला

१४१९

१९५. बंधन

५०४, ५५७, ५५८, ५५९, ५६१, ५६२, ५७१, ६४८, ६७३, ७४४, १०४७, ११०१, १७०३, २१८०, ३३७३, ३९१२

१९६. बल / शक्ति

५८८, ७०८, ७४०, ८६७, ९१४, १३१७, १५७८, १६६४, १७७२, १८१९, १८२६, १८२७, १८२९, १८३१, १८३२, १८८४, १८८५, १८९१, १९२०, २०५४, २०५५, २०५७, २०६८, २०६९, २०७८, २३०८, २३०९, २४५२, २५१८, २५३६, २६८१, २९१६, २९२४, ३०९४, ३०९७, ३१०६, ३२९४, ३३०९, ३३२५, ३३२६, ३४१२, ३४८५, ३६०९, ३६४८, ३६७७, ३६९४, ३६९९, ३७००, ३८०१, ३८०२, ३८०३, ३८०४, ३८०५, ३८०६, ३८०७, ३८०८, ३८७३, ३८८९, ३९०२, ३९०७, ३९१०, ३९२८, ४०८७, ४०८८, ४०८९, ४०९०, ४१३८

१९७. बुद्धि, बुद्धिजन्य, अबुध

२५, ३८०, ३८१, ३८२, १३१९, १४०२, १५०४, १५०५, १५०६, १५०७, १५०९, १५१०, १५११, १५१२, १५१३, १५१४, १५१५, १५१६, १५१७, १५१८, १५६२, १६८७, १७८०, १८७७, १९०८, २०४०, २०९९, २१६४, २१८४, २५३९, २६८८, २७७१, २८२७, २९५१, २९६६, २९६८, २९६९, २९७०, २९७३, २९७४, २९७५, २९७६, २९७७, २९७९, २९८०, २९८१, २९८२, ३०१२, ३०१३, ३०१४, ३०१५, ३०१६, ३०१७, ३०१८, ३०१९, ३०२०, ३०२१, ३०२२, ३०२३, ३०२४, ३०२५, ३०२६, ३०२७, ३०२८, ३०२९, ३०३४, ३०३५, ३०३६, ३०३७, ३०३८, ३०३९, ३०४०, ३०४१, ३०४२, ३०४३, ३०४४, ३०४६, ३०५८, ३०५९, ३०६०, ३०६१, ३०६२, ३०७८, ३१२१, ३१२२, ३१५०, ३१६०, ३१८२, ३२३५, ३४५५, ३६७५, ३६७६, ३६८१, ३६८२, ३७४५, ३७९१, ३८३०, ३९७०, ३९९७, ४१८९, ४१९१

१९८. बैराग

२३९७, २३९८, २३९९, २४००, २४०१, २४०२, २४०३, २४०४

३८४६, ३८७२, ३८७३, ३८७४, ३८७५, ३८८८, ३८८९, ३८९०, ३९००, ३९२२, ३९८३, ३९८४, ३९८६, ३९८८, ३९९०, ३९९२, ३९९३, ३९९४, ४०३८, ४०५३, ४०८२, ४०८३, ४१०५, ४१६७, ४१८०, ४१८९

२०६. भय, डर

१३२७, १३२८, १३२९, १३३०, १३३१, १३३२, १३३३, १३३४, १३३६, १५२८, १६४५, २०१४, २४३३, २४३४, २४३५, २४३६, २४३७, २४३८, २४४०, २४४१, २५१२, २५९३, २६०१, २८९०, २९५५, २९९०, ३०६६, ३३३०, ३५८९

२०७. भान, लक्ष, जागृति, अवबोध

४६२, ५८४, १९७०, २७७६, २८१८, २८६४, २८६५, २८६६, २८६७, २८६८, २८६९, २८७०, ३१९९, ३९११, ३९१७

२०८. भाव

५६०, ६६१, ६९८, ७००, १६५४, १६८६, १६९३, १७४७, १८०२, १८९१, २१९७, १२२७, १२२८, १२३०, १२५६, २९१५, ३३२६, ३३२७, ३३२८, ३३२९, ३३६४, ३५३८, ३७५६ ३८५६, ३८५७, ३८६०, ३८६१, ३९०१, ४०००

२०९. भावुकता (इमोशन, इमोशनल)

३८८, ३८९, ६३८, १२६३, १२६४, १३५०, १५६६, १९०९, १९६७, १९६८, १९६९, १९७०, १९७१, २०६६, २९७१, ३०३९, ३०४२, ३१४२, ३८१४, ३८६५, ३८६७, ३८६८, ३८६९, ३८९२

२१०. भुगतना

१२१, १२२, १२३, १२४, १२६, १२७, १३९, १५२, १८९, २३७, २३८, २४६, २५१, २५४, २६७, २७१, ३२८, ३६७, ३६८, ४७०, ६७६, ११०८, १२६४, १३१६, १४००, १४६३, १५७०, १५७१, १५७४, १५७५, १५७६, १७९५, १७९६, १७९७, १७९८, १८६५, १८९०, १९०१, १९४४, २००१, २१११, २१७५, २२०१, २२३८, २३३०, २३४६, २३९०, २५४५, २६७८, २६७९, २९३४, ३१११, ३१४४, ३१४६, ३६३३, ३७१७, ३७८२, ३८३८, ३८५१, ३९९५

२११. भूतकाल

१७००, १७३३

२१२. भूल, ग़लती, कमियाँ

१२०, १२१, १२२, १२३, १२५, १२६, १२७, १६८, ३०९, ३१०, ३१४, ३१५, ३१७, ३२९, ८१९, ८२०,

८२१, ८२२, ८२४, ११९५, ११९६, ११९७, ११९८, ११९९, १२००, १२०१, १२०२, १२०३, १२०४, १२०५, १२०६, १२१०, १२११, १२१२, १२१३, १२१४, १२१५, १२१७, १२७५, १२८३, १२८६, १२८७, १३६०, १३६२, १३६६, १५४८, १५८५, १६१५, १७४५, १८५०, १८८६, १९७२, १९९४, २०३०, २०७४, २०७६, २०७७, २०८१, २०८३, २३५१, २३५२, २५११, २५१२, ३३८६, ३३८७, ३३८८, ३३८९, ३३९८, ३३९९, ३८६९, ३९४४, ३९४५, ३९४६

२१३. भोगना

११०९, १५०२, १६१६, १८६८, १९४६, २०१२, २२४५, २५६०, ३५९४, ३६१५

२१४. मत, अभिप्राय

१६४, १८२, ११३२, ११५०, ११५८, ११७५, ११७६, ११७७, ११७८, ११७९, ११८०, ११८१, ११८२, ११८३, ११८४, १३५८, १४८२, १७५३, १७६९, २२७४, २२७५, ३२६४, ३२६६, ३२६८, ३३९२, ३३९३, ३३९४, ३३९५, ३३९७, ३३९८, ३३९९, ३४०१, ३४६७, ३४८८, ४०२९

२१५. मतभेद

१५७, १५८, १५९, १६३, १६५, १६६, १६७, १७९, १८०, १८६, २००, २०१, २०२, १९४७, २८६५, २९७६, ३०३५, ३०३६, ३२६२, ३२६३, ३२६६, ३३९६, ३४८८

२१६. मति

१७९, ३८३, ३८४, ३८५, ३८६, ३८७, ३८८, ३८९, ४०८, ४१०, ४१२, ८१६, ९२४, ११००, २७३५

२१७. मदद

२८४, ४६३, ७८८, ७८९, ८३७, १७६८, १९१५

२१८. मन

१३५, ४१८, ४२०, ४८८, ४८९, ४९०, ५५७, ७७४, ७७९, ८५०, ८९८, १०४८, १०८२, १०८५, १०८६, १०८७, १०९०, १०९१, १०९२, १०९३, १०९४, १०९५, ११७९, १२५१, १२५२, १२५५, १२५६, १४७०, १४९४, १४९५, १४९६, १५०४, १५२९, १५८६, १५८७, १५८८, १५८९, १५९१, १८१०, १८११, १८५२, १८८१, २०२६, २०४१, २३९१, २३९७, २४५१, २९८३, २९८४, २९८७, २९९०, २९९१, २९९२, २९९३, २९९४, २९९६, २९९७, २९९८, ३०४८, ३०४९, ३०५१, ३०५७, ३०५९, ३०६०, ३२६३, ३२९८, ३२९९, ३३१७, ३३१८, ३३१९, ३३२०, ३४२२, ३९७०, ३९७१, ४१५३

२१९. मन-वचन-काया

५१०, ५६९, ७०१, ७८७, ८०७, १०५३, ११८७, १३२२, १६०३, १६०६, १६०८, १६८२, १७०६, १७२३, २२६०, २३७५, २५१७, २५३२, २५४१, २५८१, २५८२, २७१४, ३०८५, ३०९०, ३२८६, ३२८९, ३२९०, ३४६५, ३४७२, ३४७३, ३४८३, ३६४६, ३७९४, ३९०८, ३९५५, ३९९४, ४१३०, ४१९०, ४१९५

२२०. मंत्र

१६९४

२२१. मन्नत

१८५५, १९०५, २७१२, २७१३, २७१४, २७६२

२२२. ममता / मोह / लालच

१२, १४०, ३६९, ४७६, ४७७, ९३०, ९३१, ९३२, ९३३, ९३४, ९३५, ९३६, ९३७, ९३८, ९६१, १०१४, १२७०, १३०४, १३३७, १४६३, १४६४, १४६५, १४६९, १४७१, १४८३, १६७३, १८२०, २१०३, २१०९, २११५, २२७३, २२९५, २२९६, २३६०, २३६१, २३६२, २४०५, २६३६, २९२५, २९८४, ३००१, ३०१२, ३०२२, ३०७५, ३२३१, ३३३८, ३३३९, ३३५४, ३४१९, ३४३९, ३४९८, ३५९२, ३५९३, ३९३१, ४१०४

२२३. मस्ख़री

१७७९

२२४. मान

९७१, १०४२, १०४३, १०७२, १०७३, १०७४, १११७, १११८, १११९, ११२०, ११२४, ११२५, ११२६, ११२७, ११२८, ११३५, ११३६, ११३७, ११३८, ११३९, ११४०, ११४२, १३४१, २९१४, २९१५, ३१५७, ३३९८,

२२५. मानना

१०२, ६४१, ६४२, १३५३,१३५४, १३९७, १५९९, १६४२, १६४६, १९१६, २१९८, २२०२, २६६९, २६७०, २७७८, २८२५, २८६१, २९२१, ३०८८, ३१४९, ३७९०, ३७९१, ३७९२, ३९३०, ३९६२, ४१०७

२२६. मानव जीवन

५४, १०४५, १०५०, १८८७, १८८८, १८८९, २०४७, २०४८, २१५४, २१७१, २१७२, २१७३, २१७४, ३९४८

२२७. मानवता

२००, २३९, २४२, ५९२, ६७४, १४५८, १९८१

२२८. मानवी स्वभाव, प्रकृति

५५१, ५५२, ६५९, ९२०, ११८४, १८८६, २०२३, २३९४, ३४३१, ३४३२, ३४७०

२२९. मान्यता, बिलिफ

७५०, १३४२, १४१३, १४९७, १९८५, २०३८, २३७२, २५४५, २६७५, २७३६, २७४५, २९४८, ३१११, ३१७७, ३८९८, ३८९९, ४०९७, ४२०५

२३०. माया

४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ६०५, ११११, ११९१, १२३९, १३०५, १३०७, १३०८, १३०९, १३८७, १४३७, १४३८, १४३९, १४४०, १४४१, १४४३, १४४९, १४५३, १४५४, १६५०, १८२८, १८३९, १८४०, १९१४, २१६३, २२७०, २२८४, २४०६, २४९३, २५४५, २७२५, २७४६, २८८७, २९५०, ३२०३, ३२०४०, ३२०५, ३२०६, ३२०७, ३२९०, ३५३०, ३५३१, ३६२७, ३६७३, ३७९६, ३८३४, ३८३५, ३८४०, ३८४९, ३८८२, ३९०५, ३९१६, ३९२९, ३९३०, ३९३१, ३९५०, ३९६२, ४०५७, ४१०८, ४११०, ४११५, ४१३९, ४१९२

२३१. मालिक, मालिकी

३१२, ३१३, १११३, १४७७, १६४१, १७९४, १७९५, १७९६, १७९७, १८७२, २०६२, २०६३

२३२. मिकेनिकल चेतन

११४, ११५, ११७, ३०७४

२३३. मिथ्या

२५३, ३२७, ३३८, ३४२, ५९०, ६०६, ६०७, ६०८, ६१५, ६३९, ६४०, ६४१, ६४२, ६४३, ७४९, ८१६, ८१७, ८१८, ८९४, १००८, १०९९, ११९४, १२४४, १२६१, १२७७, १३५९, १३६३, १३९०, १६४२, १६४३, १९३५, २५३२, २५४९, २७०२, २७०३, २७७१, २८४९, २९२२, २९२९, २९४५, ३०३२, ३२५०, ३३०२, ३६४२, ३६७३, ३६८६, ३७१५, ३७८६, ३८३९, ३८४०, ३८५५, ३९३१, ४०३४

२३४. मिश्र-चेतन, आरोपित चेतन

११६, ४३५, ८६३, ३२९५, ३२९६, ३२९७, ३२९८, ३२९९, ३३००, ३३०१, ३३०२, ३३२२, ४१०५

२३५. मुक्तहास्य, प्रसन्नता

१०७२, १०७५, १०७६, १०७७, १०७८, १०७९, १०८०, १०८१, ३४१७, ३४१८, ३४१९, ३४२०, ३४२१, ३४२२, ३४२३, ३९९९

२३६. मुक्ति, छूटना

३२, ५१, ६९, ७०, ७१, ११२, १३०, २२८, २९५, २९६, ३०५, ३०६, ३३६, ३७०, ४३८, ४४४, ४४५, ५०६, ५०७, ५३०, ५५६, ५७७, ६६०, ६६९, ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१६, ७१८, ७१९, ७२०, ७४४, ७४५, ७५४, ७७६, ८१५, ८४३, ८५१, ८५६, ८८८, ९०८, ९४९, ९९२, १०१३, १०२१, १०३७, १०६६, १०६९, १०७१, ११०१, ११५०, ११६८, १२२६, १२२९, १३००, १३०१, १३२५, १३८५, १४२२, १४३५, १४४९, १४५०, १५१५, १५५१, १५६०, १५६२, १६००, १६०१, १६०९, १६५३, १७२४, १७२५, १७३६, १७८९, १८२१, १९४०, १९८४, २०१४, २०१७, २०७२, २१००, २१२३, २२१६, २२१८, २२२७, २२२८, २२२९, २२३५, २२३७, २२४१, २४०८, २४३५, २४८१, २५४४, २५४६, २५७७, २५९०, २६५६, २६५७, २६९९, २७५४, २७५८, २७६१, २७६८, २७९१, २९१०, २९७५, ३०२१, ३०६८, ३०९६, ३१०१, ३१०२, ३२५८, ३२७०, ३२८१, ३३०६, ३३६४, ३३६५, ३३६६, ३४०९, ३४४५, ३४५६, ३४७७, ३५११, ३५१८, ३५३९, ३५६०, ३५६९, ३५७०, ३५७२, ३५७३, ३५७६, ३५७७, ३६७२, ३७०८, ३७०९, ३७१०, ३७११, ३७१२, ३७१३, ३७१४, ३७३४, ३७५०, ३८१६, ३८४६, ३८५२, ३८५३, ३८५६, ३८६४, ३९१०, ३९७८, ४०२२, ४०२३, ४०२४, ४०३०, ४०६१, ४०८७, ४०९७, ४१२१, ४१३४, ४१५८, ४१५९, ४१६६, ४२०५

२३७. मुनाफ़ा-घाटा

१३२०, १५३०, १७४४, १९६१, १९८८, १९८९, २३३२, २३३३, २३३६, २८०२, ३०१४, ३१३४

२३८. मुफ़्त

१२९७, १२९८

२३९. मूर्छा

३५२, ३६२, ७४१, ९३६, १६५५, २०५८, २३५०, ३५९६

२४०. मूर्तिपूजा

२२९८, २२९९, ३००१, ३००२, ३००३, ३००४, ३००५, ३००६, ३२८०, ३२८१, ३२८२

२४१. मृत्यु, मरण

४८३, ४८४, ४९१, ४९२, ४९३, ४९६, ७४६, १४९६, १४९८, १४९९, १५०१, १५०२, १५०३, १७८६, १८२४, २०३५, २०३६, २०४८, २१५३, २७४०, ३५४२

२४२. मेल-मिलाप

१७९०, १७९१, ३४९४, ३४९९, ३९९९, ४०१८

२४३. मेहनत

१८९६, १८९७

२४४. मैं और मेरा

१०४९, १११४, १४६२, १४६९, १६५९, १६७०, १६७१, १६७२, १६७३, १६७४, १६७५, १६७६, १६७७, १६७८, १६७९, १६८०, १७६१, १७७०, २०३७, २२६४, २२६५, २४६५, २७४६, ३५३०, ३८३८

२४५. मैं कौन हूँ

२८, २९, ३०, ३१, ३२, ४०, ४१, ४६, ४८, ६७, ३६०, १११२, १२३७, १२३८, १३८२, १४४३, १४८१, १६५१, १९६५, २००५, २०३९, २५९५, २८२८, ३१२९, ३९४३, ४०४७

२४६. मोह

३६३, ३६४, ३६५, ३६६, ३६७, ३६८, ३६९, ३७०, ६७७, ९३९, ९४०, ९४१, ९९४, ९९५, ९९६, ९९७, ९९८, ९९९, १०००, १००१, १००२, १३४२, २०३७, २०९६, २२४०, २३९८, २७७७, ३१६६, ३१६७, ३१६८, ३१६९, ३१७०, ३१७१, ३१७२, ३१७३, ३१७४, ३१७५, ३१७६, ३१७७

२४७. मोक्ष

१३१, ३०५, ३०६, ३०८, ४५७, ४६०, ५६१, ५६२, १०३८, १०८७, ११४६, ११४७, १२६०, १२८०, १४०९, १५६१, १७६०, १८७१, १८८७, १९७९, २०५३, २११७, २१४६, २१५९, २१८०, २२३४, २३५३, २३५४, २३५५, २४४६, २४७३, २५६६, २८५२, २८८५, २९१८, ३२८३, ३३३१, ३३५८, ३३६१, ३३६२, ३३६३, ३३६४, ३३८७, ३४५६, ३५३४, ३५४५, ३५७५, ३६३०, ३८८४, ३९१०, ३९२५, ३९२६, ४१२१, ४२०४

२४८. मोक्ष-इच्छा

५३०, ७१४, ९५०, १२२७, २६६९, २७२८, २७८६, ४००५, ४००६, ४००७, ४०१२, ४०१५

२४९. मोक्षमार्ग

१, ३, ७२, १८१, २०३, ३०१, ३०८, ३४१, ३९२, ३९६, ३९७, ४३६, ४५८, ५००, ५०१, ५०४, ५३१, ५३२, ५३५, ५३६, ५५९, ६२३,७५३, ७५४, ७६५, ७७२, ७९७, ८२४, ८६४, ८६५, ९०१, ९२०, ९२२, ९२४, ९३७, ९४२, १०७८, १२८४, १२९४, १३४७, १३५९, १३६८, १३८१, १४१९, १४२८, १४४४, १४४५, १४६०, १५४१, १५९८, १६२८, १६२९, १६५८, १६९५, १८०६, १८४३, १८४४, १८६४, १९२५, १९३०, १९५७, २०१५, २०२०, २०२२, २१०४, २१२२, २१२३, २१६८, २१७१, २१७८, २१८९, २२०४, २२३०, २२३१, २२३३, २२३९, २२४२, २२४३, २२४४, २२४५, २२४७, २२५६, २२६३, २२८०, २२८८, २२९८, २३०३, २३२६, २४१२, २४५९, २४६३, २४८२, २५२२, २५६२, २७५१, २७७५, २८०५, २८५९, २९३३, २९५२,

२९५८, २९५९, २९६२, २९७४, २९८८, ३०१३, ३०३३, ३०४५, ३०८१, ३०९५,३०९७, ३११२, ३१२१, ३१४७, ३१७७, ३१८१, ३१८७, ३२००, ३२०२, ३२५४, ३२५५, ३२६०, ३२७२, ३२८७, ३३६६, ३३७२, ३३७६, ३३८६, ३३८८, ३३८९, ३४००, ३४२५, ३४३३, ३५१७, ३५६०, ३५६१, ३५६२, ३५६३, ३५७४, ३५७५, ३५७८, ३५७९, ३५८२, ३५८३, ३६०२, ३६०३, ३६२१, ३६२४, ३६२६, ३६५५, ३६५६, ३७४९, ३८०६, ३८०७, ३८१४, ३९२९, ३९३६, ३९३८, ३९४४, ४०३०

२५०. मौन

१८७५, १८७६, १८७७, १९०६, २३१०, २३११, २३१२

२५१. योग

७६६, ७६७, ७६८

२५२. योगी

२९९५, ३००१

२५३. रचना, गठन (design)

१७४६, २६९४, ३७४१, ३७४३, ४११४, ४१३६, ४१४८

२५४. रचना, निर्माण (creation)

१०४, १०७, १५५९, १८९९, २६९०, २६९३, ३८४२, ३८४४, ३८७२, ३८७८, ४१२०, ४१२१, ४१३६, ४१७४

२५५. रटना

३९१९

२५६. राइट बिलिफ (सम्यक् मान्यता)

३४०, ६२९, ६३२, ६३३, ६३४, ६४६, १०५४, १४११, १४१२, १४१३, ३५३३, ३६२९, ३६३१, ३८५५, ३८८८

२५७. राग-द्वेष

८९, २५२, ३४६, ३४८, ३४९, ३५०, ४२९, ४३१, ४३२, ४३३, ४३४, ९४१, ९४२, ९४३, ९४४, ९४५, ९४६, ९४७, ९४८, १०१६, १०१७, १०१८, १०१९, १०२०, १०२१, ११८२, ११८३, १३९५, १४५५, १४६७, १४६८, १४७०, १५९१, १७४०, १७६९, २२३६, २२७३, २४०३, २६३२, २७७४, २९५३, ३१५१, ३२३२, ३३१५, ३४३०, ३४३४, ३४३५, ३४५८, ३४८७, ३६४७, ३७०१, ३७०२, ४०५५

२५८. रियल, रिलेटिव

२३८३, २७२५, २७२६, २७२८, २७३१, २७३३, २७३७, २७३८, २७४३, २७५०, २७८९, २९०५, २९०६, ३७६६, ३८२२, ३८२३, ३८२७, ३८२८, ३८८२, ३८८३, ३९५३, ३९८१, ४०५८, ४०९०, ४१३७, ४१६१

२५९. रिश्ते-नाते

३३३, ४७८, ४७९, ११७३, १२७१, १३७३, १३९४, १४०४, १६३१, १७५५, १७७४, १८१४, १८५४, १९९३, २०३३, २०३४, २०४५, २०४६, २११०, २१४४, २३८३, २३८७, २३८८, २३९४, २४५०, ३१३५, ३२९७

२६०. राँग (ग़लत)

१७४९, २०९९

२६१. राँग बिलिफ, गलत मान्यता

३२४, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ८१२, ८१३, १३५६, १३९०, १४११, १४६१, १५७४, १६४७, १६४८, १६४९, १८६७, १९१०, १९११, १९१२, २०५९, २०६०, २०६२, २१९९, २७४८, २९४५, ३१२८, ३१४५, ३१६२, ३१९१, ३१९४, ३५३२, ३५३३, ३६२८, ३६३१, ३७०६, ३७२८, ३८७५, ३८७६, ३८८७, ३८८८, ३९२८, ४०३९, ४०९०, ४१३५, ४१६५, ४१६६, ४१९९

२६२. लगाव

१३३५, १९४६, १९६६

२६३. लड़ना, झगड़ना

१५६, १५७, १७५, १७८, १८४, १९१, १९२, ३८५८

२६४. लक्ष्मी

८७१, ८७२, ८७३, १३७४, २४६०

२६५. लक्ष्य (अवबोध)

६८८, १७०७, १८६३, १८६९, १८८७, २२४३, ३७६४, ४११३

२६६. लालसा

७३५, ७५७, ७८३, १०७४, १३०६, २११७, २११८, २११९, २१२१, २२८५, २९८७, ३०६९, ३५९५, ३७३१, ३७३२, ३७३३, ३७८४

२६७. लेन-देन

१७५८

२६८. लोकमत

४८५, ९७७, २०५३

२६९. लोभ, लालच

८७५, ९६७, ९६८, ९६९, ९७०, ९७१, ९७२, ९७३, ९७४, ९७६, ९७७, ९७८, ९८०, ९८१, ९८२, १३३३, १३३८, १३४०, १३४१, १८०१, १९८१, ३२२८

२७०. वक्रता

९१९, ९२०, ९२१, ९२२, ९२३, ९२५

२७१. वर्तमान

२४४२, २४४३, २४४४, २४४५, २४४६, २४४७

२७२. वाणी, वचन

१८२, २२९, ३४०, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६, ६८७, ८९२, ९१०, ९११, ९१२, ९१३, १५२६, १५३०, १५३२, १५४७, १५८९, १६६४, १६८०,१६९३, १७००, १७४८, १७६६, १८७३, १८७४, १८७५, १८७६, १८७७, १८७८, १८७९, १८८०, १८८१, १८८२, १८८३, १९०५, १९०६, १९०७, १९२६, १९४९, १९५०, १९५३, २०६४, २०८४, २१३०, २२४४, २२७४, २३०२, २३०४, २३०५, २३०६, २३०७, २३०८, २३०९, २३१०, २३११, २३१२, २३१३, २३१४, २३१५, २३१७, २३१८, २९८३, ३०९७, ३२१३, ३३७०, ३३७४, ३४७४, ३५७८, ३६५०, ३७०४, ३७९४, ३७९५

२७३. वाद, प्रतिवाद, बहस

१८१४, १८१५, २३०१, ३३८०, ३३८१

२७४. वास्तविकता

१३११, १४२७, १८९३, २७२२, २७५२, ३८८१, ३९३५

२७५. विकल्प

१८७, ३७५, ३७८, ३७९, १३५२, १३५४, १४२८, १४२९, २७०४, २७०५, २७०७, २७०८, ३०८१, ३०८७, ३३१६, ३४६९, ३४८०, ३७२९, ३७३९, ३९६६, ३९६७, ४०६९

२७६. विरोध

३५१०, ३५१२, ३५१३, ३५१४, ३५१५, ३५८१, ३५८२

२७७. विलगता

२३९९, २४००, २६३०, २९७७, ३५७०, ३५७२, ४०२७, ४०३०, ४०७९

२७८. विवाह, शादी

१४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४७, १४९, १५०, १५३, १५४, १५५, १५९, १९२, २११, २१२, २१३, ११४५, १७४३, १७७४, १८५२, २३८९, २४०७, ३६०२, ३६०३

२७९. विवेक

११९, ७२६, ७६३, ७६४, ७६५, ९२१, २५८६, ३१२०, ३३१८, ४०२६, ४०२७, ४०४३

२८०. विशेषभाव

९६, १२७, १७३, ३३०, ३७७, ३७९, ५६३, ७५०, ८४८, ११०६, १२६१, १२७५, १२७७, १४५७, २०४६, २२०२, २२०३, २४०६, २४८४, २५३२, २५६४, २५६५, २६११, २६१३, २६१५, २६८१, २७७७, २८३७, २९३९, २९६०, ३०३३, ३१६३, ३१६९, ३१७२, ३१८२, ३१८३, ३१९१, ३१९७, ३२९६, ३३०९, ३३१०, ३३२४, ३३२५, ३६४०, ३६४२, ३६८६, ३६९२, ३६९६, ३७२७, ३७७३, ३८८४, ३८८९, ३८९५, ३८९९, ४०५७, ४०९५, ४०९६, ४०९७, ४११०, ४१११, ४११९, ४१३२, ४१३३, ४१३४, ४१३५, ४१४०, ४१४१, ४१४२, ४१४३, ४१४४, ४१४६, ४१४७, ४१४९, ४१५४, ४१५९, ४१६०, ४१६२, ४१६३, ४१६४, ४१६५, ४२००

२८१. विश्वास

१५८२, १७६६, १९२०

२८२. विज्ञान मार्ग / वीतराग विज्ञान

५५, ५६, ५७, ५९, १६४, २५१, २८७, १०२७, १०२९, १०३०, १०३२,११४४, १४१०, १६८१, १७०८, १७८१, २०९१, २४९८, २६४९, २६८०, २७०१, २८९१, २८९३, २९४४, ३२९१, ३६३०, ३८७४, ३८७५, ४१४६

२८३. वीतराग

१०१७, ११८६, १८३४, १८३५, १९९३, २१६०, २३६१, २३६३, २३६४, २६०९, २६३७, २७९१, २९५३, २९५४, ३४२३, ३४२४, ३४३०, ३४३२, ३४३३, ३४३६, ३४३७, ३४३८, ३४५२, ३४५८, ३४८७, ३५१३, ३५३३, ३८६५, ४१०२

२८४. वीतराग मार्ग

७२, ७३, ५२९

२९३. व्याकुलता, बेचैनी

२६७, २६८, २६९, ८०४, ९०९, १८५८, १९२२, १९६९, २१७०, २४९५, २७०५, २८६६, ३१०४, ३२०३, ३६८२

२९४. व्याधि, रोग, उपाधि

१३१३, १५००, २१३८, २१७१, २१७३, २१७४, २९८३

२९५. व्यू पॉइंट, दृष्टिकोण

१८३, १८५, २१०, १६२९, १७०५, १९९१, २१५७, २२७५, २३९६, २७३०, ३०४०, ३२६४, ३३९८, ३५१४, ३७०८, ३७८०

२९६. शंका

१९२, १९३, १९४, १९५, १९७, १९९, २०६, २०७, २०८, २०९, ३४५, २२७२, २५९४, २५९५, २५९६, २५९७, २५९८, २५९९, २६००, २६०१, २६०२, ३१२९, ३१४६, ३२६३

२९७. शांति

१७१, २५८, २५९, २६०, ४४६, ७७८, ९६६, १३५७, १४१९, १४९१, १४९२, १८१४, १९२२, २१३६, २३४०, २३५७, ३०२०

२९८. शास्त्र

६५, ३९६, ६१३, ७४८, ८४०, ९५१, ९५२, ९५३, ९५६, १६७०, १९३६, २२०५, २२०६, २२०८, २२०९, २२१०, २२११, २२१२, २२१३, २२१४, २२१५, २२१६, २२१७, २२१८, २२१९, २२२१, २२२२, २२२३, २६४६, २८४६, ३१७४, ३३६३, ३४०३, ३४०४, ३५२२, ३५६१, ३५७३, ३६२९, ३६३२, ३९१९, ४०५१, ४०५२

२९९. शिष्य

३२७७, ३२७८, ३२७९, ४०११

३००. शुद्ध

२९४६, २९४७, ३०५६, ३११३, ३११४, ३१२०, ३३०४, ३३०८, ३५३२, ४२०१

३०१. शुद्धात्मा

८५७, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, १००७, १०१०, १४०८, १६८०

३०२. शुद्ध उपयोग

८४९, ८५३, ८५४, ८५७, ८५८, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६८, ८६९, ८७०, १०३८, १०५८, १०६१, १२३५, १२५८, १२९०, १३४९, १३५२, १३८६, १४१६, १४३२, १४७६, १५३८, १६५३, १७०९, १७१०, १७९३, १८८८, १९५६, २०५०, २०९०, २२५७, २४७१, २४८८, २५४३, २५५२, २५६४, २५८२, २६०७, २६५७, २६६२, २६६५, २७२६, २७२७, २८३७, २८४८, २८८२, २९१९, २९२०, २९३७, २९४०, २९४१, २९४२, २९५३, २९६२, २९६३, ३००३, ३००६, ३०२६, ३०८४, ३०८५, ३१०५, ३१०७, ३१०८, ३१०९, ३११८, ३१९८, ३२५६, ३३००, ३३०४, ३३२३, ३४८२, ३४९५, ३५१९, ३५३६, ३६०७, ३६५३, ३६६०, ३६६१, ३६६८, ३७२९, ३७६४, ३७७८, ३८२९, ३८८४, ३९१३, ३९१७, ३९१८, ३९३८, ३९३९, ३९४०, ३९४९, ३९५०, ३९५१, ३९५२, ३९५३, ३९५९, ३९८१,३९८३, ३९८४, ३९८५, ३९८७, ३९९३, ३९९५, ४०३२, ४०३९, ४०४९,४०५६, ४०५९, ४०६१, ४०६४, ४०७३, ४०८२, ४०८४, ४०९१, ४१०५, ४११२, ४११३, ४१३९, ४१५८, ४१८०, ४१८१, ४१८२, ४१९८, ४२००, ४२०३

३०३. शुद्ध निश्चय

३५५७

३०४. शुद्ध व्यवहार

३६५६, ३६५७, ३६५८, ३६५९, ३६६०, ३६६१, ३६६२, ३६६३, ३६६४, ३६६५, ३६६७, ३६६८, ३६६९, ३६७०, ३६७१, ३६७२, ३६७५

३०५. श्रद्धा

१४१४, १४१६, १४१७, १९१७, १९१८, २०३९, २०४०, २०४१, २०४२, २०४३, २३००, ३७५०, ३७५१, ३७५५, ४०४८

३०६. संकल्प, विकल्प

३७०, ३७१, ३७२, ३७३, ३७४, ३७५, ३७६, ३७७, ३७८, ३७९, ६८५, ६८६, ६८७, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ८८१, १०५५, १३५३, २०७६, २२३५, २७०७, २७९१, २७९२, २७९३, २७९५, २७९६, २७९९, २८०३, २८०९, २८१०, २८११, २८१२, २८३९, ३३१६, ३५०६, ३५४९, ३५८२, ३६६८, ३६७०, ३९४९, ३९५०, ३९५२, ३९५४, ३९५५, ४०७३, ४१६१, ४१६३

३०७. संकुचित

२३०२, २६३७, ३२५३, ३२५४, ३२५५, ३२५६, ३२५७, ३२५८, ३२६१, ३२६७, ३२६८, ३२६९

३०८. संग, सत्संग, कुसंग

५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१, ५२२, ७६९, ७७०, ७७१, ७७५, १२९२, १५३५, १७५४, १९४४, १९५२, २०५२, २१६९, २३५०, २३५४, २३९१, २४२०, २४२१, २४२२, २४२३, २४२४, २४२५, २४२६, २४२८, २४२९, २४३०, २४३१, २४३२, २४३३, २६४८, २७७१, २८४३, २९७५, ३१९५, ३२३८, ३३३७, ३३४०, ३३४१, ३३४२, ३३६७, ४२०४,३७३८, ३८००, ३८२१, ३९००

३०९. सत्य

५२३, ५२४, ५२५, ५२६, ५२७, ५२८, ५२९, ५३८, ५३९, ५४०, ५४२, ५४७, ५५४, ५७५, ६०८, १०२७, १०३३, ११५६, ११५७, ११५८, ११५९, ११६१, ११६२, ११६३, ११६७, ११७१, १२८९, १८१८, १८७८, २००४, २००६, २००७, २२६९, २७१९, २७३५, २७३६, ३३३२, ३४८८, ३५६१, ३६३५, ३७५९

३१०. सद्व्यवहार

९८३, १४७३, १६६०, १७०९, १९२१, १९२२, १९८२, २२९१, २३३१, २४३६, २४३८, २५१८, २८६४, ३४१३, ३६११, ३६१२, ३६१३, ३६१५, ३६१६, ३६१७, ३६२२, ३६५६, ३६५८, ३६५९

३११. संत

७२७, १६२३, १६६०, १६९५, १७०२, ३३४६

३१२. संतोष

९६८, ९७०, ९७८, ३३४४, ३३४५, ३३४६, ३३४७, ३७९८

३१३. सफाई

१९२८, ३५८०

३१४. समझ

४, ५, ६, ७, ११, २५३, २६५

३१५. समर्पण

२८२, १६१०, २१९२, २२८०

३१६. सम्यक्त्व

६६४, ९४४, ९४५, ९४६, १४८७, १५११, १९४८, २११६, २१४३, २५७६, २५७७, २९८४, ३०१८, ३०२०, ३०४४, ३१२१, ३१७२, ३२९७, ३३४७, ३४३६, ३५५५, ३५७७, ३५८२, ३६२८, ३९३७

३१७. सम्यक् दृष्टि

३१४, ३१६, ४८६, ८४२, १२१३, १४१४, १४२१, १४४९, १४५०, १८३९, १८४०, १८४१, ४०५७

३१८. सर्वज्ञ

२४, २५, १६२९, २८९९

३१९. सरलता

१३३९, १८४४, ३०३१, ३०३२, ३२१७, ३३६९, ३३७३, ३३७४, ३३७५

३२०. सलाह

१९२५, १९२६, १९२७

३२१. सहनशीलता

८४५, ९४४, १२६६, १२६७, १२६८, २०५६

३२२. साधक, साधु

२१९६, २३८६, ३२१५, ३२१६, ३२१७, ३२१८, ३२१९, ३५२१, ३५९२, ३७३०, ४०३१

३२३. साधन, निमित्त

९२२, ९५३, ९५७, १७०७, १७१३, १९४३, २४७०, ३८५२, ३८५३, ३८५४, ३८५६, ३८५७, ३८५८, ३८५९, ३९६५, ४००९, ४०३७, ४०४२, ४१२०, ४१७७, ४१९३, ४२०३

३२४. सापेक्ष (रिलेटिव)

५९५, ११५७, ११५८, ११६०, ११६१, १३१०, १३११, १४०८, १४६१, १४९०, १५९६, १६६५, १८६८, १९३९, २३०१, २४२८, ३२९३, ३५४८, ३५४९, ३६७३, ३७८०, ३८८०, ३९५१, ३९५२, ३९५३, ३९५४

३२५. सामीप्य

३२९३, ३५२९, ४१३९, ४१४२, ४१४४, ४१४५, ४१४६

३२६. सांसारिक समृद्धि

१४१८, १६३४, १७३४, १८०१, १९०९, १९५३, २०३६, ३४२६

३२७. सामर्थ्य

११२९, १७३५

३२८. सामान्य-बुद्धि

१५१३, २०६५, २०६६, २०६७

३२९. सावधानी

१८५०

३३०. साहजिक, स्वाभाविक

५०३, ५४३, ७१२, ७२९, ११७७, १६५७, १६९९, १८४३, १८४४, १९६९, २६१६, २६१७, २९५४, ३१३९, ३२६८, ३४००, ३४१७, ३४२०, ३४५८, ३४५९, ३४६०, ३४६१, ३४६२, ३४६३, ३४६४, ३४६५, ३४६६, ३४६७, ३४६८, ३४६९, ३४७०, ३४७१, ३४७२, ३४७३, ३४७४, ३४७५, ३४७६, ३४७८, ३४७९, ३७०९, ३७४२, ३८७८, ३८७९, ४१२४, ४२०२

३३१. सीधा, सरल

९२२, ९२३, ९२४, ९६५, १२८४, १२८५, १२९५, १५५०, १७४५, २९४३, ३३६८, ३३७३, ३५१८

३३२. सुख

६२, १२८, १२९, १५२, १७०, १७२, १७३, १७४, २३९, २४८, २४९, २५०, २५६, २६३, २६४, २६५, २६६, २६९, २७०, ३०४, ६०१, ७१२, ७८६, ८३२, १२०१, १४२०, १४८३, १४८४, १४८५, १४८६, १४८८, १५६३, १५६७, १५८३, १५८४, १६१८, १६४७, १६७९, १६९१, १७२७, १८११, १८३६, १९०१,१९२९, १९५५, २०५८, २३८४, २३८५, २४१३, २४१४, २४२५, २४५९, २४६५, २४८१, ३१११, ३१३१, ३४४७, ३६०७, ३८०५, ३९२५, ३९४७

३३३. सुधारना / सुधरना

२२५, २२६, २२७, २२९, ४७४, ४७५, ७६२, १४५६, १७४९, १९३२, १९३३, २९४४, ३३९०

३३४. सुंदर, सुहाना

१२१६, १४६६, १७४२

३३५. सुविधाएँ

२३४९

३३६. सूझ-बुझ

१५१६, १७२१, २१६४, २९००, ३६७८, ३६८०, ३६८१, ३६८२, ३६८५

३३७. सेवा, काम

२३७, १९४६, २४५९, २४६०, २४६२, २४६४, २४६५, २४६७, २४६८, ४०१०

३३८. सोच-विचार

२७३, ४९७, ६३५, १०८८, १०८९, ११७५, १२५३, १२५४, १३१७, १३१८, १५०४, १५८७, १५९०, १७२०, १८६१, १९०८, १९८२, २२०७, २२४२, २४३७, २४३८, २४४८, २६०५, २७६८, २७७२, २७८४, २९८६, २९८८, २९८९, २९९०, २९९७, ३०५१, ३२१३, ३३१६, ३३१७, ३३१८, ३५८१, ३६०६, ३६६६,

३३९. संयम

८३४, १६२५, १६२६, १६२७, २००४, २२९२, २२९३, २२९४, २३०९, २५७८, २५७९, २५८०, २५८१, २५८२, २५८३, २५८४, २५८५, २५८६, २५८७, २५८८, २५८९, २५९०, २५९१, २५९२, २५९३, २७५५, २७५६, २७५७, २७५८, २७५९, २७६०, २७६९, २७७०, २७७२, २७७३, ३१८९, ३५८७, ३६०८, ३७००

३४०. संयोग, स्थिति, परिस्थिति

५८, १३६, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, ४१९, ७०१, ७५५, ८३२, ८३८, ८९६, ९८४, १००३, १००४, १००५, १००६, १००७, १००८, १००९, १०१०, १०११, १०१२, १०१३, १०१४, १०२३, १४२१, १४२४, १६७१, १७७३, १८०९, २२६८, २३३५, २८१७, ३०९२, ३०९९, ३६८३, ३६८५, ३६८७, ३६९५, ३७०५, ३७०७, ३७१८, ३७१९, ३७४७, ३७४८, ४१२०, ४१२६, ४१४२, ४१४३, ४१५१, ४१५४

३४१. संसार / सांसारिक जीवन / जगत् व्यवहार

१, २, १३, १४, १८, २०, २१, १९६, १९८, २९०, ३२१, ३३५, ४२६, ४३८, ४३९, ४५७, ४५८, ४५९, ४६०, ४६७, ४८२, ५९१, ७१६, ७१७, ७५७, ८१३, ८१४, ८४८, ९०८, ९०९, ९३९, ९४८, ९६८, ९८८, १०९८, १२०३, १४०९, १४३५, १४६२, १४८०, १४८१, १४८२, १५३६, १६१४, १६१७, १६१९, १६२८, १७७७, १७८१, १७८४, १७८५, १७८७, १७८८, १७९९, १८०९, १८६९, १९१०, १९२२, २००२, २००९, २०२६, २०२८, २०२९, २०३१, २०३२, २०३३, २०८०, २१६९, २२३८, २२४०, २२४३, २३७९, २३८१, २३८३, २३८८, २३९०, २३९२, २३९४, २३९५, २३९८, २४०६, २४०८, २४०९, २४१०, २४११, २४१२, २४१७, २४१९, २४८८, २४९३, २४९७, २५६२, २५८९, २५९८, २६५२, २६६९, २६७२, २७२९, २७४१, २७९८, २८०५, २८५०, २८७२, २९४९, ३०३९, ३०४०, ३०५४, ३११९, ३१३५, ३१४४, ३१५२, ३१६३, ३१८६, ३१८८, ३२७३, ३२८९, ३३१२, ३४९६, ३५५१, ३५६६, ३५६७, ३५७२, ३६७३, ३६८६, ३७७१, ३८७५, ४०६१, ४११९, ४१७३

३४२. स्पंदन

१०९७, १०९९, १६८३, १६८४, १६८५, ३९२४, ४१२८, ४१२९, ४१३१

३४३. स्पर्धा

१५३३, १५३४, १५३५, १५३६, १५३७, १५३८, १५३९, १५४०, ३२६३

३४४. स्मरण, स्मृति

१४७०, २०८१, २२८९, २३५२, २३५९, २३६०, २३९७, ३२३२, ३२३३, ३२३४, ३२३५, ३२३६, ३२३७, ३२३८, ३२३९

३४५. स्व-अर्थी

१२९९

३४६. स्व, आत्मा

३८, ३९, ६०, ६२, ६८, ७७, ७८, ७९, ८०, ११२, ११७, ३४४, ११९, २०८, २४७, २४९, २५०, २७३, ३४४, ३८५, ४७९, ५४८, ५७२, ६१९, ६२१, ६४२, ६६५, ७०७, ७१८, ७१९, ७२४, ७३२, ७३७, ७५१, ७७०, ७७६, ८२०, ८५०, ८९२, ९६९, १०४६, १०६९, ११०६, ११०९, ११५३, ११५५, ११९१, १२७३, १२९९, १३००, १३५३, १३५४, १४१७, १४५३, १५५१, १५५९, १५६१, १५७७, १५८०, १६०८, १६८१, १७६१, १९७१, २०४४, २१३१, २१४२, २१४५, २१४७, २१४८, २१४९, २१५८, २१६२, २१९१, २२४१, २३२९, २४२६, २४६८, २५७१, २६४५, २६५५, २७७९, २८३७, २८४६, २८७६, २९४६, ३०७४, ३०७७, ३०८३, ३०८६, ३०८७, ३१५९, ३१६४, ३२०९, ३२१०, ३२४७, ३२५०, ३२८३, ३२८४, ३२८५, ३२८६, ३२८७, ३२८८, ३२८९, ३२८७, ३२८८, ३२८९, ३२९२, ३२९३, ३२९५, ३२९६, ३३००, ३३०८, ३३३४, ३३३७, ३३३९, ३३६६, ३५२९, ३५३२, ३५३३, ३५४६, ३६०६, ३६१६, ३६५२, ३७०१, ३७०२, ३७०३, ३७१५, ३७५९, ३७६५, ३७६७, ३७७६, ३७७७, ३७९४, ३८०९, ३८११, ३८१२, ३८१८, ३८१९, ३८२०, ३८२३, ३८३०, ३८३२, ३८३३, ३८३८, ३८४१, ३८४९, ३८९५, ३८९६, ३८९९, ३९०९, ३९१३, ३९१६, ३९२०, ३९३२, ४०५६, ४०७१, ४०७२, ४०७९, ४०८९, ४०९०, ४११९, ४१३२, ४१३५, ४१३७, ४१४०, ४१४४, ४१४९, ४१५०, ४१५३, ४१६२, ४१६३, ४१६५, ४१७१, ४१७२, ४१७३, ४१७९, ४१८७, ४१८९, ४१९२, ४१९४, ४२०१

३४७. स्वच्छ, पारदर्शक

१०७२, १६२४, २९२६

३४८. स्व-रमणता

३१८७, ३१८८, ३१८९, ३१९०, ३१९१, ३१९२, ३१९३, ३१९८, ३१९९, ३२००, ३२०१, ३२०३, ३२०८, ३४०२, ३४०५, ३४८३

३४९. स्वरूप का भान, आत्म-जागृति

१२३५, १४०७, १५६८, १६५२, १६६५, १६७४, १८३५, १९१८, १९२९, १९७६, २०५४, २१३८, २१३९, २१४०, २१४१, २२०९, २२१०, २२११, २२८९, २३७७, २३८७, २३८८, २४८७, २५५९, २५६६, २६००, २६०७, २६२०, २६५३, २६५६, २६९७, २७४९, २८७१, २९३८, ३०६४, ३०६७, ३०६९, ३०७१, ३०७२, ३०७४, ३०७७, ३०७९, ३०८६, ३१००, ३१०४, ३२३४, ३३३०, ३५२२, ३५२३, ३५२४, ३५३८, ३५४०, ३७५३, ३७५४, ३७५६, ३७५७, ३७६६, ३७७०, ३७७४, ३७७५, ३७९३, ३८०१, ३८०२, ३८०३, ३८१५, ३८१६, ३८२६, ३८३७, ३८९०, ३८९१, ३८९२, ३८९८, ३९०५, ३९०६, ३९०७, ३९०८, ३९२८, ४११८

३५०. स्व-हित, आत्म-कल्याण

४६४, २३९९, २७९७, २९८५, ३१११, ३२५७, ३३८१, ३४४३, ३६०३, ४००१, ४००३, ४००४, ४००५, ४००६, ४००९

३५१. स्वार्थ

१२९९, १३००, १३०१, ३४२७, ३४२८, ३४२९, ३४३१

३५२. हिंसा, अहिंसा

४६९, ५७८, ५७९, ५८०, ५८१, ५८२, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५८७, ५८८, ११३२, १५१२, १५४९, १५६८, १५६९, १५८१, १६२७, १६५७, १६८४, १६८८, १७७८, १८५३, २००४, २०२८, २१७५, २१७६, २३०२, २७८४, ३००७, ३३३४, ३५११, ३५५८, ३५६०, ३५९१, ३६११, ३७८१, ३७८५, ३८६३, ३८६४, ३८६६, ३८६७, ३८७०, ४०२५

३५३. हेतु, उद्देश

१४२४, १६५३, १७१६, २०७८, २६८९, ३१८२, ३१८३, ३१८४, ३१८५, ३१८६

३५४. क्षमा, माफी

७५९, ७६०, ७६१, ७६२ १७१२, ३९४५

३५५. ज्ञाता, ज्ञेय

९२, ७१७, १४४३, १५६०, १५७६, १५७७, २२२६, २४४६, २४७४, २४७५, २४८६, २५७५, २६१४, २६४३, २६४४, २६४५, २६४६, २६४७, २६४८, २६४९, २६५०, २६५१, २६५३, २७६४, २७६६, २७६७, २८२९, २८३८, २८५१, २८७२, २८७३, २८७४, २८७६, २८७८, २८७९, २८८०, २८८४, २८८७, २८९४, २८९५, २८९६, २८९७, २९०१, २९०२, २९०५, २९०६, २९०७, २९११, ३०६५, ३०६६, ३०८३, ३०८८, ३११४, ३१५१, ३२४१, ३२४९, ३३१३, ३३१४, ३३१९, ३३२१, ३३२२, ३४८२, ३५२१, ३६१६, ३६१८, ३६२०,

३७४८, ३८२९, ४०३६, ४०५०, ४०५६, ४०९०, ४१०३, ४११५, ४१८६, ४१९४, ४१९८, ४१९९, ४२००, ४२०१

३५६. ज्ञान / अध्यात्म-ज्ञान

५, २३, ३१, ४३, ४९, ६४, ६५, ६६, ६८, ६९, ७०, १६४, १६५, २६०, २८८, ३८०, ३८१, ३८२, ३९०, ३९१, ५०८, ५१३, ५३४, ५५५, ५७६, ५९६, ५९७, ५९८, ५९९, ६२४, ६२६, ६३९, ६४५, ६४७, ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५७, ७३४, ७३९, ७४२, ७४८, ७८०, ७८१, ८४७, ८६१, ९४८, ९५१, ९५४, ९८६, १००६, १०२८, १०२९, १०३०, १०५१, १०५३, १०५५, १०६३, १०९६, ११००, ११०३, ११९९, १२१८, १२४०, १२४१, १२४२, १२४३, १२४६, १२४७, १२६५, १२७४, १२८८, १३०७, १३५१, १३५२, १३५९, १३६५, १४६८, १४७३, १४७५, १४७९, १५२०, १५०६, १५३४, १५३६, १६१२, १६१८, १६५९, १६६०, १६६४, १६६५, १७२१, १७७०, १८३६, १८६८, १८९२, १८९८, १९४५, १९७०, २१२५, २१२६, २१२७, २१५१, २१५५, २१५७, २१५८, २१५९, २१६०, २१६१, २१६२, २१६३, २१६४, २१६५, २१६६, २१६७, २२०८, २२०९, २२१०, २२१२, २२१४, २२१७, २२१९, २२४८, २२४९, २२५०, २२५१, २२५२, २२६४, २२६६, २२६७, २३६६, २३६७, २३६८, २४०१, २४०२, २४०३, २४८९, २४९०, २४९१, २५७६, २५९४, २६५०, २६६६, २६६७, २६६८, २६७०, २६७१, २६७२, २६७३, २६७४, २६७६, २६७७, २६७८, २७०४, २७३५, २७४९, २७६२, २७८४, २७८७, २८१९, २८२७, २८२८, २८५८, २८६९, २८८३, २८८५, २८९०, २८९८, २९१७, २९६५, २९६८, ३०४३, ३०४७, ३०६७, ३०९८, ३१०९, ३१६०, ३२०६, ३२३३, ३२३९, ३२४४, ३२५८, ३२८५, ३२८६, ३३०४, ३३०५, ३३०९, ३३१०, ३३५८, ३३८५, ३४३४, ३४४८, ३४८१, ३५१६, ३५२२, ३५२३, ३५४६, ३६२१, ३६२५, ३६३०, ३६३५, ३६५४, ३६६३, ३६८०, ३७५७, ३७६९, ३७७९, ३७८४, ३७८५, ३७८६, ३७८७, ३७८८, ३७८९, ३७९१, ३८१३, ३८२९, ३९३०, ३९७०, ४०२२, ४०३८, ४०४०, ४०४१, ४०४४, ४०४५, ४०४८, ४०५१, ४०५२, ४०५३, ४०५६, ४०६६, ४०७७, ४०८५, ४०८६, ४०९३, ४०९४, ४०९५, ४१६९, ४१७५, ४१८८, ४१९१, ४१९२, ४१९३, ४१९५, ४१९६, ४१९७, ४१९९, ४२०२

३५७. ज्ञानी, ज्ञानीपुरुष, दादाश्री

३३, ४२, ४५, ४६, ४९, ७४, ७५, ८१, ११९, १२०, १७४, २८९, २९४, २९७, ३०९, ३११, ३२५, ३३८, ३३९, ३४२, ३४३, ३४७, ३४९, ३७४, ३८७, ३८८, ४२१, ४२२, ४६१, ४९३, ५२२, ५४४, ५९३, ५९९, ६१७, ६२०, ६७९, ७०६, ७२२, ७२७, ७४८, ७५६, ७६०, ७६२, ८०९, ८६८, ८६९, ८८५, ८८६, ९००, ९१७, ९१८, ९४९, ९६४, १००१, १०७०, १०९३, १०९७, ११०३, ११२०, ११३१, ११४८, ११५१, ११९०, १२१६,

१२१९, १२२४, १२२५, १२२९, १२३३, १२३४, १२५८, १३०७, १३२८, १३४४, १३८४, १३९४, १३९६, १४२५, १४३४, १४४५, १४७१, १४७२, १४७३, १४७५, १४७६, १४८०, १४९०, १४९१, १५४०, १५४४, १५८८, १५९२, १५९५, १६१४, १६२८, १६३३, १६४५, १६७५, १६९५, १७१०, १७११, १७५०, १७५२, १७५४, १७७०, १८२४, १८२५, १८३०, १८३६, १८७०, १८९३, १९३९, १९४८, १९८४, १९८७, २०४९, २०५५, २०७४, २०९८, २११०, २११३, २११८, २१२०, २१२९, २१५१, २१५२, २१५३, २१७८, २१८९, २१९०, २२०९, २२२०, २२३२, २२४०, २२६२, २३०३, २३२२, २३२३, २३४३, २३५७, २३६१, २३६२, २४०४, २४०९, २४१०, २४३०, २४४७, २४५५, २४६१, २४६८, २४६९, २४८७, २५३०, २५३१, २५४२, २५७८, २५८५, २६०२, २६०३, २६०५, २६०६, २६१८, २६४२, २६५४, २७४८, २७८५, २८२७, २८४४, २८४५, २८५२, २८५४, २८७१, २८८९, २८९०, २८९६, २९२३, २९४२, २९६९, २९७१, २९८२, २९८९, ३०३८, ३०५९, ३०७६, ३०७८, ३०९७, ३१०४, ३१११, ३११८, ३१२०, ३१२१, ३१५३, ३१६०, ३१६५, ३१८०, ३१८१, ३१९५, ३१९६, ३२००, ३२०२, ३२१४, ३३०४, ३३०७, ३३३२, ३३३५, ३३४२, ३३४४, ३३६३, ३३६८, ३३७०, ३३७६, ३४०२, ३४०३, ३४०४, ३४०५, ३४०६, ३४०७, ३४११, ३४१२, ३४१३, ३४१४, ३४१५, ३४१६, ३४२१, ३४२३, ३४३३, ३४३४, ३४३९, ३४४०, ३४४३, ३४४४, ३४५१, ३४५२, ३४५३, ३४५४, ३४५६, ३४५७, ३४५८, ३४७१, ३४८२, ३४८४, ३४८५, ३४९८, ३५०१, ३५०५, ३५०६, ३५०७, ३५१७, ३५२०, ३५२१, ३५२२, ३५२४, ३५३९, ३५४७, ३५६५, ३५७१, ३५८६, ३६०५, ३६२८, ३६३१, ३६३३, ३६३६, ३६३६, ३६४२, ३६५०, ३६५४, ३६८५, ३६९७, ३७०१, ३७१४, ३७२३, ३७३७, ३७४९, ३७५८, ३७७९, ३८२३, ३८२७, ३८४६

अनुवादक परिचय

अनुवादक डॉ. नयना डेलीवाला (जन्म : 1954), M.A., M.Phil., Ph.D.(हिन्दी); आप एफ.डी.आर्ट्स एवं कॉमर्स कालेज, जमालपुर, अहमदावाद में एसोसीएट प्रोफेसर रही है। आपने कई ग्रंथों का प्रकाशन एवम् अनुवाद किया है। आपके द्वारा जाने-माने गुजराती कवियों के काव्य का अनुवाद विविध पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ है। कई राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठीयों में आपके द्वारा शोध, आलेख प्रस्तुत किये गए। आकाशवाणी, अहमदाबाद पर काव्य पाठ, वार्तालाप, संवाद आदि तथा दूरदर्शन, अहमदाबाद से साक्षात्कार, परिचर्चा, वार्तालाप माध्यम से अपना योगदान दिया। गुजरात युनिवर्सिटी में आपने 2016 तक अध्यापकीय कार्य किया। आपको अनेक सम्मानों एवं पुरस्कारों से नवाजा गया, जिनमें श्रीलंका द्वारा पद्मश्री मुकुटधर पांडे सम्मान, भी शामिल है।

मो: 9327064948 Email : deliwala13@gmail.com

अनुवादक डॉ. रजनीकान्त शांतिलाल शाह (जन्म :1948) M.A.,B.Ed., Ph.D.; आप 37 वर्ष तक श्रीमती हर्षाबहन छगनभाई पटेल आर्ट्स & कॉमर्स कॉलेज, करजण, जि. वडोदरा में हिन्दी के एसोसिएट प्रोफेसर रहे। पी.एच.डी. के मार्गदर्शक के तौर पर सात विद्यार्थियों को शोधकार्य में मार्गदर्शन दिया। गुजरात के विख्यात कथाकार व उपन्यासकार के साहित्यों के अनुवाद के साथ-साथ साहित्य अकादेमी, दिल्ली को भी आपने अपनी सेवाएँ दी है। जैन धर्म-दर्शन और इतिहास एवं कई आध्यात्मिक ग्रंथों का आप अनुवाद कर चुके है। अनेक हिंदी तथा गुजराती पत्रिकाओं में आपकी रचनाएँ और अनुवादित साहित्य, यथावसर प्रकाशित होते रहते है। एक लंबे अरसे से आप होलिस्टिक सायन्स रिसर्च सेन्टर, कामरेज, सूरत से जुड़कर अकादमीय परामर्शक के तौर पर अपनी सेवाएँ दे रहे है। हिंदी, अंग्रेजी तथा गुजराती इन तीनों भाषाओं में आपकी अनुवाद कुशलता है।

मो : 9924567512 Email: navkar1947@gmail.com

संपादक परिचय

प्रधान संपादक श्री लालभाई डी. पटेल, (जन्म-1954) MBA(HRM), CAIIB, B.Sc.(Agri.); आपने स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया में अधिकारी के तौर पर ३३ वर्ष सेवाएँ प्रदान की और सहायक महाप्रबंधक(प्रशिक्षण) के पद पर निवृत्त हुए। अहमदाबाद, वडोदरा, हैदराबाद और कई अन्य शहरों में प्रशिक्षक के तौर पर SBI कर्मचारियों के लिए अनेक सत्र, संगोष्ठियाँ एवं कार्यशालाएँ लेकर उन्हें प्रशिक्षित किया है। युवा अवस्था से ही आप विविध अध्यात्म मार्ग के साधक व अध्येता रहे, तथा दादा भगवान के जीवन एवं दर्शन के आजीवन अनुयायी रहे। आपको सन 1985 में श्री दादा भगवान द्वारा आत्मज्ञान दीक्षा की संप्राप्ति हुई। आपकी दादा भगवान एवम् उनके अनुगामी ज्ञानीपुरूष कनुदादाश्री से निकटता, उनके प्रत्यक्ष सत्संग, सान्निध्य, तथा सभी घटनाओं का सूक्ष्म अवलोकन और स्मरण - इस अनुवाद के लिए काफी सहायक रहे। आपने श्री दादाजी प्रबोधित वीतराग विज्ञान संबंधित दस संकलनों की रचना की है, साथ ही HSRC की जर्नल 'होलिस्टिक विज़न' एवम् ई-मॅगेझीन के संपादक भी रहे और कई ग्रंथों का अंग्रेजी, हिंदी एवं गुजराती में संपादन किया। अक्रम विज्ञान, वीतराग विज्ञान, वैष्णव मार्ग व वेदांत अध्यात्म-ज्ञान संबंधी आपके सघन अभ्यास के कारण राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में आपको वक्ता के रूप में निमंत्रित किया जाता है। वर्ष 2018 में HSRC द्वारा आयोजित एशियन फिलोसॉफी कॉन्फरन्स एवं इण्डीयन फिलोसॉफिकल कॉंग्रेस के आप समन्वयक रहे। समग्र भारत के साथ-साथ आपने कई देशों की भी यात्रा की है। वर्तमान में आप HSRC, सूरत के वाइस-प्रेसीडेंट (एकॅडेमिक एण्ड रिसर्च) का उत्तरदायित्व निभाते हुए अपना सक्रिय योगदान दे रहे हैं।

मो. : 96879 39853 Email : ldpatelhsrc@gmail.com

सह-संपादक चंद्रकांत राजकुमार श्रीवास्तव (जन्म-1971), एम. ए. (इंग्लिश), शिक्षा विशारद, हिंदी विशारद, अमरावती, मुंबई, पुणे, तथा गुजरात यूनिवर्सिटीज के महाविद्यालयों में सहायक अधिव्याख्याता रह चुके है। गुजरात एवं महाराष्ट्र के अनेक विद्यालयों में शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यशाला में प्रशिक्षक के रूप में अपनी सेवाएँ दी । आप परम पूज्य दादा भगवान के विज्ञान में गहरी रुचि रखते है और वर्तमान में HSRC, सूरत में डेप्यूटी डायरेक्टर के पद पर कार्यरत है। HSRC द्वारा प्रायोजित हर रविवार, सर्वांगी जीवन दर्शन विज्ञान के सर्टिफिकेट कोर्स में आचार्य के तौर पर अपना नैमित्तिक योगदान दे रहे है।

मो. 93280 16987 Email – chandrakanthsrc48@gmail.com

॥ हमारे हिन्दी प्रकाशन ॥

सर्वांगी
जीवन का रहस्य
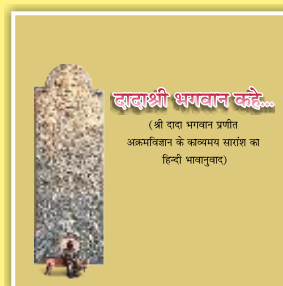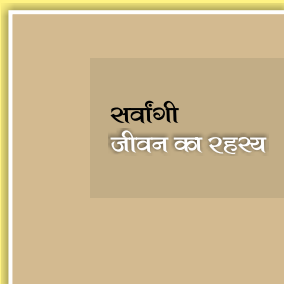
श्री नटुभाई और भूलीबेन पटेल तथा इनके दो सुपुत्र सुनील और सुशील
पूज्य दादा भगवान के साथ, 1985 की तसवीर।

श्री नटुभाई और भूलीबेन तथा सुनील और सुशीलभाई परिवार सहित
ज्ञानीपुरुष श्री कनुदादाजी के साथ। Nashville, TN. USA. 2017.
इस परिवार का होलीस्टिक सायन्स रिसर्च सेंटर के लिए बहुत ही बडा योगदान है
और इस ग्रंथ के प्रकाशन हेतू भी इन्होने योगदान दिया है।

एगो मे सासओ अप्पा,
नाणदंसणसंजुओ ।
सेसा मे बाहिरा भावा,
सव्वे संजोगलक्खणा ॥

संजोगमूला जीवेणं,
पत्ता दुक्खपरंपरा ।
तम्हा संजोगसंबंधं,
सव्वभावेण वोसिरे ॥

HOLISTIC SCIENCE RESEARCH CENTER
Vitrag Vignan Charitable Research Foundation
Near Mahavideh Teerth Dham,
Kamrej Char Rasta, N.H. 8, Surat 394185 India
TEL: +91-2621-250750; Email: hsrcsurat@gmail.com
www.holisticscience.org